Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

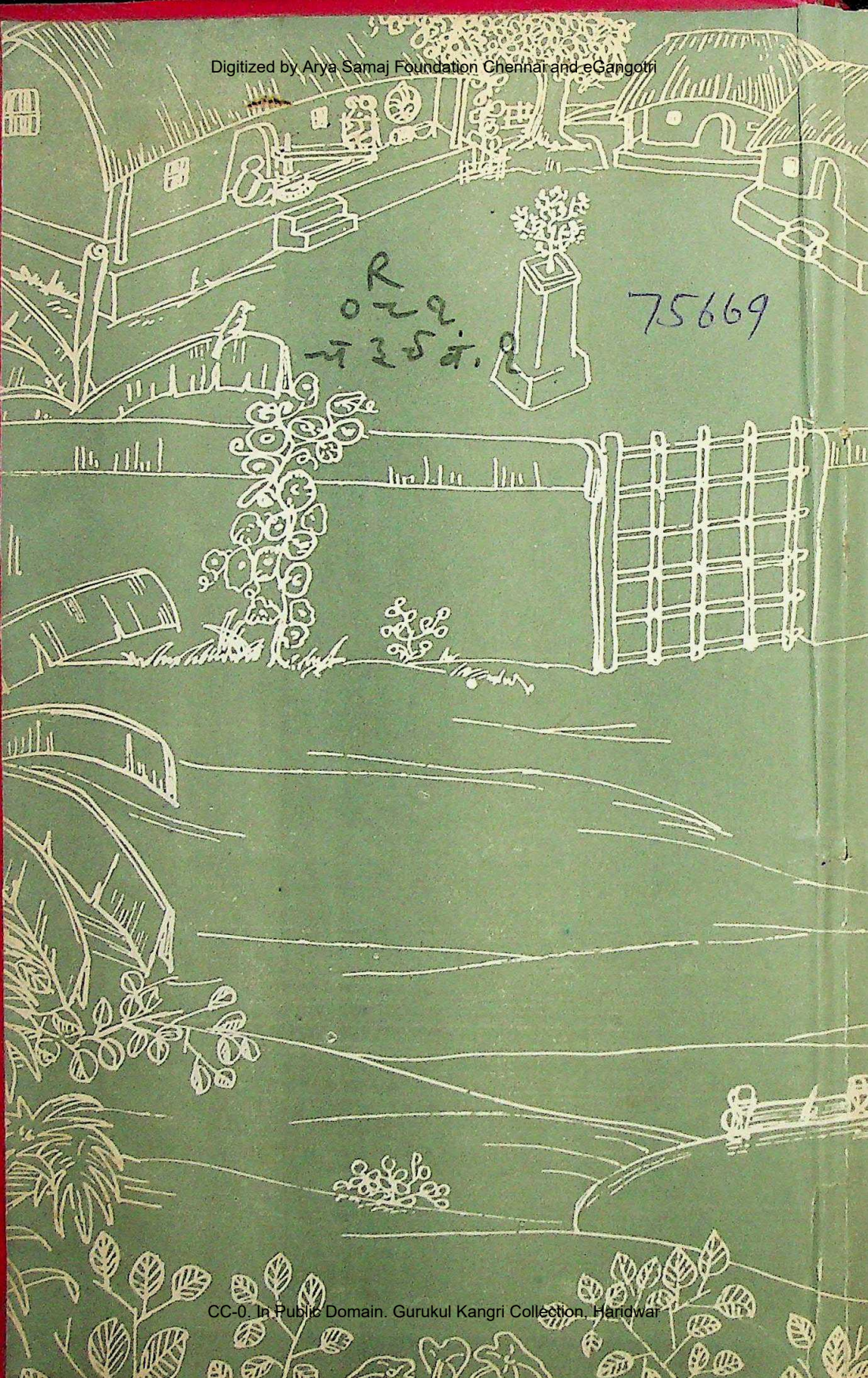

R
०८२
न३५ वं.१
75669

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

075669

R081, Ch39B.1
75669
पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य भवन [प्रा] लिमिटेड
के.पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११००३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

075689

बंकिम ग्रन्थावली

[एक]

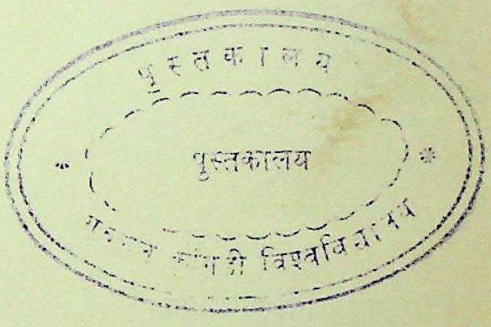

अनुवादक
सम्पादक | ओंकार शरद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रन्थावली

[तीन खण्डों में]

R
०८१
च ३५ बं. १

मूल्य : तीनों खण्ड का
एक सौ पचीस रु० मात्र

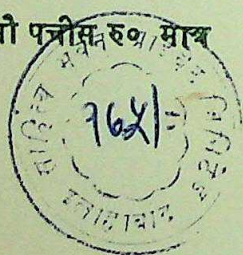

कापीराइट
प्रकाशक

प्रथम संस्करण : १९७४

प्रकाशक
साहित्य भवन प्रा० लि०
९३, के० पी० कक्कड़ रोड,
इलाहाबाद

मुद्रक
इलाहाबाद प्रेस
रानीमंडी, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"The earlier Bankim was only a poet and stylist – the latter Bankim was a seer and nation - builder."

—Shri Arobindo

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

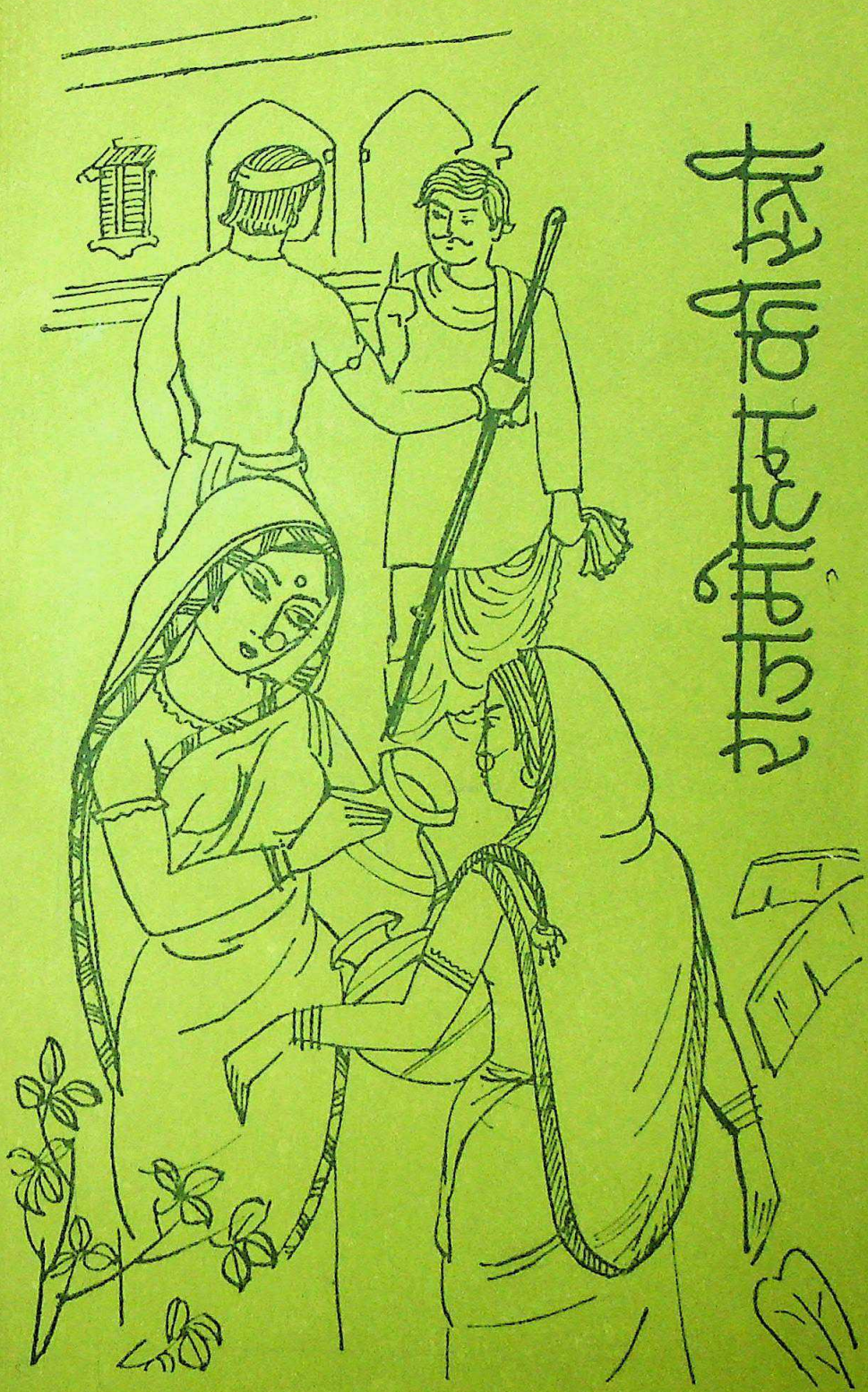

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमोहन की स्त्री

□

[रचनाकाल : सन् १८६४]

□

बंकिमचन्द्र ने अपनी साहित्य-साधना 'राजमोहन की स्त्री' की रचना से ही आरंभ की। सन् १८६४ साल में इसकी रचना हुई, यद्यपि इसका प्रकाशन, पुस्तक रूप में, काफी बाद में हुआ। अगर यह कहा जाय कि 'राजमोहन की स्त्री' बंकिमचन्द्र का ही प्रथम उपन्यास नहीं, बल्कि भारत की किसी भी भाषा में लिखा गया सर्वप्रथम उपन्यास है तो गलत न होगा, क्योंकि सन् १८६४ के पूर्व लिखी गई किसी अन्य भारतीय भाषा में किसी औपन्यासिक कृति का पता नहीं है।

बंकिमचन्द्र अंग्रेजी के अच्छे विद्वान् थे। सरकारी राजकर्मचारी होने के कारण और अन्य कारणों से उन्हें अंग्रेजी भाषा में काफी लिखना पड़ता था। उन्होंने अपनी इस प्रथम कथा-कृति का सृजन अंग्रेजी में ही किया। किशोरीचन्द्र मित्र के अंग्रेजी पत्र 'इन्डियन फील्ड' में यह कृति धारावाहिक रूप में छपी। अंग्रेजी में इसका नाम था Rajmohan's Wife। इसके संबंध में सि० ई० वाकलैंड ने लिखा :

'While in Khulna, Bankim Chandra began a serial story named 'Rajmohan's wife' in the 'Indian field' newspaper, then edited by Kishori Chand Mitra. This was his first public literary effort.'

—Bengal under Lieutenant-Governors. Vol II. P. 1078.

पत्रिका में इसके प्रकाशन के प्रथम मास में ही बंकिमचन्द्र ने इसका बंगला अनुवाद करना शुरू किया था।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१

मधुमती नदी के किनारे बसा राधागंज एक छोटा-सा गाँव है। जमींदारों की हो रही उन्नति के कारण गाँव की रौनक बनी हुई है। इसी गाँव में एक दिन, चैत्र मास में शाम होने से पहले एक घर में दोपहर की नींद पूरी करके उठने के बाद एक तीस वर्षीय स्त्री कंघी-चोटी करने में व्यस्त हो गई। प्राय: स्त्रियाँ इस काम में बहुत अधिक समय नष्ट किया करती हैं, लेकिन इस स्त्री ने अधिक समय नहीं लगाया। चार अंगुल के एक छोटे से टीन के शीशे, एक बड़ी सी कंघी और पानी की सहायता से बाल संवारने का काम पूरा करके उसने माथे पर सिंदूर का टीका लगाया। फिर मुँह में भरे पान के रस से दोनों होठों को रंगती हुई, बगल में कलसी दबाकर, मस्त चाल से गाँव के रास्ते पर निकल पड़ी।

लेकिन सीधे गाँव के पनघट पर न जाकर वह स्त्री अपने पड़ोसी के दरवाजे पर लगे बाँस के छोटे से टट्टर को हटाकर भीतर चली गई। उस घर में छप्पर वाले चार कोठे थे। आँगन काफी साफ-सुथरा था। कोठे इस बात के साक्षी थे कि घर के मालिक को किसी बात की कमी नहीं है। तीन कोठों के दरवाजे भीतर की ओर थे और चौथे के बाहर की ओर। तीन कोठे रहने के लिए थे और चौथा बैठक खाना था। दालान के सामने की जगह में साग-सब्जी उगी थी। चारो ओर नरकुल का बेड़ा और टट्टर की झाँप थी। पड़ोसिन को घर में घुसने में कोई असुविधा न हुई।

भीतर जाते ही वह समझ गई कि उस घर की मालकिन भी नींद पूरी करके उठ चुकी है। उस घर में दो प्राणी—एक अट्ठारह वर्ष की युवती और दूसरा चार वर्ष का एक बच्चा। युवती कपड़े पर फूल काढ़ रही थी और बच्चा रोशनाई की दावात लेकर मौज से खेल रहा था। उसके पूरे चेहरे पर स्याही पुत गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आगन्तुका आ कर उसी युवती के पास ही जमीन पर बैठ गई और बोली, 'क्या कर रही है री ?'

प्रसन्नता से युवती का चेहरा खिल उठा। हँसती हुई बोली, 'बड़े भाग्य हैं जो आज दीदी ने दर्शन दिए। जाने किसका मुँह देख कर उठी थी आज !'

आगन्तुका ने भी हँसते हुए जवाब दिया, 'रोज सबेरे जिसका मुँह देख कर उठती है, उसी का आज भी देखा होगा।'

इतना सुनते ही अचानक युवती के चेहरे का रंग बदल गया और आनेवाली भी सहम गई। उसके चेहरे की हँसी भी जाने कहाँ खो गई।

आगन्तुका साँवले रंग की है, ज्यादा सुन्दर भी नहीं, लेकिन उसके शरीर का कोई अंग खटकने वाला न था। चेहरे पर चंचलता थी और आँखों में हँसी, जिसने उसकी माधुरी को मधुर बना रखा था। वह जो आभूषण पहने थी वे गिनती में कम होने पर भी वजनदार थे। इस समय वह एक मोटी साड़ी पहने थी।

युवती के कोमल शरीर पर कोई उल्लेखनीय आभूषण न थे। उसकी बातचीत में पूर्वी बंगाल की भाषा का शुद्ध उच्चारण था। इससे स्पष्ट था कि वह मधुमती के किनारे पैदा नहीं हुई है। उसका जन्म तथा पालन-पोषण भगीरथी नदी के किनारे के किसी गाँव में हुआ होगा। युवती के गोरे चेहरे की लालिमा उसके मन की अन्तर्व्यथा के कारण कुछ फीकी पड़ गई थी, जैसे दोपहर की धूप में गुलाब की पंखुड़ियाँ आधी ताजी और आधी मुरझाई सी रहती हैं। उसके मुरझाए से छोट-छोटे ओंठ इसके साक्षी थे कि उसके मन में कोई व्यथा छिपी है। इस समय वह साफ धुली हुई साड़ी पहने थी। आभूषण के नाम पर केवल कलाइयों में चूड़ियाँ और बाहों में ताबीज था।

आगन्तुका के आने पर युवती कढ़ाई बन्द कर बातचीत में लग गई थी। आने वाली भी अपनी गृहस्थी की दुःखगाथा सुना रही थी। यद्यपि ऐसी बातों के कहने-सुनने का कोई लाभ नहीं होता, लेकिन इस समय दोनों की ही आँखों में आँसू उमड़ रहे थे। संभवतः वे दोनों कुछ वेग से रोने की कोशिश कर ही रही थीं कि अचानक उनकी आँखें बच्चे के स्याही से पुते चेहरे पर पड़ीं और दोनों ही बरबस हँस पड़ीं।

संध्या होती देख आगन्तुका ने युवती से घाट पर चल कर पानी भर लाने को कहा लेकिन युवती तैयार न हुई। लेकिन उसकी सखी उसका पीछा छोड़ने वाली न थी। अंत में युवती ने कहा, 'कनक दीदी, तुझे तो मालूम है कि मैं कभी पानी भरने नहीं गई।'

कनक बोली, 'इसीलिए तो आज चलने को कह रही हूँ। तू क्यों इस तरह दिन रात पिंजड़े में बंद रहती है ? और सब घरों की बहू-बेटियाँ तो पानी भरने जातीं ही हैं।'

युवती इस पर भी न मानी। बोली, 'इसमें झगड़ा करने की क्या जरूरत है ? तुम्हें मालूम है कि मेरे पति को मेरा घाट पर जाना पसन्द नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कनक ने इसका कोई जवाब न देकर एक बार जल्दी से चारो ओर देखा। फिर सिर झुका कर बैठ गई जैसे कोई बात कहना चाहती हो।

युवती ने पूछा, 'क्या सोच रही हो, कनक दीदी ?'

कनक ने कहा, 'तेरे आँख होती तो···'

युवती ने झटपट इशारा कर के उसे आगे बोलने से रोक दिया और कहा, 'चुप, समझ गयी।'

कुछ देर वह चुपचाप गहरी चिन्ता में डूबी बैठी रही। फिर बोली, 'चलो, लेकिन पाप तो न होगा ?'

कनक ने हँसते हुए कहा, 'मैं कोई पंडित नहीं, न ही मुझे पाप-पुण्य की खबर है। लेकिन अगर मेरे सौ पचास मर्द होते तब भी मैं न डरती।'

'तू तो बड़ी हिम्मतवाली है।' कह कर हँसती हुई युवती उठी और कलसी लेने बढ़ी। फिर बोली, 'सौ पचास ? क्यों री, क्या इतने मर्दों की तुझे साध है ?'

कनक ने हँस कर जवाब दिया, 'मुँह से कहने में भला क्या बुराई है ? भगवान ने एक तो दिया है, अगर वैसे सौ-पचास ही होते तो फिर करोड़ होने में भी क्या फर्क पड़ता है ? किसी से यदि मुलाकात ही न हुई हो तो करोड़ मर्दों की स्त्री होने पर भी मैं सती-साध्वी, पतिव्रता ही हूँ।'

'सती का भाग्य।' कह कह युवती जल्दी से बढ़ कर रसोई घर से एक छोटी सी कलसी उठा लाई। जैसी पनिहारिन, ठीक वैसी ही कलसी। फिर दोनों सखियाँ नदी की ओर चल पड़ीं। कनक ने हँसते हुए धीरे से कहा, 'अब चल न गाँव की गोरी ! मुँह बाए लोग खड़े होंगे, उन्हें जरा रूप की छटा तो दिखा दूँ।'

'मरें कलमुहें बन्दर !' कह कर कनक के साथ चलती हुई युवती ने लज्जा से घूँघट खींच कर अच्छी तरह मुँह ढँक लिया।

|२|

सूरज की किरणें पेड़-पौधों के ऊपर से तो गायब हो चुकी थीं, लेकिन अभी तक धरती पर पूरी तरह अंधेरा नहीं छाया था। इस समय कनक और उसकी युवती सखी पानी की कलसी लिए हुए घर लौट रही थीं। रास्ते में एक छोटा सा बाग पड़ता था—पूर्वी बङ्गाल में वैसे बाग बहुत कम देखने को मिलते हैं। लोहे के सजे हुए कटघरे के बीच गुलाब और मल्लिका की बहुत सी कलियाँ और फूल आँखों को भले लग रहे थे। बाग के बीचोबीच एक पुष्करिणी थी। उसके चारो ओर हरी-हरी घास की मखमली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चादर बिछी थी। एक ओर पक्की सीढ़ियाँ थीं। घाट के सामने ही बैठकखाना था जिसके बरामदे में दो आदमी खड़े बातें कर रहे थे।

उन दोनों में एक की अवस्था तीस के ऊपर थी। उसका डील-डौल लम्बा और शरीर भी मोटा था। मुटाये के कारण ही उसके शरीर की गठन सुडौल नहीं कही जा सकती। रंग भी रूखा और काला था। चेहरे से वह किसी प्रकार भी भलामानुस नहीं कहा जा सकता। उसके चेहरे पर क्रोध और कठोरता की स्पष्ट झलक दिखती थी। उसके व्यक्तित्व में कोई विशेषता थी, इसका कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता। हाँ, वह ढाका की महीन, बढ़िया धोती पहने था और सिर पर ढाके की लम्बी चादर को इस प्रकार बल दे कर बाँधे था कि मानो उसने कोई पगड़ी पहन रखी हो। पगड़ी बँधी होने के कारण सिर के एक भी बाल दिखाई नहीं पड़ते थे। ढाके की महीन मलमल के कुरते के नीचे उसका स्थूलकाय, अंधकारमय शरीर स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था और बीच में लटकता सोने का ताबीज भी चमक रहा था। गले में झूलता मोटा सोने का हार ऐसा लग रहा था जैसे मंदराचल पर्वत पर वासुकि नाग लिपटा हो। कुरते में सोने के बटन और जंजीर लगी थी। दसों उँगलियों में अँगूठियाँ चमक रही थीं और पावों में अंग्रेजी बूट-जूता था।

उसके साथ का दूसरा व्यक्ति अत्यन्त सुन्दर था। उम्र भी बीस-बाइस की होगी। उसका रंग खूब गोरा और वर्ण स्निग्ध था, जो संभवत: शारीरिक व्यायाम की कमी के कारण तनिक विवर्ण हो रहा था। वह भी धोती पहने था, पर वह अधिक कीमती न थी। कैम्ब्रिज की कमीज पहने था और गले में चादर सुव्यवस्थित ढंग से लिपटी थी। पैरों में अंग्रेजी जूते और एक उँगली में अँगूठी थी। हार या तावीज जैसी और कोई चीज वह नहीं पहने था।

अधिक उम्र और फैशन वाले व्यक्ति ने कहा, 'माधव, तुम फिर कलकत्ता जाने की रट क्यों लगाए हो ? जानते हो, यह भी एक रोग ही है।'

माधव बोला, 'रोग कैसा ? मथुरा दादा, यदि कलकत्ता मेरे लिए रोग है तो क्या इस राधागंज के लिए तुम्हारा मोह भी रोग नहीं है ?'

मथुरा ने कहा, 'ऐसा क्यों ?'

माधव बोला, 'क्यों की बात नहीं। राधागंज के आम के बागों की छाया में तुमने जीवन बिताया है, इसलिए तुम्हें उसके लिए मोह है। मैं कलकत्ता के दुर्गन्ध में इतने दिनों रहा हूँ इसलिए मेरा उसी तरफ लगाव है। इसके सिवा कलकत्ते से मेरा क्या सरोकार ?'

मथुरा ने जवाब दिया, 'सरोकार तो मैं खूब समझता हूँ। वहाँ है नया घोड़ा, नई गाड़ी, ठगों की दूकानों में मारे-मारे फिरना, रुपये उड़ाना, बिलायती दोस्तों को शराब पिलाना और रस की लहरों में बहना। अरे, इस तरह मुँह बाए उधर क्यों ताक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ररे हो ? क्या तुमने कनक को पहले कभी नहीं देखा ? लेकिन उसके साथ वह दूसरी कौन है ?'

माधव जैसे पकड़ा जा कर लज्जा गया, लेकिन अपनी लज्जा छिपाता हुआ बोला, 'कनक के भाग्य में भी दुख ही दुख है, फिर भी बेचारी सदा हँसती ही रहती है।'

मथुरा ने जैसे उसकी बात सुनी ही न हो। वह तो कनक की साथिन के बारे में ही जानने को उत्सुक था। माधव खुद भी उसे पहचान न पाया था क्योंकि उसका पूरा चेहरा ही घूँघट से ढँका था। इसके अलावा वह खुद भी उसकी आकर्षक चाल और देह के लावण्य से मिल रहे मनोहर आभास पर मोहित हो रहा था। इसी समय हवा के एक तेज झोंके के कारण युवती के चेहरे पर से घूँघट हट गया। उसका चेहरा देखते ही माधव सहसा चौंक उठा। मथुरा भाँप गया, इशारा कर के बोला, 'लगता है तुम उसे जानते हो ? बताओ न, कौन है वह ?'

माधव ने कहा, 'मेरी साली।'

'क्या राजमोहन की स्त्री ?'

'हाँ, वही है।'

मथुरा को जैसे संदेह हो रहा था, बोला, 'राजमोहन की स्त्री ? इसे तो मैंने कभी नहीं देखा।'

'कैसे देखते ? वह घर से भला कब निकलती है ?'

'फिर आज कैसे निकली?'

'पता नहीं।'

मथुरा ने घुमा-फिरा कर यह जानना चाहा कि उस स्त्री का चरित्र कैसा है। कुछ भद्दा इशारा भी किया।

इस पर माधव बिगड़ गया और बोला, 'भले आदमी की स्त्री रास्ते में जा रही हो तो उसके बारे में इतनी पूछ-ताछ करने का क्या मतलब है ?'

मथुरा ने व्यंग्य से कहा, 'ठीक ही तो कहते हो ! अंग्रेजी के दो अक्षर पढ़ कर सभी साहबजादे धर्मात्मा बन जाते हैं। अरे, साली की बात न करूँगा तो क्या दादी की जवानी का वर्णन करूँगा ? भाड़ में जाय ! तुम भाई, अपना मुँह सीधा करो, नहीं तो अभी कौओं का झुण्ड पीछे लगा देता हूँ। राजमोहना ऐसे ही फूल का शहद खाता है !'

माधव ने कटुता से कहा, 'ब्याह को लाटरी कहा जाता है।'

फिर दोनों दो ओर चले गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३]

सखी को साथ लिए कनक घर की ओर बढ़ी। कनक की सखी स्वभाव से ही लजालु थी। मथुरा और माधव ने उसे रास्ते में देख लिया है, यह सोच-सोचकर वह बहुत लज्जित हुई। थोड़ी दूर चुपचाप चलने के बाद वह बोली, 'कमबख्त इस हवा ने तो तंग कर डाला।'

कनक ने हँस कर पूछा, 'क्यों, क्या तेरे बहनोई ने इसके पहले कभी तेरा मुँह नहीं देखा था ?'

'उनकी बात नहीं, उनके साथ वह जो दूसरा आदमी था।'

'अरी, वह तो मथुरा बाबू थे।'

'मेरे बहनोई के चचेरे भाई ?'

'हाँ, वही।'

'कितनी शर्म की बात है ! दीदी, यह बात तुम किसी से मत कहना।'

कनक हँसने लगी। युवती को यह देख कर बहुत खीझ हुई। बोली, 'अगर मालूम होता तो तुम्हारे साथ कभी न आती।'

सुनकर कनक की हँसी और बढ़ गई।

अब तक युवती अपने घर के पास पहुँच गई थी। दरवाजे पर नजर पड़ते ही वह भय से काँप उठी। कनक ने सिर घुमा कर देखा कि युवती का पति राजमोहन दरवाजे पर ही खड़ा है। उसकी दोनों आँखें क्रोध से अंगार हो रही थीं। कनक ने सखी के कान में कहा, 'लगता है आज कुछ अनर्थ होगा। मैं तेरे साथ घर चलूँ ?'

युवती ने रोकते हुए कहा, 'नहीं, नहीं, तुम रहोगी तो अनहित ही होगा। तुम अपने घर जाओ।'

कनक अपनी राह बढ़ गई। युवती जब तक घर के भीतर न घुस गई तब तक राजमोहन चुप रहा। भीतर जाकर युवती ने रसोई घर के सामने बने चबूतरे पर कलसी रखी। राजमोहन उसके पीछे-पीछे रसोई घर तक आया। बोला, 'जरा ठहरो।'

राजमोहन ने झपट कर कलसी का सारा पानी आँगन में उड़ेल दिया। यह देख राजमोहन की बूढ़ी बुआ 'हाँ-हाँ' करती हुई आकर उसे झिड़कने लगी।

'चुप रह हरामजादी !' कहते हुए राजमोहन ने कलसी उठा कर दूर फेंक दी। फिर अपनी पत्नी की ओर घूम कर धीमे लेकिन कटु स्वर में बोला, 'हाँ तो राजरानी कहाँ गई थीं ?'

युवती ने बहुत मंद पर दृढ़ शब्दों में जवाब दिया, 'पानी लाने गई थी।'

पति ने उसे जहाँ पर ठहरने को कहा था वह वहीं पर मूर्ति-सी बनी खड़ी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमोहन ने व्यंग्य से कहा, 'पानी लाने गई थीं महारानी जी ! पर किससे पूछ कर गई थी ?'

'किसी से भी नहीं ।'

राजमोहन का क्रोध बेकाबू हो रहा था उसने चीख कर कहा, 'किसी से पूछ कर नहीं गई ? क्या मैं हजार बार तुझे मना नहीं कर चुका ?'

युवती ने पूर्ववत ही मंद स्वर में कहा, 'मना तो कर चुके हो ।'

राजमोहन चिल्लाया, 'फिर क्यों गई हरामजादी ?'

तिलमिला उठी वह और मर्माहत स्वर में बोली, 'मैं तुम्हारी पत्नी हूँ ।

कहते हुए युवती का चेहरा लाल हो गया और उसने भरे हुए गले से कहा, 'जाने में कोई दोष न था, इसीलिए गई थी ।'

पत्नी द्वारा ऐसा उत्तर देने का साहस दिखाने पर राजमोहन आग बबूला हो गया और बिजली की तरह कड़क कर बोला, 'मैं तुम्हें हजार बार मना कर चुका हूँ या नहीं ?'

इतना कहते हुए बाघ की तरह उछलकर राजमोहन ने उस सती-साध्वी सी खड़ी हुई मूर्ति का एक हाथ पकड़ कर उसे मारने को अपना दूसरा हाथ उठाया ।

वह बेचारी युवती, भोली-भाली, कुछ समझ ही न सकी कि क्या हो गया । उसे मारने के लिए उठे हाथ की पहुँच से बाहर न जा कर वह वहीं मूर्ति की तरह स्थिर खड़ी रही । बस वह कातर दृष्टि से मारने के लिए उठे हाथ की ओर निहारती रही । और वह उठा हाथ भी मंत्र-मुग्ध साँप की तरह उठा का उठा ही रह गया । पल भर मौन रह कर अचानक ही राजमोहन ने अपनी पत्नी का हाथ छोड़ दिया लेकिन साथ ही पहले की तरह गरज कर बोला, 'लातों से मार-मारकर तेरी जान ले लूँगा । तेरा खून कर दूँगा ।'

युवती ने कोई उत्तर न दिया । सिर्फ उसकी आँखों से आँसू की धाराएँ बह निकलीं । यह देख कर राजमोहन अपने आप ही नम्र हो गया । उसका हाथ तो रुक गया लेकिन जबान कटु बचन बोलने से न रुकी। फिर पत्नी की खामोशी देख कर राजमोहन अपने आप शांत हो गया ।

राजमोहन को शांत हुआ देख कर बुआ का साहस बढ़ा । आगे बढ़ कर वह भतीज-बहू को पकड़ कर भीतर लिवा ले गई । साथ ही जाते-जाते दो एक कटु वचन बोलना न भूली । बुआ ने जब देखा कि राजमोहन का क्रोध पूरी तरह ठण्डा हो गया है तब उसने राजमोहन द्वारा कहे गए एक-एक कटु बचन का उत्तर देना शुरू किया । राज-मोहन स्वयं अपने आप भुनभुना रहा था । उसने बुआ की बातों पर ध्यान न दिया । अंत में बुआ और भतीजा दोनों ही दो ओर चले गए । बुआ बहू को धीरज बँधाने लगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और राजमोहन मन ही मन योजना बनाने लगा कि किस तरह नुकसान पहुँचाया जाय।

|४|

बंगाल के अनेक सुप्रसिद्ध जमींदार वंशों की उत्पत्ति किसी न किसी नीच कुल से हुई है। यह बात निन्दाजनक होने के साथ ही सत्य भी है।

पूर्वी बंगाल के एक वृद्ध जमींदार का खानसामा था बंशीवदन घोष। इस जमींदार का नाम और वंश, दोनों ही अब तक मिट चुके हैं। पहला ब्याह असफल होने पर जमींदार ने वृद्धावस्था में दूसरा ब्याह किया। लेकिन संतान का मुँह देखना उनके भाग्य में न था। संतान-सुख के बाद दूसरी चीज जिसकी वे इच्छा रखते थे और जो भाग्य ने उन्हें दी, वह थी उनकी नौजवान सुन्दर पत्नी। इसमें शक नहीं कि दो दो पत्नियों के पारस्परिक कलह से उनकी पारिवारिक शांति में बाधा अवश्य आती थी। कारण भी स्पष्ट थे। बड़ी उम्र वाली पहली स्त्री हमेशा यही दावा करती थी कि जो इस घर में पहले आयी है उसी का अधिकार प्रथम है। वृद्ध जमींदार कुछ भी निर्णय न कर पाये जिससे हालत और बिगड़ गई। परन्तु इस बीच एक मध्यस्थ ने आकर जो फैसला करा दिया, उसके बाद किसी के लिए भी कुछ कहने को न बचा। पहली पत्नी के दावे को ज्यों का त्यों स्वीकार करके उसे इस लोक से ही हटा दिया। इससे वृद्ध पति तथा तरुणी पत्नी निश्चिन्त तो हुए परन्तु इस घटना ने उन्हें सावधान कर दिया। वृद्ध को मन ही मन यह अनुभव हो गया कि अब उसकी भी पुकार होने में अधिक देरी नहीं है। संतान का मुँह देखने की आशा सदा के लिए जाती रही। यह सोच कर वृद्ध का मन निराश हो गया कि अब उसके धन का भोग वे लोग करेंगे जिन्हें वह जानता भी नहीं। पत्नी जब तक जीवित रहेगी तब तब सम्पति तो उसके हाथ रहेगी लेकिन सरकार उसे भत्ते के रूप में खाने पहनने के लिए जो देगी, इससे अधिक उसे कुछ न मिलेगा। इस प्रकार वृद्ध पति केवल इसी चिन्ता में व्यस्त रहता कि उसकी युवती पत्नी किसी प्रकार उसकी सम्पति की पूर्णरूप से स्वामिनी हो जाय। इसीलिए अब उसने अपनी पत्नी के कहे अनुसार ही चलना शुरू किया। पत्नी की भी इस विषय में बहुत स्पष्ट और दृढ़ धारणा होने के कारण वह भी अपने स्वामी के द्वारा अपने भविष्य को निष्कंटक बनाने लगी। मकान, जमीन, बाग आदि अचल सम्पति को नगदी में बदलने की ओर वृद्ध ने ध्यान दिया। जमींदारी को भी जहाँ तक सम्भव हो सका, नगद रुपयों और जेवरों में बदला जाने लगा। नगदी के सम्बन्ध में तो वृद्ध की लालच यहाँ तक बढ़ गई थी कि जिस दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसने इस दुनिया से कूच किया उसकी विशाल धन-राशि में उसकी जमीन एक बहुत साधारण सा हिस्सा मात्र रह गई थी।

वृद्ध पति के देहान्त के बाद उसकी युवती पत्नी करुणामयी ने जिसे अपने बुद्धिमती होने के सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह न था, निश्चय किया कि दुनिया की दो दुर्लभ वस्तुएँ—रूप और रुपया—जिनकी वह अधिकारिणी है, उनकी सदगति करनी चाहिए। उसने अपने मन को समझाया कि भगवान रामचन्द्र जी ने भी तो सीता के विरह में कातर होकर उनकी सोने की मूर्ति बनवा कर अपने मन को सांत्वना दी थी, इसलिए उसका प्रिय गृहस्वामी जो अब इस संसार में नहीं है और जिसके विरह में वह व्याकुल है, उसकी स्वर्णमूर्ति को उसका प्रतिनिधि न बनाकर यदि किसी जीते-जागते मनुष्य को उसके स्थान पर विराजित किया जाय तो इस पद्धति की उन्नति ही होगी।

इस प्रकार के तर्कों से अपने मन को दृढ़ करके मृत पति के प्रति अपार श्रद्धा और देवताओं के आदर्श से प्रेरित हो कर उसने अपने स्वामी का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सजीव प्रतिनिधि चुन लिया। बाबू का खानसामा बंशीवदन घोष ही भाग्यवान था। उसके ही मस्तक पर यह मोरमुकुट सुशोभित हुआ। होशियार बंशीवदन यह अवसर भला कैसे चूकता ? प्रभु-पत्नी के देह-साम्राज्य का स्वामी बनने के साथ-साथ उसकी समस्त सम्पति का भी स्वामित्व न प्राप्त हो, यह बात वह सोच ही नहीं सकता था। और हुआ भी यही, सम्पति का मालिक होने के साथ ही नगदी जमा पर अधिकार करने में उसे कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ा। वह अपने आप ही खानसामा से सदर नायब के पद पर पहुँच गया।

इस बीच किसी अज्ञात अथवा अस्पष्ट कारण से करुणामयी को भीतरी बुखार हमेशा रहने लगा। यही बुखार शीघ्र ही बढ़कर इतना भयानक रूप धारण कर बैठा कि उस चंचल विधवा के मन की आग शांत होने के बहुत पहले ही उसे इस लोक से उठ जाना पड़ा। इस घटना के बाद विधवा के मृत स्वामी के दूर दूर के नाते के रिश्तेदार एक-एक करके धन पाने की लालच में वहाँ आ जुटे, लेकिन दो एक मामूली व दरिद्र गाँवों की सम्पति देख कर उन्हें निराश ही होना पड़ा। नगदी व सामान भी बहुत कम ही था जो उनके आने के पहले ही स्वामी के नौकरों में बाँटा जा चुका था।

अपने अधिकार की अतुल सम्पति लेकर बंशीवदन अपने गरीब पुरखों के गाँव राधागंज में आ बसा। अपनी बुद्धिमत्ता के कारण उसने आराम से गुजर-बसर करने भर ही खर्च किया ताकि किसी और को उस पर शक न हो। उसके मरने के बाद उसके तीन पुत्रों ने पूरी सम्पत्ति को आपस में बराबर-बराबर बाँट लिया। अब तक सम्पति को उनके पास आए बहुत समय बीत चुका था इसलिए किसी को भी शक करने की गुञ्जाइश न थी, इसलिए पुत्रों के लिए बाप की तरह साधारण जीवन बिताना कठिन हो गया। उन्होंने ठाट-बाट से रहना शुरू किया। जमींदारी खरीदी, हवेलियाँ बनवाईं और सम्पत्ति के हिसाब से अमीरी के सभी आडम्बर बढ़ा लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े बेटे रमाकान्त ने सादे ढंग से जीवन बिताते हुए अपनी सम्पत्ति को और भी बढ़ाया। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र मथुरा उसकी अतुल सम्पत्ति का अधिकारी बना। रमाकान्त के विचार जमाने की बदलती हुई रीति-नीति से मेल न खाते थे, वह अपने पुत्र को अंग्रेजी स्कूल में शिक्षा दिलाने के पक्ष में न था। बचपन से ही मथुरा जमींदारी के काम में अपने पिता का हाथ बँटाता था। इसलिए जाल, फरेब, धोखेबाजी और जुआखोरी में वह निपुण हो चुका था।

बंशीवदन का दूसरा पुत्र रामकन्हाई स्वभाव से ही आलसी और फिजूलखर्ची करने वाला था। इसलिए बहुत जल्दी ही सम्पत्ति सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ पैदा हो गईं। उसका घर और बाग सबसे अधिक शानदार थे, लेकिन अचल-सम्पत्ति की आय नहीं के बराबर थी। सम्पत्ति की ऐसी बुरी दशा किसी दूसरे भाई के यहाँ न थी। इस बीच कुछ धूर्त मुसाहिब भी आ जुटे थे। बुरी स्थिति में भी उन चालबाज मुसाहिबों ने एक फर्जी रोजगार में उनका काफी पैसा लगवा दिया। आलसी रामकन्हाई भी उन्हीं विश्वासपात्र मुसाहिबों के हाथों रोजगार सौंप कर स्वयं कलकत्ता चला गया और वहीं रहने लगा। व्यवस्था ठीक न रहने तथा लापरवाही के कारण धीरे-धीरे समस्त अचल सम्पत्ति नीलाम हो गई।

रामकन्हाई के शहर में रहने का केवल एक लाभ हुआ कि दूसरों की देखा-देखी उसने भी अपने बेटे को उच्च-शिक्षा दिलवाई। इसके बाद एक हिन्दू पिता की सबसे बड़ी कामना भी पूर्ण हो गई। उसने एक सुन्दर कन्या के साथ पुत्र का विवाह कर दिया।

कलकत्ता के निकट के एक गाँव का एक कायस्थ सदा यह गर्वोक्ति किया करता था कि ईश्वर ने उसे जिस अतुल सम्पत्ति का स्वामी बनाया है उसकी कोई तुलना नहीं है—रूप, गुण, कर्तव्य तथा स्वभाव में उसकी दोनों कन्यायें बेजोड़ हैं। लेकिन जो भाग्य-देवता कोमल हृदय वाली, हिन्दू घर की परम-सुन्दरी और अतिकोमल हृदय वाली बालिकाओं का अयोग्य लड़कों के साथ गठबन्धन कर दिया करते हैं, उन्होंने ही उस कायस्थ की बड़ी बेटी मातंगिनी का विवाह जबरदस्ती राजमोहन से करा दिया। ब्याह के बाद भी मातंगिनी के माँ-बाप को विश्वास था कि उनकी लड़की के योग्य वर नहीं मिला। तब लड़की एक अबोध बालिका थी और वर पूरा जवान था लेकिन यह आयु-विषमता भी विवाह में रुकावट न बन सकी। मातंगिनी के पिता ने भी इस पर ध्यान नहीं दिया। राजमोहन अधिक सुन्दर भी न था। उस जमाने में कम आयु वाले वर की सुन्दरता को तो परखा जाता था लेकिन जवान वर के चेहरे की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। वर पास के ही गाँव में रहता था। उस विवाह को करने का एक यह भी कारण था कि लड़की माँ-बाप से बहुत दूर नहीं चली जाएगी। राजमोहन को जानने वाले लोग उसके बलवान शरीर तथा उसकी शारीरिक शक्ति से ईर्ष्या करते या प्रशंसा की दृष्टि से देखते। वह स्वभाव से ही मेहनती और किसी भी काम को करने में पीछे हटने वाला न था। यही कारण था कि बाप द्वारा सम्पत्ति के नाम पर कुछ भी न छोड़े जाने पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसे कभी किसी चीज की कमी अनुभव न हुई। राजमोहन के इसी गुण के कारण मातंगिनी के पिता को यह भरोसा था कि उसकी बेटी को कभी किसी प्रकार का कष्ट न होगा। इसीलिए उसने दामाद के रूप में राजमोहन को चुना था। उसकी दूसरी भाग्यवती कन्या हेमांगिनी का विवाह माधव के साथ हुआ था।

माधव का पिता कालेज की पढ़ाई शुरू होने के पहले ही इस संसार से चल बसा था। पिता के देहान्त के बाद उसके पास फूटी कौड़ी भी न थी। लेकिन इस बीच एक ऐसी घटना घटी जिसने उसे दुर्दशा से बचा लिया।

वंशीवदन का तीसरा पुत्र रामगोपाल न तो अपने बड़े भाई की तरह भाग्यवान था, न ही मंझले भाई की तरह अभागा। वह निःसन्तान ही इस संसार से चला गया और जाते समय अपने भतीजे माधव को अपनी समस्त सम्पत्ति इस शर्त पर दे गया कि जितने दिन उसकी विधवा पत्नी जिन्दा रहे, माधव उसका भरण-पोषण करे।

इधर माधव शिक्षा पूरी होने तक पढ़ने-लिखने में ही व्यस्त रहा और सम्पत्ति की देखभाल उसके बालिग होने तक उसके कर्मचारी करते रहे। वर्ष पूरा होने से पहले ही वह अपनी सुन्दरी पत्नी को साथ लेकर, शहर छोड़ गाँव जाने की तैयारी करने लगा और अपनी पत्नी हेमांगिनी को उसके मायके भेंट कराने को लिवा ले गया। हेमांगिनी को उसकी बड़ी बहन मातंगिनी बहुत प्यार करती थी। सौभाग्य से इस समय मातंगिनी भी मायके में ही थी।

माधव अधिक दिनों ससुराल में रहना न चाहता था। उधर बहुत लम्बे अरसे के लिए अपने माता-पिता से दूर जाने के कारण हेमांगिनी अक्सर खूब रोया करती थी। उसे डर था कि एक बार दूर जाने के बाद शायद वह लौट कर न आ सके। मायके से उससे भेंट करने क्या कभी कोई इतनी दूर जाएगा ? पिता तो कहते हैं कि मिलने आ जाएँगे लेकिन माँ तथा बड़ी बहन तो न आ सकेंगी। वे दोनों भी चुपचाप रोतीं और आशीर्वाद देतीं।

एक दिन बहन का हाथ पकड़ कर उसे एक ओर ले जाकर मातंगिनी ने कहा, 'हेम, तुमसे एक बात कहूँ तो क्या करोगी ?'

कुछ उत्तर न देकर हेमांगिनी ने अपनी बड़ी-बड़ी काली पुतलियों वाली आँखों से दीदी की ओर ताका। मातंगिनी ने फिर कहा, 'हेम, कल हमलोग एक-दूसरे से अलग हो जाएँगी, है न ?'

हेमांगिनी अब अपनी रुलाई न रोक सकी और उसकी आँखों से बरबस ही झर-झर आँसू बहने लगे। मातंगिनी ने अपने को सम्हाल कर कहा, 'रो मत बहन, भगवान तुझे सुखी रखें। तुझे भगवान ने माधव जैसा सुशील और सुशिक्षित पति दिया है। तुझे कभी कोई अभाव न खटकेगा।'

इतना कहते-कहते मातंगिनी भी अपने पर काबू न रख पायी और उसकी आँखों के आँसू हेमांगिनी के हाथ पर टपक पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँसू पोंछ कर हेमांगिनी ने पूछा, 'दीदी तुम मुझसे क्या कहना चाहती थीं ?'

मातंगिनी ने कहा, 'हेम, तुझे तो मालूम ही है कि मैं कितनी गरीब हूँ। इतनी गरीबी में भी यदि अपने लिए होता तो तुझसे कभी कुछ न कहती। और मेरे स्वामी चाहे जैसे भी हों, बहन, भगवान ने उन्हें ऐसा ही बनाया है, ऐसा ही स्वभाव दिया है, तो भी मेरे सब कुछ वही हैं। उन्हीं के लिए मुझे सोचना पड़ता है। वे इस समय घर में बेकार बैठे हैं। माधव से अपनी ओर से क्या तुम कह सकोगी ?'

हेमांगिनी ने कहा, 'कह क्यों न सकूँगी, दीदी। बताओ तो, क्या कहना है ?'

'कहना कि अगर वह तेरे बहनोई को एक नौकरी दिलवा सकें तो घर-गृहस्थी का काम चल जायेगा।'

'जरूर कहूँगी दीदी।'

हेमांगिनी ने बचन दिए। फिर दोनों बहनें इधर-उधर की बातें करने लगीं। लेकिन हेम लगातार यही सोचती रही कि वह अपनी बहन को दिए गए वचन को किस प्रकार निभा सकेगी। उसकी उम्र अभी इतनी कम थी कि इस उम्र में लड़कियाँ अपने पति से खुलकर बातें भी नहीं कर सकती थीं। फिर ऐसे विषय पर तो बिल्कुल भी नहीं। तो भी मन को पक्का करके उसने बहन को दिए बचन की बात अपने पति से कह ही दी। माधव ने भी नौकरी दिलाने का पूरा प्रयत्न करने का निश्चय किया।

राजमोहन ने अपने गंवारू स्वाभाविक संकोच के कारण माधव से स्वयं बात न करके दूसरों का सहारा लिया। लेकिन माधव ने उससे खुद ही बातें करने का निश्चय किया। एक दिन माधव ने बड़े ही विनीत भाव से राजमोहन से उसकी वर्तमान स्थिति तथा काम-काज के सम्बन्ध में पूछा। पर राजमोहन ने अंधे गर्व और झूठे संकोच के कारण अपनी नाजुक आर्थिक स्थिति को अस्वीकारते हुए केवल इतना ही कहा कि उसे काम की जरूरत है। तब माधव ने उससे कहा कि जमींदारी की देखभाल के लिए उसे एक आत्मीय की सहायता की आवश्यकता है। यदि राधागंज जाने में उसे कोई आपत्ति न हो तो उस काम के लिए वह प्रार्थना करे।

राजमोहन ने कहा, 'ऐसा होना मुश्किल है। घर की स्त्रियों को ऐसे मैं कहाँ रखूँगा ?'

माधव ने कहा, 'क्या इस बात को सोचे बिना ही मैं तुम्हें यह काम सौंप रहा हूँ ? राधागंज में तुम्हें रहने के लिए अलग एक मकान भी दूँगा।'

राजमोहन ने अपने से छोटे साढ़ू की ओर क्रोध-भरी दृष्टि से देखा और कहा, 'राधागंज में जाकर रहने से तो जेल में सड़कर मर जाना ज्यादा अच्छा है।'

इतना कहकर वह क्रोध में बड़बड़ाता हुआ चला गया। राजमोहन को इस प्रकार बिना कारण क्रोधित होते देख माधव को हैरानी तो हुई पर वह कुछ बोला नहीं।

इधर राजमोहन के पास भी दूसरा रास्ता न था। उसकी स्त्री भी एक अन्य अज्ञात कारण से जगह बदलना चाहती थी। लेकिन राधागंज जाकर रहने की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमोहन ने कभी सोची न थी। उसने बेकारी व गरीबी की आड़ ले कर नौकरी की बात अवश्य करवाई थी लेकिन मात्र गरीबी ही इसके पीछे मूल-कारण न थी। राजमोहन ने ऐसा भाव प्रकट किया जैसे वह माधव के प्रस्ताव से नाराज हुआ है। चादर लेकर वह घर से निकल पड़ा और घंटों गुजर जाने पर भी घर वापस न लौटा। लेकिन बहुत देर बाद जब लौट कर आया तो भी उसके चेहरे पर क्रोध के चिन्ह मौजूद थे। उसने सपरिवार राधागंज जाने का ही निश्चय किया लेकिन अपना विचार वह स्पष्ट शब्दों में माधव से न कह सका। फिर भी उसे जाने की तैयारी में सुविधा देने के इरादे से माधव कुछ दिन और ठहर गया। तैयारी हो जाने पर सब लोग एक साथ राधागंज गए।

राजमोहन का व्यवहार चाहे जितना भी कठोर और अभद्र क्यों न रहा हो लेकिन माधव उसके साथ बहुत ही शिष्ट व्यवहार करता था। साढ़ू का अभद्र और उजड्ड व्यवहार देख कर भी मातंगिनी के कारण और उसके दुर्भाग्य के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए माधव ने राजमोहन को देखभाल के लिए केवल एक ही गाँव का जिम्मा दिया लेकिन वेतन के रूप में एक अच्छी रकम का प्रबन्ध कर दिया। राजमोहन के लिए वहाँ एक मकान भी बन गया। माधव ने जन-मजूरों की सहायता से खेती करने के लिए कुछ जमीन भी राजमोहन को दे दी। राजमोहन भी इन्हीं कामों में उलझा रह कर अपना समय बिताने लगा। जमींदारी का काम वह समझ नहीं पाता था।

इतना कुछ करने के बाद भी माधव राजमोहन का मन न जीत सका। जब से वह राधागंज आया है तभी से राजमोहन अपने व्यवहारों से उसे तंग किए रहता था। इसीलिए उन दोनों के बीच सम्पर्क भी साधारण ही था। यद्यपि सब कुछ जानने समझने के बाद भी माधव ऊपर से कुछ प्रकट न करता था पर दोनों ओर के पारस्परिक मनोभाव का यह फल हुआ कि आपस में अत्यधिक स्नेह रखने वाली दोनों बहनों का मिलना-जुलना कम हो गया।

९

अपने बड़े चाचा के पुत्र से बिदा लेकर माधव जब बाग से लौटा तो उसने एक आदमी को प्रतीक्षा करते हुए देखा। उसने माधव को एक पत्र दिया जिस पर ऊपर ही लिखा था—जरूरी। माधव जल्दी से पत्र खोल कर पढ़ने लगा। जिले के सदर से उसी के वकील ने पत्र भेजा था। पत्र में लिखा था—

'महाशय,

यह आधीन सदर में विशेष यत्नपूर्वक आपके मुकदमें की पैरवी में लगा है। सभी मुकदमों में आप की ही जीत होने की आशा है···।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच में ही रुक कर माधव सोचने लगा—सभी में—यह तो वकील ही कह सकता है। लेकिन मेरा कोई भी मुकदमा झूठा नहीं है। क्या अदालत में सदा न्याय ही होता है ? अतः वकील के इस कथन में थोड़ा सा बाद देकर ही मानना पड़ेगा। कुछ भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि वकील काम का आदमी जरूर है। मुकदमा ढंग से लड़ता है। काश कि मुकदमें का यह झंझट-हंगामा समाप्त हो जाता, लेकिन अड़ोस-पड़ोस के लोग भी क्या लड़ना छोड़ देंगे ?

माधव ने आगे पत्र पढ़ना शुरू किया—

'बहुत दुःख के साथ आप को यह सूचित करना पड़ रहा है कि आपकी चाची ने मुख्तार के मारफत सदर-अमीन की अदालत में इस आशय का एक मुकदमा दायर किया है कि उनके स्वामी का वसीयतनामा जाली है और वह वासिलात के साथ अपनी जायदाद वापस पाने का दावा करती हैं।...'

माधव पढ़ना बंद करके फिर सोचने लगा—चाची जी ! हाय भगवान ! दुखी हो रहे माधव के हाथ से चिट्ठी गिर पड़ी। झुक कर उठाया और सोचने लगा—मेरी सब सम्पति लौटा लेना चाहती हैं ? मैंने जाल किया है ? उस बेईमान को लात मारकर मैं घर से निकाल दूँगा।

माधव चिन्ता में डूबा कुछ क्षण खड़ा सोचता रहा फिर पत्र आगे पढ़ने लगा—

'उन्हें ऐसा करने की राय किसने दी यह तो स्पष्ट रूप से मुझे मालूम नहीं हो सका। यद्यपि इसका पता लगाने में मैंने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। यह निश्चित है कि इस योजना के पीछे निश्चय ही कोई है, जिसने यह करने की उन्हें सलाह दी है। यों मुझे एक आदमी का नाम भी सुनने में आया है। यों इसके पीछे सभी बड़े-बड़े आदमियों का हाथ है।'

माधव फिर सोचने लगा—ऐसी सलाह देने वाले कौन हो सकते हैं ? सर्वप्रथम पड़ोस के एक जमींदार की ओर ध्यान गया। फिर एक और आदमी के बारे में ख्याल आया। लेकिन उनमें से किसी के द्वारा यह काम होना सम्भव न जान पड़ा। माधव फिर पढ़ने लगा—

'लेकिन आपको चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। मैं जानता हूँ कि वसीयत नामा जाली नहीं हैं और यह भी सच है कि धर्म के पक्ष की ही सदा विजय होती है। लेकिन फिर भी सावधान तो रहना ही है। जज-कोर्ट के बाबू और वकील को वकालत नामा देना होगा। जरूरत होने से अदालत से भी एक आदमी को खड़ा करना पड़ेगा। दोनों पक्षों के जवाब-सवाल के दिन और बहस के दिन सुप्रीम-कोर्ट के एक बैरिस्टर को रख लिया जाय तो अच्छा होगा। यों सेवक में जितनी क्षमता है, इसका प्रयोग जरूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
होगा। मैं तो जी जान से मुकदमें की पैरवी करूँगा ही। लेकिन हुजूर की अनुमति की प्रतीक्षा में हूँ।

सेवकाधम
श्री गोकुलचन्द्रदास

पुनश्च—जरूरी खर्चों के लिए एक हजार रुपया चाहिए।'

पत्र पढ़ते हुए पहले तो माधव ने सोचा कि एक बार वह चाची के पास जाकर उनके इस अद्भुत व्यवहार के लिए उनसे जवाब तलब करे। यही सोच कर वह घर के भीतर गया लेकिन वहाँ स्त्रियों और बच्चों का शोरगुल देखकर उसका हौसला ठण्डा पड़ गया। एक काली-कलूटी, गोल-मटोल दासी गृहस्ती की किसी छोटी सी चीज की कमी के कारण गला फाड़ कर चिल्ला रही थी। एक दूसरी दासी भी जो मोटापे में पहली से कम न थी अपने भारी-भरकम शरीर को ठीक प्रकार से प्रदर्शित करने में विशेष गर्व का अनुभव कर रही थी। झाड़ू हाथ में लेकर वह फर्श पर इधर-उधर बिखरे सब्जी के छिलकों को इकट्ठा कर रही थी। जिसने सब्जी छीली थी उसे ही इंगित करके वह अनाप-शनाप बक रही थी। तीसरी दासी आँगन के एक कोने में बैठी पीतल के बर्तन साफ कर रही थी। उसकी जीभ से खाना पकाने वाली के लिए तीखे बाण छूट रहे थे। क्योंकि खाना पकाने में उसने बर्तनों पर ज्यादा कालिख जमा दी थी।

रसोई बनाने वाली दासी इस समय घर की मालकिन के साथ रात की रसोई में कितना घी लगेगा, इसी बात को लेकर बहस कर रहीं थी। यही देख कर बर्तन साफ करने वाली उसको लोक-परलोक की गालियाँ दे रही थी और रसोई बनाने वाली दासी जरूरत से ज्यादा घी लेने की कोशिश कर रही थी, क्योंकि चुपके से थोड़ा घी बचाए बिना उसका काम कैसे चलेगा और उसका शरीर कैसे ठीक रहेगा ?

एक अन्य कोने में रात के खाने की व्यवस्था बहुत ही आकर्षक बन रही थी। एक दासी बरामदे में इधर-उधर मिट्टी के दिए जलाने में भाग दौड़ कर रही थी। दो नंग-धड़ंग बच्चे आपस में लड़ते हुए एक-दूसरे के बाल नोचने का प्रयत्न करते हुए अपनी अपनी वीरता दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे। छत पर बैठी कुछ लड़कियाँ खेल में व्यस्त थीं।

माधव क्षण भर खड़ा सोचता रहा कि उस भयानक शोर के बीच उसकी बात कौन सुनेगा ? फिर थोड़ा रुक कर यथासम्भव ऊँचे गले से वह बोला, 'अब अगर तुम लोग चुप हो जाओ तो एक बात कहूँ।'

उसकी ऊँची आवाज सुनकर सभी, जो जहाँ था चुप हो गया। सभी दासियों ने अपना राग अलापना तत्काल स्थगित कर दिया। रसोई वाली बिना अधिक घी लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही घी का बर्तन लेकर चली गई। केवल घर की मालकिन ही शान्त भाव से आकर माधव के सामने खड़ी हो गई।

माधव ने पूछा, 'मौसी, क्या मामला है ? घर में यह कैसा बाजार लगा है ?'

मौसी ने सहज ढंग से कहा, 'चार औरतों के एक जगह जुटने से जो होता है वही तो हो रहा है। चिल्लाना ही तो उनका स्वभाव है, बेटा।'

माधव ने पूछा, 'चाची जी कहाँ हैं, मौसी ?'

'मैंने भी उन्हें सबेरे से नहीं देखा।'

'सबेरे से नहीं देखा ?' माधव को आश्चर्य हुआ, बोला, 'तब तो लगता है कि बात सच है।'

'क्या सच है भैया ?' मौसी ने जानना चाहा।

'कोई खास बात नहीं, फिर बताऊँगा। जरा पूछ कर देखिए, किसी ने उन्हें देखा तो नहीं ?'

मछली और बर्तनों में उलझ रही दो दासियों को पुकार कर मौसी ने कहा, 'अंबिका, श्रीमति, तुमने क्या उन्हें देखा है ?'

दोनों ने एक साथ ही कहा, 'नहीं।'

'आश्चर्य है ! कहाँ गई ?' मौसी ने भी चिन्ता प्रकट की, फिर एक साथ सबों को संबोधित कर के पूछा, 'किसी ने उन्हें देखा है ?'

दीवाल के पास से किसी ने बताया, 'नहाने के समय उन्हें 'बड़ी तरफ' देखा है।'

मौसी ने आश्चर्य से पूछा, 'बड़ी तरफ ?'

माधव भी शंकित हो पूछ बैठा, 'बड़ी तरफ, मथुरा दादा के घर ?'

अब माधव जैसे एकाएक सारा मामला समझ गया। बड़बड़ाते हुए उसने कहा, 'तो क्या मथुरा दादा ही यह सब करवा रहे हैं ? नहीं, नहीं ! यह नहीं हो सकता। उन पर सन्देह करना गलत है।'

क्षण भर चुप रह कर वहाँ उपस्थित स्त्रियों में से एक को संबोधित करते हुए ऊँची आवाज में माधव ने कहा, 'जा कर देखो, अगर वहाँ चाची जी हों तो उन्हें अभी यहाँ आने के लिए कहना और अगर न आना चाहें तो उसका कारण पूछ कर आओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन पति द्वारा कठोरतापूर्वक लांछित होने के बाद मातंगिनी बाहर नहीं निकली। दरवाजे बन्द किए अपनी ही यंत्रणा में बेसुध पड़ी रही। वृद्धा ने ठीक समय पर रात का भोजन तैयार किया लेकिन उसका और ननद का सब समझाना-बुझाना बेकार गया। मातंगिनी न तो बाहर निकली न खाना खाया। इसी दुख के कारण मातंगिनी की फुफुआ-सास और ननद ने भी भोजन न किया।

खाट पर अकेली पड़ी मातंगिनी सोच रही थी—क्या उसे जीवन भर इसी तरह दुःख उठाना पड़ेगा? वह जानती थी कि उसका स्वामी आज रात उसके पास नहीं आएगा। उससे नाराज होने पर ऐसा करना ही उसका स्वभाव था। मातंगिनी को इससे थोड़ी प्रसन्नता भी थी कि अकेली रहेगी तो वह शाँतिपूर्वक अपनी स्थिति की चिन्ता कर सकेगी और अपनी दशा पर बिना किसी उपद्रव के विचार कर सकेगी।

अंधेरा होने के बाद धीरे-धीरे सभी सो गए और बाहर गहरी नीरवता छा गई। मातंगिनी के कमरे में दिया न जलने से पूरा अंधेरा था। एक छोटी सी खिड़की से चंद्रमा का मात्र थोड़ा सा प्रकाश भीतर आ रहा था। तकिए पर सिर रखे मातंगिनी लेटी थी। गर्मी के कारण उसने छाती पर से आँचल हटा दिया था। चाँद की किरणों को देखती हुई वह बचपन की यादों में खो गई थी। उसकी स्मृति में बचपन के दृश्य चलचित्र की भाँति घूम रहे थे। स्वच्छ निर्मल आकाश के नीचे अपनी छोटी बहन के साथ वह शैशव-काल में खेला करती थी। दादी से मन को भाने वाली कहानियाँ सुना करती। लेकिन विवाह के बाद इन आठ वर्षों में कितना परिवर्तन आ गया! उन दिनों जिन चेहरों को वह प्यार करती थी और जिनकी स्मृति को वह मन में संजो कर रखती थी, वह सब जाने कहाँ खो गए। उन सबों की हँसी और स्नेह वचन सुनने को अब कहाँ मिलेंगे? उन बीती बातों को वह जितना ही भूलना चाहती थी, वे उतना ही याद आती थीं। सोचते-सोचते उसे याद आया कि यहाँ भी तो उसके पास एक वैसा ही स्नेहमय प्राणी है। कनक छल-चतुराई-हीन एक सरल स्त्री है। केवल उससे ही अपने मन की गोपनीय बातें कह कर मातंगिनी अपने मन को हल्का कर लेती है। यही सब सोचती हुई वह रो रही थी और सोच रही थी कि इस दारुण यंत्रणा से उसे कैसे छुट्टी मिलेगी?

गरमी की वह प्रचण्ड रात उससे सही नहीं जा रही थी। अतः वह खिड़की खोलने को उठी। लेकिन खिड़की खोलते-खोलते वह रुक गई। उसे महसूस हुआ कि बाहर कोई दबे पाँवों चल रहा है। जिस खिड़की के पास वह खड़ी थी ठीक उसके पास ही यह आवाज हो रही थी। कच्चे घरों में जैसी खिड़कियाँ होती हैं वैसी ही यह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। तीन फुट लम्बी, दो फिट चौड़ी और जमीन से भी दो ही फिट ऊँची।

मातंगिनी ठमक कर खड़ी रह गई और खिड़की की संध से बाहर देखने का प्रयत्न करने लगी। लेकिन चन्द्रमा की रोशनी में दूर तक स्वच्छ आकाश और पेड़ों के सिवा कुछ न दिखा।

पैरों की आवाज जहाँ से आ रही थी, वहाँ पगडण्डी न थी, न ही वह किसी राहगीर के चलने की आवाज थी। मातंगिनी डर गई। पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी वह कान उठा कर उसी आवाज को सुनने की कोशिश करने लगी। मातंगिनी ने सुना, दो आदमी आपस में फुस-फुस बातें कर रहे थे। उन दो व्यक्तियों में एक आवाज उसके पति की लगी। पति की आवाज पहचान कर उसका कौतूहल बढ़ गया। उसी की आवाज ज्यादा ऊँची थी। उन दोनों और मातंगिनी के बीच केवल एक मिट्टी की दीवाल थी। इसीलिए चाहे सब बातें उसे स्पष्ट न भी सुनाई दे रही थीं फिर भी उनकी बातों का मतलब तो समझ में आ ही रहा था!

उन लोगों में से एक ने कहा, 'इतनी जोर से क्यों बोलते हो? तुम्हारे घर के लोग सुन लेंगे।'

मातंगिनी ने राजमोहन की आवाज पहचान ली, वह कह रहा था, 'इतनी रात हुई, सब सो रहे हैं, जागता कोई भी नहीं।'

दूसरी आवाज—'ठीक है, पर दीवाल से थोड़ा हट कर बातें करने में क्या हर्ज हैं, अगर कोई जागता भी होगा तो सुन न सकेगा।'

राजमोहन—'नहीं, यहीं ठीक है। अगर कोई जागता भी हो, तब भी यही जगह सुरक्षित है। दीवाल व छप्पर की आड़ होने के कारण कोई देख नहीं सकता। खिड़की के छेद से भी यहाँ नहीं देखा जा सकता। अगर कोई घर से निकल भी आवे तो भी यहाँ हमें देख न सकेगा।'

दूसरी आवाज—'अच्छा, इस कोठे में कौन रहता है?'

राजमोहन—'इससे तुम्हें क्या मतलब!' लेकिन तत्काल सम्हल कर बोला, 'तुमसे कहने में कुछ हर्ज नहीं। यह मेरे सोने की कोठरी है। मेरी पत्नी के सिवा इसमें और कोई नहीं।'

दूसरी आवाज—'तुम्हारी पत्नी तो जाग सकती है?'

'नहीं वह, जरूर ही सो गई होगी। फिर भी तुम ठहरो, मैं देख आता हूँ।'

मातंगिनी ने पति की बात सुनी। पैरों की आहट भी हुई। वह हल्के पांव आकर अपनी चारपाई पर बिना आवाज किए चुपचाप बैठ गई। फिर धीरे से, बहुत सतर्कता से, एक सोए हुए आदमी की तरह उस पर लेट गई और आँखें बंद कर के पड़ी रही।

राजमोहन ने आकर धीरे से कमरे के दरवाजे पर थपकी दी, लेकिन मातंगिनी न बोली न हिली। फिर राजमोहन ने पत्नी का नाम ले कर धीरे-धीरे पुकारा। इस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार भी कोई उत्तर न मिला। राजमोहन का विश्वास हो गया कि मातंगिनी गहरी नींद में सो रही है। फिर भी उसे शक था कि शायद नाराज होने के कारण चुप हो, इस लिए भीतर जाकर देखना चाहिए। पत्नी की नाराजी का कारण भी उसे उचित ही लगा। उसके साथ आज उसने अयश्य ही बहुत बुरा वर्ताव किया था। रसोई घर में जाकर राजमोहन जलता दिया उठा लाया और ला कर उसे दरवाजे के पास नीचे रख दिया। फिर उसने एक पाँव से दरवाजे के एक पल्ले को ढकेला और दूसरे पल्ले को हाथों से अपनी ओर खींचा। इससे दो पल्लों के बीच संधि बन गई। उसी संधि में हाथ डाल कर उसने भीतर से बंद हुड़का खोल दिया, फिर दरवाजा धीरे से खोल कर वह दिया लेकर भीतर गया।

उसने भीतर जा कर देखा कि उसकी पत्नी चारपाई पर गहरी नींद में अस्त-ध्यस्त पड़ी सो रही थी। उसने दबे स्वर में मातंगिनी का नाम लेकर पुकारा ताकि वह सो रही हो तो जाग न जाय। फिर उसने बहुत मीठे स्वर में पुकारा ताकि नाराजी से चुप हो तो मीठे स्वर सुन कर बोल दे। लेकिन मातंगिनी फिर भी न बोली। उसकी साँस सोए हुए व्यक्ति की तरह ही चल रही थी। राजमोहन को उसका सोना स्वाभाविक ही लगा और उसे बहाना बना कर सोने का कोई कारण भी नजर न आया। फिर उसे सचमुच सोई समझ कर वह निश्चित मन कोठरी से बाहर आया। जिस चतुराई से उसने दरवाजे का हुड़का खोला था उसी चतुराई से बन्द भी कर दिया। फिर दिया बुझा कर, सभी सोने वालों के दरवाजों पर हल्की-हल्की थपकी देकर धीरे-धीरे पुकारा। फिर किसी को जगा न पाकर, वह अपने साथी के पास वापस आया।

पति के पैरों की आहट से उसे वापस गया जान कर मातंगिनी फिर धीरे से उठी और जाकर खिड़की के पास खड़ी हो गई। वहाँ से उसने सुना—

'किसी तरह भी अब डरने की कोई बात नहीं है।' राजमोहन ने कहा।

उसके साथी ने कहा, 'तो तुम इस मामले में मेरी सहायता करने को तैयार हो?'

'विशेष तैयार तो नहीं हूँ। हाँ, इतना आगे बढ़ आने के बाद अब साधु बनने का ढोंग भी मैं नहीं कर सकता। लेकिन बात यह है कि इस आदमी को मैं गोकि पसन्द नहीं करता लेकिन उसने मेरे साथ बहुतेरे उपकार किए हैं।'

तब उस धूर्त व्यक्ति ने कहा, 'तुम उसे पसंद क्यों नहीं करते?'

'क्यों की बात मत पूछो। इसमें शक नहीं कि उसने हमारी भलाई की है, लेकिन बुराई भी कुछ कम नहीं की है। शायद भलाई से ज्यादा बुराई की है।'

'तो फिर हम लोगों की सहायता क्यों नहीं करते?'

'सहायता करूँगा, लेकिन मैं जो माँगूँगा वह तुम्हें देना होगा। मैं इस जगह से चला जाना चाहता हूँ, लेकिन दूसरी जगह जाकर मेरे लिए दो शाम की रोटी जुटा पाना भी मुश्किल होगा। इसलिए मुझे इतना रुपया चाहिए कि दूसरी जगह जाकर मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूखों मरना न पड़े। तुम्हारी सहायता करूँगा यदि तुम मुझे उतना रुपया दे सको।'

'कितना रुपया चाहिए ?'

'मुझे क्या करना होगा, पहले यह जान लूँ तब बता सकता हूँ कि कितने रुपये चाहिए।'

'एक बार जो कर चुके हो, बस वही करना होगा। उसकी जो कुछ भी चल सम्पति है वह सब खिसकानी होगी। इस बार नगदी के अलावा जो कुछ भी मिलेगा वह सब तुम्हें दे देंगे। लेकिन यह काम आज रात को ही होना चाहिए।'

'सो मैं समझ रहा हूँ। लेकिन तुम्हें इस काम में मेरी कितनी सहायता चाहिए? यह बात छिपाने से तुम्हें कोई विशेष सुविधा न होगी। इतने बड़े घर में ऐसी हरकत करने का क्या नतीजा होगा, यह तुम समझ ही रहे हो। सम्पत्ति का पता लगाने में कितना कठिन परिश्रम करना पड़ेगा फिर खानातलाशी भी होगी। यह सब तो तुम समझते ही होगे। इतने के बाद भी तुम्हें एक ऐसे आदमी की जरूरत होगी जो तुम्हारी इस अपहृत सम्पत्ति की रखवाली भी करे, जब तक तुम बिल्कुल निश्चिंत होकर उसका उपभोग कर सको। वह ऐसा आदमी होना चाहिए जो विश्वासघात न करे। इस दिशा में तुम जानते ही हो कि मुझसे ज्यादा अच्छी तरह यह काम कोई और न कर सकेगा। मेरे अलावा कोई और यह सम्पत्ति छिपा कर रख भी नहीं सकता। क्योंकि मुझ पर कोई सन्देह भी न करेगा। लेकिन मुझे डर है कि इतने काम के लिए मैं जो रुपये माँगूँगा वह तुम्हें अधिक ही जँचेगा।'

'जब तुम इतना सब कुछ समझते हो तब तुम्हें मुनासिब रकम ही माँगनी चाहिए।'

'ऐसे मामले में मोल-भाव करना मैंने नहीं सीखा। सारी सम्पति बेच कर जो भी नगदी रुपया मिले उसका चौथाई मुझे देना होगा।'

वह डाकू राजमोहन के चरित्र से अच्छी तरह परिचित था। यह वह समझ गया था कि राजमोहन गरज देख कर दाँव लगा रहा है। थोड़ी देर चुप रह कर उसने कहा, 'जहाँ तक मेरी बात है, मैं तो राजी हूँ। लेकिन इस संबंध में मुझे अपने दूसरे साथियों से भी राय लेना जरूरी है। यों तुम तो जानते ही हो कि मेरी बात वे टाल नहीं सकते।'

'यह तो मैं जानता हूँ। लेकिन मेरी भी एक शर्त है कि माल-मत्ता खिसकाने के पहले उसकी अंदाजी कीमत लगा कर मुझे उसकी चौथाई तो अवश्य ही मिल जानी चाहिए। सो भी नगदी रुपयों के रूप में। बेचने के बाद अगर उस अंदाजी कीमत से कम रुपये वसूल हुए तो उसी हिसाब से मैं रुपये लौटा दूँगा और अगर ज्यादा दाम मिलेगा तो हिसाब से और रुपये तुम्हें देने होंगे।'

'ठीक है, तुम्हारी शर्त मुझे मंजूर है। लेकिन हमारे लिए तुम्हें एक काम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
करना होगा।'

'तो और काम का मेरा इनाम भी अलग होगा।'

'जरूर, इनाम क्यों न मिलेगा ? माधव घोष की सम्पत्ति तो हम अपने लिए चाहते हैं। लेकिन इसमें से एक आदमी की दूसरी ही फरमाइश है।'

'वह क्या है ?'

'माधव घोष की सम्पति का वसीयतनामा।'

राजमोहन पहले तो सुन कर थोड़ा हैरान हुआ, फिर 'हूँ' कर के चुप रह गया। फिर थोड़ी देर बाद बोला, 'उसके बारे में तो मैं ही नहीं जानता। हाँ, कभी-कभी उसे मैंने एक छोटी सन्दूकची में कागज-पत्तर रखते-निकालते जरूर देखा है। लेकिन वसीयतनामा वह कहाँ रखता है, सो मुझे नहीं मालूम। पता नहीं, बड़े बक्स में या आलमारी में ? ठीक से मैं नहीं जानता। लेकिन यह तो बताओ कि आखिर यह फरमाइश किसकी है ?'

'यह नहीं बता सकते।'

'मुझसे भी नहीं ?'

'हाँ, किसी से भी नहीं।'

'मथुरा घोष तो नहीं ?'

'हो सकते हैं और नहीं भी। अच्छा, यह तो बताओ कि वह सन्दूकची है कैसी ?'

'इसके लिए मुझे क्या दोगे ?'

'तुम्हें क्या चाहिए ?'

'नगद दो सौ रुपये।'

'इस छोटे से काम के लिए दो सौ रुपये ? यह तो बहुत ज्यादा है।'

'लेकिन मेरा काम भी तो कम खतरनाक नहीं है। रात भर उस कागज का खोजना। सन्दूकची वह अपने सोने के कमरे में ही रखता है। आलमारी में।'

'सन्दूकची के रंग के बारे में पता चल जाए तो ठीक रहे गा। और तुमसे कुछ भी कहना बेकार है। बस तुम्हारी शर्त मंजूर है।'

'सन्दूकची तो हाथी दाँत की है। उसके ऊपर माधव का नाम लिखा है।'

'तो सब बात तय हो गई। अब तुम मेरे साथ चलो ताकि दल के और लोगों से भी बात हो जाय। हम एक जगह तै कर लेंगे जहाँ आकर तुम हमसे मिल जाना। अब चलें, और देरी करना ठीक नहीं है। चाँद के डूबने के साथ ही अपना काम शुरू कर देना होगा। यों गर्मी की रात जल्दी ही बीत जाती है।'

इतनी बात कर के दोनों वहाँ से चल दिए। झाड़-झँखाड़ की राह पकड़ कर आगे बढ़ते हुए दोनों अँधेरे में छिप गए। इधर सारी बातें सुन कर मातंगिनी हैरानी और डर के मारे जड़ सी बनी आ कर खाट पर लेट गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७

मातंगिनी ने छिप कर जितनी बातें सुनी थी, उन्हें सुन कर डर के मारे उसका शरीर सुन्न हो गया। वह छिप कर, साँस रोके जब तक बातें चलती रहीं, अपनी कांपती देह पर किसी तरह नियंत्रण रख कर खड़ी रही। भयानक कौतूहल में डूबी वह शुरू से अन्त तक सारी बातें सुनती रही। और बातें समाप्त होते ही उसे लगा जैसे उसका शरीर सुन्न हो गया है। उसी दशा में आ कर वह खाट पर गिर पड़ी। भय और आंतक में डूबी वह काफी देर तक बेहोश सी पड़ी रही। जब उसकी चेतना लौटी तो उसने सुनी हुई बातों पर सोचना शुरू किया। अपने स्वामी के जीवन व चरित्र का यह नया और भयानक पहलू आज अचानक जैसे रोशनी पड़ने से उसके सामने स्पष्ट हो उठा। आज उसे अपने पति की पशु-प्रवृत्ति और कठोर स्वभाव का परिचय मिला। अपने पति का यह डाकू-दल के सहयोगी का रूप देख कर उसका मन ग्लानि से भर उठा। यह सोच कर उसे और भी दुख हुआ कि यह दुष्ट और नीच आदमी आज तक उसके निष्कलंक हृदय से खेल करता रहा है। यह सोच कर कि भविष्य में भी उसे इस पतित आदमी के वीभत्स आलिंगन में बँधना पड़ेगा, वह और भी दुखी हुई। वह जानती थी कि अपने को उससे दूर रखने का उसके पास कोई उपाय नहीं है। इस मामले में वह बिल्कुल ही बेवस है। कोई उपाय सूझ न पड़ता था। फिर अभी तो चिरकाल तक उसी के साथ अभिशप्त जीवन बिताना पड़ेगा।

यही सब सोचते हुए उसका कलेजा मुँह को आने लगा। फिर उसे उस बात का ध्यान आया, जिस काम में उसका पति सहायक होने जा रहा है। सोच-सोच कर मांतगिनी का मन और शरीर काँपने लगा। उसके पति के इस भीषण नीच-कर्म से उसकी बहन हेमांगिनी और बहनोई माधव की कितनी हानि होगी, यह सोच कर उसके शरीर का खौलता खून जमने सा लगा। चिन्ता व घबराहट से उसके सिर में पीड़ा होने लगी। बेफिक्र सोते हुए अपने अत्यन्त स्नेही प्रियजनों के भविष्य में होने वाले सर्वनाश के बारे में उसने सोचा। उनकी मंगल-कामना और बचाव के प्रयत्न की चिन्ता में वह इतना डूब गई कि अपने अभिशप्त भविष्य और लांछित नारी-जीवन तक की उसे सुधि न रही। उसने क्षण भर में मन ही मन निश्चय किया—अपना जीवन देकर भी यदि उन्हें बचाया जा सके तो भी वह उन्हें बचाने का प्रयत्न करेगी।

पहले तो उसे ध्यान आया कि वह घर के लोगों को जगाए लेकिन फिर वह सहसा रुक गई। उसे लगा कि यह समझदारी का काम न होगा। उसके कहने पर कि उसका पति ही यह पतित काम करने जा रहा है, कोई विश्वास न करेगा। उसके पति की बुआ और बहन क्या उसकी बात पर विश्वास करेंगी? या उनसे कहने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
क्या माधव का सर्वनाश वह रोक सकेगी ? फिर क्या उसमें इतनी शक्ति है कि अपने पति राजमोहन के सामने वह यह सब कह सके ? हो सकता है कि उसकी बातें सुन कर अपने आत्मीय से वे दोनों सब कह दें और उसी का जीवन नष्ट करादें।

अचानक उसे कनक का ध्यान आया।

उसने सोचा—क्या कनक को माधव के यहाँ भेज कर खबर नहीं दी जा सकती ? कनक का घर भी दूर न था। बल्कि अपने घर से मिला ही था। मांतगिनी ने सोचा कि राजमोहन को संकट में न डाल कर चुपचाप कनक के पास जा कर उसे ही माधव के यहाँ भेजना चाहिए। लेकिन फिर कुछ सोचने पर लगा के शायद संभव होने पर भी कनक के लिए काम कठिन हो। कनक की माँ को जगाए बिना कनक से इस समय भेंट नहीं हो सकती। क्योंकि दोनों एक ही कोठरी में सोती थीं। फिर एक शंका और भी थी कि कनक तो बिना किसी हिचक उसकी बात पर विश्वाश कर लेगी लेकिन उसकी माँ इतनी आसानी से शायद उसकी बात को सत्य न माने। फिर उससे तो सब कुछ खोल कर ही बताना पड़ेगा। पूरी बात बताने में उसका पति भी लपेट में आ जायगा। क्योंकि भगवान को साक्षी मान कर उसने जिसे एक दिन अपनाया था उसके विरुद्ध वह कैसे जा सकती थी ? कनक को अकेले में बुलाकर इस आधी रात में उससे सब कुछ बताना भी संम्भव नहीं था। फिर कनक की काँ भी क्या इतनी रात में इसे बाहर जाने देगी ? शायद उसके सोचे का उल्टा ही हो और कनक की मां उसके ही घर वालों को जगा कर शोर कर दे। यह भी हो सकता हैं कि कनक की मां शायद समझे कि मांतगिनी का दिमाग खराब हो गया है या उसका चरित्र खराब हो गया है और कनक की मां मान भी जाए तो क्या इतनी रात गए कनक अकेली रास्ते पर निकल सकेगी ? विशेष कर ऐसी स्थिति में जब कि डाकू लोग अपनी योजना में लगे हैं तब राह के किनारे उनका छिपा रहना भी असम्भव नहीं था।

खूब सोच विचार के बाद हर ओर से निराश होकर मातंगिनी ने यही सोचा कि ऐसी परिस्थिति में जो कुछ भी करना होगा उसे अकेले ही करना होगा। सोच कर उसका शरीर डर से काँपने लगा। आधी रात के इस भयानक सन्नाटे और झाड़-झंखाड़ से भरे जंगल में अकेली जवान औरत क्या करेगी ? फिर वह स्वभाव से सरल व डरपोक भी है और उसे भूत-प्रेतों पर भी विश्वास है। जंगलों में जो सब भूत-प्रेत व अलौकिक जीव विहार करते रहते हैं उनके बारे में वह बचपन से ही बहुत सी कहानियाँ सुनती आई है। उसके अलावा भयानक क्रूर डाकुओं का दल भी वहाँ मोजूद ही है। यदि कहीं वह उनके हाथ पड़ गई तब क्या होगा ? उन डाकुओं के दल में यदि कहीं उसका स्वामी भी हुआ तब क्या होगा ? यही सब सोच कर मातंगिनी फिर एक बार काँप उठी।

लेकिन मातंगिनी के लिए साहस जुटाने के अलावा कोई अन्य रास्ता बचा भी न था। उसने निश्मय किया कि वह प्राणों की बाजी लगाकर भी अपनी बहन व बहनोई की रक्षा अवश्य करेगी। उन्हें नष्ट होने से बचावेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे आने वाले भयानक संकट का जितना भी ध्यान आता, उतना ही उसके हृदय में बहन व बहनोई के लिए प्रेम उमड़ने लगा। फलस्वरूप वह उनकी रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हो गई। लेकिन नारी–हृदय की स्वाभाविक कमजोरी उसके राह में रोड़ा बनी थी। आधी रात के इस समय क्या कोई उसकी बात पर विश्वास करेगा ? खुद माधव भी क्या सोचेगा ? कुछ देर इसी चिन्ता में वह अपने माथे पर बल डाले खड़ी सोचती रही।

फिर साहस बटोर कर मातंगिनी हिली और आगे बढ़ कर उसने गरमी से भरे कमरे की खिड़की खोल दी। अब उसे वृक्षों की लम्बी छाया और उन पर लटक रहे चन्द्रमा का प्रकाश दिखाई पड़ने लगा। उसे ध्यान आया कि थोड़ी ही देर बाद अब डाकुओं का शोर सुनाई पड़ने लगे गा। और तब तक उसके बहन व बहनोई की सहायता का समय निकल चुका होगा, देरी हो जाएगी। सिर पर आए संकट ने उसकी तर्क-शक्ति को हर लिया, अधिक आगा-पीछा सोचने की उसमें अधिक शक्ति ही नहीं रह गई थी। अपने आत्मियों के लिए उसके मन में कई गुना प्रेम बढ़ गया। उसके सामने की सभी बाधाएँ अब दूर हो गईं।

सिर से पैर तक अपने को एक मोटी चादर से लपेट कर वह सतर्कतापूर्वक द्वार बंद करके निकल पड़ी जैसे राजमोहन ने बाहर से हाथ डाल कर हुड़का बंद किया था, उसने भी उसी तरह बन्द किया। लेकिन जब वह स्वच्छ नीले आकाश के नीचे आकर खड़ी हुई तब उसे लगा कि उसके पैरों ने आगे बढ़ने से जवाब दे दिया। दोनों हाथ जोड़ कर बहुत ही धीमी आवाज में वह कह उठी—भगवान मुझे साहस दो। फिर दूसरे ही क्षण बिना आहट किए वह बड़ी तेजी से चल पड़ी। जंगली झांड़ियों के बीच चलते हुए उसका दिल काँपने लगा। आधी रात का जंगल का सन्नाटा और अंधकार उसके मन के भय को बढ़ाने लगा। पेड़-पौधों के गाँठ-गठीले तने भूत-प्रेत बन कर उसका जाना देख रहे थे। अंधेरे में छिपी एक डाल दैत्य-रूप धारण करके उसके सिर के ऊपर आ गई। अंधकार से ढंके जंगल में मानो डाकू दल उसकी ताक में छिपा बैठा था। पेड़ों के पत्ते गिरने तथा चिड़ियों के पंख फड़फड़ाने की आवाज उसे बार-बार चौंका देती थी। फिर भी अपने मन को मजबूत किए वह आगे बढ़ती रही। वह मन ही मन बराबर अपने इष्टदेव का नाम जपती रही। धीरे-धीरे वह ऐसी जगह पहुँच गई जहाँ की भूमि समतल थी और दोनों ओर ऊँची जमीन थी। एक ओर बड़ा सा आम का बाग था जिसके चारो ओर कँटीले झाड़ों का घेरा था। दूसरी ओर पोखर का ऊँचा किनारा था जो मी छोटी-छोटी काँटेदार झाड़ियों से ढंका था। इन झाड़ियों के ऊपर तीन बरगद के पेड़ अपनी डालें फैलाए अंधेरे को और भी डरावना बना रहे थे। डर कर मातंगिनी ने चारों ओर नजर दौड़ाई। आम के बाग से रोशनी आ रही थी और दबे स्वरों में बातचीत क उसे आभास मिला। लगा जैसे वहाँ कोई वाद-विवाद चल रहा है। उसे जिस बात का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भय था वही हुआ। शायद यह उन्हीं डाकुओं का दल था। मातंगिनी पत्थर की मूर्ति स ठिठक कर खड़ी हो गई। एक पग भी वह आगे न बढ़ सकी। मुसीबत भी आकर ही रही। अचानक उसके पैरों की आहट पाकर कुत्ता भूंक उठा और साथ ही साथ आम के बाग से आ रही आवाज भी थम गई। उसे यह समझते देर न लगी कि कुत्ते की आवाज सुन कर डाकू दल सतर्क हो गया है। अब उसका पकड़ा जाना कठिन नहीं है। लेकिन इस नए संकट से उसमें एक नई शक्ति पैदा हो गई। हिरनी की तरह दबे पैरों वह क्षण भर में ही पोखर के किनारे पहुँच गई। वहाँ गहरा अंधेरा था। अब डाकू यदि उसे खोजेंगे भी तो इस अंधेरे में कुछ देख न सकेंगे। लेकिन यदि डाकू उसे बरगद के पेड़ों की राह आकर खोजेंगे तो अवश्य देख लेंगे। वहाँ आसपास झाड़-झंखाड़ भी नहीं जहाँ छिपा जा सके। लेकिन कुत्ता अभी तक भूँक रहा था इसलिए पल भर की भी देरी किए बिना उसने मिट्टी का एक भारी लोंदा चादर में बाँध लिया। इस तरह उसने सिर पर आई मुसीबत से छुटकारा पाना चाहा। उसने सोचा कि वह जो महीन कपड़े पहने है उन्हें सम्हालने में ज्यादा परेशानी न उठानी पड़े। अब तक उसे पोखर के दूसरी ओर लोगों के पैरों की आहट साफ सुनाई देने लगी। उसने धीरे-धीरे चादर में बँधे मिटी के लोंदे को पानी में डुबो दिया। कोई शब्द न हुआ। फिर वह खुद भी पानी में उतर कर बैठ गई। नाक तक सारा शरीर उसने पानी में डुबा लिया। काले रंग के जल में उसके सिर के सिवा कुछ और न दिखे और उसका गोरा चेहरा उसे मुसीबत में न डाले, इसलिए उसने झट से अपना जूड़ा खोंलकर बाल बिखेर लिए। इससे उसका चेहरा छिप गया। अब उसे विश्वास हो गया कि तेज से तेज नजर भी अब उसका पता न पा सकेगी।

धीरे-धीरे पैरों की आहट और गले की आवाज उसके पास ही आकर रुक गई। यह जान कर भी मातंगिनी नहीं हिली।

तभी एक आदमी ने कहा, 'बड़े ताज्जुब की बात है। मैंने झाड़ी की झिरी से साफ देखा था कि सिर से पाँव तक सफेद चादर से ढंकी एक मानव-मूर्ति थी।

दूसरा बोला, 'नहीं तुमने किसी पेड़ की ढूंठ को ही आदमी समझ लिया होगा। अगर मान भी लें कि आदमी था तो क्या वह पल भर में ही हवा हो गया? फिर इस गरमी में भला कौन सिर से पाँव तक चादर ओढ़ कर आएगा? ऐसा तो वही करेगा जिसका दिमाग खराब हो।'

पहले व्यक्ति ने कहा, 'शायद ठीक ही कहते हो दादा! शायद मैंने कोई भूत-प्रेत देखा होगा।'

जब मातंगिनी ने सिर घुमा कर देखा तो पाया कि डाकू किसी को न पा कर वापस चले जा चुके थे।

फिर भी मातंगिनी कुछ देर तक पानी में ही बैठी रही। जब लोगों के पैरों की आहट दूर जाकर बिल्कुल ही मिट गई तो वह समझ गई कि वे लोग अब आम के बाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में पहुँच गए हैं। तब वह पानी से निकल कर बाहर आई। धीरे-धीरे साड़ी का पानी निचोड़ा। चादर तालाब के भीतर ही रही। फिर वह उस खतरनाक रास्ते पर न चल कर पानी के किनारे-किनारे ही आगे बढ़ी। डर से सहमी वह बार-बार पीछे देख लेती थी। राह उसकी जानी-पहचानी थी। क्योंकि मधुमती नदी में नहाने के लिए आने को उसे मनाही न थी। अब वह किनारा छोड़ संकरी राह से आगे बढ़ी। यह राह घने झाड़-झंखाड़ वाली थी। अंत में वह सीधी राह पर आ गई। लेकिन यहाँ एक और समस्या उसके सामने आ खड़ी हुई। जब से वह राधागंज आई थी तब से अब तक वह केवल दो बार अपनी बहन के घर गई थी, वह भी पालकी में बैठ कर। उसने केवल लोगों के मुँह से रास्ते के बारे में सुन रखा था। अतः चौराहे पर आकर उसे रुकना पड़ा। वहाँ परेशान होकर खड़ी, वह चारो ओर देखने लगी। अचानक उसकी दृष्टि देवदारू के एक पेड़ पर पड़ी जो उसकी बहन के मकान के ठीक सामने था। वह फौरन उसी ओर बढ़ चली। थोड़ी दूर चलने के बाद ही माधव की हवेली के पास पहुँच गई और खिड़की के द्वार की ओर बढ़ी।

अब आखरी संकट से निबटना बाकी रह गया था। उस समय घर के सभी लोग गहरी नींद में सो रहे थे। अब भीतर जाने की समस्या थी। मातंगिनी को इतना मालूम था कि खिड़की के पास वाली कोठरी में ही करुणा नाम की दासी सोती हैं।

वहाँ थपकी देने से दासी की नींद खुल गई। वह क्रोध से बोली, 'इतनी रात गए कौन दरवाजा पीट रहा है ?'

मातंगिनी ने घबराहट भरे स्वर में कहा, 'करुणा, जल्दी दरवाजा खोल !'

इस बेवक्त नींद में बाधा डालने वाले पर क्रुध करुणा ने कड़ी आवाज में पूछा, 'तुम कौन हो ? इतनी रात गए दरवाजा क्यों खोलूँ ?'

मातंगिनी अपना नाम बताना न चाहती थी। बोली, 'अरी, जल्दी खोल न ! देखते ही पहचान जाएगी कि मैं कौन हूँ।

करुणा का धैर्य जाता रहा। वह जोरों से चिल्ला उठी, 'तुम कौन हो ? बताते क्यों नहीं ?'

अब मातंगिनी ने कहा, 'मैं एक स्त्री हूँ। चोर नहीं। जरा उठ कर देख न !'

अब तक करुणा की नींद खुल चुकी थी। उसे लगा कि अवश्य यह किसी चोर की आवाज नहीं हो सकती। उसने उठ कर दरवाजा खोल दिया।

मातंगिनी को पहचान कर करुणा हैरान रह गई। वह एक प्रकार से चिल्ला उठी, 'मालकिन, तुम ?'

मातंगिनी ने घबराहट में ही कहा, 'मुझे फौरन हेम से मिलना है। मुझे उसके पास ले चल।'

करुणा का दिमाग चक्कर खा गया। उसकी हैरानी और बढ़ गई। पूछा, 'इतनी रात गए तुम यहाँ आई हो ? मालकिन, तुम इस तरह घबराई क्यों हो ? तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कपड़े भी गीले हैं। आखिर बात क्या है ?

मातंगिनी उसके सवाल-जवाब में समय गँवाना न चाहती थी। इसलिए आज्ञा-पूर्ण स्वर में बोली, 'मुझे फौरन हेम के पास ले चल, बस।'

करुणा बोली, 'वह तो अभी सो रही हैं। जाकर जगाती हूँ। तब तक तुम यह भींगे कपड़े तो बदल लो।'

करुणा को सामने जो धोती दिखी वही लाकर उसने मातंगिनी को दी। मातंगिनी ने भी झट से धोती बदल ली और दासी के पीछे-पीछे कोठी की दूसरी मंजिल पर हेम से मिलने चल पड़ी।

८

खुले आँगन में खड़ी होकर मातंगिनी ने दासी से हेम को जगा लाने को कहा। हेमांगिनी जग ही रही थी। आवाज सुनते ही क्षण भर में बाहर आ गई। उसके चेहरे और आँखों व स्वर से हैरानी के चिन्ह प्रकट हो रहे थे। विस्मित एवं मीठे स्वर में अपने बहन से इस समय कुवेला में आने का कारण पूछा।

मातंगिनी ने कहा, 'तुम्हारे घर में आज डाका पड़ेगा, इसीलिए तुम्हे चेतावनी देने आई हूँ।'

विमूढ़ हो रही मातंगिनी अस्पष्ट स्वर में चीख उठी, 'डाका ?'

करुणा भी 'बापरे' कह कर चीत्कार कर उठी। मातंगिनी ने डाँटा, 'चुप रह करुणा, हेम तुम भी शोर मत करो। अब यहाँ खड़े रहने से कुछ न होगा। जाकर अपने पति को सचेत कर दो और कहो कि सामना करने की तैयारी करें।'

लेकिन हेमांगिनी के बस की यह बात न थी। वह बुरी तरह डर गयी थी। उसका समस्त शरीर थर-थर काँप रहा था। चेहरा भी सफेद पड़ गया था और पाँवों में हिलने-डुलने की शक्ति न थी। एक प्रकार से उसकी बोलती ही बन्द हो गई थी।

मातंगिनी ने देखा कि उसकी बहन डर के मारे सुध-बुध खो बैठी है, अतः वह भी चुप रहे, यह उचित न होगा। करुणा भी जैसे अधीर हो उठी थी। ऐसे अवसर पर दौड़ कर सूचना दे कर वह मालिक के सामने आपनी स्वामी-भक्ति दिखाने का अवसर नहीं छोड़ना चाहती थी। फिर इस अप्रत्याशित समाचार से उसके मन में भयानक आतंक पैदा हो गया था। वह दोड़ कर कुसमाचार देने माधव के कमरे की ओर चली गई।

जल्दी ही लौट कर उसने मातंगिनी से बताया कि मालिक उसकी बात पर विश्वास नहीं कर रहे हैं। विशेषकर यह जान कर कि मातंगिनी खुद इतनी रात गए यह ससाचार लेकर उसके पास आई है, उन्हें और भी विश्वास नहीं होता। माधव का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कहना था कि यदि मातंगिनी इस समय यह खबर देने आई है तो वह उसी के मुँह से सब सुनने के बाद ही विश्वास करेगे। माधव ने कहा था, 'उन्ही के मुँह से सुन कर मैं विश्वास कर पाऊँगा कि यह विपत्ति कैसी है। जा और उन्हें ही यहाँ मेरे पास भेज दे।'

मातंगिनी ने हेम से कहा, 'बहन हेम ! तू जाकर माधव से कह दे कि मैं आई हूँ। तेरे कहने से उन्हें विश्वास हो जाएगा।'

हेमांगिनी ने तत्काल कहा, 'यह मुझसे न होगा, दीदी ! तुम स्वयं ही जाकर सब बता दो। बेकार समय गँवाने से क्या लाभ ? जो बात सच है, वह तुम्हीं जा कर कह दो।'

मातंगिनी बोली, 'यह बात कहने के लिए मेरा जाना उचित नहीं है। तू जाकर बस इतना कह दे कि यह खबर मैं लाई हूँ। और जो कुछ मैं कह रही हूँ वह बिल्कुल सच है।'

हेमांगिनी किसी प्रकार भी जाने को तैयार न हुई, अतः छोटी बालिका की भाँति हठ करके बोली, 'नहीं, नहीं, दीदी, तुम्हीं जा कर कहो।'

मातंगिनी अत्यन्त गम्भीर स्वर में बोली, 'मैं नहीं जा सकती हेम ! तू समझती क्यों नहीं ?'

इसी बीच हँसने का प्रयास करती हुई करुणा ने कहा, 'माँ जी, यह बात सच नहीं है। दीदी तुम्हें डरवा रही हैं।'

हेमांगिनी के चेहरे पर चमक आ गई, जैसे भय भाग गया। प्रसन्न हो वह बोली, 'क्या करुणा सच कहती है दीदी ? मैं तो सचमुच बहुत डर गई थी। तो फिर बताओ न दीदी कि तुम्हें इस समय किस काम से आना पड़ा ?'

कुछ देर चुप रह कर मातंगिनी सोचती रही। फिर मन ही मन अपने कर्तव्य को याद कर के बोली, 'अच्छा तो मैं ही माधव के पास जाती हूँ। पर हेम, तू भी मेरे साथ चल।'

शर्मीली बहन हेम अपनी बड़ी बहन के सामने पति के सामने जाने के लिए तैयार न हुई। तब मातंगिनी ने कहा, 'तू फिर यहीं ठहर। लेकिन जब तक मैं लौट न आऊँ, मेरी कही बात किसी और के कान तक न पहुँचे।'

कह कर मातंगिनी जल्दी से बरामदा पार कर गई। इस बीच उसने गौर किया कि चन्द्रमा पेड़ों की चोटी की आड़ में अस्त होने जा रहा है। वह और उत्तेजित हो उठी लेकिन माधव के कमरे के पास आ कर उसके पाँव काँपने लगे। इसी प्रकार तो उसके पाँव डाकुओं से घिरने पर भी नहीं काँपे थे। माथे का आँचल और आगे तक खींच कर वह अनिच्छापूर्वक दरवाजे की ओर बढ़ी। एक बार फिर ठिठकी, एक पग पीछे आई, फिर हिम्मत बटोर कर आगे बढ़ी और दरवाजे को ठेल कर खोला। फिर थोड़ा ठिठकी और फिर भीतर चली गई। सजा हुआ कमरा था। वहाँ मात्र एक दीपक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल रहा था। एक कीमती सोफे पर पीठ टिकाए माधव बैठा था। दीवार से टिक कर मातंगिनी लज्जा से सिर टिका कर खड़ी हो गई। बहनोई की ओर एक बार आँख उठा कर देखा। उसे देखते ही माधव चौंक गया। अब वह सीधा हो कर बैठ गया।

पहले तो दोनों में से किसी ने कुछ न कहा। एक तो भयानक खबर को देने उत्सुक थी और दूसरा उसे सुनने को उत्सुक था, पर दोनों में पहले कौन बोले, यही संकोच दोनों को हो रहा था। यह खामोशी दोनों को ही परेशान कर रही थी। अन्त में माधव ने ही अपने रिश्ते का सहारा लेकर मजाक करने के लिए मौन को तोड़ते हुए कहा—'दीदी, अगर तुम बिलायती मेम होतीं तो कुर्सी आगे बढ़ा कर तुमसे बैठने का अनुरोध अवश्य करता।'

दिल्लगी करके माधव स्वयं हल्की हँसी हँसा। फिर बोला, 'दीदी, तुम खड़ी क्यों हो ? बैठती क्यों नहीं ? देखो, वह जगह है बैठने के लिए।'

माधव को असमंजस से उबारते हुए मातंगिनी ने धीमे स्वर में कहा, 'मैंने अभी जो कहलवाया है, वह बात सच है।'

माधव ने गम्भीर स्वर में पूछा, 'क्या सच है ?'

'हाँ, सच है।'

'आज रात को ही ?'

'हाँ, आज ही रात को। चन्द्रमा के अस्त होते ही वे लोग धावा करेंगे। और चन्द्रमा अस्त होने में अब थोड़ी ही देर बाकी है।'

'ऐसी बात है ! तब तो गजब हो जायगा। लेकिन दीदी, तुम्हें यह खबर कहाँ से मिली ?'

अब मातंगिनी ने चेहरे पर से घूँघट हटा कर स्पष्ट आवाज में कहा, 'यह अभी मत पूछो। मैं क्या तुमसे झूठ कहूँगी ? क्या झूठ कहने ही मैं इतनी रात बीते बेवक्त तुम्हारे घर अकेली भागी आई हूँ ?'

'ठीक है। अब मुझे विश्वास हो गया। लेकिन तुम यहीं रहना, मैं अपने आदमियों को बुलाने जा रहा हूँ।' कह कर माधव जाने के लिए उठा, लेकिन आगे बढ़ कर मातंगिनी ने उसे रोकते हुए कहा, 'पहले मुझे एक जवाब देते जाओ।'

'कहो !' माधव ने ठिठक कर कहा।

तुम्हारे चाचा का वसीयतनामा कहाँ है ? वे लोग उसे ले जाना चाहते हैं।'

'हूँ।' कह कर माधव सोचने लगा कि चाची ने उस पर जो मुकदमा चलाया है उसका एक सूत्र और हाथ लगा। उसने दृढ़ता से कहा, 'वह वसीयततामा उनके हाथ नहीं लग सकता।'

'अच्छा, इस कमरे में हाथी दाँत के बने एक बक्से के भीतर उसे तुम रखते थे न !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाँ, लेकिन यह बात तुमने कैसे जानी ?' माधव ने हैरान होते हुए पूछा।

'मैं ही नहीं, यह बात वे डाकू भी जानते हैं।'

'समझ गया। लगता है तुम बहुत कुछ जान चुकी हो।'

माधव उठ खड़ा हुआ। मातंगिनी ने फिर टोका, 'मेरी एक शर्त और है। क्या उसे मानोगे ?'

'हाँ, कहो। जरूर मानूंगा।'

'कोई यह न जानने पावे कि यह खबर तुम तक मैंने पहुँचाई है या आज रात मैं यहाँ आई थी। यदि यह किसी को पता चल गया तो फिर मेरी खैर नहीं है।'

माधव को एकाएक क्रोध हो आया। गरज कर वह बोला, 'जरा मैं भी तो सुनूँ कि कौन भला तुम्हारे प्राण ले सकता है ?'

मातंगिनी घबरा गई। धीरे से बोली, 'चुप-चुप !'

माधव तत्काल संयत हो गया। बोला, 'ओह, मुझे ध्यान ही नहीं रह गया था। गलती हो गई।'

'हेम और करुणा को भी समझा देना। कहीं शोर न करें।'

'करुणा को ही सम्हालना कठिन है। मैं उसे डाँट दूँगा कि वह चुप रहे। तुम हेम के पास रहना। भीतर से साँकल चढ़ा लेना ताकि कोई तुम्हें यहाँ देख न सके। लौट कर मैं तुम्हें ऐसी जगह पहुँचा दूँगा जहाँ तुम्हें कोई देख न सके।'

इतना कह कर माधव हेम और करुणा के पास गया। उन दोनों से इस विषय में चुप रहने को कह कर वह तेजी से बाहरी बैठक की ओर दौड़ा और जल्दी ही दरबानों, पहरेदारों और सिपाहियों के रहने के स्थान में जा पहुँचा।

मन ही मन माधव मातंगिनी की बुद्धि और हिम्मत को सराहता हुआ उसके प्रति श्रद्धा से भर उठा। मातंगिनी उसे कदापि धोखा नहीं दे सकती। वह जानता था कि धोखा देने के लिए मातंगिनी कभी भी इतनी रात को अकेले परेशानी उठा कर न आती। उसकी खबर पर विश्वास कर के वह भी जी जान से डाकुओं का सामना करने की कोशिश में जुट गया।

धरती पर पूरी तरह अंधेरा छाने से पहले ही देखा गया कि घर की छत पर कई परछाइयाँ नजर आने लगी। ये लोग जमींदार माधव के गिने-चुने आसामी या प्रजा हैं जो उसके घर के पास ही रहते थे और किसी भी समय अच्छे खासे लठैतों की टोली तैयार कर सकते थे। इस समय भी ये बल्लम, लाठी और ईंट-पत्थर आदि शस्त्रों से सुसज्जित और तैयार थे। ताकि जब डाकू आवें तो उनका सामना किया जा सके। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इतनी रात बीते जल्दी में आए सभी लठैत बलवान थे। इनमें से कई तो बेवक्त जगाए जाने के कारण खीझे हुए थे। जमींदार के क्रोध के डर से ही वे डटे हुए थे अन्यथा कभी के भाग गए होते। अधिकांश लोग उत्साह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भरे थे। डर भी न था, क्योंकि वे जानते थे कि डाकुओं को आकर्षित करने वाली कोई भी चीज ऊपर छत पर न थी। संयुक्त प्रान्त के पाँच-छ सिपाही ढाल, तलवार, भाला और पुरानी नाल की बन्दूक जिसमें बारूद ठूँस कर भरी जाती थी, हाथ में लिए मुख्य-द्वार पर पहरा दे रहे थे।। चार पाँच आदमी सतर्कता से टोह लेने को टहलते रहे। उनका काम यही था कि आहट होते ही अपने साथियों को सतर्क कर दें। घर के भीतर जिन संदूकों में गहने, नगदी, छोटे आकार की कीमती चीजें और कीमती धातु के वर्तन थे, वे सभी उस हाथी दाँत के बक्से के साथ जिसमें वसीयतनामा रखा था, न जाने कहाँ गायब हो गए थे। यह हवेली बहुत बड़ी महल थी जिसमें कतार से अनगिनत कोठरियाँ बनी थीं। माधव के घर का समस्त कीमती सामान इन्हीं कोठरियों में पहुँच कर गायब हो गया था। जिन्हें इन स्थानों का पता न हो उनके लिए इन्हें ढूँढ़ना बहुत मुश्किल था। घर में रहने वाले अधिकांश लोगों को भी इनका पता न था।

माधव वैसे तो कोमल स्वभाव का था पर उसे झुकाया नहीं जा सकता था। एक बार जब उसे क्रोध चढ़ जाता, तब उस समय उसकी शक्ति और कार्यतत्परता में इतनी तेजी आ जाती थी कि उसका रूप देख कर डरपोक और अस्थिर चित्त वाले लोग भी सचेत हो उठते थे। इस समय वहाँ ऐसी भी स्त्रियों का अभाव न था जो एक हाथ से बच्चों को घसीटती हुई तथा दूसरे हाथ में बड़ी-बड़ी गठरियाँ संभाले झोपड़ियों में आश्रम लेने जा रहीं थीं। उनका ख्याल था कि डाकू इन झोपड़ियों की ओर न देखेंगे। पिछली रात जो दासी मालकिन के साथ घी के लिए झगड़ा कर रही थी वह सबसे पहले भाग खड़ी हुई और गत रात्रि की लड़ाई में जीत की जयमाला-स्वरूप वह घी की हांडी साथ ले जाता नहीं भूली।

आने वाले संकट का सामना करने को खड़े हुए सभी लोग घबराए हुए थे और डाकुओं के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। चन्द्रमा अस्त सो चुका था। अब माधव को मातंगिनी की खबर पर थोड़ी शंका होने लगी। यह शंका स्थायी हो इसके पहले ही एक आदमी ने आकर खबर दी कि उसने पुरानी बाग की ओर रोशनी देखी है। मातंगिनी जिस आम के बाग में डाकुओं से घिर गई थी उसे ही पुरानी बाग कहते हैं। उसी आदमी ने यह भी बताया कि उसने बाग के पास तक जा कर खुद देखा है कि वहाँ कई लोग सशस्त्र खड़े हैं। उसने स्वामि-भक्ति दिखाते हुए कहा, 'मालिक, आप यदि आज्ञा दें तो हम उन पर वहीं जाकर पहले से ही लाठियों से हमला कर दें ?'

माधव ने कहा, 'नहीं, भूपसिंह, इसकी जरूरत नहीं है। वहाँ तुम लोग उनसे मात खा जाओगे। और यदि लोग उधर चले गए तो घर पर कौन रहेगा ? शायद उनकी और टोलियाँ भी इधर-उधर छिपी हों ?'

'जैसी आप की आज्ञा, मालिक !'

'हाँ, एक काम और करो। तुम सब मिल कर एक साथ आवाज दो। जोर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिल्लाओ, ताकि उन्हें पता चल जाए कि तुम सब भी तैयार हो।'

माधव के मुँह से यह बात निकलते ही वहाँ उपस्थित लोगों की प्रचंड हुँकार और तेज गर्जन से वायुमंडल गूँज उठा। घर के भीतर जो औरतें थीं वे यह शोर सुन कर काँपने लगीं। उन्होंने समझा कि अब संकट आने में अधिक देरी नहीं है। फिर उस गर्जन के बाद मौन छा गया।

माधव ने ललकारा, 'एक बार और।'

फिर वैसी ही भयानक गर्जन से रात काँप उठी। इस बार गर्जन की गूँज के समाप्त होने पर ही उस बाग से बहुत से लोगों की हृदय को दहलाने वाली आवाज आई जैसे रात के अंधेरे में भूत-प्रेत खुशी मना रहे हों।

माधव ने चीख कर कहा, 'और तेजी से आवाज लगाओ।'

माधव को डर था कि डाकुओं की चीख-पुकार सुन कर उसके आदमी कहीं डर न जाएँ या साहस न खो बैठें। माधव के आदमी मालिक की आज्ञा पा कर पूरी शक्ति से चिल्लाने लगे। इस बार भी उन्हें पुरानी बाग से उत्तर मिला। लेकिन इस बार तीव्र अर्न्तनाद न होकर, भाग रहे डाकुओं की हल्की आवाज थी।

अब माधव के आदमी कहने लगे, 'मालिक, वे सब भाग रहे हैं। यह उनके भागने की आवाज है।'

माधव बोला, 'भले ही यह भागने का शब्द हो, पर तुम लोग पूरी मुस्तैदी और होशियारी के खड़े रहो, डटे रहो।'

माधव अपने आदमियों के साथ बहुत देर तक खड़ा रहा, लेकिन फिर कोई न आया। माधव ने रात भर सतर्कतापूर्वक पहरा देने और जगे रहने की आज्ञा अपने आदमियों को दी। फिर माधव घर के भीतर चला गया, उस साहसी महिला को धन्यवाद देने जिसने आकर उसे इस विपत्ति से बचाया था।

१९

अपनी पत्नी और साली को देखकर माधव ने मातंगिनी को संबोधित कर के कहा, 'तुमने मेरे साथ जो उपकार किया है, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।'

संकट टल जाने से हेमांगिनी के दिल पर से बड़ा बोझ उतर गया था। वह इस समय मातंगिनी और माधव को अकेला छोड़कर किसी काम के बहाने बाहर चली गई। माधव ने फिर कहा, 'तुमने जो किया है उसे मैं कभी भूल नहीं सकता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
माधव कृतज्ञता का जो भाव शब्दों से व्यक्त नहीं कर पा रहा था, वह उसकी आँखें प्रकट कर रही थीं। मातंगिनी बोली, 'न भूल सको तो उसे हेम के लिए मन में रख लो। ईश्वर न करे, पर यदि तुम कभी उस पर नाराज हो जाओ तो उसकी बहन की आज की यह मंत्रणा याद कर के उसे क्षमा कर देना। जहाँ तक मेरी बात है, मुझे तो यह कर्तव्य निभाना ही था। खैर, छोड़ो इस बात को, अब मैं जाऊँगी।'

माधव ने तत्काल ही उत्तर दिया, 'यह नहीं हो सकता, दीदी। कितने ही दिनों बाद हेम से तुम्हारी भेंट हुई है। और कुछ समय तुम्हारे साथ रहने को मिलेगा तो वह प्रसन्न होगी। यदि तुम एक दो दिन न भी ठहर सको तो कम से कम सवेरे तक तो ठहरो ही। सवेरा होने पर मैं तुम्हें पालकी से भिजवा दूँगा। इतनी रात में घर जाने की क्या जरूरत है?'

मातंगिनी ने दुखी स्वर में कहा, 'किस्मत की बात है। इतना सुख मेरे भाग्य में नहीं है। मुझे जाना ही होगा।'

माधव ने पूछा, 'क्या बात है दीदी? क्या मुझसे बताने में कुछ आपत्ति है?'

लज्जा और दुख भरे शब्दों में मातंगिनी केवल इतना कह सकी, 'तुम्हें तो मालूम ही है कि मेरे यहाँ रहने से वे चिढ़ते हैं, नाराज होते हैं।'

माधव बोला, 'बहन के घर रहने से चिढ़ेंगे, नाराज होंगे? क्या तुम बता कर आई हो, या वह जानते हैं कि तुम कहाँ हो?'

'वे नहीं जानते। मैं बता कर भी नहीं आई। न ही उन्हें मालूम है कि मैं कहाँ हूँ।'

'बड़ी हैरानी की बात है! मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता। तब फिर तुम आईं किस तरह? जब तुम घर से चलीं, तब वे कहाँ थे?'

'यह सब बातें मुझसे मत पूछो।'

मातंगिनी का यह उत्तर सुन कर माधव के मन में शंका पैदा हो गई। लेकिन शंका को मन से टाल कर वह कुछ और सोचता रहा। मातंगिनी की काली पुतलियों वाली बड़ी-बड़ी विषादपूर्ण आँखें माधव के मुख पर एकटक टिकी रहीं। अन्त में वह कह उठीं, 'अब रुकने से कोई लाभ नहीं है। अब मैं जाती हूँ। करुणा को मेरे संग भेज दो।'

फिर क्षण भर बाद मातंगिनी एकाएक घबराकर चंचल हो उठी। भारी आवाज से बोली, 'अब जाती हूँ। माधव, जाती हूँ, तुम सुखी रहो।'

माधव चौंक उठा, 'तुम रो रही हो दीदी?'

मातंगिनी कोई उत्तर न देकर सचमुच रो पड़ी। फिर एकाएक जैसे अपने हृदय की पीड़ा से तड़प कर उसने माधव का हाथ अपने हाथ में ले कर दबाया और अपना कमल जैसा चेहरा हाथों के पास झुका दिया। मातंगिनी के पवित्र ललाट के कोमल कुंचित केशों के स्पर्श से माधव पर नशा सा छा गया और साथ ही वह घबरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उठा। मातंगिनी के आँसुओं की धारा से माधव के दोनों हाथ भीग गए।

मातंगिनी जैसे आवेश में आ गई और बोली, 'मुझसे घृणा मत करना माधव।' कहते हुए आवेग की तीव्रता से उसकी कोमल देहलता काँपने सी लगी। वह फिर बोली, 'मेरी इस चरम दुर्बलता के लिए घृणा से मुँह मत फेर लेना माधव, शायद क्या, निश्चय ही यह हमारी अन्तिम भेंट है। इसीलिए अंतिम भेंट की इस आखिरी घड़ी में कहती हूँ कि मैंने तुम्हें दिल से चाहा है। इसलिए तुमसे चिरकाल के लिए विदाई लेने में मुझे सचमुच दुख का अनुभव हो रहा है।'

मातंगिनी की इस भावुकता व कमजोरी को देख कर भी माधव उसका तिरस्कार न कर सका। वह दोनों हाथों से मुँह ढाँपे बैठा रहा। आँसुओं से उसके हाथ भींग गए। थोड़ी देर के लिए दोनों चुप रहे। दोनों के दिलों की धड़कनों की आवाज साफ सुनाई दे रही थी। मातंगिनी को जैसे ही थोड़ी होश आई तो उसे अपने को सम्हालने में ज्यादा देरी न लगी।

मातंगिनी ने सोचा—वह दूर-दूर रहना, वह लाज, वह हृदय का दुख, वह हृदय की चीख-पुकार, जो सब पहले उस पर छाया हुआ था, न जाने कहाँ गायब हो गया। उसके गहरे और असीम प्रेम की अधीरता भी प्रकट हो गई। वह शांत और हैरान सी खड़ी रही। उसका केवल स्वाभाविक रूप से उदास रहने वाला चेहरा एक अव्यक्त भाव के आवेग से उज्ज्वल दिखाई देने लगा।

उसके कोमल अंगों में समाई हुई एक मीठी मौन गम्भीरता ने उसे उलझा रखा था। लेकिन यह गम्भीरता खुशी की सूचक न थी। कारण कि हृदय के आवेग से तेज बाढ़ उसे एक ऐसी जगह बहा कर ले कर गई थी, जहाँ वर्तमान के क्षणिक सुख के पागलपन में न्याय-अन्याय का बोध नहीं रह जाता। निकटतम वर्तमान के अलावा और कुछ नहीं सूझता। मातंगिनी सिर्फ माधव की निकटता का उपभोग कर रही थी। माधव के हाथ पर उसने जो इतने दिनों के रुके आँसू उँडेल दिए थे, यही, उसके लिए बहुत काफी था। माधव ने भी तो उसके साथ आँसू बहाए थे। इसी विचार ने इस समय उसके मन को भर रखा था। क्षण भर के लिए कलंकित खुशी में उसका मन तैरने लगा। उसकी उज्ज्वलता पर कर्तव्य, धर्म तथा नीति अपनी काली छाया नहीं डाल सके, यानी क्षणभर के लिए माधव से मिलने पर, यद्यपि यह उसके लिए उचित न था, वह कर्तव्य, नीति, धर्म आदि सब कुछ भूल गई थी। मातंगिनी की प्यासी आँखों में एक ज्वाला थी, उसके चाँद जैसे चेहरे पर एक प्रकाश था। जब वह अपनी सुडौल बाहों को सोफे पर झुकाकर खड़ी थी, तो उसका सुगठित माथा उसके करतल के ऊपर रखा था। उसके हाथों तथा उभड़ते हुए वक्षस्थल के ऊपर उसके काले-काले चमकीले बाल बिखरे पड़े थे। उस समय माधव को यही लगा था कि इस नारी से बढ़कर आँखों को चकाचौंध कर देने वाली सौंदर्य की मूर्ति संसार में देखने को और कहाँ मिलेगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधव ने जोश में काँपते हुए दुखी स्वर में कहा, 'मैंने कभी सोचा भी न था कि मेरी यह पुकार कभी मनुष्य के कान में भी पड़ सकेगी। पर मैं इसे दबा कर या छिपा कर रख न सका। मैं खुद भी तहीं जानता कि मेरे मन में क्या है?'

मातंगिनी के प्रेम-निवेदन करने के बाद माधव पहली बार बोला था। उसने आगे कहा, 'मातंगिनी, मैंने सोचा था कि तुम साधारण रूप में सहज ही बिदा हो जाओगी। पर, तुमने यह क्या किया?'

कहते-कहते माधव की आँखों से आँसू बह निकले। उसी स्थिति में वह कहता गया, 'मैं सब जानता हूँ, तुमने बहुत कुछ सहा है, बहुत त्याग किया है। एक बार और अन्तिम प्रयत्न करके देखो। अपने पवित्र हृदय से यह विचार निकाल दो और सब भूल जाओ।'

मातंगिनी बोली, 'नहीं, नहीं, तुम कुछ मत कहो।'

यह कहते हुए मातंगिनी ने जैसे अपने आप ही अपनी बात का प्रतिवाद करने की कोशिश की। उमड़ते हुए आँसुओं को सिर झुका कर छिपाने की कोशिश करती हुई बोली, 'माधव, तुम मुझे गालियाँ दो, धिक्कारो, दुत्कारो, ताकि मुझे समझ आए। मैं पापिन हूँ। मैंने पाप किया है। इस पाप से लिए मैं अपने भगवान के सामने अपराधिनी हूँ। और इस धरती पर जो मेरा ईश्वर है, उसके और तुम्हारे सामने भी मैं अपराधिनी बन चुकी हूँ। मैं अपने आपसे जितनी घृणा करती हूँ, उतनी तुम मुझसे कभी न कर सकोगे। ईश्वर साक्षी है, इतने दिनों तक मैंने कितना कुछ सहा है। अगर मैं छाती चीर कर दिखा सकती तो तुम देखते कि मेरे भीतर क्या हो रहा है?'

माधव फिर रो पड़ा। रोते-रोते बोला, 'मातंगिनी···प्रिये···' इसके आगे वह बोल न पाया। ऊसका गला भर आया।

मातंगिनी आवेश में बोली, 'कहो, कहो माधव! फिर कहो! जिस बात को सुनने के लिए मैं इतने दिनों से आतुर प्रतीक्षा कर रही थी, उसे एक बार फिर कहो। क्या तुम मुझे अभी भी वैसा ही प्यार करते हों? सिर्फ एक बार फिर यही कहो, सुन कर मैं परम प्रसन्नता से आज रात ही मृत्यु को अंगीकार कर लूँगी।'

अपने को सम्हालने की व्यर्थ कोशिश करते हुए माधव ने कहा, 'सुनो, मातंगिनी! मुझे क्षमा कर दो। यह भयानक कष्ट अब मुझसे और नहीं सहा जाता। मेरे हृदय में यह आग तुम्हारे घर में ही लगी थी। लगता है कि हम दोनों को ही इसमें जल कर मरना होगा। जब यह आग लगी थी, तब हम छोटे थे, लेकिन अब प्रयत्न करके भी इसे नहीं बुझाया जा सकता। उस समय ही हम जब अपने कर्तव्य-मार्ग से नहीं डगमगाए, तब अब तो बहुत दिनों तक यंत्रणा सहने के बाद हमारा हृदय ही पत्थर बन चुका है। अब भला हम क्या गलती करेंगे? मन से अब इस पाप को निकाल फेंको, मातंगिनी। आओ, हम लोग एक दूसरे को भूल जाएँ। एक दूसरे से दूर-दूर रहें।'

माधव ने इतना कहने के बाद एक लम्बी साँस छोड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातंगिनी सीधी खड़ी हो गई। उसके शरीर में एक नए रूप की आभा दिखाई पड़ी। अपने मन के साथ कठिन संघर्ष करती हुई वह बोली, 'यदि ऐसा ही होना चाहिए तो ऐसा ही होगा। मनुष्य का मन यदि कोशिश करने से भूल सकता है तो ऐसा ही होगा। मैं तुम्हें भूल जाऊँगी। आओ, हम एक दूसरे से सदा के लिए बिदा हो जाएँ।''

माधव ने लक्ष्य किया कि मातंगिनी के स्वर में एक भयानक शांति का भाव प्रकट हो रहा था। लेकिन काफी प्रयत्न करके भी मातंगिनी अपने आँसूओं को रोक न सकी। माथे के आँचल को उसने और थोड़ा सा आगे खींचकर उन आँसुओं को माधव की नजरों से छिपाना चाहा और दूसरे ही क्षण वह तेजी से कमरे बाहर चली गई।

| १० |

सबेरा होने में अभी भी एक घण्टा बाकी था। अपने मन में दुख का बोझ लादे मातंगिनी धीमी चाल से उसी जंगल की राह वापस लौट पड़ी। करुणा चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल रही थी। उस समय आधा आकाश बादलों से ढँका था। गहरे काले-काले बादल आकाश में तैर रहे थे। उनकी छाया में पेड़ों की टहनियाँ भी गहरी काली दिखाई पड़ रही थीं। घोर अंधकार के कारण काले दिखाई पड़ने वाले जंगल के ऊपर भटकी हुई सी चंचल हवा बीच-बीच में एक अशुभ आर्त्तविलाप का-सा शब्द उत्पन्न कर रही थी। मातंगिनी अपनी ही चिन्ता में इस तरह डूबी थी कि उसे बाहरी प्रकृति का भयानक रूप देखने का अवकाश ही न था। वह सिर्फ यही अनुभव कर रही थी कि बाहरी प्रकृति भी उसी की तरह दुख के भार से दबी हुई है। अत्यन्त दुखी होने पर भी मिलन की सुखद याद से उसका मन भर गया था। घर पहुंचने पर घर के लोग उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे, शायद डाँटेंगे, धमकाएँगे। उसके पति को यदि इस घटना का पता लग गया तब उस पर कितना कष्ट ढाया जाय गा। इन चिन्ताओं की काली छाया भी मिलन के उस दृश्य को मिटा नहीं सकी। मिलन और उसकी स्मृति ही उसकी आँखों के सामने चमक-चमक कर खिल उठती थी। वह माधव को वचन दे आई है कि वह माधव को भूल जाएगी। लेकिन माधव की दृष्टि से ओझल होते ही सब से पहले वह उसी की स्मृति में खो सी गई। माधव के मुँह से निकला एक-एक शब्द याद करके वह एक अनोखा सपना सजाने लगी। माधव के आँसुओं की याद उसे पागल बनाने लगी। साथ ही हर क्षण मन के इस पागलपन को हटाने का प्रयत्न करती और अपने मानसिक पाप की याद करके वह बारम्बार व्याकुल हो उठती। वास्तविकता यह थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कि वह मनुष्य और देवता दोनों के सम्मुख घृणा का पात्र बन गई है—यही सोच कर वह दुखी हो जाती।

बाह्य और अन्तर के संघर्ष के बीच जूझती हुई जब वह आगे बढ़ रही थी तभी अचानक सारा आकाश काले बादलों से घिर गया। यह देख कर दोनों ही स्त्रियों ने यह जान लिया कि भयानक आँधी आने में अब अधिक देर नहीं है। रास्ते के एकान्त मौन का तोड़ कर करुणा दासी ने कहा, 'मालकिन, जल्दी चलिए, आँधी आने वाली है। उसके पहले ही हमें घर पहुँच जाना चाहिए।'

मातंगिनी ने कसा, 'हाँ चलो।'

करुणा ने भी चाल तेज कर दी। उसकी देखा देखी मातंगिनी भी तेज कदम चलने लगी। कुछ आगे जाने पर करुणा ने कहा, 'यह देखो, पेड़ों की पत्तियों पर बूँदें गिरनी शुरू हो गईं।'

सुन कर मातंगिनी ने जैसे किसी स्वप्नलोक से जाग कर मात्र इतना ही पूछा, 'क्या कहा ? बूँदें गिरने लगीं ?' फिर थोड़ा सा ठिठक कर खड़ी होती हुई उसने बूँदों के गिरने के शब्द को सुनना चाहा। तभी चौंक कर मातंगिनी ने कहा, 'नहीं, यह तो किसी के पैरों की आवाज है।'

करुणा बोली, 'हो सकता है।'

मातंगिनी ने फिर कहा, 'ऐसा लगता है कि कुछ लोग एक साथ सूखे हुए पत्तों को कुचलते हुए इधर ही आ रहे हैं।'

करुणा सुनते ही चीख पड़ी। अपनी चाल की गति और तेज़ करती हुई उसने कहा, 'हाँ मालकिन !'

करुणा डर गई कि देर होने से इधर उधर घूम रहे डाकुओं के हाथ में कहीं वह पड़ न जाए।

लेकिन दोनों ही औरतों को ज्यादा भयभीन नहीं होना पड़ा। बिजली की कड़क के साथ ही वर्षा की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरनी शुरू हो गईं। करुणा बोली, 'लगता है कि आज बरसात से भीग कर ही जाना होगा। पेड़ के नीचे खड़े होकर बचने का प्रयत्न करना ठीक नहीं होगा।'

मातंगिनी बोली, 'अच्छा चल !'

राह में एक बहुत घना इमली का पेड़ था। उसी के नीचे आश्रम लेने के लिए मातंगिनी उसी ओर बढ़ी। तभी अचानक बिजली कड़की। बिजली के क्षणिक प्रकाश में उसने एक आदमी को पेड़ के नीचे खड़ा देखा। डर के मारे करुणा चीख उठी, 'भागो, भागो !' और मातंगिनी से उत्तर पाने की प्रतीक्षा किए बिना ही उसने मातंगिनी का हाथ पकड़ कर उसे घसीटती हुई उसके घर की ओर भागी। उस आँधी-पानी में भागते हुए भी वह' भागो 'भागो' कहती रही। जब तक मातंगिनी अपने घर के दरवाजे तक पहुँच न गई करुणा उसे घसीटते हुए भागती रही। घर ज्यादा दूर न रह गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दोनों ही थोड़ी देर में घर पहुँच गईं।

घर आने पर मातंगिनी ने कहा, 'अब तू लौट जा करुणा! इतनी रात को तुझे अकेले लौट जाने को कहना उचित नहीं है, लेकिन यदि तू यहां रहेगी तो मुसीबत में फँसने का डर है। बल्कि तू एक काम कर। पड़ोस में कनक के पास चली जा। उसी के बरामदे में सो रहना। उजाला होने तथा पानी-आँधी रुकने पर, किसी आदमी के जागने से पहले ही तू चली जाना।'

इतना कह कर मातंगिनी सोने के कमरे की ओर दरवाजा खोलने को बढ़ी। करुणा चली गई। मातंगिनी ने देखा कि दरवाजे का हुड़का अभी वैसे ही बंद है जैसा वह बन्द कर के गई थी। जाने के पूर्व मातंगिनी ने जिस ढंग से दरवाजे का हुड़का खोला था, उसी यत्न से द्वार खोल कर धह भीतर गई। फिर दरवाजा बंद करने के लिए ज्यों ही उसने पलट कर देखा तो पाया कि उसके पीछे-पीछे आकर एक आदमी ने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। पैरों की आहट और चलने के ढ़ग से मातंगिनी को पहचानते देर न लगी कि यह और कोई नहीं, उसी का राक्षस प्रवृत्ति वाला पति है।'

राजमोहन कुछ बोला नहीं। उसने चुपचाप चकमक पत्थर की रगड़ से आग निकाल कर दिए को जलाया और उसे ठीक स्थान पर रख दिया। इसके बाद भी वह चुप ही रहा। बस वह बिछे हुए तख्त के एक सिरे पर बैठ कर मातंगिनी को एकटक ताकने लगा। उसकी इस दृष्टि को देख कर मातंगिनी तत्काल समझ गई कि उसके भाग्य में आज क्या लिखा है। लेकिन डर से भयातुर न होकर वह बड़े गर्व से सीधी खड़ी रही। इस समय भी उसके शरीर में वही साहस आ गया था जिसे देख कर इसके पहले उसका पति खुद डर गया था। बाहर तेज आँधी-पानी घर के भीतर की शांति को भंग कर रही थी। थोड़ी देर चुप रहने के बाद जब चुप्पी असह्य हो उठी तब राजमोहन ही खामोशी तोड़ कर बोला, 'अभागी!'

मातंगिनी ने सुना, लेकिन उसके तेज स्वर में सदा स्पष्ट रहने वाली कठोरता और रूखापन का आज सर्वथा अभाव था। राजमोहन ने फिर कहा, 'अभागी, अपने यार के पास गई थी?'

मातंगिनी ने जवाब न दिया। तब क्रोध से धरती पर पाँव पटक कर राजमोहन ने कहा, 'बोल, जवाब तो दे!'

तब मातंगिनी ने अभिमान से कहा, 'इन सब बातों का मैं कोई उत्तर न दूँगी।'

सुन कर राजमोहन जैसे पागल हो उठा, दाँत पीस कर बोला, 'जवाब नहीं देगी, हरामजादी?'

फिर क्षण भर में अपने को सम्हालकर उसने पूछा, 'आज रात को माधव के घर गई थी या नहीं?'

माधव का नाम सुनते ही मातंगिनी का भाव बदल गया। एकाएक उत्तेजित होकर दृढ़ शब्दों में वह बोली, 'हाँ गई थी। तुमलोग उसके घर डाका डालने गए थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी से मैं उसे बचाने गई थी।'

राजमोहन दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर उछल पड़ा। बोला, 'देख री, तू मुझे धोखा नहीं दे सकती! समझी, तुझे कहीं मालूम कि मैं किस तरह तुझ पर नजर रखता आ रहा हूँ। यह तेरा रूप तेरे लिए अभिशाप बन गया है। मैंने एक मिनट के लिए भी तुझे अपनी नजरों से दूर नहीं रहने दिया है। तू यह मत समझना कि मुझे तेरी हरकतों का पता नहीं हैं।'

फिर कुछ शांत होकर कहने लगा, 'मैं जानवर भले ही होऊँ, मुझमें इन्सानियत नाम की चीज भले ही न हो, फिर भी मुझे यह गर्व था कि मैं एक परम रूपवती स्त्री का पति हूँ। बाघिन जिस तरह अपने बच्चे की ताक लगाए रहती है और उसे आँखों से ओझल नहीं होने देती, उसी तरह मैंने भी हर पल, हमेशा, तुम्हारा ध्यान रखा है। मैं क्या यह नहीं जानता कि जवान होने से पहले ही तू इस अभागे के प्रेम में फँस गई थी? मुझे सब पता है। तेरे सभी पापों का मुझे पता है। अभी शाम को ही तो उस वेश्या—राँड़ (कनक)—अपनी सखी की मीठी-मीठी बातों में आकर किसी से पूछे बिना जब तू घर से बाहर गई थी तब भी मैं तेरा पीछा कर रहा था। तेरी हर हरकत पर मेरी नजर थी। बोल न, तू उसके साथ गई थी या नहीं? और बाग के पास पहुँच कर, जानबूझ कर मन में पाप रख कर तूने अपना घूँघट खोल दिया था या नहीं?···कि आज रात को यार से आँखें चार होंगी—तेरी आँखें शीतल होंगी, यही चाहती थी न तू! लेकिन मैं बराबर तेरा पीछा करता रहा। अफसोस कि कुछ देरी के लिए तू मेरी आंखों से छिप गई। हाय, यह मैंने क्या किया? थोड़ा और सावधानी रखता तो ऐसा न होता। लौट कर घर मैं देखा, तू यहाँ न थी। तब क्या मुझे समझने में देर लगी कि किस साँप के बिल में पाप का कीड़ा जा घुसा है? उन लोगों (माधव) के खिड़की के द्वार से ही मैं पीछे-पीछे पास-पास ही चलता रहा और फिर आँधी-पानी में तेरा पीछा करता आ रहा हूँ। तू पागल हो गई है और अब मैं तुझे जीने न दूँगा। मैंने छुरा तेज कर लिया है और आज ही रात तेरे प्राण ले लूँगा।'

फिर राजमोहन चुप हो गया पर उसकी आँखों से बराबर खून टपकता रहा।

स्थिर निश्चल खड़ी मातंगिनी के शरीर की ओर आँख उठा कर मानों राजमोहन अंतिम बार देख रहा था! इस क्षणिक सन्नाटे में बाहर आँधी का भयानक हाहाकार सुनाई देता रहा। मातंगिनी ने मन ही मन कुछ निश्चय किया। मानों अपनी जान पर खेल जाने का वह निश्चय कर चुकी थी। अन्त में वह बोली, 'तुम ठीक ही कहते हो। मैं उसे प्यार करती हूँ। उससे मुझे असीम प्यार है। अब यह भी तुम्हें बता देती हूँ कि मैं पागल हो गयी थी, मैं अपने को सम्हाल नहीं सकी। उसी प्रेम के आनन्द में·····तुम मेरी हालत नहीं समझ सकते!···मेरे मुँह से कुछ बातें निकल गई, बस इतना ही। मेरी बातों परक्या तुम्हें विश्वास होता है?'

राजमोहन उठ कर खड़ा हो गया और बोला, 'नहीं! मैं तुझे मार डालूँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना कहते-कहते उसने कपड़े में लिपटी हुई कटारी कमर से निकाल ली।

'माँ···माँ···बापू···कहाँ हो···?' मात्र इतने ही शब्द हतभागी मातंगिनी के मुँह से निकले और वह बेहोश हो गई। पाषाण-हृदय राजमोहन के हाथ की कटारी उसके सिर पर चमकने लगी। लगता था कि वह काँप रही कटारी मातंगिनी की छाती में अब घुसी, अब घुसी।

कि अचानक एक घटना के कारण इस दुर्घटना या हत्याकाण्ड में रुकावट आ गई।

कमरे की खिड़की पर अचानक एक भयानक शब्द सुनाई पड़ा। कारण जानने को राजमोहन ने मुड़ कर उस ओर देखा। तभी खिड़की खुल गई और उसी रास्ते से दो काले-काले पहलवान से दिखने वाले आदमी एक के बाद एक कोठरी में कूद आए। वर्षा के कारण उनका शरीर गीला था और कीचड़ से सना था। उनकी लाल-लाल आँखों से जैसे आग के शोले फूट रहे थे।

| ११ |

आने वालों में से एक ने कहा, 'अरे चमार! क्या औरत का खून करेगा?'

वह आदमी खुद भी किसी अच्छे इरादे से न आया था, यह तो उसकी शक्ल देख कर ही जाना जा सकता था। उसके हाथ का बड़ा छुरा भी एक बार बिजली कौंधने से चमक उठा।

गरज कर राजमोहन उन आगन्तुकों की ओर लपका और बोला, 'कौन हो तुम लोग? मेरे ही घर में डाका!'

राजमोहन के हाथ की कटारी तेजी से घूमने लगी।

व्यंग्यपूर्वक हँस कर आगन्तुकों में से एक ने कहा, "धीरे-धीरे बोलो। गोलमाल मत करो। तुम्हारे घर के लोग जाग उठेंगे। हम डाकू नहीं हैं, दोस्त! जरा गौर से पहचानो तक पता लग जाएगा।'

फिर उसने मातंगिनी को लक्ष्य करके कहा, 'अरे बच्ची, जरा दिया इधर तो ले आ। देखें तुम्हारे पति देवता अपने साथियों को रोशनी में देख कर भी पहचानते हैं या नहीं?'

उस समय मातंगिनी पूरी तरह बेहोश तो न थी, फिर भी उसमें उठ कर कुछ करने की शक्ति न थी। वह अधमरी-सी पड़ी रही। उसके जीवन पर हमला और यह अप्रत्याशित बाधा, दोनों की आकस्मितता ने उसे जड़ बना दिया था। राजमोहन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कड़क कर कहा, 'साथी हो या शत्रु, मेरे घर से निकल जाओ।'

इतना सुनते ही दुःसाहसी आगन्तुक के मुख पर पैशाचिक हँसी छा गई। उसने कहा, 'और तुम निश्चिंत होकर अपनी पत्नी की हत्या कर डालो!'

राजमोहन पागलों की तरह गरज उठा, 'मेरा जो मन होगा करूँगा। तुम मुझे रोकने वाले कौन हो?'

इतना कह कर राजमोहन ने उछल कर आने वाले की छाती में कटारी घुसेड़ना चाहा। लेकिन आगन्तुक फुर्ती से हट गया और बच गया। फिर उसने राजमोहन के हाथ की कटार को उल्टी ओर इतनी जोर से चोट की कि राजमोहन के हाथ से छिटक कर वह दूर जा गिरी। और देखते ही देखते आगन्तुक ने पलक मारते ही लपक कर मुट्ठी में राजमोहन का हाथ पकड़ लिया। उसका साथी अभी तक चुपचाप खड़ा था। उसने अपने साथी से कहा, 'भीखू, दिया इधर उठा और इसे चेहरा दिखा दे। भैया राजू, यह मुखचन्द्र है बाबा! तुम्हारी पत्नी यह मुख देख कर प्रसन्न होगी।'

भीखू ने आदेशानुसार दिया लाकर सामने कर दिया। राजमोहन चिल्ला उठा, 'सरदार!'

आगन्तुक ने कहा, 'हाँ सरदार! चलो तुमने पहचाना तो! दोस्त क्या इतनी जल्दी दोस्ती भूल जाते हैं?'

लेकिन इतने से राजमोहन का क्रोध शांत न हुआ। उसने कहा, 'तुम यहाँ क्यों आए हो? मेरे घर में इस तरह हमला करने का भला क्या अर्थ है?'

सरदार ने पूछा, 'पहले तुम यह बताओ कि तुम अपनी पत्नी की हत्या क्यों कर रहे थे?'

'इससे तुम्हें क्या मतलब? तुम यह पूछने वाले कौन होते हो? देखो, भलाई इसी में है कि चुपचाप यहाँ से चले जाओ। सरदार-वरदार को मैं कुछ नहीं जानता। सीधे से नहीं जाओगे तो लात मार कर निकाल दूँगा।'

सरदार ने हँस कर कहा, 'तुम तो मेरी मुट्ठी में हो, फिर लात कौन मारेगा?'

'मेरे पैर अभी भी बँधे नहीं हैं।' राजमोहन ने क्रोध से तमतमा कर चीखते हुए अपने प्रतिद्वन्द्वी को इतनी जोर से लात मारा कि लोहे जैसा मजबूत शरीर होने पर भी डाकू-सरदार कई पग पीछे हट गया और साथ ही साथ राजमोहन का हाथ भी उसकी पकड़ से छूट गया।

हाथ छूटते ही राजमोहन अपनी कटारी उठाने को उस ओर लपका। यह देख सरदार ने कहा, 'भीखू इसे बाँध ले।'

आज्ञा पाते ही भीखू के मजबूत हाथों ने राजमोहन को पकड़ कर धरती पर पटक दिया और सरदार भी बाघ की तरह झपट कर राजमोहन की छाती पट चढ़ बैठा। उधर भीखू ने मातंगिनी के कपड़े टाँगने की अलगनी खोल कर उसी से राजमोहन के हाथ बाँध दिए। तब सरदार ने कहा, 'दगाबाज, अब तो तेरे प्राण मेरे हाथ में है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमोहन बोला, 'सो तो देख ही रहा हूँ। तुम दो जने हो और मैं अकेला। लेकिन यह तो बताओ कि मैंने क्या किया है जो तुम लोग मुझसे ऐसा व्यवहार कर रहे हो ?'

सरदार ने कहा, 'पूछते हो कि क्या किया है ? दगा किया है, विश्वासघात किया है। अपने साढ़ू को बचाने के लिए क्यों पहले ही उसे खबर नहीं पहुँचा दी ? चुगलखोर, दगाबाज कहीं का !'

क्षण भर चुप रह कर आँखो से आग उगलते हुए सरदार ने कहा, 'तुमने ही खबर दी है। तुम्हीं को मरना होगा।'

'मैंने ? मैंने खबर दी है ?'

'लगता है जैसे कुछ जानते ही नहीं हो ! तुमने नहीं तो और किसने खबर दी ? यह मेरी भूल थी कि मैंने यह विश्वास किया कि तुम अपने साढ़ू के खिलाफ हमारी सहायता करोगे। तुम भी कम चालक नहीं हो। हम लोगों के सामने माधव के खिलाफ तुम्हारी बातें सुन कर हमने सच मान लिया था।'

'सच कहता हूँ, मैंने खबर नहीं दी।' राजमोहन ने कहा। वह डाकू-सरदार की निष्ठुर प्रकृति से अच्छी तरह परिचित था, इसीलिए उसे अपने प्राण जाने का डर लगने लगा। राजमोहन ने फिर जोर देकर कहा, 'विश्वास करो सरदार ! मैंने यह काम नहीं किया। तुम खुद सोच कर देखो, मैं तो तुम लोगों के साथ ही घर से गया था और लौटने तक बारबार तुम लोगों के साथ ही था। एक मिनट के लिए भी तुमसे अलग नहीं हुआ।'

'बस, बस, रहने दो। अब तुम्हारी चालाकी न चलेगी। तुमने क्या मुझे बिल्कुल बच्चा ही समझ लिया है ? इसी दीवार के पास मुझसे बातें करते समय क्या यह कह कर तुम अन्दर नहीं गए कि देख आऊँ कि पत्नी ठीक से सो रही है या नहीं ? क्या मैं इतना भी नहीं समझता कि तुमने अपनी औरत को सिखाकर उसी के हाथ खबर भेजी है ! कह दो कि यह भी झूठ है। उससे खबर नहीं भेजी तो भला खबर देने कौन गया ?'

'यह मैं मानता हूँ मुझसे छिपा कर उसी ने अपने बहनोई को खबर पहुँचाई है। मैं जब उसे देखने कोठरी में गया तो विश्वास करो कि वह सो रही थी। इसके लिए जो भी कसम खाने को कहो मैं तैयार हूँ।'

सरदार ने बड़ी रुखाई से कहा, 'अब तक बहुत झूठ बोल चुके। बस अब रहने दो। अच्छा, अगर तुम्हारी नियत खराब नहीं थी तो माधव घोष के घर से हल्ला सुन कर सबसे पहले तुम्हीं क्यों भाग गए थे ? दरअसल बात यह थी कि तुम्हारा मतलब हल हो चुका था, फिर तुम्हें वहाँ रुकने की क्या पड़ी थी ? देखो दोस्त, मेरे बाल सफेद हो चुके हैं, इतनी जल्दी तुम मुझे नहीं बना सकते ! समझे ! बस, अब, मरने के लिए तैयार हो जाओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमोहन का दम जैसे घुटने लगा था। साँस लेना भी उसे कठिन लग रहा था। सरदार अपने पहाड़ जैसे भारी शरीर से उस पर सवार था। यद्यपि राजमोहन भी सशक्त और मजबूत था फिर भी उस भारी बोझ को सम्हालना मुश्किल हो रहा था। घबरा कर वह चीख उठा, 'दोहाई है, मुझे छोड़ दो सरदार। मैं अपने देवता की कसम खा कर कहता हूँ कि मेरी जानकारी में माधव को खबर नहीं दी गई। मैं अपनी माँ की कसम खा कर कहता हूँ कि मुझे कुछ नहीं मालूम।'

सरदार ने कहा, 'तुम्हारी पत्नी ने फिर यह काम कैसे किया जब वह सो रही थी।' इतना कहते हुए सरदार उसकी छाती पर से उतर गया लेकिन अपने दोनों हाथ उसके गले से न हटाए ताकि जरूरत पड़ने पर आसानी से गला वह दबा सके।

राजमोहन ने विवशता से कहा, 'शायद वह सोने का बहाना कर के लेटी रही हो।'

'हाँ, हाँ, तुमने मुझे बेवकूफ ही समझ लिया है। मैंने जब तुमसे कहा था कि घर की दीवार से दूर हट कर सलाह की जाय, तब तुमने दीवार से सट कर खड़े होने को क्यों कहा था ? आज तुमने माधव घोष को खबर दी है, कौन जाने कल तुम पुलिस को भी हमारी खबर बता दो। माधव तो जरूर ही तुम्हें बचाने की कोशिश करेगा और जब तक तुम जिन्दा रहोगे हमारी खैर नहीं। भला इसी में है कि तुम्हारा कल्याण कर दिया जाय। और होता तो यह काम उसी समय हो जाता, लेकिन अफसोस, कि तुम हाथ से निकल चुके थे।'

'अच्छा, सरदार बताओ, अभी मेरे घर में घुस कर तुमने क्या देखा जिसे तुम कहते हो कि मैंने खबर देने को भेजा था, उसी का तो मैं खून करने को तैयार था तुम लोग न आ जाते तो अब तक यहाँ उसकी लाश ही पड़ी मिलती।'

'हूँ।' कहकर सरदार कुछ सोचने लगा जैसे वह कुछ कठिनाई में पड़ गया हो। वह अपने साथी का मुँह देखने लगा जैसे इशारे से उसकी राय जानना चाहता हो। भीखू ने कहा, 'हाँ सरदार, बात तो यह ठीक कहता है।'

राजमोहन का कलेजा भय से काँप रहा था। उसने कहा, 'जिसलिए तुम मुझे दोषी कहते हो, उसी के लिए तो मैं उसकी हत्या करने जा रहा था।'

एकाएक सरदार उछल कर खड़ा हो गया। फिर चिल्लाया, 'वह बदमाश कहाँ गई ? उसी का खून करूँगा।' राजमोहन की स्त्री को पकड़ने के लिए सरदार उसी ओर झपटा जहाँ उसे गिरा कर राजमोहन उसका खून करने वाला था। एक ओर काफी कपड़ों का बड़ा सा ढेर लगा था। वहाँ भी उसने हाथों से अच्छी तरह टटोल कर देखा। बुझ रहे दीपक की रोशनी में उसे कुछ भी दिखाई न पड़ा। सरदार चीखा, 'हरामजादी कहाँ गई ? सोचती है कि भाग जाएगी पर ऐसा नहीं हो सकता। वह चाहे जहाँ भी होगी, मैं खोज निकालूँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
राजमोहन की आवाज अब कुछ स्वाभाविक हो रही थी। उसने कहा, 'ठहरो ! मेरे अलावा और कोई मेरी स्त्री को हाथ नहीं लगा सकता। मुझे मुक्त कर दो।'

सरदार चिल्लाता हुआ कोटरी में घूम रहा था। शोर कर के उसने सिर पर आकाश उठा रखा था। उसने भीखू से कहा, 'इसे छोड़ दो, उस चुड़ैल को मैं अभी खोज निकालता हुँ। बच कर कहाँ जाएगी ?'

भीखू ने तलवार से राजमोहने को बाँधने वाली रस्सी खोल दी। सरदार ने एक ओर पड़े कपड़ों के ढेर को टटोल कर कहा, 'यहाँ तो नहीं है। ठहर छोकरी, जाएगी कहाँ?' पसीने से नहाया हुआ सरदार बिछौने के पास जाकर तलवार से उसी पर मनचाहे वार करने लगा। लेकिन मातंगिनी वहाँ कहाँ थी ?

सरदार ने कहा, 'भीखू, इधर ले आ दिया। कहीं तख्त के नीचे तो छिपी नहीं पड़ी है।'

राजमोहन भी भीखू के पीछे-पीछे आया। तीनों ने घुटने के बल बैठ कर तख्त के नीचे झाँका पर वहाँ भी मातंगिनी न थी।

दिया उठा करके लोग घर के कोने-कोने में झाँकते रहे, पर वह नहीं मिली। तभी राजमोहन की नजर दरवाजे की ओर गई। वह चिल्ला उठा, 'अरे दरवाजे की ओर तो देखो, खुला है न ? मैं जब भीतर आया था, तब भीतर से हुड़का लगा कर आया था। दुबारा भाग गई।'

मातंगिनी सचमुच भाग गई थी। राजमोहन और सरदार जब एक दूसरे की जान लेने में व्यस्त थे और किसी का भी ध्यान उसकी ओर न था तभी छिपती हुई, धीरे-धीरे चल कर वह किसी तरह दरवाजे तक पहुँच गई थी। फिर धीरे से दरवाजा खोल कर बाहर निकल गई थी। इन दोनों जानवरों को छोड़ कर और कोई एक बार भी मातंगिनी को देख पाता तो कभी न भूलता लेकिन इन दोनों ने ठीक से देखा भी नहीं था। दरवाजा खोलते या हुड़का हटाते समय यदि थोड़ी सी आवाज भी हुई होगी तो उस समय पशुवत जोश में लड़ रहे तीनों लोगों में से किसी ने भी सुना न था।

सरदार ने कहा, "उसे पकड़ना चाहिये। नहीं तो वह हमारा सर्वनाश कर देगी।"

राजमोहन बोला, "हाँ, हाँ, चलो। लेकिन होशियार, मेरी स्त्री के शरीर को कोई हाथ मत लगाना। चलो, चलो, आगे-आगे मैं ही चलता हूँ।"

तीनों आदमी तेजी से बाहर की ओर लपके। उस समय भी आकाश में बादल छाए थे। बूँदा-बूँदी भी हो रही थी। मातंगिनी को उन लोगों ने चारों ओर खोजा। सबेरा होने में भी अधिक देर न थी, समय कम रह गया था।

पहले तो राजमोहन ने कनक के घर जाकर बाहर से ही झाँकने का विचार किया। राजमोहन और सरदार चुपके से कनक के घर तक गए। फिर चबूतरे पर चढ़-कर झाँकी उठाकर नजर फेंकी। अधिक उजाला न होने पर भी यही लग रहा था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ माँ बेटी ही वहाँ सो रही हैं।

फिर आस पास के झाड़-झंखाड़ में खोजा गया पर मांतगिनी का कहीं पता न चला। पौ फटने का समय होते ही डाकू—सरदार ने और ज्यादा देर बाहर रहना ठीक नहीं समझा। अतः दोनों एक दूसरे से विदा हो गए। जाते समय सरदार ने कहा, "अगर कल राजमोहन न आया तो....."

और वाक्य समाप्त करने के स्थान पर उसने एक फूहड़ और गन्दी सी कसम खा ली।

| १२ |

बरसात से नहाया हुआ गीला सवेरा, हृदय को चंचल कर देने वाली नवीनता से जगमगाता हुआ जल्दी ही निखर आया। आकाश से तैरते हुए बादल-समूह को पीछे हटा कर सूरज भी जगमागने लगा। घरों की छत और वृक्षों की टहनियां परम सुन्दर हल्के प्रकाश की किरणों में डूब कर हँसने लगीं। वृक्षों और लताओं की पत्ती-पत्ती में चिपकी, गिरने को तैयार पानी की बूँदें, प्रभात सूर्य की तिरछी किरणों के स्पर्श से चमकने लगीं। पेड़ों की घनी शाखाओं के बीच बने झरोखों से सूर्य की कोमल किरणों ने नीचे की गीली और घास-फूस से भरी धरती की ओर झाँका। अभी-अभी जागे हुए और आनन्दित पक्षी अपने हजारों कंठों के कोलाहल से वनभूमि को मुखरित करने लगे। केवल पपीहे की पी कहां' की आवाज कांपती हुई हवा में तैरने लगी। रूई जैसे हल्के सफेद बादल आकाश की स्वच्छ नीलिमा में छुट-पुट, अलग-अलग बिखरे-बिखरे बिचर रहे थे।

सूर्यदेव आकाशमंडल में एक पहर चल कर राह तय कर चुके थे। पिछली रात को जिस तालाब के किनारे मातंगिनी संकट में पड़ कर डाकुओं से घिर गई थी, वहीं एक इमली के बहुत पुराने पेड़ के नीचे, झाड़-झंखाड़ की आड़ में छिप कर भींगी घास के उपर मातंगिनी चुपचाप बैठी थी। उसके शरीर के कपड़े भींगे और कीचड़ से सने थे। बरसात में भींग गए लम्बे बाल कंधे, पीठ और बाजू पर लटक रहे थे। वह सिर झुका कर, जल भरे घने मंधा से भी काले अपने बालों को धूप में सुखा रही थी। उसके पास ही उसकी सखी कनक बैठी हुई थी। थोड़ी ही देर पहले तेल की मालिश करने के कारण उसका शरीर चमक रहा था। उसके कंधे पर एक मैला अंगौछा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। पीतल की एक बड़ी सी कलसी भी पास ही रखी थी। उसके काले दाँतों से पता लगता था कि अभी उसने दातून भी नहीं की है। घर से संभवतः इसीलिए निकली थी पर अभी कुछ कर नहीं सकी है। लगता है जैसे दोनों सखियाँ किसी गहरे व गंभीर मसले पर विचार मग्न हैं। विषय भी स्पष्ट है। अपनी विश्वासपात्र और बुद्धिमती सखी से मातंगिनी पिछली रात की समस्त घटनाएँ क्रम-क्रम से धीरे-धीरे बता रही थी।

कुछ देर तक तो हैरान सी कनक सब सुनती रही, फिर एकाएक वह काँप उठी और बोली, 'हाय माँ ! मैं होती तो मर ही जाती। धन्य है तेरा कलेजा और तेरा साहस, दीदी ! अब भी क्या तू अपने पति के के पास वापस जाएगी ?'

सखी के दुख में सहानुभूति प्रकट की कनक ने। उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा, 'मैं खूब समझती हूँ दीदी, कि तुम्हारा हमारे घर रहना ठीक नहीं है, पर अपने घर भी तुम कैसे वापस जा सकती हो ? हाँ, लेकिन अपनी बहन के घर जाने में भला क्या बुराई है ?'

यह सुनकर मातंगिनी के चेहरे पर एक अपूर्व भाव दिखाई दिया। उमड़ते आँसुओं को रोक कर उसने जिस कठोर भाषा में माधव से विदाई ली थी, उसी भाषा में वैसा ही प्रभाव भर कर उसने कहा, 'यह असम्भव है ! इस जीवन में अब वहाँ नहीं जा सकती।'

मातंगिनी का चेहरा देख कर उसकी बात का प्रतिवाद करने का साहस कनक न जुटा सकी। अपनी व सखी की विवशता पर वह अपना मुँह ढाँप कर रोने लगी।

एकाएक पीछे से किसी स्त्री कंठ की आवाज सुन पड़ी, 'अरे बेटियों, यहाँ बैठी तुम लोग का सलाह कर रही हो। जरा मैं भी तो सुनूँ। अरे तुम रो क्यो रही हो। क्या हुआ है, बेटी ?'

हैरानी की मुद्रा बनाए वह आकर इन दोनों सहेलियों के पास खड़ी हो गई। वह साँवले रंग की अधेड़ उम्र स्त्री थी। बाल सफेद हो गए थे। बुढ़ापे के कारण देह में झुर्रियाँ पड़ गई थीं। वह एक साफ मोटी धोती पहने थी, उसके भी कंधे पर मैला अंगौछा था। चेहरे पर तेल की मालिश की चमक थी। उसके यहाँ आने का कारण स्पष्ट था।

कनक ने जल्दी-जल्दी आँसू पोंछ लिए हँसने की कोशिश में दाँत चमका कर पूछा, 'अरे लगता है यह तो सुखिया की माई है। आज फूलपुकुर में कैसे आई ?'

सुखिया की माई प्रसन्न हो उठी। बोली, 'आज आने में बड़ी देर, हो गई थी बेटी। सोचा, घर का कामकाज करने से पहले ही वहा आऊँ। हाँ, तुम लोग तो अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हाल बताओ। क्या हुआ है ? तुम दोनों रो क्यों रही हो ?'

कनक की आँखें फिर आँसुओं से भर आईं। उसने कहा, 'कुछ न पूछो, सुखिया की माई ! इस अभागिन के दुख का हाल अब तुमसे क्या कहूँ !'

इसी क्षण मातंगिनी ने अर्थ पूर्ण नीरव दृष्टि से कनक की ओर निहार कर उसे सचेत कर दिया। उस दृष्टि ने जैसे कनक से कहा कि मेरे दुख की बात इससे कहने की नहीं है। इस बुढ़िया को कुछ मत बताना। कनक ने भी वैसी ही अर्थपूर्ण दृष्टि से उत्तर दिया—डरो नहीं, तुम्हारा गुप्त भेद न बताऊँगी।

कनक ने आगन्तुक बुढ़िया की ओर लक्ष्य करके कहा, 'इसके दुख की बात भला क्या कहूँ ? अभागिन को इसके पति ने घर से निकाल दिया है। अब यह कहाँ जाकर रहे। किसका सहारा ले यही समझ में नहीं आ रहा है। इसी समस्या को सोच-सोच कर रुलाई आ रही है।'

सुखिया की माई ने कहा, 'अरे छिः छिः, इसी के लिए इतना रोना-धोना ? यह तो दुनिया का नियम ही है, और सभी तो जानते हैं कि पति-पत्नी सबेरे झगड़ते हैं और रात को फिर उनमें मेल हो जाता है। अभी इसके आदमी पर गुस्सा सवार होगा, जब शांत होगा तो आप ही मना कर घर लिवा ले जाएगा। जानती हैं कनक। मेरा दामाद जब मेरे यहाँ आ कर रहता है तब एक रात भी ऐसी नहीं जाती जब दोनों में झगड़ा न होता हो, लेकिन इससे क्या ? वह क्या मेरी बेटी को किसी पति से कम प्यार करता है ? कभी नहीं। अभी पिछले हफ्ते, बुधवार की ही तो बात है, सुनो, दामाद एक ऐसी सुन्दर नथ ले कर आया कि कुछ मत पूछो···।

सुखिया की माई अपने दामाद के स्वभाव का और भी परिचय देती कि उसे बीच में ही रोक कर कनक ने कहा 'तुम ठीक ही कह रही हो, सुखिया की माई ! लेकिन यहाँ की बात तो कुछ और ही है। राजू दादा और एक लड़की से ब्याह करना चाहते हैं। वही जो उस गाँव से आया था उसी की लड़की से। अब तुम शायद समझ गई होगी कि वे बार-बार मातंगिनी को क्यों दुख दे रहे हैं। सुखिया की माई, अब मेरी सखी कभी भी अपने स्वामी के यहाँ गृहस्थी करने नहीं जाएगी। और ठीक भी तो है। वहाँ इसे अब अपमान, गाली, लाँछना के सिवा और क्या मिलेगा ? सहने की भी तो एक सीमा होती है। लेकिन अब प्रश्न है कि यह जाए कहाँ ? और कहीं तो इसे ठिकाना भी नहीं है। अगर मायका पास होता तब भी कोई चिन्ता न थी। कम से कम मायके वाले तो इसे छोड़ न देते।'

सहृदय बूढ़ी कह उठी, 'सचमुच इस बेचारी की तो किस्मत ही फूट गई। तू ठीक ही कहती है कनक। ऐसी हालत में इसका वहाँ जाना तो ठीक नहीं है। वह क्या सचमुच दूसरा ब्याह करना चाहता है ? ऐसी चन्द्रमुखी सी पत्नी उसे कहाँ मिलेगी। फिर एक कच्ची उम्र की छोकड़ी को घर लाने से लाभ भी क्या है ? क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वह गृहस्थी कर सकेगीं ? नही बेटी तुम अब वहाँ मत जाना बल्कि अपनी बहन के घर जाकर देखो वह क्या कहती है ?'

कनक ने कहा, 'यह भी तुमने क्या खूब उपाय बताया सुखिया की माँ ? बहन के घर जाने का रास्ता भी तो इसके लिए बन्द है। यहीं तो मुसीबत है।'

इन बातों को सुनकर मातंगिनी ने घृणा और शर्म से सिर झुका लिया। कनक बोलती रही, 'पिछली बार श्राद्ध के समय राजूदादा को माधव बाबू ने निमंत्रण नहीं दिया, इसके लिए यह अपनी बहन से खूब झगड़ी थी तब से दोनों में एक तरह से बोलचाल बन्द है। हाँ, मैं अपने घर में इसे रख सकती थी, पर तुम तो जानती ही हो, सुखिया की माई, कि हम लोग कितने गरीब हैं। इसे मैं ले जाकर रखूँ और यह उपवास कर के मरे यह क्या ठीक होगा ?'

सुखिया की माई ने माथा पीट लिया। बोली, 'मौत है बेचारी के लिए और क्या ? तुम भी निरी मूर्ख हो बेटी ! ऐसे स्वामी को लेकर क्या बहन से झगड़ना ठीक था ? अगर मेरा दामाद होता तो क्या इसे ही भला-बुरा कहकर मैं चुप हो जाती ? उसके माँ-बाप को भी हजार बातें सुनाती। खैर, उसे मरने दे, तू मेरे साथ चल।'

फिर मातंगिनी की ओर घूम कर बोली, 'मेरे साथ चल। जब तक तुम्हारा जी चाहे, मेरे मालिक के यहाँ रहना। बड़ी मलकिन तुम्हें बहुत प्यार करती हैं। तुम्हें देख कर वह खुश होंगी। फिर जब तुम्हारे पति का गुस्सा ठण्डा हो जाय—और जल्दी ही वह ठण्डा भी हो जाएगा—जब वह खुद आकर खूब आरजू-मिन्नत कर के लिवा ले जाय तभी जाना। और देखो, अब आसानी से इसकी बातों में आना भी मत। अब वह जब तक अच्छी तरह अपना कसूर न मान ले। खुशामद न करे तब तक जाने का नाम मत लेना।'

कनक खुश होकर बोली, 'तुमने ठीक ही कहा सुखिया की माई ! यह अभी तुम्हारे ही साथ जाए। तुम्हरा क्या विचार है दीदी ? तुम्हारा इस समय सुखिया की माई के साथ जाना ही ठीक रहेगा। मैं जानती हूँ कि बड़ी मालकिन तुम्हें खूब चाहती है। तेरे जाने से सचमुच उन्हें खुशी ही होगी। तुम्हारा क्या ख्याल है दीदी ?'

मातंगिनी मन ही मन माथे पर बल डाले हुए खीझ रही थी। पर कनक ने उसकी ओर ध्यान ही न दिया। वह कहती रही, 'हाँ, हाँ, यह जाएगी तुम्हारे साथ। तुम जाओ, नहा लो, सुखिया की माई। जाओ देर मत करो, यह भी अभी ही तुम्हारे साथ चली जाएगी।'

सुखिया की माँ संतुष्ट हो कर नहाने चली गई। तब मातंगिनी ने कहा, 'कनक, क्या यह भी मेरे भाग्य में लिखा था ?'

कनक ने थोड़ा उत्तेजित होकर कहा, 'अब नहीं मत करना दीदी ! तुम्हें मेरे सिर की कसम है। अभी इसके साथ जाओ। शाम को आकर मैं तुमसे भेंट करूँगी : बस अब तुम कुछ मत बोलना।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मांतगिनी से उत्तर पाते की प्रतीक्षा किए बिना ही कनक अपनी कलसी उठा कर नहाने चली गई ।

१३

मथुरा घोष का निवासस्थान देहात की समृद्धि के साथ सफाई और सुन्दरता के अभाव का एक बढ़िया नमूना हैं ।

बहुत दूर-दूर तक फैले धान के खेतों के पार पेड़ों की पत्तियों की झरी से इस घर की छत पर कार्निस और काली दीवार दिखाई देती है । नजदीक आने पर दिखाई देता है कि जगह-जगह दीवार के पलस्तर की परतें जीर्ण ईटों को छोड़कर नीचे गिर चुकी हैं और जो नहीं गिरी हैं वे गिरने को तत्पर है । कहीं-कहीं किवाड़ का एक पल्ला जो रंग उतर जाने के कारण फूहड़ लग रहा है, केवल कबजों के सहारे ही झूल रहा है । किसी-किसी खिड़की के पल्ले में कब्जा का नाम निशान भी बाकी नहीं है । सस्ते किस्म का टाट का टुकड़ा उन पल्लों की जगह झूल रहा है । उस बड़ी इमारत के बाहरी ओर बहुत थोड़ी सी जगह पर चूने का पलस्तर बाकी बचा है । पलस्तर से शोभित जो थोड़ा सा हिस्सा था, उसमें स्वयं मथुरा घोष रहते न हों, पर उस पर उन्हीं की तरह महामहिमान्वित किसी दूसरे आदमी ने अधिकार कर रखा था । यह ढूँढने पर विनसियन खड़खड़ियों के कुछ टुकड़े अवश्य मिल जायेगे । लेकिन इतनी बड़ी इमारत इन छोटे-छोटे अलंकारों से सजने वाली न थी । इमारत के अधिकांश भाग में पलस्तर न रह जाने के कारण वहाँ ईटों पर धूल और काई जम गई है जो एक भयानक दृश्य उपस्थित कर रही थीं । कहीं-कहीं दीवाल की ईटों के बीच एक दो बरगद या पीपल के पौधे या घास उग आई थी ।

इस इमारत के चार हिस्से थे, सभी बिल्कुल अलग-अलग । सामने ही बड़ा भारी दरवाजा है जिसके दोनों पल्लों पर लोहे का पत्तर मढ़ा है और उस पर तारकोल पुता हुआ है । इसके बाद लम्बा चौड़ा आँगन है । आँगन तीन ओर से दो तल्ले बरामदों से घिरा है । बरामदे ज्यादा ऊँचे नहीं हैं । फाटक के ठीक सामने एक हाल है । जिसके पाँच बड़े-बड़े दरवाजे है । हाल के अन्दर व बाहर चूने की दस्तकारी है लेकिन कई बरसों की लगातार बरसात ने उस दस्तकारी पर स्याही पोत दी है । खासकर वहाँ, जहाँ पानी निकलने के लिये पाइप लगे हैं । इस हाल के भीतर जाने के लिये भूल-भूलैया की तरह घुमावदार अंधेरे ओर सीलन से भरे कई कमरे पार करने पड़ते हैं । इमारत के तूसरे हिस्से के बीच में खुला आँगन है । उसके चारों ओर भी बरामदे हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चुने की चित्रकारी यहाँ भी की गई है लेकिन काल के प्रकोप ने खम्भों को नंगा कर रखा है। बच्चों ने भी जगह-जगह लाल, नीले, पीले और काले आदि इन्द्रधनुषी रंगो से दीवारों को भर रखा है। पान खाकर यहाँ-वहाँ थूकने से या किसी चिन्ताहीन नाजुक दासी के हाथों से गिर कर मटकी फूट जाने से तथा पान बनाने वाली दासी के दीवार में हाथ पोंछने के दागों की चित्रकारी सी बन गई है। कोयले की सहायता से बनाए गए बहुत से चित्र चित्रकारों की कल्पना व रंग के कमाल के अभाव में भी दुष्ट बालकों के समय नष्ट करने की अपेक्षा बुद्धिमती बालिकाओं के फालतू समय के सदुपयोग का प्रमाण दे रहे है। आँगन में ईटों या टाइल का फर्श नहीं है। वहाँ धरती माता सभी प्रकार के घास फूस को जन्म देकर अपनी ही गोद में उनका पालन कर रही हैं। दुनिया भर का गन्दा पानी आँगन के एक कोने में जमा है।

यहीं से एक तंग गलियारे से होकर एक कम चौड़े पर मजबूत दरवाजे को पार कर तीसरे भाग में पहुँचा जा सकता है। इसी हिस्से में रसोईघर है। दोनों ओर तरह-तरह की इकहरी कोठरियाँ हैं। बीच में बड़ा सा आँगन है। घास-फूस यहाँ कुछ अधिक ही है। वहाँ साग-सब्जी, पर नित्य ही अत्याचार होने का प्रमाण भी मौजूद है। धुएँ की कालिमा यहाँ युग-युगों से जमती चली आ रही है।

इसी के पीछे चौथा हिस्सा है। लेकिन तीसरे हिस्से की ओर से इसमें प्रवेश करने के सभी रास्ते बन्द हैं। घर की औरतों में से बहुत कम को इस हिस्से में आने का अधिकार प्राप्त है।

पुरुषों में यह हिस्सा गोदाम—महल के नाम से जाना जाता है। इसमें घुसने का एक ही रास्ता है। किवाड़ के पल्ले मोटे और मजबूत हैं। इसके तीन ओर ऊँची ऊँची दीवार है ताकि कोई इसमें न आ सके। दीवारों पर काँच के टुकड़े गड़े हैं इससे आना असम्भव है। चौथी ओर कोठरियों की दीवार है जो मजबूत और मोटी है। इनके दरवाजे खिड़की जैसे छोटे हैं। लोग तो यही जानते है कि सामान रखने का गोदाम-घर है। घर के एक ओर सुपारी का बाग है। बीच-बीच में मौलश्री के पेड़ हैं। चारों ओर-ईटों की दीवार से घिरा एक तालाब है। वह हमेशा पानी से भरा रहता है। इस हिस्से को घर का छोटा द्वार कहते हैं। इस भाग में रसोईघर के पास से जा सकते हैं। इसके बाद का एक और दरवाजा पार करते ही घर से मिला बाग है।

इसी इमारत के दूसरे महल की दूसरी मंजिल पर जाने की सीढ़ी बहुत तंग है, अंधेरी भी। यही है मथुरा घोष का शासन—कक्ष। इस कमरे की दीवारों पर साफ-सुथरी चूने की दस्तकारी है। लेकिन ऐसी भी बात नहीं कि कहीं-कहीं दाग न लगा हो। कमरे के एक कोने में सागौन लकड़ी का एक पलंग पड़ा है। डोरिये की जाली का पर्दा चारों ओर जमीन तक लटक रहा है। लकड़ी की कई बड़ी-बड़ी आलमारियां भी हैं। काल के प्रहार और लापरवाही के कारण उनकी पालिश उड़ गई है। ये आलमारियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दूसरी ओर की दीवार के साथ खड़ी है। एक-दो दराजवाली लिखने की मेज, कुछ साधारण से गाँवों में बजाए जाने वाले बाजे, संदूकें जिनका ऊपरी पल्ला चारों ओर से मोटे पीतल में पत्तरों से मढ़ा है और बीच-बीच में चन्दन की लकड़ी के टुकड़े जड़े हैं। इतना ही इस कमरे का सामान है। एक ओर अगल-बगल दो तैल-चित्र लटक रहे हैं। एक चित्र है काली माई का और दूसरा है दुर्गा माँ का।

आमने-सामने की अन्य दो दीवारों पर तरह-तरह के विदेशी चित्रकला के नमूने लटके हैं लेकिन वे चित्र काली व दुर्गा के चित्रों की भाँति ऊंचे नहीं है। कुमारी माता मेरी और उसके बच्चे से सम्बन्ध रखने वाले शिल्पी की प्रतिभा कौन सी कला-कौशल प्रकट करना चाहती है यह समझ में नहीं आता। इसी कमरे में एक खिड़की के बिल्कुल पास एक रमणी बैठी है। उम्र २४ वर्ष के लगभग। चेहरे व शारीरिक गठन से लगता है कि वह अभी भी सुन्दर है। रंग सांवला, आँखें बड़ी-बड़ी और पुतलियाँ भौंरे की तरह गहरी काली हैं। आँखों में हर समय चमक रहती है। चेसेरा भी हँसी से चमकता। इसी लिए शरीर पर मात्र एक साड़ी भी अच्छी लगती है। उसने घूँघट नहीं रखा है। नहाने के कारण गीले चमकीले हो रहे बाल पीठ पर बिखरे हैं। अस्तव्यस्तता के कारण वह और भी अच्छी लग रही है आमतौर से औरतें जो भारी गहने पहनती हैं उनकी जगह वह हल्के व सोने के गहने पहने हैं। पाँव की पायल बार-बार झनकार उठती है। उसकी उँगलियाँ छोटे बच्चों के बाल बाँधने की डोर गूँथने में व्यस्त हैं। एक दस वर्ष की लड़की उसके पास ही बैठी थी। उस बालिका का सुन्दर चेहरा उक्त वयस्त लड़की के चेहरे सा ही दिखता है। उन दोनों के पास थोड़ा हट कर एक वयस्क स्त्री विनम्र भाव से चुपचाप बैठी है। उसे देखकर लगता था कि वह किसी गहरे दुख के कारण अशांत सी है।

सुखिया के माई का सासों की दुनिया में बहुत ऊँचा स्थान है। सुखिया के भाई ने अपना वायदा पूरा करके दुविधा में पड़ी मातंगिनी को अपनी मालकिन यानी मथुरा घोष की प्रथम पत्नी के पास पहुँचा दिया था।

मथुरा की स्त्री और मातंगिनी बैठी आपस में धीरे-धीरे बातें कर रहीं थी। कुछ दूरी पर बैठी सुखिया की माई अपने आप बड़बड़ा रही थी। कनक की झूठी गप्प से सुखिया की भाई को अभागिन व भगाई हुई मातंगिनी के बारे में जितना पता लगा था उससे बढ़कर उसने मातंगिनी की दुर्दशा का वर्णन सुना रहा था। इस कुटिनी के सामने असलियत खोलने की मातंगिनी की हिम्मत न पड़ी। मातंगिनी चुपचाप से बैठी सोचती रही। इच्छा न होने से भी वह बिना किसी प्रतिवाद के सब बातें सुनती रही। उसने मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि समय आने पर वह इस नव परिचिता स्त्री से अपनी असलियत बता देगी लेकिन यह तो छिपाना ही पड़ेगा कि उसका आदमी इतनी नीचता पर उतर आया है।

मथुरा की स्त्री ने एक तरह से उसे अपना बना लिया था। वह मातंगिनी को आश्रय ही नहीं दे रही थी बल्कि सदा अपने पास रखना चाहती थी। मातंगिनी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस घर में रखने से पहले उसे एक काम करना पड़ेगा। अपने पति से आज्ञा लेने के लिए उन्हें एक बार भीतर आने का अनुरोध करने को उसने सुखिया की भाई के बाहर भेजा। कुछ देर बाद स्वामी जब भीतर आए तो गृहिणी ने माथे पर आँचल खींच लिया। अब वहाँ ठहरना अनुचित समझ मातंगिनी बाहर चला गई। लेकिन इसके पहले ही गृहस्वामी के कठोर नेत्रों का परिचय और हैरानी की एक दृष्टि जैसे उसे दिखाई पड़ी।

| १४ |

मथुरा घोष की बड़ी पत्नी का नाम तारा था और छोटी पत्नी का नाम चम्पा जो तारा से सात-आठ साल छोटी थी। देह की गठन और सुघराई और रंग में चम्पा अपनी सौत से हर प्रकार से बढ़ चढ़ कर थी। वह स्वभाव से ही सुन्दरता का माया जाल फैलाने में निपुण थी। गर्व से भरी, हुक्म चलाने की आदी चम्पा घर की स्वामिनी बन कर सब पर शासन करती थी। घर के सब लोग उससे डरते थे। शायद मन ही मन उसे नापसन्द भी करते थे। उसके रूखे स्वभाव के कारण सभी जान चुके थे कि ऊपरी सौन्दर्य के साथ इसके हृदय में दयाभाव तनिक भी नहीं है। यही कारण था कि तारा के बड़े होने के बावजूद भी छोटी चम्पा ही वास्तव में घर की स्वामिनी थी। मथुरा घोष के स्वभाव में प्यार करने की इच्छा जैसी कोई चीज न थी लेकिन सौंदर्य का मोह सभी पर अपना प्रभाव डालता है। इसी कारणवश मथुरा घोष भी अपनी छोटी पत्नी के सौंदर्य पर लट्टू था। उसकी सुन्दरता के सम्मुख मथुरा घोष ने आत्मसमर्पण कर रखा था। यह कहना तो अनुचित होगा कि मथुरा घोष चम्पा को प्यार करता था, बल्कि कहना होगा कि वह चम्पा पर अंध भाव से अनुरक्त था।

तारा के स्वभाव में एक ऐसा धैर्य और माधुर्य था कि उस पर क्रोधित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तारा की ओर से मथुरा घोष यद्यपि निराश था पर उसके प्रति वह कोई बुरा व्यवहार भी नहीं कर पाता था।

अपने घर में राजमोहन की स्त्री को जगह देने की अनुमति स्वामी से प्राप्त करने में तारा को अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ी। उत्तर में मथुरा ने यही कहा कि ईश्वर की कृपा से घर में अनाज की कमी नहीं है और जब तुम कहती हो कि उसका स्वभाव और चरित्र अच्छा है तब जब तक जी चाहे वह यहाँ रह सकती है। लेकिन सरल स्वभाव की तारा यह न समझ सकी कि इसका परिणाम विपरीत होगा। चम्पा को यह कदापि रुचिकर न था कि सौत की इच्छा के कारण किसी पराई स्त्री को घर में जगह दी जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाम हो गई थी और मातंगिनी के दुर्भाग्य से जो दिन अनेक कष्टों का संदेश लेकर आया था अब यह भी शाम की ओर अग्रसर होने लगा था। तिमंजिले के खुले बरामदे में बैठी तारा अपनी बेटी का जूड़ा बाँधने में व्यस्त थी लेकिन छोटी माँ के मन के अनुसार बना नहीं पा रही थी। पास बैठी मातंगिनी हूँ-हाँ करती हुई चम्पा के उबाने वाले तथा अशिष्ट प्रश्नों का बड़ी विवशता से उत्तर दे रही थी। नाऊन से पावों में महावर लगवाती हुई चम्पा मातंगिनी से लगातार प्रश्न करती जा रही थी। मातंगिनी समझती थी कि उसके पति ने दया कर के आश्रय दिया है पर जी में आने पर किसी भी समय उसे घर से निकाल भी सकता था। वह विवश आश्रिता उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर देने की अनिच्छा भी कैसे प्रकट कर सकती थी ? अतः मातंगिनी बड़े ही विनम्र भाव से संक्षेप में उत्तर दे रही थी लेकिन वह सुन्दरी अपने गर्व पर चोट समझ कर मन ही मन क्रोधित होती जा रही थी।

तभी मातंगिनी को पुकार कर तारा ने कहा, 'देखती हो, दोपहर से कोशिश करने पर भी मैं इसका जूड़ा ठीक से बाँध नहीं पा रही हूँ। शायद तुम्ही अच्छा बाँध सको ! अगर बाँध सको तो मैं इस काम से छुट्टी पा लूँ।'

मातंगिनी ने बालिका का जूड़ा बाँधना शुरू करते हुए कहा, 'मुझे भी अच्छी तरह बाँधना नहीं आता, पर कोशिश कर सकती हूँ।'

लड़की के पीछे बैठ मातंगिनी ने चोटी खोल कर नये सिरे से जूड़ा बाँधना शुरू किया।

चम्पा ने बीच में ही रोक कर कहा, 'यह तो पश्चिमी ढंग से जूड़ा बाँध रही है, इससे अच्छा तो पहले वाला ही था।'

मातंगिनी ने उत्तर दिया, 'इस देश के रिवाज के तरह यदि मैं बाँध सकूँगी तो यह सुन्दर चेहरा और भी निखर जायेगा।'

चम्पा ने कहा, 'नहीं वह सब रहने दो। गृहस्थ की बेटी को कुलटा की तरह इस प्रकार के जूड़े नहीं चाहिए।'

अब तारा ने टोका, 'कुलटा स्त्री भी यदि सुन्दर हो तो कोई उसके सौन्दर्य को अवहेलना नहीं कर सकता। तुम जो कह रही हो उस दृष्टि से तो तुम्हें ही अपने सुन्दर चेहरे को बदसूरत बना कर रखना चाहिए। क्या कुलटा स्त्रियों के सिर पर हमसे अधिक बाल होते हैं ?'

फिर तारा को संबोधित कर के बोली, 'तुम्हारे जी में जैसा आए वैसा ही जूड़ा बँध लो।'

चम्पा कुछ न बोली। लेकिन उसके उदास चेहरे से यह जान पड़ता था कि तारा के मुँह से अपने रूप की प्रशंसा सुन कर भी वह अपने मन की जलन बुझा न पा रही थी। तभी सीढ़ी पर भारी कदमों की आवाज सुनाई पड़ी और मथुरा घोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर बरामदे में खड़े हों गए। चम्पा ठोढ़ी तक घूँघट खींच कर जल्दी से चली गई। तारा ने भी घूँघट खींच लिया और जाने के लिए उठ कर फिर बैठ गई। मातंगिनी अपना पूरा शरीर ढँक कर सिमट कर खड़ी हो गई। मथुरा घोष अपनी बेटी से बातें करने लगे।

दरवाजे की आड़ में खड़ी चम्पा गौर से देख रही थी कि बेटी से बातें करते हुए उसके पति की प्यासी आँखें बार-बार कपड़ों से ढँकी खड़ी मूर्ति पर टिक जाती थीं। मथुरा घोष के इधर आने के बाद सभी औरतें अपने-अपने काम में लग गई। सिर्फ चम्पा पति को देख रही थी। जब पति कमरे में आए तो चम्पा वहीं खड़ी मिली।

चम्पा जानती थी कि उसके पति उसी के कमरे में आएँगे। उसे स्वयं उनसे मिलने की कोई जरूरत न थी। लेकिन पति यह न समझें कि उसी के लिए वह कमरे में आई है अतः वह पान डिब्बा खोलकर बैठ गई। डिब्बे से वह पान के साथ खाने के कई मसाले निकालने लगी। कमरे में आते ही मथुरा घोष ने फर्श पर बिखरे चाँदी, सींग और लकड़ी की कई डिबियाँ को बिखरा देखा। उन्हें लगा कि चम्पा को उनके आने का पता नहीं चला क्यों कि अभी भी उसका घूँघट नीचा था और उसकी पीठ ही पति की ओर थी। वह दालचीनी, इलायची, लौंग और जायफल की छोटी छोटी डिबिया फर्श पर फेंकती जा रही थी। थोड़ी देर चुप रहने के बाद मथुरा घोष ने कहा, 'अरे, फिर क्या हो गया ? लगता है कि आँधी का वेग फिर बढ़ गया है।'

बिना कुछ बोले चम्मा फर्श पर बिखरी डिबियों को समेटने लगी।

मथुरा ने कहा, 'अच्छा, यह तो बताओ अब कि मेरे किस कसूर की यह सजा है !'

अब भी कुछ जवाब दिए बिना ही चम्मा ने डिबियों को समेट कर बड़े डिब्बे में रखा और बंद करके इस भाव से उठ गई जैसे वह जो कुछ ढूँढ़ रही थी वह उसे मिल गया।

मथुरा ने उसका हाथ पकड़ कर रास्ता रोकते हुए कहा, 'ऐसा नहीं हो सकता, प्यारी ! इस लम्बे घूँघट की यहाँ क्या जरूरत है ?' कहते हुए उसने चम्पा के सिर से घूँघट उतार दिया।

चम्पा ने अब बड़ी रुखाई से उत्तर दिया; 'मेरे काम में क्यों रोड़ा अटका रहे हो ?'

'बताओ तो जरा कि मुझसे क्या कसूर हुआ जो तुम मुझसे यों खफा हो ?'

चम्पा ने केवल इतना ही कहा, 'मुझे छोड़ो और जाने दो।'

चम्पा का जाने का मन होता तो अब तक वह आसानी से चली गई होती, क्योंकि पति ने बहुत हल्के ढंग से उसका हाथ पकड़ रखा था और उससे छूट कर आगे बढ़ जाना तनिक भी कठिन न था। फिर उसने यही कहा, 'छोड़ो, मुझे काम है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रानी साहिबा के लिए भी कोई काम है ?' मथुरा ने हंस कर कहा।

चेहरे पर क्रोध ला कर उसने कहा, 'मुझे पान लगाना है।'

मथुरा ने कहा, 'ती यहीं पर लगाओ न ! मुझे भी एक दो बीड़े दे देना।'

चम्पा ने फिर कहा, 'छोड़ो भी, मुझे जाने दो।'

मथुरा ने प्यार से कहा, 'क्यों, क्या कसूर किया है मैंने ? बताओ, मैं अभी प्रायश्चित करूँगा।'

प्यार आनन्द लेती हुई और ऊपर से कठोर बनी चम्पा उसी तरह बोली, 'तुमसे भला क्या कसूर हो सकता है ! और मैं होती भी कौन हूँ, तुम्हारा कसूर बताने वाली ? नहीं, नहीं ! तुम्हारे जी में जो आवे, तुम वही करो, कौन भला उसे कसूर समझेगा ? फिर मैं ही किस गिनती में हूँ ?'

क्षथुरा बोले, 'अरे, यह तो सचमुच भयानक क्रोध है ! अब प्यारी यह तो बताओ कि मुझे क्या प्रायश्चित करना है ? मैं अभी कर देता हूँ।'

गुमान से भरी चम्पा बोली, 'जाओ, उसी के पास जाओ, जिसे तुम प्यार करते हो ! वही जो बतावे वही करना : मुझ जैसी अभागिन ने तुम्हारे घर में रहने के सिवा और कौन-सा सुख पाया है ? और फिर मेरी बात तुम सुनोगी भी क्यों ? फिर तुम्हारे घर में तो ऐरे गैरे सभी रह ही सकते हैं।'

अब मथुरा समझ गए कि मामला क्या है। बोले, 'ऐसी क्या बात हो गई ?' वह कहना चाहते थे कि सौत के कहने पर उस गरीब को मैंने आश्रय दिया है इसीलिए यह गुस्सा है। पर वह चुप रह गया।

लेकिन चम्पा क्यों चुप रहती ? वह कहने लगी, 'यह तुम्हारा घर है, तुम जिसे चाहो अपने घर में आश्रय दे सकते हो।' चम्पा ने इस ढंग से जवाब दिया कि लगे कि उसका गुस्सा अभी तक ठण्डा नहीं हुआ है और उसने पति यह जान गए हैं कि वह क्यों गुस्सा है, इससे वह मन ही मन प्रसन्न थी।

अब मथुरा ने गम्भीरता से कहा, 'यह औरतों का गुस्सा छोड़ो और मुझसे साफ-साफ बताओ कि उस अनाथ औरत को घर में जगह देने से तुम्हें क्या आपत्ति है ?'

चम्पा बोली, 'अनाथ औरत है ? पता लगाया है कि क्या उसने कोई बुरा काम किया है जो घर से निकाल दी गई है ?

'लेकिन उसने बुरा काम ही किया है, यह तुम कैसे कह सकती हो ?'

'तो क्या तुम समझते हो कि बिना किसी कारण के ही उसे घर से निकाल दिया गया है ? अपनी बीबी को कोई इस तरह बिना कारण ही घर से नहीं निकाल देता।'

'हाँ, हो सकता है कि उसी का कसूर हो, पर यह भी तो हो सकता है कि उसके पति की ही ज्यादती हो ? और कारण या कसूर चाहे जो हो या जिसका भी हो पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसे आश्रय देना किसी प्रकार भी अन्याय नहीं कहा जा सकता।'

फिर नाराज होकर चम्पा ने जवाब दिया, 'तो तुम वही करो न जो तुम चाहते हो। मेरी राय की फिर क्यों आवश्यकता है ?'

'फिर वही ! छि ! औरतों का हृदय तो और भी दया से भरपूर होना चाहिए।'

'दया के योग्य हो तो फिर कौन दया न करेगा ? अच्छे बुरे सभी पर दया करनी चाहिए।'

'लेकिन तुम कैसे कह सकती हो कि वह दया के योग्य नहीं हे ? अभी तक तो सभी लोगों ने उसके अच्छे स्वभाव की ही बात कही है।'

'सभी लोगों ने कहा है ?' अपनी सुन्दर और बड़ी नथ को झटका देती हुई बोली चम्पा, 'सुकी की माँ की अंट-संट बकवास से ही तो तुम्हें सब पता चला है। केवल उसके झूठे प्रमाण को लेकर सभी लोगों का बहाना बना कर तुम यकीन करते हो ?'

मथुरा ने ताजुब से पूछा, 'क्या तुमने, उसके बारे में किसी को भी अच्छा के सिवा बुरा कहते सुना है-?'

'औरतें के बारे में मर्दों की अपेक्षा औरतें ज्यादा अच्छी तरह सब कुछ जानती हैं।''

'बताओ न कि तुमने क्या सुना ?'

चम्पा ने फिर क्रोध का सहारा लेकर कहा, 'औरतों की गुप्त बातें जानने के प्रयत्न में तुम्हारी शराफत क्या बाधा नहीं देती ?'

अब मथुरा घोष झुँझला गया। असली उद्देश्य चाहे जो हो लेकिन मथुरा की इच्छा थी कि मातंगिनी उसी के घर में रहे। जो आदमी सब काम अपनी ही इच्छा से करने का अभ्यासी हो, अपनी पत्नी को कहीं बाधा बनते देख उसका क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। अतः उसे अपनी पत्नी पर अब क्रोध आ गया। फिर भी कुछ देर तक चुपचाप सोचने के बाद उसने कहा, 'यह तो तुम कम से कम मानोगी ही कि जाति बिरादरी की औरत को यों घर से निकाल देने से दूसरों की नजर में कितना गिरना और कितना अपमानित होना है। तुम्हें मालूम ही है कि उससे हमारा दूर का रिश्ता भी है। उसके प्रति क्या हमलोगों का कोई फर्ज नहीं है ?'

'हाँ, रिश्ता होने से वह रिश्तेदारिन तो अवश्य बन गई, पर क्या बहन के घर उसे आश्रय नहीं मिला क्या ? सगी बहन से ज्यादा हम लोग प्रिय हैं ? वे लोग उसे इससे ज्यादा ही अच्छी तरह जानते हैं, लेकिन क्या वह वहाँ आश्रय माँगने नहीं गई ?'

मथुरा ने कठोर होकर कहा, 'तुम बड़ी नीच हो ! पृथ्वी पर जो बेसहारा है उसे भी सहारा नहीं दोगी ? तुम्हें उस पर भी गुस्सा आता है। मेरे घर में क्या खाने-पीने की कमी है ?'

अब चम्पा ने रूठ कर कहा, 'तुम चाहे जो भी समझो पर यदि वह यहाँ रहेगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तो मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मैं अपने मायके चली जाऊँगी। जिस घर में ऐसी औरत रहे वहाँ मेरा रहना मेरे पिता कभी पसन्द न करेंगे।'

'यह तुम क्या कह रही हो ?

'नहीं, मुझे मेरे मायके भेज दो।'

अब मथुरा जरा नर्म होकर बोला, 'तुम जानती हो कि मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। यह बचपना छोड़ो।'

'तब उसे यहाँ से भगा दो। यहाँ से निकालने में तुम्हें क्या आपत्ति है ? यह तुम्हारी क्या लगती है ?

'अच्छी बात है, लेकिन सोचने के लिए थोड़ा समय चाहिये।'

इतना कह कर मथुरा उठ कर बाहर चले गये। मन में सोचा कि जब तक चम्पा का क्रोध ठण्डा नहीं पड़ता तब तक उसे किसी तरह भुला-बहला कर रोक रक्खेगा।

उस दिन शाम को जब वह फिर उस कमरे में आया तो उसने कुछ अजीब रंग-ढंग वहाँ देखा। उसकी सेज पर काफी दूर, कमरे के एक कोने में, दूसरे कमरे से एक तख्त लाकर उस पर नया बिछौना बिछाया गया था। उस दूसरे बिछौने को देख कर उसने पूछा, 'यह किसके लिये है ?'

बिना कुछ उत्तर दिए ही चम्पा बिछौने पर पड़ कर सो गई।

मथुरा की वह रात कैसी बीती, यह तो वही जानता है। अगले दिन सवेरे नींद टूटने पर बैठक में जाकर उसने देखा कि राजमोहन उसकी प्रतीक्षा में बैठा है। उसने अपना परिचय दिया। उसने मथुरा से अपने आने का उद्देश्य बताया कि खबर मिली है कि उसकी पत्नी वहाँ है। एक मनमुटाव के कारण घर छोड़ कर चली आई है। उसे लौटा ले जाने में वह उसकी मदद चाहता है।

पति को उसकी पत्नी लौटा देने का आग्रह मथुरा टाल न सका। चम्पा को खुश रखने और घर की शान्ति को बनाये रखने के लिए उसे और कोई दूसरा रास्ता भी दिखाई न दिया।

जब मातंगिनी को राजमोहन के आने की खबर मिली तो उसका खून जम कर बर्फ हो गया। मुर्दे की भाँति वह सुकी के भाई के पीछे-पीछे चली गई। उसे ठीक से घर पहुँचा आने का भार सुकी की माई पर ही था। तारा ने पिछवाड़े के दरवाजे तक उसे पहुँचाया। सम्भव होता तो कुछ दूर तक वह वह उसे पहुँचा आती। उसने उसे बड़े दुखी मन से विदा किया और पति के साथ हुए मनमुटाव को भुला कर सुख-शांति के साथ रहने का उसे बार-बार उपदेश दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधागंज का दक्षिणी भाग बड़ा ही भयानक है। घनी घास और दूसरे पेड़-पौधों ने उसे दुर्गम बना रखा है। विषधर सर्पों की यह अंधकारपूर्ण आवास-भूमि भी मनुष्य के पद-चाप से चौंक उठती है। यहाँ पगडंडी खोज निकालने के लिये निरीक्षण-शक्ति की आवश्यकता है। हर रोज के आने-जाने वालों की बात तो दूसरी है। वे तो वन के भीतर बनी कुटी तक भी पहुँच जा सकते हैं। वहाँ बनी कुटिया का छप्पर झाड़ियों से थोड़ा ही ऊँचा था। झोपड़ी का फर्श भी सीलन से भरा था। बाँस और टट्टर की बनी दीवारें थी। फर्श पर भी दो-तीन टट्टर ऊपर-नीचे पड़े हुए थे। एक कोने में खाना बनाने के बर्तन काले होकर पड़े थे, जैसे वे इसी तरह काम में लाए जाते हों।

उस समय सबेरा नहीं हुआ था। सिर्फ घने पत्तों की आड़ में से किरणें वनभूमि में यहाँ-वहाँ दिखाई पड़ रही थीं।

उस झोपड़ी में रहने वाले केवल दो व्यक्ति थे। उनके शरीर का रंग पक्का और डीलडौल मजबूत था। वे कमर में कपड़ा लपेटे थे। गांजे की बदबू से कमरा भरा था। वे दोनों पारी-पारी से गाँजा पी रहे थे। उस सुनसान जगह में भी वे बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहे थे।

एक ने पूछा, 'इससे हमारा क्या काम है ?' यह भीखू की आवाज थी।

दूसरे ने कहा, 'एक मोटी रकम चाहिये।' यह डाकू सरदार की आवाज थी, 'पूरे पाँच हजार रुपये ? एक रात की कमाई के हिसाब से कुछ बुरा भी नहीं। क्या कहते हो ? फिर हिस्सेदार भी तो कोई नहीं जो गले पड़ सके।'

भीखू जैसे खुशी से नाच उठा। बोला, 'तो रास्ते में ही उस वकील का काम तमाम करके दस्तावेज हथिया लेना चाहिये। उसी के साथ वह रहेगा। फिर दूसरी जगह से उसे हथियाना क्या आसान होगा ?'

सरदार ने कहा, पर राजमोहन की स्त्री ने तो सब चौपट कर दिया। राजमोहन के साथ हम लोगों की बात उसने पूरी सुन लिया था। माधव को यह पता लग गया है कि हम उस दस्तावेज के फेर में हैं। फिर क्या वह सतर्क और सावधान न होगा ? वह जायेगा तो उसके साथ सिपाही भी तो होंगे। और हमलोग तो दो ही जन हैं। अब आया तेरी समझ में कि हम इस प्रकार दूसरे ढंग से दस्तावेज हथियाने की कोशिश क्यों कर रहे हैं ?

भीखू बोला, 'सरदार ! लेकिन यह कैसे संभव होगा ? दो आदमियों के बूते घर पर चढ़ाई करने से भला क्या होगा ?'

सरदार ने कहा, 'वह काम तो मैं करूँगा। जहाँ लाठी से काम नहीं होता वहाँ अक्ल काम करती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीखू चिलम भर कर धुआँ उड़ाने लगा। फिर थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह बोला, 'मेरी तो समझ में नहीं आता कि तुम यह सब काम कैसे कर लोगे? जिसके लिए यह काम करना है क्या वह पाँच हजार में से एक हजार भी पेशगी न देगा? रुपया तो जब हाथ में आ जाय तभी आया समझो। रुपया हाथ में आ जाने पर हम अगर निकल भी भागें तो हमें फिर कौन पकड़ सकता है?'

अब गम्भीर होकर सरदार ने कहा, 'अरे भाई! वे लोग भी कच्ची गोली नहीं खेलेंगे। दस्तावेज हमारे हाथ आ गया है। यह देख कर ही वे एक हजार नहीं, दो हजार और अधिक यानी तीन हजार देंगे। बाद में जब मुकदमा जीत जाएँगे तब दो हजार और मिलेगा। और वसीयतनामा नष्ट कर देने पर ही उनकी जीत होगी, यह निश्चित है।'

'तो फिर क्या है, मैं भी तो सुनूँ?'

'अब नहीं, तू पहले से जान लेगा तो काम पूरा न होगा। राजमोहन बड़ा धूर्त है, वह अगर तुझसे बात उगलवा लेगा तो सब काम धरा-धराया पड़ा रह जायेगा। बस तू मेरी छाया बन कर मेरे पीछे लगे रहना तभी काम बनेगा।'

सुन कर भीखू उत्तेजित होकर बोला, 'क्या राजमोहन मुझे बेवकूफ बना लेगा? पर तभी उसने बहुत धीमे स्वर में कहा, 'चुप-चुप, पैरों की आहट आ रही है।'

दूर जंगल में उल्लू जैसे चीखता है, वैसी ही आवाज आदमी के गले से निकली। सरदार ने भी बिल्कुल वैसी ही आवाज निकाल कर उत्तर दिया। वह समझ गया कि राजमोहन आ रहा है। दूसरे ही क्षण राजमोहन कुटिया में आ गया। सरदार ने देखते ही कहा, 'आओ राजमोहन, क्या खबर है?'

'खबर ठीक ही है। मेरी बीवी वापस आ गई।'

प्रसन्न हो उठा सरदार, पूछा, 'अच्छा कैसे मिली? कहाँ थी?'

'वह बहन के घर न जाएगी, यह मैं पहले ही जानता था। जानते हो वह कहाँ गई थी?'

'कहाँ गई थी?'

'मथुरा घोष के घर गई थी।'

'अच्छा तो क्या बताया उसने?'

'बतायेगी क्या? अभी तक तो कुछ भी नहीं जान सका। पूछताछ तो बहुत की पर कुछ पता न चला।'

अब सरदार ने बड़ी गंभीरता से दबी आवाज में कहा, 'कुछ भी हो, उसे खत्म ही कर डालो।' सरदार की आँखों से अंगारे बरस रहे थे। क्रोध छिपाने के लिए उसने आँखें नीची कर लीं।

राजमोहन ने दयालु स्वर में कहा, 'जरा सोचो तो सरदार! इसकी भला क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरत है ?'

'यह बात मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ।'

राजमोहन ने समझाते हुए कहा, 'उस बदमाश औरत से मैं तुमसे कम घृणा नहीं करता। उस रोज अगर वह मिल जाती तो तुम देखते कि उसे मैं कितना प्यार करता हूँ। लेकिन अब तो मैं समझता हूँ कि शायद मेरा खून भी ठण्डा पड़ गया है। अब न तो यह काम करने का मुझमें साहस है और न मैं अब उतना कठोर बन सकता हूँ। वह न तो माधव के घर गई, न ही उसने उस बात को लेकर ही शोर मचाया। अब जब अब तक उसने ऐसा नहीं किया तो आगे ही करेगी, इसे कैसे कहा जा सकता है ?'

थोड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद सरदार ने कहा, 'मैं उसे एक ऐसी जगह भेज दूँगा जहाँ तुम्हें भी ऐतराज न होगा।'

'कहाँ ?'

'तुम अपनी स्त्री को लेकर हमारी गुमटी में रहोगे।'

'डाकू बन कर रहना पड़ेगा क्या ?'

'अभी भी तुम डाकू नहीं हो क्या ?'

'काम से शायद हूँ पर नाम से डाकू कहलवाला संभव नहीं है।'

'इसके मतलब तुम नहीं जाओगे ?'

'नहीं मेरी स्त्री के अलावा घर में और लोग भी हैं। उन सबका डाकू बनना संभव नहीं है।'

'क्या हमारे घर-बार नहीं है ?'

'हैं। लेकिन मैं अपने घर वालों को यह नहीं बता सकता कि मैं कैसा जीवन बिता रहा हूँ।'

सरदार ने अब रोब दिखाते हुए कहा, 'अगर हमारे साथ जाने की इच्छा हो तो अपनी बहन और उसके बच्चों को उसके पति के घर भेज दो। उसके खरचे की तुम्हें चिन्ता नहीं करनी होगी। रही तुम्हारी बुआ, तो उसके तुम जैसे और भी दूसरे भतीजे होंगे। अपना ठिकाना वह खुद खोज लेगी।'

राजमोहन सहमत नहीं हो सका और वाद-विवाद चलता रहा। अंत में सरदार की फटकार खाकर वह माधव घोष की जमींदारी छोड़ने को राजी हो गया।

उस समय दोपहर ढली न थी।

राजमोहन नहा-धोकर ब्यालू के लिए घर आया। पहले उनकी भेंट बहन किशोरी से हुई। उसे देख कर राजमोहन बोला, "किशोरी, पहले उस भागजली को मेरे पास भेज दो। घर छोड़ कर कहाँ भाग गई थी ? जा बुला तो ला।'

चकित होकर किशोरी ने पूछा, 'किसकी कात कह रहे हो भैया ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमोहन झुँझला कर बोला, 'किसकी बात कह रहा हूँ ? अरे, तेरी भाभी के बारे में कह रहा हूँ, क्या तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है ?'

'भाभी तो घर में नहीं है ।'

'घर पर नहीं है ? इसके माने क्या वह आई नहीं ?'

'तुमने कहा भर था कि उसे घर भेज दोगे, लेकिन क्या भेजा भी था ?'

झुँझला कर बोला राजमोहन, 'उसे सुकी की भाई के साथ जाते तो मैंने देखा था । तो क्या यह भी फरेब था ?'

'बड़े ताजुब की बात है ! फिर वह गई कहाँ ? सबसे पूछो कि क्या किसी ने उसे देखा है ?'

राजमोहन ने भाग कर घर में इधर-उधर देखा पर कहीं भी मातंगिनी का पता न चला । तब किशोरी से बोला, 'कहीं अपनी बहन के यहाँ तो नहीं चली गई ? जरा दौड़ कर देख तो आ । बुआ से कह कि वह कनक के घर देख आवे । वह वहाँ भी जा ही सकती है ।'

किशोरी और बुआ दोनों दो ओर दौड़ गईं और थोड़ी देर के बाद दोनों ही निराश वापस आ गईं ।

क्रोध, निराशा और आश्चर्य से अभागा राजमोहर बड़बड़ाने लगा । उस दोपहर की धूप में ही उसने किशोरी को पता लगाने के लिए मथुरा घोष के यहाँ भेजा । किशोरी के लिए अकेले इतनी दूर जाना सहज न था, फिर भी उसने भाई के आदेश का पालन किया, लेकिन वह भी कोई आशाजनक खबर न ला सकी ।

| १६ |

तीन दिन बीत गए । कृष्ण पक्ष की अंधेरी रात थी । माधव के कमरे में रोशनी हो रही थी । वह बिल्कुल अकेला था । कीमती लकड़ी के बने और साटन की खोल से ढँके सोफा कोच पर वह अधलेटा पड़ा था । पास ही कुछ किताबें रखी थीं । एक किताब माधव के हाथ में थी । वह उदास आँखों से खुली खिड़की की राह आकाश की ओर देख रहा था । मुकदमें के फैसले के बारे में तरह-तरह की आशंकाएँ मन में उठ रही थीं । यदि उसके शत्रुओं को सफलता मिल गई तो माधव का भविष्य क्या होगा ? मातंगिनी के भाग्य में क्या लिखा है ? वह जानती थी कि उसका पति उसे अच्छे मार्ग पर न ले जायगा । मथुरा घोष के यहाँ आश्रय लेना, वहाँ से लौटना और फिर एकाएक गायब हो जाने की उसे खबर मिली थी । किस विवशता से वह एक पराए के घर में आश्रय लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गई ? अफवाह उसने जरूर सुनी थी, पर मातंगिनी को वह अच्छी तरह जानता था कि किसी असाधारण कारण से ही उसने यह रास्ता अपनाया होगा। अपने मन का धीरज खोकर वह ऐसी राह अपनाएगी, ऐसी स्त्री वह नहीं है। आश्रय और मदद का विश्वास होने पर भी वह बहन के घर नहीं आई। माधव इसका कारण भी अच्छी तरह जानता था और उसके इस कृत्य के लिए मन ही मन प्रशंसा भी करता था। लेकिन उसके घर छोड़ने क्या कारण हो सकता है, यह वह सोच कर भी समझ न सका। डाकुओं द्वारा उसके लूटे जाने के पहले ही मातंगिनी ने उसे सब बता दिया था। वह उसके इस चरित्र से पूरी तरह परिचत था कि उसका दुर्भाग्य चाहे जिस रूप में आए पर किसी पाप के कारण उसने घर न छोड़ा होगा। वह किसी भयानक विपत्ति में फँस गई है इसमें तनिक भी शंका नहीं है। मातंगिनी को लेकर उसके मन में अनेक भाव उत्पन्न हो रहे थे। उसका हृदय जलने लगा। मन में उठते भावों को दबाना उसके लिए कठिन हो रहा था। मातंगिनी के जाते समय जो हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित हुआ था उसे याद कर उसका जी भर आया। उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी।

अपने को सम्हाल कर वह बरामदे में आ खड़ा हुआ। लेकिन वहाँ भी चिन्ता ने पिण्ड नहीं छोड़ा। वह टकटकी लगाए एक ओर देखने लगा। अचानक उसकी दृष्टि एक अजीब वस्तु की ओर उठी। पहले तो उसे एक छाया दिखलाई पड़ी पर शीघ्र ही वह छाया कहीं दूर जली गई।

पेड़ के तने से सटी इस छाया का एकदम हट जाना माधव को सचमुच हैरानी में डाल गया। फिर भी वह उसी के बारे में सोचता रहा। थोड़ी देर बाद माधव ने फिर उसी पेड़ की ओर देखा—वह छाया फिर वहीं आ गई थी। उसका कौतुहल फिर बढ़ा। वह उसे गौर से देखता रहा। सहसा वह छाया फिर वहाँ से खिसक गई। अब उसे विश्वास हो गया कि अवश्य ही कुछ दाल में काला है। यह कोई उल्लू या निशाचर तो हो नहीं सकता। तभी वह छाया फिर दिखाई पड़ी। इस बार उसने और गौर से देखा। आदमी के सिर से छाया मिलती-जुलती थी। लेकिन छाया इतनी ऊँचाई पर थी जहाँ साधारण आदमी जा ही नहीं सकता। माधव ने आसलियत जानने का निश्चय कर लिया। माधव का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके मन में जो भी बात आती वह उसे तत्काल कर डालता। लपक कर उसने बैठक में टंगी तलवार उतारी और सीढ़ियाँ उतरने लगा। इधर-उधर तालाश करता करता हुआ वह पेड़ के तने तक जा पहुँचा। उसे उल्लू की भयानक चीख सुनाई पड़ी। इसके साथ ही साथ किसी ने उसकी तलवार पर कठोर चोट की। हमला करने वाला कौन है यह जानने के पहले ही एक मजबूत हाथ उसके मुँह पर आ पड़ा। साथ ही साथ ऊँचे कद का आदमी पेड़ पर से कूद पड़ा। माधव को अपने सामने एक भयानक आकृति वाला आदमी दिखाई पड़ा। उसके हाथ में भी हथियार था। जिसने माधव की तलवार छीनी थी। उसे देखने के पहली ही दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
व्यक्ति ने कहा, 'बाँध ले इसे। पहले इसका मुँह बन्द कर ले!'

दूसरे आदमी ने अपनी कमर से अंगोछा और रस्सी खोली। अंगोछा उसके मुंह में ठूँस दिया गया। माधव समझ गया कि यहाँ इस स्थिति में हाथापायी करने से कोई लाभ नहीं है, न ही चिल्लाने से कुछ होगा। अतः उसने आत्मसमर्पण कर दिया। बाँधने वाले ने उसे अपनी विशाल बाहों में उठाया और लाद ले चला। दूसरे ने पीछा किया। यह सब काम इतनी नीरवता और तत्परता से पूरा हुआ कि कोई जान न सका।

१७

जिस समय माधव घोष पर यह आफत आ टूटी उस समय मथुरा घोष विश्राम के सुख में अधलेटा बैठा था और तारा उसके पास बैठी पंखा झुला रही थी। मथुरा अन्दर से बेचैन था। वह चुपचाप पड़ा था लेकिन उसके दिल से ठंडी आह निकल रही थी। उसके मन में छिपी बेचैनी का आभास मिल जाता था। लेकिन तारा उसकी बेचैनी का कारण न जानती थी। तारा ने ही चुप्पी तोड़ते हुए कहा, 'तुम्हें नींद क्यों नहीं आ रही है?'

'नींद नहीं आ रही या मेरे सोने का यह समय नहीं है?'

'तो सोने क्यों आए हो? यदि नाराज न हो तो एक बात पूछूँ?'

'पूछो, क्या पूछना चाहती हो?'

'तुम्हारे मन में शांति नहीं है। तुमसे जो सच्चा प्रेम करता है उससे भी क्या हिचक हो सकती है?

चौंक कर मथुरा ने अपने को जल्दी ही सम्हाल लिया और बात को टालने के लिए हँस कर बोला, लेकिन तारा की स्नेहमयी दृष्टि से इस प्रयास का भेद खुल जाने में देरी न लगी। मथुरा बोला 'पागल हुई हो? मुझे आशांति क्यों होगी?'

तारा ने स्नेह-भर शब्दों में कहा, 'प्रियतम, मुझे बहलाने की कोशिश मत करो। हम स्त्रियों के लिए पति तो भगवान से भी बढ़कर है। तुम सारी दुनिया को धोखा दे सकते हो पर मुझे नहीं।'

'तुम पागल न होती तो ऐसी बातें क्यों करती? अपने मन की बात खोल कर कहो।'

'इसका कारण तुम खुद हो। तुम्हारी ज़मींदारी, मुकदमें, लगान, घर, बाग-बगीचा, नौकर-चाकर, घर-गृहस्थी—इन सबों के बारे में तुम्हें ही चिन्ता करनी है। मेरे लिए चिन्ता करने को बचा ही क्या है? मेरा पति और मेरी लड़की! अगर मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कहूँ कि आज तीन दिन से मुझे तुम्हारी चाल में वह पहले जैसा जोश दिखाई नहीं पड़ता और तुम्हारी आँखों में एक प्रकार का सूनापन है, तब बीच बीच में तुम घूर-घूर कर देखते हो। जानते हो ? मां की आँखें यह समझने में कभी नहीं चूकतीं कि अपनी औलाद को बात अपने सीने से नहीं से नहीं लगाता है। पिछले तीन दिनों से बिन्दु ने जब भी स्नेह से तुम्हारा हाथ पकड़ा है या तुम्हारे पास बैठ कर खेलना चाहती है तब भी तुमने प्रेम से बुलाया तक नहीं। चम्पा से भी तुम्हें बोलते मैंने नहीं देखा।'

सौत का जिक्र करते समय तारा के चेहरे पर हँसी की रेखा खिंच गई, क्षण भर को। तारा बोली, 'देखती हूँ कि इधर कई दिनों से चम्पा भी बेचैन सी रहती है। तुम उसका हाल भी नहीं पूछते। तुम्हारी यह ठंडी साँस खींचना, आखिर यह सब है क्या ? तुम्हें हो क्या गया है ?'

कोई उत्तर न देकर मथुरा चुप ही रहा। पति को चुप देख कर तारा बोली, 'तुम क्या मुझे अपने दुख की साझी नहीं समझते ? मैं जानती हूँ, तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं है।'

तारा थोड़ी देर पति से उत्तर पाने की प्रतीक्षा में चुप रही। मथुरा फिर भी चुप रहा। अपनी स्नेहमयी पत्नी के पवित्र मुख की ओर देख कर उसने एक आह भरी और फिर चुप रह गया।

अब तारा अपने को जैसे सम्हाल न सकी और रुँधे स्वर में बोली, 'तुम्हारे मन में सुख-चैन-शांति नहीं है। तुम मुझसे कुछ भी मत छिपाओ। अपनी जान दे कर भी अगर मैं तुम्हारी शांति-चैन-सुख वापस ला सकूँ तो वह भी करने को तैयार हूँ।'

मथुरा अब भी चुप रहा। हँसी या बहस करने की आदत उसकी न थी। वह कठोर मुद्रा बनाए बैठा ही रहा। वह चेहरे पर कपट भाव लाकर पत्नी के नंगे प्रश्नों से बचना चाहता था। लेकिन उसके अन्तर की बेचैनी हृदय को पिघला देने वाली थी। तारा की आँखों से भी सावन-भादों की झड़ी लग रही थी। नारी सुलभ हृदय की व्याकुलता के द्वारा उसने पति के चेहरे का यह परिवर्तन देखा।

तारा बोली, 'कैसी कुघड़ी में मेरा जन्म हुआ था ? अभी तक शायद मैं अपने पापों का प्रायश्चित नहीं कर सकी हूँ। अपनी जान देकर भी यदि तुम्हारी शांति लौटा सकूँ तो जीवन सार्थक समझूँगी। पर मैं भी कैसी अभागिनी हूँ, अभीतक मैं तुम्हारे दुख का कारण भी नहीं जान सकी।'

तारा के इन करुण शब्दों और दुख भरी रुलाई से मथुरा का हृदय छू गया। कसूर स्वीकारने की मुद्रा बना कर वह बोला, 'तुमसे अपना दुख बताने में मुझे कोई हानि नहीं। साथ ही तुमसे सब कुछ खोलकर कहने का साहस भी मुझमें नहीं है। इस लिए तुम दुखी मत होना। सचमुच ही तुम्हारे सुनने योग्य कुछ भी नहीं है।'

पति की यह बात सुन कर तारा के निर्मल मुख पर पीड़ा की रेखाएँ स्पष्ट हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उठीं, लेकिन अगले ही क्षण वह सहज भाव से बोली, 'तो क्या तुम मेरी एक साधारण सी जिद भी मान सकोगे ? वचन दो।'

लेकिन उसकी बात पूरी होने के पहले ही उल्लू की चीख का भयानक व कर्कश स्वर सुनाई पड़ा, जिसे सुनते ही मथुरा उठ खड़ा हुआ।

तारा ने पूछा, 'तुम उठ क्यों गये ? यह भयानक आवाज सुन कर तो मुझे भी डर लगा लेकिन यह तो उल्लू की आवाज है !'

लेकिन तारा की बात पूरी होने से पहले ही मथुरा कमरे से बाहर जा चुका था ! तारा हैरान होकर उधर ही देखती रही। यह आवाज उल्लू की ही थी। इस बात पर उसे तनिक भी शक नहीं था। इस आवाज को सुन कर जाने क्यों उसके मन में होने लगा कि कुछ अशुभ होने वाला है। घबराहट और कौतूहल से भरी वह कमरे से बाहर निकल आई। पति सीढ़ी से होकर नीचे उतर गए हैं यह जान कर वह ऊपर वाली सीढ़ी से छत पर चली गई। वह यह देखना चाहती थी कि यदि सचमुच यह उल्लू की ही आवाज थी तो उल्लू भी इधर-उधर कहीं जरूर बैठा होगा। इसी आवाज का बहाना पाकर पति भी कमरे से बाहर निकल गया और अपनी उस दुर्बलता को जो पत्नी के सम्मुख खुलने जा रही थी सम्हाल लिया। तारा नीचे उतरने ही वाली थी कि अचानक उसने एक मनुष्य की छाया को नीचे उतरते देखा। यह किसी स्त्री की नहीं बल्कि किसी पुरुष की ही छाया थी, यह वह तत्काल ही समझ गई।

तारा पहचान गई कि यह उसका पति ही था। मथुरा दरवाजा पार कर जङ्गल में जा घुसा। तारा हैरानी से देखती रह गई। एक अजीब उत्तेजना से उसका शरीर काँपने लगा। क्षण भर बाद उसके मन में बेहोशी आने की शंका पैदा हुई। उसका पति अयोग्य है फिर भी वह उसे प्यार करती है। वह कोई भी पैशाचिक काम कर सकता है, यह वह जानती थी लेकिन अपने पति के भावी दुख की कल्पना-मात्र से ही उसका मन दुख से भर गया।

वह पत्थर की प्रतिमा की भाँति खड़ी रही। नीचे छज्जे से झाँक कर वह पति की गतिविधि का निरीक्षण करती रही, पर वह तो एकाएक उसकी आँखों से ओझल हो गया था। फिर भी अंधेरे में वह अपने पति को देखने का प्रयत्न करती रही। उसका डर दस गुना बढ़ गया। उस विराट महल को तारा संगमरमर की मूर्ति की तरह देखती खड़ी रही। अन्त में वह पति की तलाश से निराश होकर वापस जाने ही वाली थी कि एक मनुष्य मूर्ति उसे फिर दिखाई पड़ी। मथुरा घोष उस समय गोदाम महल की इमारत के एक छोटे से फाटक में से बाहर निकल रहा था।

अपने पति को अपनी ही कोठी के किसी विशेष भाग से यों निकलते देख कर उसे हैरानी हुई। उस समय तक वह भय से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायी थी। इतनी रात गये, अकेले पति का इस तरह कोठी से बाहर जाना और उस विशेष हिस्से से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलना जहाँ से किसी का भी आना-जाना न होता था। किसी निशाचर या उल्लू की अमंगल सूचक चीख, जो अभी तक उसके कानों में गूँज रही थी, सब मिल कर उसके मन में एक भयानक डर पैदा कर रहे थे और किसी आने वाली विपदा की सूचना दे रहे थे। वहीं निश्चल मूर्ति की तरह खड़ी रह कर तारा फिर से पति के प्रकट होने की प्रतीक्षा करने लगी।

इस प्रकार लगभग आधा घण्टा बीत गया। लेकिन उसका पति उस दरवाजे से वापस न लौटा। जब वह वहाँ खड़ी-खड़ी थक गई तो आने वाली विपत्ति की अस्पष्ट कल्पना मन ही मन करती हुई वह अपने कमरे में लौट आई। एकाएक उसके मन में विचार उठा कि क्या इस घटना के साथ उसके पति के गुप्त रहस्यों का सम्बन्ध तो नहीं है! उसने अपना कर्त्तव्य भी निश्चय कर लिया।

कुछ देर बाद मथुरा अपने कमरे में वापस लौट आया। लेकिन अब वह पहले की अपेक्षा अधिक चंचल और बेचैन दिखाई दे रहा था। लेकिन साथ ही उसकी आँखों में गर्व भी छलक रहा था। तारा ने जो कुछ देखा था उसके बारे में उसने कोई पूछ-ताछ नहीं की, न ही जिज्ञासा प्रकट की।

| १८ |

उस कोठरी को देख कर देखने वाले के मन में अंधेरा सा छा जाता है। छत की ऊँचाई बहुत कम है। कमरे की इतनी कम जगह और छत इतनी नीची कि इसे देख कर यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह साधारण आदमियों के रहने की जगह न होकर अपराधियों को सज़ा देने के लिए बनाई गई काल कोठरी है। कमरे में सिर्फ एक ही दरवाजा था, वह भी लोहे का और खूब मजबूत। इस लौह-द्वार के अलावा और भी एक रास्ता था लेकिन इसका आकार इतना छोटा था कि एक छोटा बच्चा भी घुटनों के बल खिसक कर मुश्किल से अन्दर जा सकता था। इस छोटे पर भयानक कमरे में कोई सामान न था। यहाँ कोई था भी नहीं। यहीं माधव घोष को बन्दी बनाया गया था।

जिन लोगों ने माधव को बाँध कर बन्दी बनाया और यहाँ लाकर रखा था, वे लोग भी इस समय यहाँ न थे। दरवाजे का कुण्डा बाहर से बन्द था। माधव घोष को उस कोठरी रूपी जिन्दा—कब्र में दफनाया जा चुका था। लेकिन माधव घोष न तो डरा था न ही उसने साहस छोड़ा था। एक भयानक घृणा और झुंझलाहट से उसका मन भरा हुआ था। उसने मन ही मन दृढ़-संकल्प कर लिया था कि वह उनके अत्याचार की परवाह न करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में उस काल-कोठरी के दरवाजे के खुलने की आवाज़ आई। कुण्डा और दरवाज़ा बड़ी सावधानी से खोले गए। फिर दरवाज़ा चरमरा उठा। जिन बर्बर शत्रुओं ने उसे कैद कर रखा था उन्होंने मुँह से कोई आवाज़ निकाले बिना ही द्वार को होशियारी से फिर बन्द कर दिया।

माधव ने दरवाजे की ओर घृणा भरी दृष्टि उठाई और इस तरह वह चहल कदमी करने लगा मानो उन लोगों के आने का उसे पता ही न हो। सरदार और भीखू दोनों दीपक के काफी निकट आ कर बैठ गए। भीखू ने कमरे में खोंसी चिलम और गाँजा निकाला। गांजे को बाँए हाथ की हथेली पर रख कर मलने लगा। तब तक सरदार ने दीपक की बत्ती बढ़ा कर रोशनी तेज करते हुए कहा, 'बाबू आज तो बहुत सीधे दिखाई पड़ रहे हो ?'

चहलकदमी करते माधव ने रूठ कर उस दुष्ट की ओर इस प्रकार देखा जैसे कुछ कहना चाहता हो पर एकाएक घूम कर वह फिर चहलकदमी करने लगा। अब तक भीखू ने गांजा तैयार कर लिया था। दोनों डाकू पारी-पारी से चिलम पीने लगे। बन्दी की मूक और प्रत्यक्ष घृणा से उनका मन ऊब गया था। सरदार जितना बर्बर अपनी शक्ल-सूरत से दिखाई देता था, वास्तव में काम करने में वह वैसा बर्बर न था। तभी तो अब तक उसने कोई ऐसा कठोर मजाक नहीं किया था। फिर भी व्यंग्यभरी हँसी हँसते हुए उसने कहा, 'गाँजा पीजिए साहब ! इतना लाजवाब बना है कि लखपति भी इसके दो-एक कश लेकर अपने को धन्य समझेगा।'

माधव गुस्सा पीकर चुप रहा। सरदार का उत्साह मानो ठंडा पड़ गया। गाँजे का दम लगाते हुए वह भद्दी गालियाँ बकने और फूहड़ बातें करने लगा।

अन्त में माधव ने ही वातावरण की घुटन को तोड़ कर कहा, 'क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारे मालिक मुझे लेकर क्या करना चाहते हैं ?'

'हमारा कोई मालिक नहीं।' दम्भ से कहता हुआ सरदार फिर गाँजा का कश खींचता हुआ गंदी बातें बकने लगा।

माधव ने फिर कहा, 'मालिक न सही, पर इस काम के लिए तुमने किसका हुक्म लिया है ?'

'किसी का भी हुक्म नहीं।'

'किसी का हुक्म नहीं है तो क्यों मुझसे खिलवाड़ कर रहे हैं ?'

घमण्डी सरदार यह अच्छी तरह समझता था कि धनी और इज्जत वाले लोगों के लिए वह भय का कारण था। अब माधव की बात सुन कर उसने माधव के शान्त स्वभाव पर चोट करने की ठान ली।

तभी माधव ने पूछा, 'इस काम के लिए तुम्हें रुपया कौन देगा ?'

'सोच कर देखो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह सोचना मेरा काम नहीं है।'

तभी दबी हुई लम्बी सांस खींचने की आवाज सुन कर बातचीत में लगे दोनों आदमी चौंक कर चुप हो गए। तभी भीखू हैरानी से चिल्ला उठा, 'वह क्या ?'

सरदार भी ताजुब करता हुआ बोला, 'ठीक ही तो, वह क्या है ?'

तीनों ही कुछ देर के लिए हैरानी से खड़े रहे।

सरदार बोला, 'क्या इस कमरे में कोई और भी है ? तब तो मामला कुछ और ही बन जायगा। देखें।'

सरदार व भीखू जहाँ बैठे थे, वहीं से उस धुँधली रोशनी में कोठरी का पूरा भाग दिखाई पड़ रहा था। सरदार उठ कर एक बार चारों ओर चक्कर लगा कर देख आया, पर उसे कुछ भी दिखाई न पड़ा। अपनी जगह पर वापस आकर बेठते हुए वह बोला, 'अजीब बात है ! लेकिन जाने दो। हाँ, तो हुजूर हमारे मालिक के बारे में कह रहे थे, क्या हुजूर को मालूम है कि वे कौन हैं ?'

उसकी भाषा और कहने के ढंग से माधव को खीझ-सी आ गई लेकिन अपने पर किसी तरह नियंत्रण रख कर वह बोला, 'जानता हूँ, मथुरा घोष हैं। लेकिन उनका अभिप्राय क्या है ?'

भीखू हैरान-सा माधव को देखता रहा। सरदार के कान में उसने कहा, 'इसे सब कुछ कैसे पता लग गया ?'

सरदार ने धीरे से कहा, 'इसमें भला हैरानी की क्या बात है ! राधागंज में लोहे की काल-कोठरी और किसकी है, मथुरा के अलावा ?'

पर उसने माधव के प्रश्न का उत्तर न दिया। उससे और बातें करके वह अपना मतलब निकालने के लिए चुप बैठा रहा। भीखू का मिजाज चढ़ने लगा। वह बोला, 'हमें रुपया चाहिए, रुपया ! हाड़-मांस के आदमी को लेकर हम क्या करेंगे ?'

सरदार बोला, 'खा ले, लील जा।'

सरदार की इस दिल्लगी से भीखू कर्कश स्वर में हँस पड़ा। लेकिन तभी अचानक फिर वही रुँधी हुई आवाज सुनाई पड़ी। इस बार छत के पास से वह स्वर आ आ रहा था।

डर से सरदार के मुँह से निकला, 'अब फिर !'

भीखू तो डर के मारे पत्थर जैसा हो गया। उसने भूत-प्रेतों के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था।

माधव भी बेचैन था लेकिन किसी अन्य करण से।

तभी भीखू फुसफुसा कर बोला, 'यह जगह बहुत दिनों से खाली पड़ी रही है, जाने किसी जिन-प्रेत ने ही डेरा डाल रखा हो !'

उसका साहसी सरदार भी भूत-प्रेतों से खूब डरता था। लेकिन उसने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समय डर की परवाह न की। डाकुओं का धंधा ही ऐसा है, सदा ही नए, वीहड़ और सुनसान रास्तों पर चलना। इसीलिए इस समय जबरदस्ती वह अपने मन को मजबूत बनाए रखने का प्रयत्न कर रहा था।

सरदार ने कहा, 'लगता है, यहाँ कहीं कोई छिपा हुआ है। मैं उधर देखता हूँ, भीखू ! तुम जरा बाबू पर नजर रखना।'

सरदार ने अपनी पहनी हुई धोती को फाड़ कर थोड़ा सा कपड़ा निकाला और उसे भिगोकर आग जलाई तो रोशनी बढ़ गई। सावधानी से रोशनी लेकर, दरवाजा खोल कर वह बाहर निकल आया। एक-एक करके उसने तीनों कमरे देखे फिर बरामदे में आया, पर कहीं कुछ भी दिखाई न पड़ा। लेकिन इतनी ही देर में भीखू बुरी तरह डर चुका था। इस स्थान से जल्दी से जल्दी हट जाने को उसने सरदार से इशारा किया ताकि वे अपना काम शीघ्र ही कर लें।

सरदार ने समझा और कहा, 'माधव बाबू, अब हमें देर हो रही है। यहाँ हमारे लिए सोने का स्थान भी नहीं है। लेकिन अगर तुम्हें हमारी शर्त मंजूर हो तो तुम्हें छोड़ा जा सकता है।'

माधव ने पूछा, 'शर्त क्या है ?'

'अपने चाचा का वसीयतनामा हमें दे दो।'

बिना सोचे ही माधव ने उत्तर दिया, 'वह मेरे पास कहाँ है !'

कह कर उपेक्षा से माधव फिर टहलने लगा।

सरदार ने कहा, 'नहीं है तो तुम यहीं पर सड़ो-गलो, हम जाते हैं।'

माधव ने धीरे से कहा, 'अच्छा, अगर मैं वसीयतनामा तुम्हें देना भी चाहूँ तो यहाँ से कैसे दे सकता हूँ ?'

सरदार बोला, 'इसकी व्यवस्था तो तुम्हें ही करनी है। तुम्हारी जगह अगर मैं होता तो जिन लोगों ने मुझे बन्दी बनाया होता, उन्हीं के हाथ एक पत्र लिखकर घर भेज देता कि उसी के हाथ वसीयतनामा भेज दें।'

'अगर घर वाले पूछें कि चिट्ठी कहाँ से आई है ?'

ठीक इसी समय फिर वह आवाज सुनाई पड़ी। एक बहुत दबी व घुटी हुई आवाज जैसी मनुष्य कभी नहीं कर सकता। इस बार आवाज छत की ओर से आ रही थी।

दोनों डाकू इस बार डरसे सहम कर खड़े हो गये। माधव भी विचलित-सा हो गया। वह बोला, 'क्या इसके ऊपर भी कोई कमरा है ?'

'नहीं ! पर जाकर देखता हूँ।' सरदार झट से कूद कर दीवार पर चढ़ गया, वहाँ से छत पर। लेकिन कहीं कोई न दिखा। कोठरी के पीछे भी झाँका फिर कमरे में लौट आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधव ने पूछा, 'क्या इसके बगल में दो कमरे हैं ?'

'लगता तो ऐसा ही है ।'

'क्या किसी और को भी लाकर वहाँ रखा है ?'

'नहीं ।'

शायद कोई और भी पकड़ा गया होगा । लगता है कि शैतान की इस कैद में फँस कर कोई भयानक पीड़ा से कराह रहा है । माधव ने स्वयं से कहा, फिर मुखर होकर बोला, 'जाकर वहाँ देखो न कि वहाँ क्या कोई और भी बन्द है ?'

सरदार बोला, 'तुमने ठीक ही पकड़ा है । दरवाजे पर ताला जरूर ही बन्द है पर पुकारने पर कोई होगा तो उत्तर तो जरूर ही देगा ।'

सरदार ने कपड़े का पलीता बना कर फिर रोशनी की और जाकर देखा । लेकिन वहाँ तो दोनों कमरों के दरवाजे खुले थे । वहाँ कोई भी न था ।

माधव भी हैरान सा रह गया ।

सरदार को अब तक वहाँ भूत-प्रेतों के रहने का हो विश्वास हो गया था । डर कर भीखू भी सरदार से चिपक कर खड़ा हो गया ।

सरदार ने माधव से कहा, 'देखो, हम अब और ज्यादा देर यहाँ नहीं रहेंगे । भूत-प्रेतों की गतिविधि तो तुम जानते ही हो । यदि तुम्हें कुछ कहना है तो तत्काल कहो नहीं तो हम जाते हैं ।'

माधव ने सोच कर देखा कि फिलहाल उनकी शर्त मानने के सिवा और कोई चारा न था । अगर वे चले ही गए तो न जाने वह दरवाजा फिर कब खुले, कब तक उसे इसी में सड़ना पड़े, कौन जाने ! अगर वह उनकी शर्त स्वीकार कर लेता है तब हो सकता है कि उसके पत्र के सहारे उसके लोग उसे ढूँढ निकालें । अतः उसने यही अंतिम प्रयास करना चाहा ।

माधव ने सरदार से कहा, 'तुम्हें रुपये की ही जरूरत है न ! वसीयतनामा पा जाओगे तो रुपये ही तो पाओगे न ! जितने रुपये तुम्हें मिलेंगे उससे ज्यादा तो में ही दे सकता हूँ । वसीयतनामा की जगह रुपये लेकर मुझे छोड़ दो ।'

सरदार ने कहा, 'नहीं, नहीं ! इससे हमें कोई मतलब नहीं । हम लोग इतने बेवकूफ नहीं हैं कि तुम पर यों ही विश्वास कर लें । एक बार तुम हाथ से गये तो फिर हाथ न आओगे । फिर तो तुम कौन, मैं कौन ? अगर चाहो तो चिट्ठी दो, नहीं तो हम चलते हैं ।'

तभी कमरे के भीतर ही कपड़े की सरसराहट सुनाई पड़ी । डाकुओं ने सोचा कि अब यहाँ पर और न ठहर कर भागना ही ठीक है । माधव उनका चेहरा देख कर उनके मन की बात समझ गया और कागज-कलम माँगने लगा । कागज-कलम तो वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
साथ ही लाए थे। उसे लेकर माधव अपने घर के प्रधान मुंशी के नाम चिट्ठी लिखने लगा।

सरदार ने रोका, 'जैसा मैं कहूँ, वही लिखते जाओ। धोखा देकर, हमें फँसा दो ऐसा नहीं हो सकता। याद रखना, कभी मैं भी तुम्हारी ही तरह लिखना-पढ़ना जानता था।'

माधव ने कलम रोक कर हैरान दृष्टि से डाकू सरदार की ओर देखा और उसके कहे अनुसार ही लिखने लगा।

ठीक इसी क्षण कुण्डे की गंभीर झन-झन के साथ एक भयंकर शोर सुनाई दिया। दूसरे ही क्षण यह भयंकर शोर और तेज हो गया। भीखू ने एक छलाँग में ही दरवाजा पार किया और कमरे से बाहर निकल गया। सरदार भी भाग कर बाहर निकल आया। वहाँ उसने जो दृश्य देखा, उसे देख कर वह दरवाजा बन्द किए बिना ही भाग खड़ा हुआ।

अब माधव पूरी तरह मुक्त था। थोड़ी देर तो वह यों ही चुपचाप खड़ा रहा। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने व्यवहार पर लज्जित होकर वह कमरे से निकल कर बरामदे में आ गया। पहले तो उसे कहीं कुछ भी दिखाई न पड़ा लेकिन कुछ क्षण इधर-उधर देखने के बाद उसने देखा कि एक दरवाजे से खुले आंगन में रोशनी की एक क्षीण रेखा सी आकर खड़ी हो गई है। वह उसी ओर लपक कर गया तो देखा कि वहाँ एक औरत खड़ी है। एक छोटी सी लालटेन भी जमीन पर रखी थी। लालटेन को हाथ में उठा कर माधव ने जब देखा तो उसने जो कुछ भी देखा उससे उसका डर जाता रहा।

हैरानी से माधव ने पूछा, 'तारा!'

तारा भी विस्मय से मूक थी। बोली, 'तुम, माधव!'

लेकिन उस समय भी ऊपर से वही कराह की आवाज आ रही थी।

१९

बचपन से ही तारा और माधव एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे। तारा के पिता और माधव के नाना एक ही गाँव के निवासी थे। बचपन में माधव अक्सर अपने नाना के यहाँ उस गाँव में जाया करता था। तारा उसी समय की उसकी बचपन की सखी थी। दूर का ही सही, पर उनमें कुछ रिश्ता जरूर था, तभी तो वह बचपन में उसकी सखी बन गई थी। माधव उम्र में उससे दो-चार साल छोटा था फिर भी उसका नाम लेकर तारा ही पुकारता था। तारा का मथुरा के साथ ब्याह हो जाने के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भी परस्पर उनके मनोभव में कोई अन्तर न आया था। बचपन के बेरोक-टोक मेल-मिलाप से एक दूसरे के प्रति उनमें जो प्रेम जाग चुका था वह अपने स्थान पर अमिट था। चाची के साथ माधव के मुकदमें में धन की आशा के कारण मथुरा चाची को छिपा कर मदद देता रहता था। यह बात माधव अच्छी तरह से जानता था। इसी बात को ले कर रिश्ते के दोनों भाइयों में मनमुटाव व अनबन हो गई थी। पहले माधव कभी-कभी मथुरा के घर आता-जाता था पर इसी बात को लेकर आना जाना बन्द हो गया था। मथुरा से माधव काफी छोटा था इसलिए तारा के साथ बातचीत करने में कभी कोई रुकावट न थी। माधव भी इसका लाभ उठाने में कभी पीछे नहीं रहा। दोनों ही एक दूसरे से स्नेह और एक दूसरे का आदर करते थे। प्यार के इस रिश्ते में दोनों के मन में लेश-मात्र भी मैल न था। बचपन की प्रीति, प्रतिदिन के जीवन में नित्य के व्यवहार तथा एक-दूसरे के प्रति उच्च आदर्श का बहता हुआ आदर भाव एक ऐसे स्नेह का रूप धारण कर चुके थे कि जिसे भाई-बहन की प्रीत की भाँति अलग नहीं किया जा सकता था। इतना सब होते हुए भी आज अचानक जब तारा और माधव गोदाम-महल में एक दूसरे के सामने खड़े हुए तो दोनों ही एक अजीब सी बेचैनी का अनुभव करने लगे। आखिर तारा ही बोली, 'अरे माधव, तुम यहाँ ?'

माधव पलट कर तारा से यही प्रश्न न दुहरा सका और यह भी समझ न पाया कि वह क्या जवाब दे। तारा भी खामोश खड़ी रही पर ऐसी स्थिति में औरतें ही पहले अपने आपे में आती हैं। तारा को अपने चरित्र पर पूरा भरोसा था और माधव की ओर से भी उसे किसी प्रकार के भय की आशंका न थी। उसके प्रति माधव के मन में कितना स्नेह और आदर-भाव है यह वह अच्छी तरह और खूब जानती थी। यही सोच कर तारा ने पूछा, 'देवर जी, पहले यह बताओ कि यमदूतों की तरह दिखने वाले जो दो आदमी अभी यहाँ से भागे थे वे कौन थे ? उन लोगों से तुम्हारा क्या काम था ? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। जब मैं बरामदे में खड़ी थी तब एक आदमी गोल-गोल आँखों से मुझे घूरता हुआ, मुझे चुड़ैल समझ कर डर कर भाग गया।'

'तो क्या तुमने ही दरवाजा खोल कर कुण्डे की आवाज की थी?'

'हाँ, दरवाजा मैंने ही खोला था। मैं भीतर घुसने ही जा रही थी कि उन यम-दूतों को देख कर, डर कर बाहर वापस लौट आई।'

'लेकिन यह आवाज कहाँ से आ रही थी ?'

'कैसी आवाज ?'

'तो क्या तुमने वह अजीब सी आवाज नहीं सुनी ?'

'सुनी है, दुख से भरी कराह ! मैंने तो समझा था कि वह कराह तुम्हारे ही कमरे से आ रही है।'

'नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं, तुम मुझे डराने की कोशिश मत करो। मैं लौट जाऊँगी।'

'मैं यहाँ क्यों आया हूँ ? यह जाने बिना ही लौट जाओगी ?'

'नहीं, नहीं। जल्दी से बताओ कि तुम यहाँ कैसे आए ? फिर मैं तुम्हें अपने आने का कारण बताऊँगी। जल्दी करो।'

'लेकिन पहले सावधान हो जाना पड़ेगा। कहीं आसपास कोई है तो नहीं ? यह मैं क्यों कह रहा हूँ। यह तुम जल्दी ही समझ जाओगी।'

माधव एक बार बाहर निकला और महल से बाहर जाने वाले दरवाजे की सांकल लगाने लगा फिर वह उसी कमरे में लौट आया जिसमें वह बन्द था। तारा को भी वहीं बुला लिया। फिर अपने बन्दी बनने का इतिहास सुनाने लगा। उसने एक अक्षर भी छिपाए बिना सब कुछ सुना दिया। उसके मन में झुँझलाहट और घृणा की सीमा न थी। वह जानता था कि तारा को अपने पति से कितना ही अधिक प्रेम क्यों न हो, उसके हृदय की पवित्रता पति के इस घृणित काम में साथ न देगी। सब सुन कर तारा दुख से छटपटाने लगी। उसका मन भी पति की ओर से घृणा से भर गया।

तारा बोली, 'इसके अर्थ हैं कि मैं जिसे खोजने निकली हूँ वह तुम नहीं हो।' वास्तव में पति को चिंतित व दुखी देख कर उसके मन में तरह-तरह की आशंकाएँ पैदा हो रही थीं। लेकिन वह किसी प्रकार भी पति की दुश्चिन्ता का कारण न जान सकी। उसने जब छिप कर पति को गोदाम-महल की ओर आते देखा था तभी सोचा था कि वह राज शायद यहीं छिपा हो। मन ही मन रहस्य जानने की इच्छा लिए वह सोए हुए पति की तकिए के नीचे से चाभी का गुच्छा उठा कर खोजती हुई यहाँ आ पहुँची थी।

तारा ने कहा, चाभी का गुच्छा लिए न जाने किस अलौकिक शक्ति के कारण मैं इस डरावनी दीवार को बगल के अंधेरे रास्ते से होती हुई यहाँ तक आ गई। क्योंकि अपनी जान दे कर भी मैं यदि अपने पति की खुशी लौटा पाती तो मैं यह करने को भी तैयार थी ! इसीलिए, सोचो तो कि पहले पहल तुम्हें यहाँ देख कर मेरे मन की क्या दशा हुई होगी ! अपने पति के दुख का कारण तुम्हें समझ कर मेरा मन तुम पर अप्रसन्न हुआ था। लेकिन तुम तो कह रहे हो कि तुम आज शाम ही यहाँ लाए गए हो। तब तो अवश्य ही कोई और कारण होगा।'

माधव बोला, 'तुम्हें मैं यों निराश न जाने दूँगा। वह आवाज जो तुमने सुनी है, उसका भेद तो अभी तक मिला ही नहीं।'

डर के मारे तारा का समूचा शरीर काँपने लगा।

माधव ने कहा, 'डरो मत, डरने की जरूरत नहीं है। पर जब तुम वायदा करोगी कि तुम डरोगी नहीं तभी बताऊँगा।'

उत्सुकता से भर कर तारा बोली, 'बताओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तब माधव ने डाकुओं के साथ बातचीत करते समय जो कुछ सुना था उसे बता दिया और इस ढंग से बताया कि तारा ये सब बातें भूत-प्रेत की न समझे।

मन से बहुत पीड़ित हो तथा डर कर तारा दुखी हो उठी। स्त्री स्वभाव से ही भूत-प्रेत से डरने वाली होती है। पति की चिन्ता की खोज करने में उसका इस प्रकार की घटना से सामना होगा, यह वह सोच भी नहीं सकी थी। उसे मन में पछतावा भी हो रहा था। उसने हठ कर के माधव से कहा कि वह उसे भीतरी ड्योढ़ी तक छोड़ आवे।

माधव ने जोश में कहा, 'बस इतने से ही हार मान गई ? मैं कसम खाकर कहता हूँ कि इसमें डरने की कोई बात नहीं है।'

माधव के मन में उत्तेजना और कौतूहल इस हद तक बढ़ चुका था कि वह यह भी भूल गया था कि उसका इस प्रकार तारा के माथ रहना असामाजिक और निन्दापूर्ण है।

पहले तो तारा काफी देर तक शान्त रही फिर साहस जुटा कर बोली, 'ढूँढो गे कहाँ ? क्या डाकुओं ने सब जगह ढूँढ़ नहीं ली होगी ?'

'जरूर ढूँढी है, पर मुझे लगता है कि एक जगह उन्होंने नहीं देखी। वह जो दरवाजा देख रही हो', माधव ने इशारे से लोहे का एक दरवाजा दिखाया जो अभी तक भी नहीं खुला था। बोला, 'वह जरूर वहाँ जाने का रास्ता होगा।'

ठीक इसी क्षण फिर वहीं दर्द भरी आवाज सुनाई पड़ी, इस बार बहुत साफ। लगता था जैसे कहीं बहुत पास से ही कराहने की आवाज आ रही थी। इस बार दोनों ही चौंक उठे। वेदना में डूबा वह स्वर दोनों को पीड़ा पहुँचा रहा था।

माधव के सिर पर जैसे वज्र सा गिरा। एक कराहनीय चोट से वह तिलमिला उठा। तारा के हाथों से चाभी का गुच्छा छीन कर वह जल्दी से उस लोहे के दरवाजे पर पहुँचा और घुटने के बल झुक कर ताले के छेद में चाभी डाल कर घुमाया, पर चाभी न लगी। पागलों की तरह झपट कर उसने दो और चाभियाँ लगाईं पर वह असफल रहा। यदि उसके वश में होता तो वह ताला तोड़ कर भीतर चला जाता लेकिन चौथी चाभी लगाते ही स्प्रिंगदार दरवाजा यों खुला कि जैसे उसमें बिजली का करेंट आ गया हो। उल्लास से माधव सब कुछ भूल गया और औरों से चिल्लाया, 'तारा देरी मत करना। मेरे पीछे-पीछे आना', कहता हुआ वह पागलों की भाँति अन्दर की ओर दौड़ा। अधिक जल्दी के कारण उसके बदन पर खरोंचें भी आ गई थीं।

तारा भी उत्सुकतावश रोशनी लिए आगे बढ़ी। आनन्द तथा हैरानी से माधव ईंट की बनी एक-एक सीढ़ी खोजता रहा। सीढ़ी बहुत ही संकरी और सीधी थी, मकड़ी के जाले से खूब लगे थे। माधव बिना कुछ बोले छलाँग लगाता हुआ सीढ़ी पर चढ़ने लगा और हैरानी से विमूढ़ तारा भी उसका पीछा करने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीढ़ी पार कर के एक दरवाजा था, लेकिन वह दुमंजिले पर न था। माधव समझ गया कि यही चोर कोठरी है। घर के किसी भी अन्य हिस्से से यह दिखाई नहीं देती क्योंकि एक ही कमरे को बाँट कर ऊपर-नीचे दो कोठरियाँ बनाई गई हैं। बगल के दूसरे कमरे और दीवाल की ऊँचाई से मिले होने के कारण किसी अन्य स्थान का अनुमान लगाना भी कठिन था। ऊपर वाली कोठरी में तो खिड़की भी न थी।

उत्तेजना से माधव का शरीर काँप रहा था। दो तीन बार प्रयत्न में असफल होकर अन्त में उसने अपने जख्मी हाथों से दरवाजा खोल ही दिया। झनझन की आवाज से सारी कोठरी झनझना उठी। तारा और माधव भीतर गये। देखा कि वहां वार्निश किया हुआ महोगनी लकड़ी का एक पलंग बिछा था। और दीपक की धुंधली रोशनी में एक नारी मूर्ति उस शैया पर लेटी थी। उस मूर्ति को देखकर मातंगिनी की याद आ गई जो अपने कमजोर शरीर में भी सुन्दर नजर आ रही थी।

२०

मातंगिनी की प्राण-शून्य देह को उठा कर माधव और तारा एक ऐसी जगह ले गए जहाँ किसी अन्य व्यक्ति का आना-जाना संभव न था। तारा की अथक और स्नेहमयी सेवा तथा खुली स्वच्छ हवा के स्पर्श से मातंगिनी के मुख पर जल्दी ही लाली दिखाई पड़ी। फिर भी उसके निर्बल शरीर में पूरी ताकत नहीं आई। खिड़की पर बैठ कर तारा मातंगिनी से उसका इतिहास सुनती रही। मातंगिनी बहुत धीरे-धीरे थके स्वरों में सब बता रही थी। उसकी ऐसी स्थिति थी जैसे उसे जिन्दा ही मृत की समाधि में डाल दिया गया था।

हुआ यह था कि जिस समय मथुरा घोष ने सुकी की माई को मातंगिनी को घर पहुँचाने को कहा था उस समय वह सोच भी न सकी थी कि वह कैसे इस राक्षस की कैद में फँस जायेगी। सुकी की माई को पहले ही समझा-बुझा दिया गया था। उसे रास्ते में ही मातंगिनी से पूछा था कि घर वापस जाते हुए उसे डर तो नहीं लग रहा है?

मातंगिनी ने कहा था, 'सुकी की माँ, सच पूछो तो अगर मेरे लिए रहने को कोई और ठिकाना रहता तो मैं वहाँ कभी वापस न जाती।'

उस चुड़ैल ने कहा था, 'अच्छा तो मैं तुम्हें एक ऐसी जगह पर छिपा सकती हूँ जहाँ से कोई तुम्हें खोज कर निकाल ही नहीं सकता।'

तब बहुत सोच कर मातंगिनी ने कहा था, 'नहीं, मैं छिप कर नहीं रहूँगी। लोग तरह-तरह की बातें उठावेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तो अपनी बहन के घर चली जाओ।'

'ऐसा तो कदापि नहीं हो सकता।' आह भर मातंगिनी ने कहा।

वह बुढ़िया बड़ी चलाक व चलता पुर्जा थी। वह मतंगिनी के प्रति दया दिखा कर उसे अपने बाप के घर ले जाने का बहाना करने लगी। तब मातंगिनी ने बड़े दुख से अपनी विवशता बताई 'लेकिन मेरे पास जाने का खरचा नहीं है।'

'ओह खरचे की चिन्ता तुम क्यों करती हो? बड़ी अम्मा तुम्हारे लिए नाव किराए पर कर देंगी और मैं तुम्हें वहाँ तक छोड़ आऊँगी।'

मातंगिनी फफक कर रोपड़ी। कृतज्ञता से उसका मन भर आया। उसकी मानसिक स्थिति को समझ कर बुढ़िया ने पूछा, 'तो मैं बड़ी अम्मा से कह आऊँ?'

'हाँ कह आओ।'

'तो मैं तुम्हें जहाँ बैठा जाऊँ वहीं बैठी रहना ताकि तुम्हें कोई देख न ले।'

बस इसी बात के बाद उस चुड़ैल के पीछे चलती हुई मातंगिती गोदाम-महल की चोर कोठरी में पहुँच गई। इस सुनसान अँधेरे कमरे की सजावट देख कर मातंगिनी बहुत हैरान हुई। सुकी माई से इस स्थान के बारे में पूछने को मातंगिनी घूमी तो पाया कि वह चुड़ैल तब तक गायब हो चुकी थी और दरवाजा बाहर से बन्द हो चुका था।

बुद्धिमती मातंगिनो को समझते देर न लगी कि वह बुरी तरह फन्दे में फँस गई है। वह सोचने लगी कि इस दशा में उसे अब क्या करना चारिए। लेकिन वह कोई उपाय तत्काल सोच न पाई।

उसे शाम को मथुरा घोष ने आकर अपने-आपको उसके चरणों पर डाल दिया।

घृणा से भर कर मातंगिनी ने जब उसे फटकरा तो उसने भी अपनी घृणित लालसा मिटाने का और बदला लेने का मन ही मन निश्चय कर लिया। उस समय मातंगिनी से विदा लेते हुए मथुरा घोष ने स्पष्ट रूप से कहा, 'प्राणकारी! तुम्हें अपने आपको मुझे सौंपना ही पड़ेगा।'

मातंगिनी की आँखों से उस समय क्रोध की जो ज्वाला बरस रही थी उससे एक नहीं बीस पुरुषों के कलेजे भी भस्म हो जा सकते थे। उसने घृणा से चीख कर कहा, 'कभी नहीं, मैं कभी भी तुम्हारी नहीं हो सकूँगी। 'फिर वह मथुरा के सामने आकर अपनी लम्बी काया तान कर खड़ी हो गई और बोली, 'मेरी ओर देखो, में निर्बल नारी हो कर भी अभी युवती हूँ मुझमें कम ताकत नहीं है। तुम अकेले मुझसे ताकत आजमा कर देख लो, हाँ अगर तुम कायर की तरह कहीं अपनी किसी साथी को न बुला लेना।'

मथुरा उसकी शक्ति और आत्मविश्वास को देख कर दंग रह गया। फिर बोला, 'अच्छा तो तुम्हारी जठराग्नि ही मेरी सहायता करेगी। मैं नारी के विरुद्ध किसी अन्य शस्त्र का प्रयोग नहीं करूँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातंगिनी बोली, 'ठीक है। उपवास ही मेरा एक सहारा है।'

मथुरा ने सोचा कि वह मातंगिनी को खाना न देकर, भूखा रख कर उसे विवश करके अपनी लालसा पूरी करने के लिए अपने रास्ते पर ला सकेगा, पर मातंगिनी ने तो अपनी रक्षा के लिए अपने प्राण देने का ही निश्चय कर लिया था।

और दोनों ने अपनी-अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इस समय मातंगिनी उपवास के कारण ही इतनी कमजोर और मृत-प्राय सी हो रही थी।

सबेरा होने से पहले ही माधव चला गया पर शरीर अत्यन्त कमजोर होने के कारण मातंगिनी न जा सकी। माधव और तारा ने सलाह की कि शाम तक मातंगिनी तारा के ही पास रहेगी। शाम के बाद करुणा आकर उसे ले जाएगी!

तारा माधव को घर के बाहर तक छोड़ आई। फिर वापस आ कर वह हँसी करते हुई बोली, 'अब कैद करने की बारी उसकी है।' इतना कहते हुए उसने खूब सतर्कतापूर्वक दरवाजा बन्द कर दिया। फिर वह चाभियों का गुच्छा पति के कमरे में ठीक जगह पर रख कर लौट आई और बिस्तर पर लेट गई। उस रात फिर एक चूहे ने भी तनिक सा शोर नहीं किया। लेकिन इतनी शांति में भी तारा सो न पाई। अब उसने अपने पति की गुप्त बातों को जान लिया था। उसके उदार हृदय पर यह ज्ञान का असह्य पीड़ा छोड़ गया था। इस बात को जिस-जिसने भी जाना, उनमें से सबसे अधिक दुख इसी प्रेममयी तथा पतिव्रता पत्नी ने पाया। पति के गुप्त रहस्यों को जान लेने के बाद उसका कलेजा बार-बार काँप उठता था।

उस दिन मातंगिनी ने सारा दिन उसके निर्जन कमरे में आकर बिताया। शाम को आकर करुणा उसे लिवा ले गई। बहुत दिनों से दुर्दशा और क्लेश भोगते रहने के बाद मातंगिनी ने हेमांगिनी को अपनी बाँहों में भर लिया।

मिलन की प्रथम-प्रसन्नता कुछ कम होने पर हेम ने कहा, 'दीदी; वायदा करो कि फिर कभी मुझे छोड़ कर नहीं जाओगी।'

मातंगिनी ढंडी आह भरने लगी। उसकी आँखें बरसने लगीं।

हेम दुख से बोल उठी, 'दीदी मेरी बात का उत्तर दो न! हाय-हाय! ऐसा लगता है कि फिर हमलोगों में एक बार बिछोह होगा।'

मातंगिनी जब चुप रही तो निराश हेम ने फिर कहा, 'दीदी, भला बताओ न कि अब किस अपराध के कारण हमें फिर छोड़ कर चली जाओगी?'

बहुत देर बाद मातंगिनी ने कहा, 'पिता के पास जाऊँगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१

उस दिन शाम को बड़ी तेज आँधी आई और चारों ओर अंधकार छा गया। बिजली की कड़क से आसमान भी काँप उठा। मथुरा घोष अकेला ही बैठा था। विश्राम के समय उसे आँधी की हुँकार में मानो शंख की आवाज सुनाई दे रही थी। पहले उसने सोचा कि जिन लोगों ने उसके जीवन में कलंक और दुर्दशा पैदा की है उनकी पुकार की परवाह वह न करेगा। परन्तु जब संकेत-ध्वनि लगातार ऊँची होती गई तो वह उठा और निश्चय स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ पेड़ के नीचे खड़ी आकृति को देख कर उसे डाकू सरदार के रूप में पहचानते उसे देरी न लगी।

तनिक व्यंग्य भरे शब्दों में मथुरा ने कहा, 'हमारे साथ काफी खेल हो चुका। आखिर मामला क्या है ? मुझ पर बहुत काफी कलंक लग चुका। तुमने मुझे काफी धोखा दिया।'

सरदार ने शांत मन से उत्तर दिया, 'धोखा हमने कभी नहीं दिया। जहाँ तक हो सका है, हमने आपका साथ ही दिया है। लेकिन हमारे साथ रहनेवालों को भी आखिर तक सजा भोगनी पड़ती है।'

मथुरा ने सरदार को लगातार उपदेश देते देख कर क्रोध से कहा, 'तुम अच्छी तरह जानते हो कि अब तुमसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन इस भयानक तूफानी रात में तुमने मुझे क्यों बुलाया है ?'

क्रोध से काँपते हुए सरदार ने कहा, 'क्यों, क्यों ? क्या इसीलिए कि इस समय के अलावा किसी और समय हमारे लिए निकलना मुश्किल है। जानते हो कि पुलिस हर समय हमारे पीछे पड़ी रहती है।'

'तो राधागंज छोड़ कर कहीं और चले क्यों नहीं जाते ?'

सरदार के चेहरे पर व्यंग्य की हँसी छा गई। वह बोला, 'पहले तो कभी ऐसी बातें न करते थे ! बाबू, अब शायद तुम्हारे बुरे दिन आ गए हैं। परन्तु इतना तो मानोगे न कि हम जिन लोगों का काम करते हैं उनके बारे में अच्छी धारणा भी रखते हैं।'

मथुरा ने पूछा, 'मतलब ?'

क्रोध से भरी आवाज में सरदार बोला, 'जो इतने दिनों तक मेरे साथ-साथ छाया की तरह रहता था, आज वह भी मेरे साथ नहीं है।'

'हाँ, सो तो देख ही रहा हूँ। लेकिन वह गया कहाँ ? उसका नाम क्या है ? शायद भीखू है न ! खूब याद आया।'

'हाँ, वह पकड़ा गया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरा चौंक पड़ा फिर बोला, 'कोई और घटना तो नहीं घटी ?'

सरदार के स्वर में निराशा भरी थी। बोला, 'वह भी हो गई है। भीखू ने सब कुछ मान लिया है।'

घबरा कर मथुरा ने पूछा, 'क्या मान लिया है ?'

निराश सरदार बोला, 'बहुत कुछ ! जो कुछ उसने स्वीकार कर लिया है उससे मुझे और तुम्हें काले पानी की सजा मिल सकती है। लेकिन मुझे वह लोग पकड़ नहीं सके। राधागंज में यह मेरा अंतिम दिन है। हमने तुम्हारी भलाई करनी चाही। कोई कभी यह न कहे कि हमने तुम्हारी भलाई नहीं की। इसीलिए सावधान करने चला आया।'

इतना कह कर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही सरदार झाड़ी में गायब हो गया।

घर लौट कर मथुरा लगभग दो घण्टे तक सोचता रहा। उसकी मानसिक शक्ति काफी तेज थी। उसने हिम्मत जुटाई। वह जानता था कि पुलिस रुपयों की लालची और बेईमान है। धन की उसके पास कमी नहीं है। भरपूर घूस देकर वह पुलिस का मुँह बंद कर देगा। शहर में मजिस्ट्रेट भी एक लफंगा आदमी ही है। हर एक मामले में टाँग अड़ाना उसका स्वभाव है। वे अक्सर पुलिस के अनेक पापों का प्रायश्चित करने का प्रयास करते हैं। मथुरा जानता था कि वह मजिस्ट्रेट रूपी-आइरिश और लफंगे आदमी से भीखू का इकरारनामा बदलवा देगा। तभी किसी के भाग कर भीतर आने की आवाज से उसके चिन्तन में बाधा पड़ी। आने वाला एक सरकारी कर्मचारी था।

आते ही चिल्ला कर उसने कहा, 'बाबूजी, भागिए ! अब एक क्षण की भी देरी ठीक नहीं।'

हैरान मथुरा बोला, 'क्यों क्या बात है ?'

'भीखू ने मजिस्ट्रेट के सामने मान लिया है कि कई डकैतियाँ और राहजनी के काम उसने आपके ही कहने पर किया है।'

'क्या मजिस्ट्रेट के सामने उसने मान लिया ?' पूछते ही मथुरा का चेहरा पीला पड़ गया।

'उसका इकरारनामा लिखे जाने के बाद ही मैं भागता हुआ यहाँ आपको खबर देने आया हूँ। मेरा ख्याल है कि आज रात में ही वे राधागंज आवेंगे।'

मथुरा बोला, 'राधागंज ! आज रात में ही ?'

'हाँ हुजूर, अब जल्दी कीजिए, यहाँ से भागिये।'

'हाँ, जरूर भागूँगा।'

अगले ही दिन वह आइरिश अफसर मथुरा घोष को हथकड़ी पहनाने उसके घर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पहुंचा। उसके पीछे अनेक सुसज्जित सिपाही और बहुत से लोग थे। मथुरा घोष के मकान का कोना-कोना छान मारा पर वह कहीं न मिला।

आखिर मथुरा घोष, उसी कोठरी में जहाँ माधव बन्द था, मृत दशा में पड़ा पाया गया। उसने गले में फाँसी लगा कर आत्महत्या कर ली थी।

सरदार तो निश्चित रूप से भाग गया। लेकिन राजमोहन न भाग सका। भीखू के इकरारनामे से वह भी बुरी तरह फँस गया था और पकड़ा गया था। पर ज्यादा बुद्धिमानी दिखाने के सम्पूर्ण रूप में भीखू तथा राजमोहन दोनों को ही कालापानी भेज दिया गया।

माधव के घर मातंगिनी रह न सकी। दोनों ही इसका कारण अच्छी तरह जानते थे। उसे उसके पिता के घर भेज दिया गया। वह खुद आकर लिवा ले गये। माधव ने उस वृद्ध की माहवारी सहायता में कुछ वृद्धि कर दी। मातंगिनी के जीवन का का अन्त अल्पायु में ही हो गया।

तारा अपने पति के भयंकर जीवन का अंत देख कर मन ही मन चुपचाप वह कुछ सोचती रही। उसने शांति से लम्बा, विधवा का जीवन बिताया और जब वह मरी तो लोगों ने दुख प्रकट किया।

माधव, चम्पा और अन्य लोगों में कई लोग मर चुके हैं। उनके जीवन का इतिहास बहुत संक्षिप्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गेशनन्दिनी

□

[रचनाकाल : सन् १८६५]

□

बंकिमचन्द्र के उपन्यासों में 'दुर्गेशनन्दिनी' सर्वप्रथम प्रकाशित उपन्यास है। सन् १८६५ में ही यह कृति बंगला में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। संभवतः यही बंकिमचन्द्र की पहली प्रकाशित रचना भी है। यह कृति बंकिमचन्द्र ने अपने ज्येष्ठ-भ्राता श्री श्यामाचरण चट्टोपाध्याय को समर्पित की थी।

'दुर्गेशनन्दिनी' का जन्म किस घटना से हुआ, इसका विवरण बंकिमचन्द्र के कनिष्ट भ्राता श्री पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय ने इस रूप में दिया है :

'....हमारे पितामह एक सौ आठ वर्ष की आयु तक जीवित रहे।....उनके निकट बैठ कर बंकिमचन्द्र और मैं उनसे खूब कहानियाँ सुना करते थे। उनकी कहानियों में अधिकांश ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिए होतीं; विशेषकर बंगाल के मुसलमान-शासकों से संबंधित।....उन्हीं से बंकिमचन्द्र ने सर्वप्रथम गढ़ मंदारन की घटना के बारे में सुना। उन्होंने उस समय के मुस्लिम बादशाहों के बारे में बहुत-सी बातें बताईं और बहुत-सी घटनाओं का उल्लेख भी किया। मंदारन ग्राम जहानाबाद और विष्णुपुर के मध्य में स्थित है। उस अंचल में मंदारन की घटनाओं को लेकर बहुत-सी किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। बंकिमचन्द्र ने मंदारन ग्राम की यात्रा की, वहाँ के जमींदारों के गढ़ों के भग्नावशेषों को देखा। वहीं सुना कि उड़ीसा की ओर से पठान आ कर वहाँ लूटपाट करते थे और स्त्रियों को बन्दी बना कर ले जाते थे। राजपूत-कुल-तिलक कुमार जगत सिंह ने उनकी रक्षा का बीड़ा उठाया और वे बन्दी बने।....यह कथा बंकिमचन्द्र ने अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की आयु में सुनी थी। कई वर्षों तक उनके मन में बसी रह कर 'दुर्गेशनन्दिनी' उनकी अमर रचना के रूप में अवतरित हुई।'*

'दुर्गेशनन्दिनी' की रचना से बंगला साहित्य में नवयुग का प्रादुर्भाव हुआ। इसके प्रकाशन के पूर्व स्वयं बंकिमचन्द्र को विश्वास न था कि उनकी यह रचना इतना यश कमाएगी। निंदा-प्रशंसा की सम्भावनाओं के बीच वे स्वयं चिन्तामग्न थे और इसके प्रकाशन के प्रति बहुत उत्साहित न थे। लेकिन जब 'दुर्गेशनन्दिनी' पुस्तक रूप में सामने आई और साहित्य के पंडितों ने इस रचना का मुक्तकण्ठ से अभिनन्दन किया तो बंकिम-चन्द्र कुछ उत्साहित अनुभव करने लगे।

* बंकिम-प्रसंग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दुर्गेशनन्दिनी' के प्रकाशित होने पर सम-सामयिक पत्रिकाओं में इसकी विचित्र और विशद् आलोचना हुई। 'संवाद-प्रभाकर', 'रहस्य-सन्दर्भ', 'हिन्दू-पेट्रियट' में प्रकाशित आलोचनाएँ उल्लेखनीय हैं। अधिकांश आलोचनाएँ प्रशंसापूर्ण थीं।

बंकिमचन्द्र के जीवन काल में ही 'दुर्गेशनन्दिनी' के तेरह संस्करण बंगला भाषा में हो चुके थे, और अंग्रेजी, हिन्दी और कन्नड़ में अनुवाद भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला भाग

| १ |

देवमन्दिर

सन् १५९० ई० में गरमी के अन्तिम दिनों में एक दिन एक घुड़सवार विष्णुपुर से मन्दारन के रास्ते पर अकेले चला जा रहा था। दिनमान को अस्ताचल जाने के लिये उद्यत देख कर घुड़सवार ने घोड़े को तेजी से दौड़ाना शुरू किया। सामने था लम्बा मैदान, देख कर घुड़सवार ने सोचा कि काल-धर्म के अनुसार यदि प्रदोष-काल में आँधी-पानी का प्रबल वेग शुरू हो जायेगा तो इस खुले मैदान में निराश्रय रहने में बड़ा कष्ट झेलना पड़ेगा। फिर भी मैदान पार होते-होते सूर्यास्त हो गया। क्रमशः आकाश भी नीला-काला होने लगा। रात्रि के इस प्रथम चरण में ही चारो ओर ऐसा गहरा अंधेरा छा गया कि घोड़ा बढ़ाना मुश्किल होने लगा। ऐसी स्थिति आ गई कि मात्र बिजली चमकने पर ही उसकी रोशनी में राहगीर आगे बढ़ पा सकता था।

थोड़ी ही देर में महा-हंगामे के साथ गरमी का तूफान चालू हो गया। साथ ही प्रबल वेग से वर्षा भी शुरू हो गई। घुड़सवार को फिर रास्ते का अन्दाज मिलना बन्द हो गया। उसने विवश होकर घोड़े की लगाम ढीली कर दी। घोड़ा अब अपनी ही तबियत से बढ़ने लगा। इसी प्रकार कुछ दूर चलने के बाद अचानक घोड़े को एक किसी कठोर चीज की ठोकर लगी। उसका पैर फिसल गया। ठीक उसी क्षण एक बार फिर बिजली कौंधी। घुड़सवार को सामने पड़ी कोई सफेद चीज क्षण भर को दिखाई दी। उस सफेद स्तूप जैसी चीज को मकान का भाग समझ कर घुड़सवार कूद कर घोड़े की पीठ पर से जमीन पर आ गया। अब उसने जाना कि घोड़े के पाँव में पत्थर की सीढ़ियों की ठोकर लगी है। अब पास ही आश्रय के लिए स्थान देख कर घुड़सवार ने घोड़ा वहीं छोड़ दिया। अब वह उसी अंधेरे में पूरी सतर्कता के साथ सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। फिर बिजली कौंधने पर घुड़सवार की मालूम हुआ कि सामने की अट्टालिका एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
देवमन्दिर है। सावधानीपूर्वक वह उस देवमन्दिर के दरवाजे तक जा पहुँचा। देखा दरवाजा बन्द है। धक्का देने पर मालूम हुआ कि दरवाजा बाहर से नहीं, भीतर से बन्द है।

सुनसान मैदान के बीच बने इस जनहीन स्थान पर ऐसे समय मन्दिर के दरवाजे कौन भीतर से बन्द करेगा ? यह सोच कर घुड़सवार का विस्मित और आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक ही था। सिर के ऊपर प्रबल वेग से वर्षा हो रही थी, इसलिए वह बराबर दरवाजे पर चोट करने लगा, ताकि भीतर जो हो वह दरवाजा खोल दे। लेकिन मन्दिर के भीतर से दरवाजा खोलने कोई न आया। एक बार तो उसके मन में आया कि पाँवों से धक्का मार कर दरवाजा तोड़ दे, लेकिन देवमन्दिर के दरवाजे को पैरों से तोड़ना देवालय के प्रति अप्रतिष्ठा होगी, अतः वैसा न कर सका। लेकिन पूरी शक्ति से हाथों से दरवाजा भड़भड़ाना बन्द नहीं किया। थोड़ी देर बाद भीतर से अर्गला खुली। द्वार खुलने पर ज्यों ही युवक पथिक मन्दिर के भीतर गया कि उसके कानों को एक अस्फुट चीख सुनाई पड़ी और ठीक उसी समय, दरवाजे से आते हवा के तेज झोंकों से वहाँ टिमटिमाता दीपक भी बुझ गया। इसलिए वह यह न देख पाया कि मन्दिर के भीतर कौन लोग है या मन्दिर में किस देवता की मूर्ति स्थापित है ! ऐसी विषम स्थिति देख कर युवक अपने निर्भीक स्वभाव के अनुरूप हँस पड़ा। फिर देवमन्दिर की अदृश्य प्रतिमा को अंधेरे में ही प्रणाम किया। इसके बाद अंधेरे में ही उच्चस्वर में पुकार उठा, 'मन्दिर में कौन है ?'

किसी ने उत्तर तो न दिया पर कानों को स्त्री अङ्गों के आभूषणों के बजने की झनकार सुनाई पड़ी। युवक कुछ भी स्पष्ट रूप से समझ न सका और पुकारना या पूछना व्यर्थ समझ कर उसने आंधी-पानी से बचाव के लिए फिर से मन्दिर का दरवाजा बन्द कर लिया। फिर टूटी अर्गला की जगह दरवाजे से अपनी पीठ लगा कर खड़ा हुआ और बोला, 'मन्दिर के भीतर जो कोई भी हो, सुने, मैं यहाँ दरवाजे से लगा शस्त्र लेकर बैठा हूँ। मेरे विश्राम में कोई विघ्न न डाले। यदि यहाँ पुरुष है तो विघ्न होने पर फल पाओगे और यदि यहाँ स्त्री है तो निश्चिन्त होकर विश्राम करे। राजपूत के हाथ में ढाल-तलवार रहते स्त्री के पैर में काँटा भी नहीं चुभ सकेगा।'

'आप कौन है ?' मन्दिर के भीतर से ही स्त्री-कण्ठ द्वारा प्रश्न हुआ। सुन कर अति विस्मित होते हुए युवक ने उत्तर दिया, 'स्वर से समझता हूँ कि प्रश्न किसी सुन्दरी ने किया है। लेकिन मेरे परिचय की भला आप को क्या आवश्यकता है ?'

फिर स्त्री-कण्ठ से उत्तर मिला, 'हमें बहुत डर लग रहा है।'

'मैं कोई भी हूँ ? हमारे यहाँ अपना परिचय देने की रीति नहीं हैं, पर मेरे रहते स्त्री-जाति को किसी प्रकार के डर की अशंका नहीं होनी चाहिये।'

'आपकी बात सुन कर डर जाता रहा, साहस जुटा। अभी तक हमलोग डर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मारे मरी सी थीं। अभी भी मेरी सहचरी अर्द्ध-मूर्छिता है। हम शाम को यहाँ शैलेश्वर महादेव की पूजा करने आए थे। बाद में प्रचण्ड आँधी-पानी आने के कारण हमारी सवारी लेकर दास-दासियाँ हमें छोड़ कर जाने कहाँ चले गये हैं।'

'तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं। आप लोग विश्राम कीजिए। कल सुबह मैं आप लोगों को आपके घर पहुँचा आऊँगा।'

''शैलेश्वर महादेव आपका कल्याण करें।'

आधी रात के लगभग जब आंधी-पानी का वेग थम गया तो युवक ने कहा, 'अब आप लोग साहस करके थोड़ी देर यहाँ अकेली ही रहें। मैं दिया लाने के लिए आस-पास के गाँव में जाता हूँ।'

उसी रमणी ने कहा, 'महाशय, गाँव तक जाने की जरूरत नहीं है। इस मन्दिर का रखवाला एक नौकर कहीं पास ही में रहता है। अब तो चाँदनी भी निकल आई है। मन्दिर के बाहर ही कहीं उसकी कुटी दिखाई पड़ेगी। इस सुनसान प्रांत में वह अकेला ही रहता है, इसलिए आग जलाने का प्रबन्ध वह सदा अपने घर में रखता है।'

इसी सूचना के अनुसार युवक ने मन्दिर के बाहर आकर देखा। चाँदनी में उसे तत्काल ही देवमन्दिर के सेवक का मकान दिख गया। उसके घर के द्वार पर पहुँच कर उसे जगाया। इतनी रात को जगाये जाने पर पहले तो मन्दिर का रखवाला डर गया, दरवाजा न खोल कर, वह एक आड़ से छिद्र से देखने लगा कि कौन आया है, बहुत गौर से देखने पर भी उसे आगन्तुक में दस्यु के कोई चिन्ह और लक्षण न दिखे तो दर्शनीय युवक पथिक से कम से कम एक स्वर्ण-मुद्रा पाने का लोभ वह सम्हाल न सका। मन ही मन सब सोचता हुआ उसने घर का दरवाजा खोला और दिया जलाया।

रखवाले से दीपक लेकर युवक मन्दिर में वापस आया और तब उसने देखा कि मन्दिर में संगमरमर की विशाल शिवमूर्ति स्थापित है। उसी मूर्ति के पीछे दो स्त्रियाँ सिकुड़ी-सिमटी बैठी हैं। दीपक की रोशनी आते ही कम उम्र वाली युवती स्त्री ने घूँघट खींच कर सिर झुका लिया। लेकिन युवक ने उसके खुले हाथों में हीरों के आभूषण और कीमती काम वाले जर्रीन के कपड़े शरीर पर लिपटे देखे। गहनों की अधिकता देख कर युवक को समझते देरी नहीं लगी कि युवती किसी निर्धन या हीन वंश की नहीं है। दूसरी स्त्री के पहनावे में थोड़ी सी हीनता और आकर्षण की कमी देख कर युवक ने समझा कि यह युवती की सहचरी या दासी होगी। लेकिन वह भी साधारण दासियों से अधिक सम्पन्न दिखती थी। उम्र भी पैंतिस साल के आसपास लगी। युवक को सहज ही लग गया कि अभी तक जो भी बातचीत हुई है वह इसी बड़ी उम्र वाली स्त्री से ही हुई है। फिर और गौर से देखने से युवक को और विस्मय हुआ कि दोनों स्त्रियों का पहनावा इस देश की स्त्रियों के साधारण पहनावे से भिन्न है। दोनों ही पछाँही प्रान्त की स्त्रियों का पहनावा पहने थीं। मन्दिर के भीतर दीपक रखने की जगह पर दीपक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रेख कर युवक स्त्रियों के सामने जा खड़ा हुआ। दीपक की रोशनी पूरी तरह अब युवक के शरीर पर पड़ रही थी। उन दोनों स्त्रियों ने देखा कि युवक की आयु पच्चीस वर्ष के लगभग या थोड़ी अधिक होगी। शरीर इतना लम्बा है कि दूसरे को उतनी ऊँचाई भद्दी लगती परन्तु इस युवक की चौड़ी छाती की विशालता और स्त्री अंगों के भरे-पूरे गठन के कारण यह लम्बाई इस युवक के आकर्षण को आलौकिक व श्री बढ़ाने वाली सिद्ध हुई है। वर्षा की नई कोमल दूब जैसी बल्कि उससे अधिक ही उसकी स्निग्ध-कान्ति है। वसन्त के पेड़ों की नई पत्तियों जैसे वर्ण पर कवच आदि राजपूत-जाति के सभी शृंगार शोभा या रहे थे। कमर में मियान में बन्द तलवार कमरबन्द में झूल रही थी। लम्बे हाथ में एक लम्बा सा भाला, मस्तक पर उष्णीष है। उसमें लगा एक हीरा चमक रहा है। कानों में चमकदार जड़ाऊ कुण्डल हैं और गले में कीमती रत्नहार।

एक दूसरे को देख कर दोनों ही एक दूसरे के परिचय के लिए मन ही मन लालायित हुए। लेकिन शिष्टता-अशिष्टता के चक्कर में किसी ने पहले परिचय पूछने की अभिलाषा प्रकट न की।

|२|

परिचय

युवक ने ही पहले अपनी जिज्ञासा प्रकट की। बड़ी उम्र वाली स्त्री को संबोधित कर के उसने कहा, 'लगता है कि आप लोग किसी भाग्यवान की पुरस्त्री हैं। परिचय के लिए कहने में संकोच हो रहा है। लेकिन मेरे लिए अपना परिचय देने में जो अड़चन है, शायद वह आप के लिए न हो, इसीलिए पूछने का साहस कर रहा हूँ।'

बड़ी उम्र वाली ने उत्तर दिया, 'हम स्त्रियों का परिचय भी भला क्या है! जो कुल की उपाधि भी धारण नहीं कर सकतीं वे भला क्या परिचय देंगी! एकान्त में रहना ही जिनका धर्म है उनका आत्म-परिचय भी क्या हो सकता है? जिस दिन विधाता ने स्त्रियों के लिए पति का नाम मुँह से कहने का निषेध किया था, उसी दिन स्त्रियों के लिए परिचय देने का मार्ग भी अवरुद्ध हो गया था।'

युवक इस बात का कोई उत्तर न दे सका। उसका मन दूसरी ओर था। युवती रमणी रह रह कर घूँघट को थोड़ा खिसका कर साथवाली स्त्री के पीछे से युवक की ओर एकटक देख रही थी। बड़ी उम्र वाली स्त्री से बातें करते समय एकाएक युवक की दृष्टि उधर गई, फिर दृष्टि लौटी नहीं, वहीं टिक गई। उसे ऐसा लगा जैसे ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अलौकिक रूपराशि वह और कभी न देख पायेगा। युवती की आँखों से युवक की आंखें टकराईं। युवती ने तत्क्षण अपनी आँखें झुका लीं।

युवक से उत्तर न पा कर सहचरी स्त्री ने सिर उठा कर युवक के चेहरे की ओर गौर से देखा और तत्काल समझ गई कि उसकी संगिनी युवती भी सतृष्ण आँखों से युवक को देख रही है। उसने युवती के कान के पास अपना मुँह ले जाकर कहा, 'क्यों री, क्या शिवजी के सामने ही स्वयंवरा होगी ?'

नवीना ने लजा कर व सहचरी की उँगली उमेठ कर मृदु स्वर में कहा, 'तू मर जा।'

यह स्थिति देख कर चतुर सहचरी ने मन ही मन सोचा कि यह जो सब लक्षण देख रही हूँ, उससे कहीं इस तेजस्वी युवक की तेजमय कान्ति देख कर मेरे संरक्षण में आई यह बालिका मन्थर-शर से विद्ध हो, तो और चाहे कुछ न हो पर इसके मन का सुख सदा के लिए नष्ट हो जायगा, इसलिए यह पथ तो तत्काल ही बन्द करना आवश्यक है। तो फिर वह क्या उपाय करे ? इशारे से अथवा छल से ही युवक को यहाँ से हटा दूँ तो उत्तम होगा। यही मन में निश्चय कर के उसने नारी-सुलभ स्वभावगत चतुराई से कहा, 'महाशय, स्त्री की सुकीर्ति ऐसी अपदार्थ वस्तु है कि वह किसी सहारे पर टिकी नहीं होती। आज के इस प्रबल तूफान में बच पाना कठिन था, लेकिन अब तो आँधी और वर्षा रुक गई है। देखूं, यदि पैदल ही चलकर हम लोग घर पहुँच सकें।'

युवक ने तत्काल कहा, 'यदि इस आधी रात के समय भी आप लोग घर जाना ही चाहें तो चलिये मैं आप लोगों को घर तक पहुँचा आऊँगा। इस समय आकाश तो साफ हो गया है। मैं तो अब तक अपनी राह चला गया होता, लेकिन आप की यह रूपवती सखी का बिना रक्षक के रहना उचित न होगा, यही सोच कर अभी तक रुक गया हूँ।'

इस स्त्री ने उत्तर दिया, 'हम लोगों पर आप जैसी दया दिखा रहे हैं, और कहीं आप हमें अकृतज्ञ न समझ लें, इसलिए मैं कुल बातें स्पष्ट रूप में कहने में असमर्थ हूँ। महाशय, स्त्री के हीन भाग्य की बात और क्या कहूँ ? हम पर सहज ही कोई विश्वास नहीं करता। आप हमें पहुँचा आवें, यह हमारा परम सौभाग्य होगा, लेकिन जब मेरे मालिक, इस बालिका के पिता-पूछेंगे कि इतनी रात को किसके साथ आई हो तब यह बेचारी भला क्या उत्तर देगी ?'

क्षण भर चुप रह कर, कुछ सोच कर युवक ने कहा, 'यह उत्तर देंगी कि महाराज मानसिंह के पुत्र कुमार जगतसिंह के साथ आई हैं।'

उस क्षण यदि मंदिर पर वज्र भी गिरता तो मन्दिर में आश्रय लेने वाली दोनों स्त्रियाँ इतनी ज्यादा विचलित न होतीं जितना इस क्षण युवक के मुँह से उसका परिचय पा कर हो उठीं। दोनों ही एक साथ ही उठ कर खड़ी हो गईं। युवती तो शिवलिंग के पीछे सिमट गई और बातें करने वाली बड़ी उम्रवाला न तत्काल गले में आँचल डाल कर, झुक कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दण्डवत प्रणाम किया और द्रवित हो हाथ जोड़ कर बोली, 'युवराज, बिना जाने-पहचाने हमसे बहुत अपराध हो गया है, हम नादान अबलाओं को उदारता से क्षमा कर दीजिएगा।'

युवराज ने हँस कर कहा, 'आप लोगों ने जो गुरुतर अपराध किए हैं, उनकी क्षमा नहीं होती। हाँ, यदि अपना परिचय आप लोग दें तो क्षमा करने का प्रयत्न कर सकता हूँ। परिचय न देने पर समुचित दण्ड तो सहना ही पड़ेगा।'

मुलायम और नम्र शब्दों से रसिका का साहस सदा ही बढ़ता है। उस स्त्री ने मुस्करा कर कहा, 'आप जो भी दण्ड उचित समझें दें, हम स्वीकार करेंगी।'

'साथ चल कर तुम लोगों को तुम्हारे घर तक पहुँचा आऊँगा।'

सहचरी ने देखा कि वह लोग सचमुच विकट संकट में फंस गई हैं। एक विशेष कारण से वह नवीना का ठीक परिचय दिल्लीश्वर के सेनापति को नहीं देना चाहती थी, और यदि वे उनको पहुँचाने के लिए घर तक आयें तो इसमें और भी अधिक विपत्ति है, वह तो परिचय देने से भी अधिक विपत्तिजनक है। अतः चिन्ता के कारण सहचरी सिर झुकाए सोचती रही।

ठीक इसी समय मंदिर की थोड़ी दूरी से घोड़ों की टापों की एक साथ आती हुई आवाज सुनाई पड़ी। सुन कर, एकाएक व्यस्त होकर युवराज झपट कर मंदिर के बाहर गये। उन्होंने देखा कि लगभग एक सौ सवार उसी ओर आ रहे हैं। उनकी वर्दी देख कर फौरन पहचान लिया कि वे उन्हीं के राजपूत सैनिक हैं। कुछ पहले युवराज युद्ध-संबंधी काम से ही विष्णुपुर अंचल में जाकर जल्दी ही एक सौ घुड़सवारों की एक टुकड़ी के साथ अपने पिता के पास जा रहे थे। दिन के पिछले पहर अपने साथियों से आगे बढ़ कर चले आए थे। बाद में एक रास्ते से और उनके साथी दूसरे रास्ते से निकले। इसलिए वे अकेले ही आँधी-पानी के संकट में फँस गये थे। अब उन्हें उनके सैनिकों ने देखा है या नहीं यह जानने के लिए उन्होंने कहा, 'दिल्लीश्वर की जय !'

सुनते ही एक सवार भाग कर उनके पास आया। उसे देख कर युवराज ने कहा, 'धरमसिंह, प्रबल आँधी और पानी के कारण मैं यहीं रुक गया था।'

धरमसिंह ने झुक कर प्रणाम करते हुए कहा, 'हमलोगों ने श्रीमान को बहुत खोजा, फिर इधर आये। इस बरगद के पास घोड़े को देख कर रुक गया।'

'ठीक है, तुम घोड़ा लेकर यहीं प्रक्षीक्षा करो और दो आदमियों को पास के किसी गाँव से एक पालकी और वाहक लाने के लिये फौरन भेजो। बाकी सवारों को आगे बढ़ने के लिए कह दो।'

यह आज्ञा सुन कर धरमसिंह थोड़ा विस्मित हुआ लेकिन मालिक की आज्ञा सुन कर प्रश्न करना अनुचित और अनावश्यक समझ कर—जो आज्ञा—कह कर युवराज का आदेश पालन करने के लिए सवारों की ओर बढ़ गया। सैनिकों ने जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पालकी लाने के आदेश की बात सुनी तो एक ने दिल्लगी करते हुए कहा, 'आज तो यह बिल्कुल नई बात सुन रहा हूँ।' तब दूसरे ने कहा, 'क्यों नहीं? महाराज, राजपूत-पति के तो सैकड़ों रानियाँ होती हैं न!'

इधर मंदिर के भीतर युवराज के न रहने पर युवती ने अपना घूँघट हटा कर अपनी सहचरी से कहा, 'विमला, युवराज को अपना ठीक-ठीक परिचय देने में तुम्हें क्या आपत्ति है?'

विमला बोली, 'इसका उत्तर तो मैं तुम्हारे पिताजी को ही दूँगी। इस समय यहाँ यह शोर-गुल क्यों हो रहा है?'

'लगता है कि युवराज को खोजते हुए उनके सैनिक यहाँ आए हैं। जहाँ स्वयं युवराज ही उपस्थित हैं, वहाँ तुझे चिन्ता क्यों हो रही है?'

युवराज की आज्ञा पाकर जो घुड़सवार पालकी और वाहक लेने को गाँव में गये थे उनके वापस आने के पहले ही, पानी आँधी के कारण भाग कर गाँव में आश्रय लेने गये स्त्रियों के संग आए रक्षक व वाहक वापस लौट आए। उन लोगों को दूर से वापस आते देख कर युवराज जगतसिंह मंदिर में गये और विमला से बोले, 'कुछ हथियार बन्द सिपाहियों के साथ पालकी लेकर कहार आ रहे हैं। तुम जरा बाहर आ कर देख लो कि वे तुम्हारे आदमी हैं या नहीं?'

मंदिर के दरवाजे पर खड़ी होकर विमला ने देख कर बताया कि वे उन्हीं के आदमी हैं।

युवराज ने कहा, 'तो अब मैं यहाँ खड़ा नहीं रहूँगा। वे लोग मुझे यहाँ देखेंगे तो अनिष्ट हो सकता है, इसलिए मैं अब चलता हूँ। शैलेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तुमलोग बिना किसी विघ्न और विपत्ति के घर पहुँच जाओ। हाँ, तुम लोगों से सी एक प्रार्थना है कि मुझसे यहाँ भेंट होने की बात एक सप्ताह तक किसी से प्रकट न करना। और भूल भी मत जाना, बल्कि याद रखने के लिए यह एक साधारण वस्तु अपने पास रखो। मुझे तो तुम्हारे प्रभु की कन्या का परिचय नहीं मिला, यही बात मेरे लिए याद रखने के चिन्ह-स्वरूप रहेगी।' कह कर युवराज ने अपने गले से मोतियों की एक माला उतार कर विमला के मस्तक पर रख दी। विमला ने भी वह मूल्यवान हार अपनी केशराशि में धारण कर के अत्यन्त विनम्र व विनीत भाव से प्रणाम कर के कहा, 'युवराज, किसी विवशतावश मैंने जो परिचय नहीं दिया, उसके लिए मुझे अपराधिनी मत समझिएगा। ऐसी धृष्टता करने का विशेष कारण है। लेकिन यदि इस विषय में आप को बहुत ही जिज्ञासा हो तो कृपया आप इतना भर बतला दें कि आज के बाद, एक पक्ष बाद आप से कहाँ भेंट हो सकेगी?'

थोड़ी देर सोचने के बाद युवराज जगतसिंह ने कहा, 'ठीक है, आज से एक पक्ष बाद रात को इसी मंदिर में मुझसे भेंट होगी। अगर उस दिन यहाँ न मिलूँ तो समझना कि अब इस जीवन में कभी भेंट न हो सकेगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'देवता आप की रक्षा करें।' कह कर विमला ने सिर झुक कर प्रणाम किया।

युवराज ने एक बार फिर मुड़ कर तृष्ण और कातर दृष्टि से नवीना की ओर देखा और कूद कर घोड़े पर सवार हुए और चले गये।

| ३ |

मुगल पठान

शैलेश्वर के मंदिर से युवराज जगतसिंह ठीक आधी रात को चले गये। जगतसिंह राजपूत हैं, किस काम से बंगाल आये थे, अकेले ही क्यों विचर रहे थे, यह सब जानने के लिए बंगाल की तत्कालीन राजकीय स्थिति का जाना जरूरी है।

—बंगाल में बख्तियार खिलजी ने सब से पहले मुसलमानी राज्य का झंड़ा गाड़ा। इसके बाद कई शताब्दियों तक मुसलमानों ने बंगाल पर बेखटके शासन किया। फिर दिल्ली के बादशाह इब्राहिम लोदी को लड़ाई में हरा कर ९७२ हिजरी में सुलतान बाबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। लेकिन उसी समय तैमूर-वंशियों के अधीन बंगाल नहीं आ सका। जब तक प्रसिद्ध मुगल-सम्राट अकबर बादशाह का अभ्युदय नहीं हुआ, तब तक बंगाल देश में स्वाधीन पठान राजा ही राज्य करते रहे। बुरे वक्त में दाऊद खाँ ने सोते हुए शोर के शरीर पर हाथ रखा। इसके फलस्वरूप उन्हें अकबर के सेनापति मुनइम खाँ द्वारा पराजित होकर राज्यच्युत होना पड़ा। ९८२ हिजरी में अपने आदमियों के साथ दाऊद खाँ को उड़ीसा भाग जाना पड़ा। तब बंगाल का राज्य मुगलों के हाथ लगा। पठानों ने उड़ीसा में गहरे पाँव जमाया। उनको वहाँ से निकालने में मुगलों को बहुत अधिक प्रयास करना पड़ा। ९८६ हिजरी में दिल्लीश्वर के प्रतिनिधि खाँजहाँ खाँ ने पठानों को फिर से गहरी पराजय दी और उड़ीसा को जीत कर अपने प्रभु को सौंपा। इसके बाद ही एक भयानक उपद्रव खड़ा हो गया। अकबर बादशाह ने बंगाल से राज-कर की वसूली की जो नई प्रथा चलाई, उससे बंगालके जमींदारों और जागीरदारों पर गहरा असंतोष फैला। अपने पुराने अधिकार की सुरक्षा के लिए उन्होंने हथियार उठाया। बहुत ही भीषण राजद्रोह उपस्थित होने पर और सुअवसर पाकर उड़ीसा के पठानों ने फिर सिर उठाया और कतलू खाँ पठान के नेतृत्व में फिर से उड़ीसा पर अधिकार कर लिया। मेदिनीपुर भी उनके अधिकार में चला गया।

फिर बदला लेने आए कर्मठ राजप्रतिनिधि आजिम खाँ और उनके बाद शहबाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
खां, लेकिन दुश्मन द्वारा जीते गए राज्य को कोई छुड़ा न सका। तब इस दुःसाहसी कार्य को पूरा करने के लिए एक हिन्दू योद्धा को वहाँ भेजा गया।

महामति अकबर बादशाह अपने पूर्वज सम्राटों में सबसे अधिक चतुर और कुशल-नीति थे। अनुभव से उन्हें विश्वास हो चुका था कि इस देश में राजकाज के उचित संचालन में विदेशी नहीं बल्कि यहाँ के आदमी ही अधिक योग्य और पटु हैं। फिर लड़ाई और राज-शासन में राजपूत तो सबसे अधिक दक्ष हैं। अतएव, वे हमेशा ही कठिन राजकाज के लिए खास कर राजपूतों को ही नियुक्त करते थे।

इस समय अकबर बादशाह के राज्य में ऊँचे पदों पर जो राजपूत नियुक्त थे, उनमें सर्वप्रमुख थे मानसिंह। वे अकबर के पुत्र सलीम के साले थे और अत्यन्त विश्वास पात्र थे। आजिम खाँ और शहबाज खाँ जब पठानों से उड़ीसा जीतने में असफल रहे तब अकबर बादशाह ने मानसिंह को ही बंगाल और बिहार का शासक बना कर भेजा।

९९९ हिजरी में पटना पहुँच कर मानसिंह ने पहले फुटकर उपद्रवों और विद्रोहों को दबाया और शांत किया। दूसरे वर्ष उड़ीसा-विजय की आशा से उधर की यात्रा की। जब मानसिंह पहले पहल पटना पहुँचे तो उसी नगर में रहने का इरादा कर के उन्होंने बंगाल के शासन के लिए सैद खाँ को अपना प्रतिनिधि बनाया। यह प्रतिनिधित्व और गुरुभार पाकर सैद खाँ तत्कालीन बंगाल की राजरानी तण्डा में रहने लगा। इस समय उड़ीसा विजय के लिए रवाना होकर मानसिंह ने सैद खाँ को लड़ाई में बुलाया। सैद खाँ को मानसिंह ने संदेश भेजा कि हम बर्दवान में तुम्हारी सेना के साथ मिलना चाहते हैं।

बर्दमान पहुँचने पर राजा मानसिंह ने देखा कि आदेशानुसार सैद खाँ वहाँ नहीं पहुँचा था। उसका संदेश लेकर आया उसका एक दूत। वह सैद खाँ का संदेश लाया कि सैनिक-संग्रह करने में बहुत देर लग सकती है, यहाँ तक कि पूरी तैयारी कर के जाते-जाते वर्षा शुरू हो जा सकती है, अतः यदि राजा मानसिंह बरसात के अंत तक वहीं शिविर डाले रहें तो वर्षा बीतने पर सेना लेकर वह मानसिंह की सेवा में हाजिर हो सकेगा। विवश राजा मानसिंह उसकी सलाह मान कर दारुकेश्वर के तट पर शिविर डाले रहे। वे वहीं रह कर सैद खाँ की प्रतीक्षा करने लगे।

वहाँ रहते हुए राजा मानसिंह को लोगों से खबर मिली कि अनके आगे न बढ़ने से तथा उनके ठहरने को उनकी सुस्ती और तैयारी की कमी मान कर कतलू खाँ की हिम्मत बहुत बढ़ गई है। वह अपनी सेना के साथ मन्दारन के पास आकर गाँवों में लूट-पाट मचाए हुए है। राजा मानसिंह यह पता लगाने को अत्यन्त उत्सुक और उद्विग्न हो गये कि शत्रु-सेना कहाँ पर है, किसलिए आयी है और शत्रु क्या कर रहा है? इसके लिए उन्होंने तत्काल ही अपने एक प्रधान सेनाध्यक्ष को भेजना उचित समझा। मानसिंह के साथ ही उनके सुपुत्र जगतसिंह भी आये थे। इस कठिन काम का बोझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उठाने के लिए उत्सुक जगतसिंह के बारे में जान कर उन्होंने ने एक सौ चुने हुए घुड़सवारों के साथ जगतसिंह को ही शत्रु-शिविर की ओर भेजा। काम पूरा कर के जल्दी ही जगतसिंह वापस आ गये।

| ४ |

नये सेनापति

शैलेश्वर के मंदिर से चल कर जगतसिंह सीधे अपने पिता राजा मानसिंह के शिविर में पहुँचे। राजा मानसिंह को अपने पुत्र के द्वारा यह जानकारी मिली कि पठानों की लगभग पचास हजार सेना धरपुर गाँव के पास पड़ाव डाल कर जमी है और आस-पास के गाँवों में लूट-पाट व मार कर रही है तथा जगह-जगह किले बनाकर या अधिकार करके बेखटके अपनी मनमानी कर रही है। तब मानसिंह ने मन ही मन निश्चय किया कि पठानों के इस उत्पात का जल्दी ही दमन करना अति आवश्यक है, लेकिन यह काम अति कठिन भी है। तत्काल कर्तव्य-निर्धारित करने के लिए उन्होंने अपने विश्वस्त साथियों, सेनापतियों को जुटा कर समस्त परिस्थिति का वर्णन किया और कहा, 'दिन पर दिन, गाँव पर गाँव, परगने पर परगने दिल्ली के बादशाह के हाथ से निकलते जा रहे हैं। अब तो पठानों द्वारा किए जा रहे उपद्रव व उत्पात का तत्काल दमन किए बिना काम नहीं चलेगा, लेकिन प्रश्न है कि उनका तत्काल दमन किस प्रकार संभव हो सकता है ? वे संख्या में भी हमसे बहुत अधिक हैं। इसके अलावा उन्होंने अनेक किलों का निर्माण किया है जिसमें रह कर वे लड़ेंगे। और लड़ाई में उन्होंने पराजित करने पर भी हम उन्हें पूरी तरह विनष्ट और स्थानच्युत नहीं कर सकेंगे। वे अपने किलों में सहज रूप से सुरक्षित बने रहेंगे। लेकिन आप लोग खूब अच्छी तरह सोच विचार कर देखें कि यदि लड़ाई में हमारी पराजय हुई तो शत्रु के अधिकार में निराश्र यहोने के कारण हमें बिल्कुल ही समाप्त हो जाना पड़ेगा। स्थिति का ठीक से अंदाज किए बिना अनुचित साहस के भरोसे पर दिल्ली के बादशाह की सेना का बहुत अधिक संहार करा देना और साथ ही उड़ीसा-विजय की आशा को सदा के लिए मिटा देने का खतरा उठाना भी मेरे विचार में अत्यधिक अनुचित होगा। मुझे तो सैद खाँ की प्रतीक्षा करना ही एक मात्र उचित रास्ता दिखता है। लेकिन स्थिति को देखते हुए शत्रु के दमन का तत्काल उपाय करना भी अति आवश्यक हो रहा है। अब आप लोग अपनी राय व सलाह दें कि क्या किया जा सकता है ?'

बहुत सोच विचार के बाद सभी सेनापतियों ने एक मत होकर यही सलाह दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कि अभी तो सैद खाँ के आने तक प्रतीक्षा करना ही ठीक होगा। तब राजा मानसिंह ने कहा, 'मैं तो यह सोच रहा हूँ कि अपनी समस्त सेना को बरबादी के मुँह में न झोंक कर, थोड़ी सी सेना को किसी योग्यतम सेनापति के साथ शत्रु का सामना करने को भेज दूँ।,

एक वृद्ध व पुराने मुगल सैनिक ने कहा, 'महाराज, जहाँ पूरी सेना भेजने में भी विजय की निश्चित संभावना नहीं है, वहाँ थोड़ी सी सेना भेजने पर भला कौन-सा काम सिद्ध हो सकेगा ?'

मानसिंह बोले, 'किसी प्रकार की आमने-सामने की लड़ाई के लिए यह थोड़ी सी सेना नहीं भेजी जा रही है। यह सेना को टुकड़ी छिपी रह कर, गाँव लूटने में लगी पठानों की छोटी-छोटी टुकड़ियों का संभव मुकाबला तो कर ही सकेगी।'

मुगल सैनिक ने पूछा, 'पर महाराज, मौत के सामने कौन सेनापति जाने को तैयार होगा ?'

सुन कर राजा मानसिंह के भवों में वल पड़ गये। वे बोले, 'क्या इतनी बड़ी राजपूत और मुगल सेना में कोई ऐसा वीर नहीं है जो मौत से न डरता हो ?'

यह सुनते ही पाँच-सात राजपूत व मुगल उठ कर खड़े हो गये और बोले, 'महाराज हम जाने को तैयार हैं।'

वहाँ जगतसिंह भी उपस्थित थे वे उम्र में सबसे छोटे थे। अतः उन्होंने सब के पीछे रह कर कहा, 'आज्ञा मिलने पर यह दास भी दिल्लीश्वर की सेवा के लिए जाने को तैयार है।'

राणा मानसिंह खुश हुए। मुस्करा कर बोले, 'क्यों नहीं ? आज मुझे तो विश्वास हो गया कि अभी मुगलों और राजपूतों का नाम मिटने में बहुत देर है। तुम लोग जब इस काम का भार उठाने को तैयार हो तब मैं सोचूँगा कि किसे रोकूँ और किसे भेजूँ ?'

एक विश्वस्त पार्षद ने हँस कर कहा, 'महाराज इस काम का भार उठाने को इतने सारे लोग लालायित हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। इनमें जो सब से कम सेना लेकर जाने को जो तैयार हो उसे, ही यह अवसर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार हमारी सेना अधिक खर्च नहीं होगी।'

राजा मानसिंह बोले, 'यह उत्तम सलाह है।' 'फिर सबसे पहले जाने को तैयारी की घोषणा करने वाले से उन्होंने पूछा, 'तुम अपने साथ कितनी सेना ले जाना चाहते हो ?'

उसने कहा, 'मैं पन्द्रह हजार पैदल सेना से ही काम पूरा कर सकूँगा।'

राजा ने सोच कर कहा, 'पन्द्रह हजार पैदल सेना ले लेने के बाद यहाँ शिविर में तो फिर अधिक सेना बचेगी ही नहीं। यह बताओ, कौन ऐसा वीर है जो दस हजार सेना ले कर लड़ाई के लिए जाने की हिम्मत रखता हो ?'

सभी सेनापति चुप हो रहे। तब राजा मानसिंह के प्रियपात्र और राजपूत योद्धा जसवन्तसिंह ने राजा की आज्ञा का पालन करने की अनुमति माँगी। खुश होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
राजा ने प्रसन्न चेहरे से सबों की ओर ताका। उसी क्षण कुमार जगतसिंह उनके सामने ही विनीत भाव से उठ कर खड़े हो गये। राजा ने ज्योंही उनकी ओर ताका कि अति विनम्रता पूर्वक वह बोले, 'महाराज का आदेश प्राप्त हो तो यह सेवक मात्र पाँच हजार सैनिकों की सहायता से अत्याचारी कतलू खाँ को सुवर्णरेखा के उस पार तक खदेड़ आने का बचन देता हैं।'

सुन कर राजा मानसिंह विस्मित हुए। सभी दूसरे सेनापति कानाफूसी करने लगे। कुछ देर बाद सोच कर राजा ने कहा, 'कुँवर, हमें विश्वास हैं कि तुम राजपूत कुल के गौरव हो, लेकिन तुम्हारा अदम्य साहस संभवतः सीमा को पार कर रहा है।'

जगतसिंह ने फिर विनम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर कहा, 'यदि मैं अपने दिए वचन का पालन न कर सकूँ और दिल्लीश्वर की सेना का अपव्यय करूँ तो मैं सहर्ष राजदण्ड से दण्डनीय होऊँगा।'

फिर थोड़ी देर सोच कर और गम्भीर रह कर राजा मानसिंह ने कहा, 'कुँवर मैं तुम्हारे राजपूत-कुल के धर्म के पालन में किसी प्रकार की भी बाधा नहीं डालूँगा, अतः अब इस काम के लिए तुम्हीं जाओगे।'

फिर उन्होंने जगतसिंह को आँसू भरी आँखों से गले लगा कर विदा किया। अन्य सेनापतिगण अपने-अपने शिविर के लिए चले गये।

| ५ |

गढ़ मन्दारन

जगतसिंह जिस मार्ग से होकर विष्णुपुर प्रदेश से जहानाबाद आये थे, उसी के थोड़ा दक्षिण ओर मन्दारन नामक गाँव है। उस समय यह गाँव एक सम्पन्न नगर था। उस दिन शैलेश्वर से मंदिर से दोनों स्त्रियाँ जिनसे जगतसिंह की भेंट हुई थी, मंदिर से निकल कर इसी गाँव की ओर गई थीं।

मन्दारन में कुछ पुराने किले भी थे। संभवतः इसीलिए इसका नाम गढ़ मन्दारन पड़ा होगा। नगर में आमोदर नदी बहती है। एक स्थान पर इस नदी की धारा इस प्रकार टेढ़ी हो कर मुड़ी थी कि वहाँ एक त्रिकोण बनाती भूमि के दो सिरे नदी से घिर गये थे और तीसरे सिरे पर आदमियों का बनाया एक गढ़ था। इस त्रिकोण भू-खण्ड के सामने जहाँ नदी का मोड़ था वहाँ एक विशाल किला पानी से आकाश की ओर सिर उठाए खड़ा था। पूरी अट्टलिका, नीचे से ऊपर तक काले पत्थर की बनी थी। दो ओर से नदी का प्रबल प्रवाह किले की जड़ से हर समय टकराता रहता था। नदी के उस पार और कई किले थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगाल के पठान सम्राटों के प्रमुख हुसैनशाह के विख्यात सेनापति इस्माइल गाजी ने यह किला बनवाया था। लेकिन एक समय यह किला जयधर सिंह नाम के एक हिन्दू सैनिक को जागीर-स्वरूप मिला था। जलधर सिंह के उत्तराधिकारी वीरेन्द्रसिंह यहाँ रहते थे।

युवावस्था में वीरेन्द्रसिंह का अपने पिता से अच्छा वर्ताव व संबंध न था। वीरेन्द्रसिंह अत्यन्त ही अभिमानी और उतावले स्वभाव के थे। पिता के आदेश आज्ञा पर कभी ध्यान न देते, इसलिए पिता-पुत्र में सदा ही वाद-विवाद होता रहता। वृद्ध जागीदार ने पास ही के अपनी जाति के एक अन्य जागीरदार की कन्या से अपने पुत्र का विवाह करने का निश्चय किया। कन्या के पिता को कोई पुत्र न था। इसलिए इस विवाह से वीरेन्द्रसिंह की सम्पति काफी अधिक बढ़ने की निश्चित सम्भावना थी और कन्या भी अद्वितीया सुन्दरी थी। ऐसा सम्बन्ध वृद्ध जागीरदार की दृष्टि में सर्वोत्तम था। वे विवाह की तैयारी भी करने लगे। परन्तु किसी कारणवश वीरेन्द्रसिंह को यह सम्बन्ध रुचिकर न था। उन्होंने अपने ही गाँव की एक पति-पुत्र-हीना निर्धन स्त्री की कन्या से छिप कर विवाह कर लिया और अब दूसरा विवाह करने को किसी प्रकार भी राजी न हुए। इस पर वृद्ध ने क्रोध में आकर पुत्र को घर से निकाल दिया। पिता के घर से निष्कासित होकर युवक वीरेन्द्रसिंह जीवन यापन के लिए सिपाही गीरी का सहारा लेने दिल्ली चले गये। उस समय उनकी धर्मपत्नी गर्भवती थी। अतः वे पत्नी को अपने साथ न ले जा सके। वह बेचारी अपनी माँ की कुटिया में ही रही।

इधर पुत्र के चले जाने के बाद वृद्ध जागीरदार के मन में पुत्र-वियोग की मार्मिक मानसिक पीड़ा होने लगी। अपने किये पर पछताते हुए उन्होंने पुत्र की खोज-खबर लेने की भरसक पूरी चेष्टा की, लेकिन उन्हें किसी प्रकार भी सफलता न मिली। पुत्र को तमाम प्रयत्नों के बाद भी वापस लाने में असमर्थ होने पर वृद्ध जागीरदार पश्चाताप के रूप में अपनी पुत्रवधू को उसकी दरिद्रा माता की कुटिया से अत्यन्त आदरपूर्वक अपने घर में लिवा लाये। समय आने पर वीरेन्द्र सिंह की पत्नी ने एक कन्या को जन्म दिया। लेकिन थोड़े ही दिनों बाद कन्या की माता का देहान्त हो गया।

दिल्ली पहुँच कर मुगल सम्राट के आज्ञाकारी राजपूत सैनिकों में वीरेन्द्र सिंह भरती हो गये। थोड़े ही दिनों में अपने गुणों के कारण वे ऊँचे पद पर पहुँच गये। कुछ समय तक उन्होंने धन और सुयश अर्जित करते रहे, तभी उन्हें अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला। अब परदेश में रह कर चाकरीवृत्ति करना उन्होंने अनुचित और अनावश्यक समझा और नौकरी से मुक्ति लेकर अपने घर वापस आ गये। उनके साथ ही दिल्ली से अनेक सहचर भी आये। उनमें एक परिचारिका और एक परमहंस स्वामी भी थे। परिचारिका का नाम था विमला और परमहंस का अभिराम स्वामी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विमला घर-गृहस्थी के कामों में लगी रहती। इसके अलावा विशेष रूप से उस पर बीरेन्द्रसिंह की कन्या के लालन-पालन का भार था। इन कामों की जिम्मेदारियों के अलावा विमला के किले में रहने का और कोई कारण न था। यद्यपि विमला वहाँ दासी का ही कार्य करती थी पर उसमें दासी के कोई लक्षण न थे। घर की मालकिन की जो प्रतिष्ठा और सम्मान रहता है, गाँव वालों में विमला उसी प्रकार मान्य थी। बस्ती के लोग उससे डरते और उसकी आज्ञा मानते थे। विमला के मुखश्री को देख कर सहज ही में जाना जा सकता है कि अपनी जवानी में वह अति-परम-सुन्दरी रही होगी। प्रातःकाल में चन्द्रमा के अस्त होने के समय का सा सौंदर्य उसमें अभी भी था।

अभिराम स्वामी के एक शिष्य थे—गजपति विद्यादिग्गज। उन्हें अलंकारशास्त्र में गति हो या न हो पर रसिकता प्रकट करने की चाह उनमें बहुत प्रबल थी। वे विमला को देख कर कहते, 'दाई तो जैसे हण्डी का घी है। मदन की अग्नि जितनी ही मन्द पड़ती जा रही है, देहराशि उतनी ही कठोर होती जा रही है।' जिस दिन गजपति विद्यादिग्गज ने वह विद्वतापूर्ण रसिकता का प्रदर्शन किया था उस दिन से विमला ने नाम रख दिया था—'रसिकराज रसोपाध्याय।'

शक्ल-सूरत और काम के अलावा विमला की सभ्यता और बातचीत का ढंग ऐसा साफ-सुथरा था कि यह गुण अन्य दासियों और परिचारिकाओं में नहीं पाये जाते। बहुत से लोग तो यहाँ तक कहते थे कि विमला बहुत दिनों तक किसी मुगल सम्राट की पुरवासिनी भी रही है। यह सच है या झूठ यह तो विमला ही जाने, पर इस सम्बन्ध में उसने कभी कोई चर्चा नहीं की।

यह भी पता नहीं कि विमला विधवा है या सुहागिन। वह गहने पहनती थी, इकादशी का व्रत[1] भी नहीं करती थी, यानी सुहागिन के समस्त आचरण यह निभाती थी।

विमला दुर्गेशनन्दिनी, तिलोत्तमा से आन्तरिक स्नेह रखती थी। तिलोत्तमा भी विमला की वैसी ही अनुरागिणी थी। वीरेन्द्र सिंह के साथी अभिराम स्वामी हमेशा किले में नहीं रहते थे। बीच-बीच में तीर्थ-पर्यटन के लिए निकल जाते थे। दो एक महीने गढ़ मन्दारन में रहते तो दो एक महीने विदेश भ्रमण में। वीरेन्द्र सिंह अभिराम स्वामी का जैसा और जितना सम्मान करते थे उसे देख कर दूसरे सभी समझते थे कि अभिराम स्वामी वीरेन्द्र सिंह के दीक्षा गुरु हैं। वीरेन्द्र सिंह सांसारिक कामों में सब कुछ अभिराम स्वामी के परामर्श और आदेश से ही करते थे। गुरू की सलाह भी अक्सर ही लाभदायद होती थी। वास्तव में अभिराम स्णामी बहुत अनुभवी और प्रखर बुद्धि के थे। अपने व्रत और धर्म से उन्होंने अधिकांश सांसारिक विषयों में संयम का अपूर्व अभ्यास

---

१. बंगाल की विधवा स्त्रियाँ इकादशी को निर्जल-व्रत करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया था। आवश्यकता के अनुसार राग-क्षोभ आदि का दमन करके वे स्थिर चित्त से किसी भी विषय की आलोचना कर सकते थे। ऐसे अवसरों पर उतावले तथा क्रोधी स्वभाव वाले वीरेन्द्र सिंह की समस्याओं का हल वही कर सकने में पूर्णरुपेण सफल थे।

विमला और अभिराम स्वामी के अलावा आसमानी नाम की एक दासी भी वीरेन्द्र सिह के साथ आई थी।

| ६ |

अभिराम स्वामी से मंत्रणा

शैलेश्वर के मंदिर से तिलोत्तमा और विमला सकुशल किले में वापस आ गईं। इसके तीन-चार दिन बाद की बात हैं। वीरेन्द्र सिंह अपने दीवानखाने में मसनद के सहारे बैठे थे। तभी अभिराम स्वामी वहाँ आये। वीरेन्द्र सिंह ने उठ कर प्रणाम किया और स्वामी जी की आज्ञा पाने के बाद बैठ गए। अभिराम स्वामी ने कहा, 'वीरेन्द्र, आज तुमसे एक विशेष बात कहनी है।'

'आज्ञा दीजिए।' वीरेन्द्र सिंह ने विनम्रतापूर्वक कहा।

स्वामी जी बोले, 'तुम तो जानते ही हो कि इस समय मुगलों और पठानों के बीच घोर संग्राम छिड़ा हुआ है।'

'जी हाँ, जानता हूँ। कभी की गंभीर स्थिति का पैदा हो जाना संभव है।'

'हाँ, संभव तो है। तो इस संबंध में तुमने अपने कर्तव्य का क्या निश्चय किया है।'

'अवसर आने पर बाहुबल से शत्रु को परास्त करूँगा।'

परमहंस मुस्कराए। फिर मृदु भाव से बोले, 'हाँ वीरेन्द्र, तुम जैसे वीर का यही उत्तर उपयुक्त है, लेकिन वास्तविकता यह है कि मात्र वीरता से ही विजय नहीं होती। वीरता के साथ चाहिए नीति। नीति के अनुसार संधि और विग्रह करने पर ही विजय होती है। तुम तो वीरों में अग्रणी हो, लेकिन तुम्हारी सेना एक हजार से अधिक नहीं है। कौन ऐसा वीर है जो हजार सिपाही लेकर शत्रु की सौगुनी बड़ी सेना को पराजित कर दे? मुगलों और पठानों के पास तुमसे सौ गुनी ज्यादा सेना है। एक पक्ष की सहायता के बिना दूसरे पक्ष पर विजय कभी नहीं पा सकोगे। मेरे इस स्पष्ट कहने का बुरा मत मानना। स्थिर चित्त से समस्त परिस्थिति पर विचार करो। एक बात यह भी विचारणीय है कि तुम भला दोनों पक्षों से शत्रुता क्यों मोल लोगे? शत्रु बुरा तो है ही लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दो शत्रुओं की अपेक्षा एक ही शत्रु होना सदा लाभदायक रहता है। अत: मेरी राय से इस प्रकार सोचो और एक ही पक्ष की शत्रु बनाओ।'

वीरेन्द्र कुछ देर तक चुपछाप सोचते रहे फिर बोले, 'तो आप किस पक्ष को अपनाने की राय देते हैं ?'

स्वामी जी बोले, 'य तो धर्मस्ततो जय:, जिस पक्ष को अपनाने में अधर्म न हो उसी पक्ष में जाओ। राजद्रोह महापाप है। राजपक्ष ही ग्रहण करना चाहिये।'

वीरेन्द्र फिर सोच में डूब गए। फिर थोड़ी देर बाद बोले, 'लेकिन आज राजा कौन है ? पठान और मुगल दोनों ही तो राज्य के लिए लड़ रहे हैं।'

'नहीं, जो कर वसूल करता है वही तत्कालिक राजा होता है।'

'तो क्या, अकबर शाह ?'

'हाँ।'

यह सुन कर वीरेन्द्र सिंह के चेहरे पर अप्रसन्नता की रेखा खिंच गई। क्रमश: आँखें लाल हो उठीं। वीरेन्द्र सिंह का स्वरूप और मनोभाव देख कर अभिराम स्वामी ने कहा, 'वीरेन्द्र, क्रोध का यह समय नहीं है। मैंने तुम्हें दिल्लीश्वर का साथ देने को कहा है, मानसिंह का साथ देने को नहीं कहा।'

वीरेन्द्र सिंह ने दाहिना हाथ फैलाकर स्वामी जी को दिखाया और दाहिने हाथ पर बाँयें हाथ की उँगली रख कर कहा, 'उन पदों के आशीर्वाद से इस हाथ को मानसिंह के रक्त से प्लावित करूँगा।'

'शान्त होओ, वीरेन्द्र ! क्रोध में अंधे होकर अपना काम मत बिगाड़ो। मानसिंह को उसके पहले के अपराध के लिए अवश्य सजा देने पर अकबर शाह से लड़ाई ठानने की क्या आवश्यकता है ?'

'लेकिन जरा सोचिए तो कि अकबर शाह का साथ देने में किस सेनापति की अधीनता में लड़ना होगा ? किस योद्धा की सहायता करनी होगी ? किसका अनुचर बनना होगा ? मानसिंह का ? गुरुदेव, इस शरीर से यह काम वीरेन्द्र सिंह के लिए सम्भव नहीं।'

'तो क्या पठानों की सहायता करना तुम्हें उचित लगता है ?'

'इस समय भी पक्ष और विपक्ष का भेद मानना क्या ठीक है ?'

'हाँ, पक्ष और विपक्ष का भेद तो मानना ही पड़ेगा।

'तो मेरे लिए पठानों को ही सहयोग देना ठीक रहेगा।'

वीरेन्द्रसिंह का निर्णय सुन कर अभिराम स्वामी ने लम्बी सांस छोड़ी और चुप रह गये। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। यह दृश्य देख कर वीरेन्द्रसिंह अत्यधिक विस्मित हुए। बोले, 'गुरुजी, क्षमा किजिए। मैंने अनजाने ही क्या अपराध कर दिया ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी ने अपनी बाहर की ओर से आँखें फेरते हुए कहा, 'तो सुनो, इधर कई दिनों से मैं लगातार ज्योतिष की गणना कर रहा हूँ। तुमसे अधिक तुम्हारी कन्या पर मेरा स्नेह है, यह तो तुम जानते हो न ? स्वाभाविक है कि मैंने उसी के संबंध में बहुत तरह की गणना की है।'

सुन कर वीरेन्द्रसिंह का मुँह सूख सा गया। अत्यन्त आग्रहपूर्वक उन्होंने स्वामीजी से पूछा, 'तो आपने गणना करने में क्या देखा ?'

'देखा कि मुगल सेनापति से तिलोत्तमा का बड़ा अमंगल है।'

वीरेन्द्रसिंह का चेहरा मुरझा गया। स्वामी जी कहते गए, 'मुगलों का विरोध करने में ही तिलोत्तमा का अमंगल है। मुगलों को अपने पक्ष में रखने से नहीं होता। इसीलिए मैं तुम्हें मुगलों का पक्षपाती बनाने का प्रयत्न कर रहा था। यह बात इतनी स्पष्ट रूप से कह कर तुम्हें मानसिक क्लेश पहुँचाने की मेरी इच्छा कदापि न थी। लेकिन मनुष्य का मान अक्सर विफल होता है। लगता है कि भाग्य में लिखा अवश्य ही हो कर रहेगा। नहीं तो तुम इतनी अधिक जिद क्यों करते ?

वीरेन्द्रसिंह मौन रहे। स्वामी जी बोले, 'वीरेन्द्र, दरवाजे पर कतलू खाँ का दूत खड़ा है। उसे ही देख कर मैं तुम्हारे पास आया और यह चर्चा की। मेरे ही कहने पर पहरे वालों ने उसे अभी तक तुम्हारे सामने आने से रोक रहा है। अब मैं अपनी बात कह चुका, मेरा कर्तव्य पूरा हुआ। अब दूत को बुला कर जो समझो जवाब दे दो।'

वीरेन्द्रसिंह ने चिन्तित मुद्रा से सिर उठा कर कहा, 'गुरुजी, जितने दिनों तक मैंने तिलोत्तमा को नहीं देखा था, उतने दिनों तक कन्या की कल्पना से मैं उसे याद भी नहीं करता था। अब तो तिलोत्तमा को छोड़ कर संसार में मेरा अपना कोई भी नहीं। मैं आप की आज्ञा को शिरोधार्य करता हूँ। अब मैं पिछली बातों को समाप्त करता हूँ। मानसिंह का ही सहयोगी बनूँगा। द्वारपाल, दूत को बुला लाओ !'

आदेश पा कर द्वारपाल दूत को लिवा लाया। दूत ने वीरेन्द्रसिंह को कतलू खाँ का पत्र दिया। पत्र में लिखा था कि वीरेन्द्रसिंह अपनी एक हजार घुड़सवारों की सेना और पाँच हजार स्वर्ण मुद्राएँ पठान-शिविर में भेजें, नहीं तो कतलू खाँ बीस हजार सेना गढ़ मन्दारन भेजेंगे।

पत्र को कई बार पढ़ कर वीरेन्द्रसिंह ने जवाब दिया। 'दूत, अपने मालिक से कहना कि वे सेना ही भेजें।'

सिर झुका कर दूत ने सलाम किया और चला गया।

यह सब बातें आड़ में छिप कर विमला सुनती रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

| ७ |

असावधानी

किले के जिस भाग में किले की जड़ों को अपने जल से धोती हुई आमोदर नदी कल-कल करती बहती है, उसी ओर एक कमरे की खुली खिड़की पर बैठी तिलोत्तमा एकटक नदी की भँवरों को निहार रही थी। शाम का समय। पश्चिम आकाश में क्षितिज पर पहुँच गए सूरज की धुँधली किरणों से आस पास के बादल सुनहरा रंग धारण किए हुए थे, उनके साथ-साथ नीले-आकाश का प्रतिबिम्ब भी आमोदर की बहती धारा में काँप-काँप कर दिखाई पड़ जाता था। नदी के पार की ऊँची अट्टालिकाएँ और ऊँचे पेड़ आकाश पर बने चित्र से लग रहे थे। किले के भीतर से मोर, सारस और कलनादी पक्षियों के प्रफुल्ल कोलाहल की आवाज आ रही थी। कहीं रात्रि-आगमन की सोचकर अपना नीड़ खोजने में व्यस्त पक्षी आकाश के नीचे चुपचाप उड़ रहे थे। आमों के उपवन के बीच से आती हवा आमोदर के स्पर्ष से ठंडी हो कर तिलोत्तमा के बालों और कंधे पर पड़े वस्त्र को कंपित कर रही थी।

तिलोत्तमा सुन्दरी है, अति सुन्दरी।

तिलोत्तमा की उम्र मात्र सोलह साल की है। उसके अंगों का भराव प्रगल्भवयसी रमणियों की तरह अभी तक सम्पूर्णता नहीं प्राप्त कर सका है। देह के आयतन और चेहरे की गढ़न में अभी भी बालिका भाव-स्पष्ट है। सुगठित गोल ललाट अभी भी प्रशस्त नहीं है, उसकी बगल में बहुत घनी काली धुँधराली अलकें भौहों पर, कपोलों पर, ठोढ़ी पर, बाँहों पर, हृदय पर आ-आकर लहराती हैं। आँखों में चंचलता नहीं, बल्कि शान्त-भाव है। अभी उसमें विद्युत कटाक्ष नहीं पैदा हुए। वे आकार में बहुत बड़ी और गहराई लिए हैं। ज्योति भी स्थिर और शांत है। आँखों का रंग भी उषाकाल में सूर्योदय के पूर्व वाला आकाश का नीलापन जैसा है। उनमें कुटिलता का नामनिशान नहीं है। उसे अभी आँखों की कोरों से अर्द्ध-दृष्टि कर के देखना नहीं आया। दृष्टि की सरलता-मन की सरलता का प्रतिबिम्ब है। यदि कोई उसकी ओर देखे तो तिलोत्तमा की दृष्टि धरती में टिक जाती है। दोनों ओंठ गुलाबी, रस से टलमल करते हुए। छोटे-छोटे, तराशे हुए कुछ उभरे, मुस्कराते उन ओंठों को देख कर कोई कभी भूल नहीं सकता। लेकिन उस मुस्कान में सरलता और अबोध बालिका-भाव के सिवा और कुछ नहीं है।

तिलोत्तमा की देहराशि सुगठित हो कर भी अपूर्ण है, आयु की नवीनता या शरीर की स्वाभाविक गठन के कारण हो, इस सुन्दर देहराशि में स्थूलता का नाम नहीं, बल्कि क्षीणता ही है। अँगुलियों में रत्न-जड़ित अँगूठियाँ, बाँहों में रत्न-जड़ित आभूषण, कण्ठ में रत्न-कण्ठी। सभी अंगों की गढ़न अति सुन्दर और लुभावनी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिलोत्तमा अकेली ही खिड़की पर बैठी है। साँझ की शोभा में खो गई है। माथे पर पसीने की बूँदें है। वह इस तरह बैठी है कि चेहरे के एक ओर ही हवा लग रही है। वह अनमनी सी दूर तक देख रही है, गायों का चरना देखती रही, गायें वापस घर की ओर चली गईं, फिर भी उसकी आँखें उधर ही उलझी रहीं। उसके कानों को मात्र कोयल की कूक ही सुन पड़ रही है। लेकिन उसका चेहरा कुछ उदास है, कुछ मलिन—शायद वह सब देख, सुन और सोच कर भी कुछ नहीं देख पा रही, कुछ नहीं सुन पा रही, कुछ नहीं सोच पा रही।

दासी दीपक जला कर ले आई। तिलोत्तमा यहाँ से हट कर, एक पुस्तक लेकर दीपक के पास जा बैठी। तिलोत्तमा पढ़ सकती है। उसने अभिराम स्वामी से संस्कृत की शिक्षा ली है। उसके हाथ की पुस्तक का नाम है—कादम्बरी। थोड़ी देर पढ़ कर, फिर ऊब कर कादम्बरी भी छोड़ दी। फिर एक दूसरी पुस्तक उठाई—वासवदत्ता। मन नहीं लगता। अनमनी हो जाती है। वासवदत्ता को छोड़ कर गीत-गोविन्द उठाती है। गीत-गोविन्द में थोड़ा सा मन लगा, फिर जाने क्या सोच कर, मुस्कराकर उसे भी रख दिया। फिर जाकर पलंग पर बैठ गई, फिर पास ही रखी कलम उठा कर दावात में डुबा कर पलंग की पाटी पर बिना उद्देश्य लिखने लगी—क, स, म, घर, द्वार, पेड़, आदमी। थोड़ी देर में पलंग की एक पाटी इन अक्षरों से भर गई। अब कहाँ लिखे ? सोच कर जागी। अपना ही कृत्य देख कर हँस पड़ी। क्या-क्या लिखा है—पढ़ने लगी। लिखा था—

'वासवदत्ता, महाश्वेता, क, ई, इ, पा, प, पेड़,
शव, गीत गोविन्द, विमला, लता-पत्र, गढ़,
और अंत में—कुमार जगतसिंह।'

अपना ही लिखा पढ़ कर तिलोत्तमा का चेहरा लाज से लाल हो उठा। फिर अपनी ही मूर्खता पर चौंकी। भला कमरे में कौन है जिससे लजाये ?

'कुमार जगतसिंह !' तिलोत्तमा ने अपने हाथों लिखा नाम कई बार पढ़ा। एक बार, दोबार, तीन बार, आठ बार, दस बार, अनेक बार। दरवाजे की ओर बार-बार सतर्क हो कर देखती और छिपा कर पढ़ती—जैसे चोरी कर रही हो।

लेकिन कितनी देर पढ़ती ! आखिर साहस छूट गया। कहीं कोई आकर देख न ले ! हड़बड़ा कर गई और पानी ला कर अपना लिखा धोने लगी। धो कर भी मन शांत न हुआ। कपड़े से रगड़-रगड़ कर अच्छी तरह पोंछा। फिर पढ़ कर देखा। वहाँ अब स्याही का नाम-निशान न था पर फिर लगा कि जैसे स्पष्ट पढ़ा जा रहा हो। फिर पानी लायी, फिर पोंछा, फिर भी दिखता ही रहा—लिखा हुआ नाम,

'कुमार जगतसिंह।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

|८|

विमला की मन्त्रणा

अभिराम स्वामी की कुटिया में विमला खड़ी थी। स्वामीजी जमीन पर ही योगासन लगाये बैठे थे। जगतसिंह से जिस तरह उसकी व तिलोत्तमा की अचानक भेंट हुई, विमला शुरू से आखिर तक वही सब स्वामीजी से बता रही थी। अपनी बात पूरी करके विमला ने तनिक चिन्ता से कहा, 'आज चौदहवाँ दिन है, कल पक्ष पूरा हो जायगा।'

स्वामीजी ने सोच कर पूछा, 'तो तुमने क्या तय किया है ?'

'उचित सलाह व आदेश के लिये ही आपके पास आई हूँ।'

'तो, मेरी अब यही सलाह है कि अब इस बात को मन में स्थान न दो।'

विमला के चेहरे का भाव बदला। वह उदास होकर चुप रह गई। स्वामीजी ने उसके भाव को ताड़ कर पूछा, 'उदास क्यों हो गईं ?'

विमला बोली, 'तो फिर तिलोत्तमा के लिये क्या होगा ?'

विस्मित होकर स्वामी जी ने पूछा, 'तो क्या तिलोत्तमा के मन में अनुराग फूट चुका है ?'

कुछ देर जैसे अपने को रोकने की कोशिश में विफल होकर विमला एकाएक फट पड़ी, 'अब आप से कितना और कैसे कहूँ ? मैं इन चौदह दिनों में दिन रात तिलोत्तमा के मनोभाव को अच्छी तरह परखती और देखती रही हूँ। मुझे तो यही जान पड़ता है कि उसके मन में प्रगाढ़ अनुराग जड़ जमा चुका है।'

हँस कर स्वामीजी बोले, 'तुम भी स्त्री हो। मन में अनुराग का लक्षण-मात्र देख कर ही प्रगाढ़ अनुराग की कल्पना करने लगती हो। विमला, तुम तिलोत्तमा के मानसिक सुख के लिए चिन्तित न होना, अबोध बालिका स्वभाव के कारण ही प्रथम-दर्शन में उसका मन इतना चंचल हो उठा है, इस सम्बन्ध में कभी कोई चर्चा न करने से वह जगतसिंह को स्वयं ही जल्द भूल जायगी।'

विमला ने जिद करने जैसे स्वर में कहा, 'नहीं, प्रभु नहीं, ऐसे लक्षण नहीं हैं। इन चौदह दिनों में तिलोत्तमा का स्वभाव बिल्कुल ही बदल गया है, वह बिल्कुल बदल गई है। तिलोत्तमा अब मेरे साथ व सहेलियों के साथ पहले की तरह हँस कर बातचीत नहीं करती। बल्कि अब वह प्रायः बातचीत ही नहीं करती। उसकी किताबें अब पलंग के नीचे पड़ी सड़ रही हैं। तिलोत्तमा के लगाये प्रिय पौधे अब पानी न पाकर सूखने लग गये हैं। तिलोत्तमा की पालित चिड़ियों की भी अब पहले जैसी देखभाल नहीं होती। वह अब न तो रात को सोती है, न भर पेट खाना ही खाती है, न अब वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साज-शृङ्गार ही करती है। पहले जो तिलोत्तमा कभी भी चिंतित नहीं होती थी, वही अब दिनरात चिंता में खोई-खोई अनमनी सी रहती है। अब तो तिलोत्तमा का चेहरा भी स्याह पड़ गया है।'

सुन कर अभिराम स्वामी भी चिन्ता में डूब कर शान्त हो सोचते रहे। फिर कुछ देर बाद बोले, 'मैं सभझता था कि मात्र दर्शन से ही इतना प्रगाढ़ अनुराग नहीं पैदा हो सकता। लेकिन तुम स्त्रियों का चरित्र, विशेष कर बालिका का चरित्र तो ईश्वर ही समझें। लेकिन तुम भी भला क्या कर सकती हो ? वीरेन्द्र इस विवाह के लिये कभी सहमत न होगा।'

'इसी आशंका के कारण अभी तक मैंने इस बात का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया। मंदिर में उस दिन भेंट होने पर जगतसिंह को भी अपना या तिलोत्तमा का कोई परिचय नहीं दिया। लेकिन इस समय यदि ठाकुर साहब ……।' कहते-कहते अचानक ही विमला के भाव बदल गये और स्वर में भिन्नता आ गई। वह बोली, 'इस समय यदि ठाकुर साहब ने मानसिंह से मित्रता कर ही ली है तो जगतसिंह को जामाता के रूप में अपनाने में हानि ही क्या है ?'

'लेकिन मानसिंह क्यों कर सहमत होगा ?'

'न होंगे तो युवराज स्वतंत्र हैं।'

'जगतसिंह भी भला वीरेन्द्रसिंह की कन्या से क्यों कर विवाह करेगा ?'

'जाति और कुल-दोष किस पक्ष में नहीं है ? जयधर सिंह के पूर्वपुरुष भी तो यदुवंशी हैं।'

'यदुवंशी-कुल की कन्या क्या मुसलमान के श्यालक-पुत्र की स्त्री होगी ?'

उदासीन दृष्टि से देख कर विमला ने कहा, 'होगी क्यों नहीं ? यदुवंश का कौन-सा कुल घृण्य है ?'

सुनते ही स्वामी जी की आँखों से क्रोध की ज्वाला निकलने लगी। उन्होंने अति कठोर स्वर में कहा, 'पापी नारी, क्या अपना दुर्भाग्य तू अभी तक भूली नहीं ? जा, हट जा !'

| ९ |

कुलतिलक

अपने पिता मानसिंह के पास से सेना सहित विदा होने के बाद जगतसिंह ने जो जो काम किए उनसे पठानों की सेना में बड़ा ही आतंक फैला। जगतसिंह ने प्रतिज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की थी कि मात्र पाँच हजार सेना लेकर वे कतलू खाँ की पचास हजार सेना को सुवर्ण-रेखा के उस पार तक खदेड़ देंगे। वह अभी तक अपनी प्रतिज्ञा पूरी होने की संभावना को अधिक निकट नहीं ला सके, पर शिविर में आकर दो हफ्ते के भीतर उसने जिस वीरता व सेनापतित्व का परिचय दिया था, उसे सुन कर मानसिंह ने कहा था, 'जान पड़ता है कि मेरे कुमार से राजपूतों के नाम का पहला गौरव फिर जाग जाएगा।'

जगतसिंह अच्छी तरह जानते थे कि केवल पाँच हजार सेना ले कर पचास हजार सेना को युद्ध में पराजित करना किसी तरह भी संभव नहीं है, बल्कि इसमें पराजय या मृत्यु ही मिलेगी। अतः अपने सामने युद्ध की कोशिश न करके उसने ऐसी रण-प्रणाली का प्रयोग किया जिससे युद्ध में सीधा सामना न हो। वह अपनी थोड़ी-सी सेना को बड़ी सावधानी से छिपा कर रखता। घने जंगल में या खूब ऊँची-नीची जमीन के बीच में वह ऐसी जगह अपना शिविर गाड़ता था जहाँ बहुत पास से भी कोई उसकी सेना को देख न सके। इस प्रकार खाई-खंदकों में छिपे रह कर जब कहीं थोड़ी पठान सेना की उसे टोह मिलती, तूफानी वेग से उस पर टूट कर वह उसे खत्म कर डालता। उसके बहुत से निपुण गुप्तचर थे। वे फल-फूल व मछली आदि बेचने वाले अथवा भिखारी, अपंग, ब्राह्मण और वैद्य का वेश बना कर नाना स्थानों में घूमते-फिरते रह कर पठानी सेना की गति-विधि की पूरी जानकारी रखते थे। जगतसिंह अपने गुप्तचरों से खबर पाते ही बड़ी सावधानी से छिप कर ऐसी जगह शिविर गाड़ता, जिससे पास आती पठानी सेना पर अचानक हमला बोल सके। यदि पठानी-सेना संख्या में अधिक होती तो जगतसिंह कभी उस पर आक्रमण करने का उपक्रम न करता, क्योंकि वह जानता था कि उसकी जो उस समय की स्थिति थी उसमें एक युद्ध में पराजय होने से भी सब कुछ नष्ट हो जायगा। ऐसी स्थिति में वह पठानी सेना को पहले आगे बढ़ जाने देता फिर पीछे से सतर्कतापूर्वक हमला बोल कर आगे गई सेना की रसद, घोड़े, तोपें आदि छीन-कर ले आता। यदि पठानी सेना संख्या में अधिक न हो कर कम होती तो भूखे बाघ की तरह दहाड़ते हुए और झपटते हुए जाकर अचानक पठानी सेना पर टूट पड़ता और उसे टुकड़े-टुकड़े कर डालता। पठानी सेना को शत्रु के गुप्त स्थानों का पता न रहता, अतः वे सतर्क न रहते, न युद्ध के लिए तत्पर रहते और पराजित ही होते। इस प्रकार बहुतेरी पठानी सेना को फट जाना पड़ा।

इससे पठानों में बड़ी खलबली मची। और वे कहीं सीधे युद्ध में जगतसिंह की सेना को नष्ट करने का अवसर खोजने पर, जगतसिंह की सेना कब और कहाँ है, यह वे लाख यत्न करने पर भी न जान पाये। केवल यमदूतों की तरह राजपूत सैनिक, पठानी सेना को अचानक हमले के समय एक बार दिखाई देते और उन्हें मौत के घाट उतार कर फिर गायब हो जाते। जगतसिंह बहुत चतुर था। वह पूरी सेना एक समय में एक जगह कभी न रखता था। छोटी-छोटी टुकड़ियों में बाँट कर कई जगहों में छिपा रखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। और पठानी सेना की गति-विधि की टोह लगते ही, आवश्यकतानुसार सेना भेजता। एक स्थान पर काम हो जाने पर फिर वहाँ सेना का चिन्ह भी न रहता। राजपूत कब कहाँ हैं, कहाँ नहीं, यह पठान कभी जान न पाते। कतलू खाँ के पास प्रतिदिन ही सेना के नष्ट होने की खबरें पहुँचती। सुबह, दोपहर, शाम—हर समय यही अमंगल संवाद आता। अब नतीजा यह हुआ कि थोड़ी संख्या में पठानी सेना का किले से बाहर निकलना असंभव हो गया। लूट-खसोट भी बन्द हो गई। सेना ने किले में छिपकर रहना ही ठीक समझा। फिर एक स्थिति आई कि बाहर निकले बिना रसद जुटाना भी कठिन हो गया। अभी तक शत्रु आक्रमण से त्रस्त प्रदेश का इस प्रकार नियंत्रित हो जाना सुन कर राजा मानसिंह ने पुत्र को पत्र लिखा—

'कुलतिलक ! हमने समझ लिया है कि राज्य से तुम पठानों का अधिकार दूर कर सकोगे। अतः तुम्हारी सहायता के लिए दस हजार सेना और भेजते हैं।'

युवराज जगतसिंह ने उत्तर दिया—

'महाराज की जैसी इच्छा ! और सेना आए तो अच्छा ही है, नहीं तो आप के श्री चरणों के आशीर्वाद से यह दास पाँच हजार सेना से ही क्षत्रिय कुलोचित प्रतिज्ञा-पालन का प्रयत्न करेगा।'

कुमार जगतसिंह वीरमद से मत्त हो बिना किसी बाधा के युद्ध में विजय पाने लगे। शैलेश्वर ! तुम्हारे मंदिर में जिस सुन्दरी की अबोध-दृष्टि से यह योद्धा अपने आप पराजित हो गया था, उस सुन्दरी की क्या इस सेना-कोलाहल के बीच उसे एक बार भी याद नहीं आई ? यदि नहीं आई तो जगतसिंह भी तुम्हारी तरह ही पत्थर है।

१०

विमला के प्रयत्न

जिस दिन विमला पर नाराज हो कर क्रोध से अभिराम स्वामी ने उसे अपनी कुटिया से निकाल दिया था, उसके दूसरे ही दिन प्रदोष के समय अपने कमरे में बैठी विमला शृंगार करने में व्यस्त थी। पैंतिस साल की स्त्री का सतर्क शृंगार ! शृंगार होगा क्यों नहीं ? उम्र के साथ क्या जवानी भी चली जाती है ? जवानी का संबंध उम्र से नहीं, रूप और मन से है। जिसमें रूप नहीं, वह बीस वर्ष में भी वृद्धा है और जिसमें रूप है वह सदा ही युवती है चाहे उम्र जो भी हो। जिसके मन में रस नहीं, वह सदा प्रवीणा है, जिसके मन में रस है, वह सदा नवीना है। विमला की देहराशि आज भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से ओत-प्रोत है और मन रस से भरपूर। शायद उम्र बढ़ने पर रस का और भी परिपाक होता है।

पान की लाली से विमला के रंगे ओठों को देख कर कौन उसे युवती नहीं कहेगा? काजल अंजित आँखों का चकित कटाक्ष देख कर कौन कह सकता है कि वह चौबीस साल से अधिक की है। उसकी चंचल आँखें बड़ी-बड़ी और आवेशमयी हैं। किसी-किसी विगत यौवना कामिनी की आँखें देखते ही ऐसा लगता है कि यह रमणी दर्पिता है, यह रमणी सुख की लालसा से भरी हुई है। विमला की आँखें भी उसी तरह की हैं। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है विमला युवती है बल्कि उसे स्थिर-यौवना भी कहा जा सकता है। उसकी चम्पकवर्ण त्वचा की कोमलता देख कर कौन कहेगा कि कोई षोडशी उससे अधिक कोमल है! उसकी बँधी वेणी से छूट कर एक छोटी सी अलक कानों पर होकर कुंचित होती हुई गाल पर आ पड़ी है, उसे देख कर कौन कह सकता है कि यह अलक या यह गाल किसी युवती के नहीं है। दर्पण के सामने बैठी हुई विमला बाल सँवार रही है, बायें हाथ में केश-गुच्छ लेकर जिस तरह वह कंघी कर रही है, अपना ही यौवन-भार देख कर मन्द-मन्द मुस्करा रही है, बीच-बीच में वीणा सी मधुर ध्वनि में मृदु-मृदु गा रही है। इस समय विमला मनमोहिनी नवीना ही है।

बाल सँवार कर भी विमला ने चोटी नहीं बाँधी, बल्कि केश-गुच्छ को पीठ पर लटका दिया। सुगंधित रूमाल से मुँह पोछा, गुलाबजल और कपूर से तर पान से फिर ओंठों को लाल किया, मुक्ता-जड़ित चोली पहनी, सभी अंगों में रत्नाभूषण धारण किये, फिर न जाने क्या सोच कर उनमें से थोड़े से उतार कर रख दिए। फिर जरी की साड़ी पहनी, मोती टँकी चट्टियाँ पहनी और सँवारे हुए बालों पर युवराज का दिया बहूमूल्य मुक्ताहार बाँध लिया।

इस प्रकार खूब सज-धज कर विमला तिलोत्तमा के कमरे में गयी। उसे देखते ही तिलोत्तमा विस्मित चकित हुई। हँस कर पूछा—'यह सब क्या विमला? शृंगार किसलिए?'

'तुझे इसकी चिन्ता क्यों हो रही है?'

'सच बताओ, कहाँ जा रही हो?'

'मैं कहीं जा रही हूँ, यह तुमसे किसने कहा?'

तिलोत्तमा लजा गई। उसे लजाते देख कर विमला ने करुणा स्वर में मुस्करा कर कहा, 'मैं बहुत दूर जाऊँगी।'

अचानक तिलोत्तमा का चेहरा खिले कमल सा प्रफुल्लित हो उठा। उसने भी मृदु स्वर में पूछा, 'बताओ न, कहाँ जाओगी।'

विमला पूर्ववत मुस्करा कर बोली, 'अन्दाज लगाओ न!'

तिलोत्तमा विस्मय से उसके मुँह की ओर ही ताकती रही।

'जरा सुनो।' कह कर तिलोत्तमा का हाथ पकड़ कर विमला खिड़की के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
खींच ले गई। वहाँ कान के पास मुँह ले जाकर कहा, 'मैं शैलेश्वर के मंदिर जाऊँगी। वहीं किसी राजकुमार से भेंट होने वाली है।'

तिलोत्तमा की समस्त देहराशि रोमांचित हो उठी। पर वह कुछ बोल न सकी। विमला ही बोली, 'स्वामी जी से मेरी बातचीत हुई थी। उनकी समझ में यही आता है कि जगतसिंह से तुम्हारा विवाह किसी तरह भी नहीं हो सकता। तुम्हारे पिता इसके लिए किसी तरह भी सहमत नहीं होंगे। उनके सामने यह बात उठाना भी विपत्ति को बुलाना है।'

'ऐसा क्यों ?' धरती पर नजर गड़ाए हुए तिलोत्तमा ने निराशा भरे स्वर में पूछा।

विमला बोली, 'मैं राजकुमार से वचनबद्ध हूँ कि आज रात को मिल कर परिचय दूँगी। लेकिन मात्र परिचय से भला क्या होगा ? फिर भी अभी परिचय दूँगी ताकि अपना कर्तव्य वे खुद ही सोचें। राजकुमार यदि तुम पर अनुरक्त हों तो....'

और आगे न बोलने देने के लिए तिलोत्तमा ने विमला के मुँह पर कपड़ा रख दिया। बोली, 'तुम्हारी बात सुन कर लाज लगती है। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, जाती क्यों नहीं ? लेकिन मेरी बात किसी से मत कहना और मुझसे भी किसी की बात मत कहना।'

'तो फिर इस गहरे समुद्र में क्यों कूदीं ?'

'तू जा ! मैं अब तेरी कोई बात नहीं सुनूँगी।'

'तो फिर मैं मंदिर नहीं जाऊँगी।'

'क्या मैं तुझे कहीं जाने से रोक रही हूँ ? जहाँ तेरी इच्छा हो, वहीं तू जा न !'

'मैं तो अब नहीं जाऊँगी।'

'तो यहाँ से चली जा।'

विमला ठठा कर हँस पड़ी, फिर बोली, 'मैं तो चली, हाँ मैं जब तक लौट न आऊँ, तब तक सोना मत।'

तिलोत्तमा सिर्फ मुस्करा उठी। उस मुस्कान का अर्थ था—मुझे भला नींद आयेगी ही क्यों ? विमला समझ गई। चलते-चलते विमला ने एक हाथ तिलोत्तमा के कंधे पर रख कर दूसरे से उसकी ठोढ़ी उठाई, फिर कुछ देर तक एकटक उसके चेहरे को ताक कर अचानक स्नेह से उसका मुँह चूम लिया। तिलोत्तमा ने देखा—जब विमला चली जा रही थी तब उसकी आँखों में दो बूँद आँसू थे।

तभी आसमानी ने दरवाजे पर आ कर कहा, 'मालिक ने आपको याद किया है।'

सुन कर तिलोत्तमा ने विमला के पास आकर कान में कहा, 'यह कपड़े उतार कर जाओ।'

'तुम डरो नहीं।' विमला ने दृढ़ता से कहा।

विमला सीधे वीरेन्द्रसिंह के कमरे में गई। वहाँ वीरेन्द्रसिंह लेटे थे। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दासी उनके पाँव दबा रही थी और दूसरी पंखा झल रही थी। सीधे उनके पलँग के पास पहुँच कर विमला ने पूछा, 'मेरे लिए क्या आज्ञा है ?'

सिर घुमा कर वीरेन्द्रसिंह ने देखा, देख कर चकित हुए। पूछा, 'विमला क्या तुम किसी दूसरे काम से निकली हो ?'

'जी, मेरे लिए जो आज्ञा हो, बताइए ?'

'तिलोत्तमा कैसी है ? कुछ बीमार थी ? अब कैसी है ?'

'जी, अच्छी हैं।'

'तुम कुछ देर पंखा झलो और आसमानी से कहो कि वह तिलोत्तमा को हमारे पास बुला लाये।'

पंखा झलने वाली दासी पंखा रख कर उठ गई।

विमला ने इशारा कर के आसमानी को बाहर ठहरने को कहा।

वीरेन्द्रसिंह ने दूसरी दासी से कहा, 'लछमिन, तू हमारे लिए पान लगा ला।'

पैर दबाने वाली भी पान लाने चली गई।

तब वीरेन्द्रसिंह ने पूछा, 'विमला, तुम्हारा आज यह वेश क्यों है ?'

'आज इसी की जरूरत है।'

'क्या जरूरत है, हम भी तो सुनें !'

'तो सुनिये,' कह कह विमला ने वीरेन्द्रसिंह पर काम का तीखा तीर छोड़ा। बोली, 'तो सुनिये, इस समय मैं अभिसार के लिए निकली हूँ।'

'क्या यम के उद्देश्य से ?'

'क्यों, क्या आदमी के उद्देश्य से नहीं हो सकता ?'

'वह आदमी तो आज भी नहीं पैदा हुआ विमला !'

'हाँ, एक को छोड़ कर।' कह कर विमला तेजी से तीर की तरह वहाँ से चली गई।

| ११ |

आसमानी की सहायता

विमला के इशारे के कारण आसमानी कमरे के बाहर खड़ी प्रतीक्षा करती रही। बाहर आकर विमला ने उससे कहा, 'आसमानी, तुमसे आज एक खास और गुप्त काम है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसमानी बोली, 'वेश-भूषा देख कर ही मैं सोच रही थी कि आज कोई खास मामला है जरूर।'

विमला बोली, 'एक बहुत जरूरी काम है। मैं आज काफी दूर जाऊँगी। इतनी रात को अकेली न जा सकूँगी। तुम्हारे सिवा और किसी पर विश्वास भी नहीं जिसे साथ ले जा सकूँ, अतः तुम्हें ही साथ चलना होगा।'

'कहाँ जाओगी ?'

'आसमान ! पहले तो तुम इतनी बातें नहीं पूछती थीं ?'

'तो तुम थोड़ा इन्तजार कर लो, मैं कुछ काम निबटा कर आती हूँ।'

'एक बात और है। मान लो, अगर आज तुमसे उस समय के किसी आदमी से भेंट हो जाय तो क्या वह तुम्हें पहचान लेगा ?'

'ऐसा क्या ?'

'मान लो, यदि कुमार जगतसिंह से ही भेंट हो जाय ?'

आसमानी गद-गद हो भाव-विभोर स्वर में बोली, 'क्या ऐसा भी दिन आएगा ?'

'हो सकता है !'

'तो कुमार जरूर पहचान लेंगे।'

'तब तो तुम्हारा चलना ठीक नहीं है। फिर और किसे ले जाऊँ ? अकेली तो जा ही नहीं सकती।'

'कुमार को एक बार देखने को मन में बड़ी लालसा है।'

'तो मैं क्या करूँ ? मन की लालसा मन में ही रहे।'

विमला चिन्तित हो सोचने लगी। तभी अचानक मुँह में आँचल ढूँस कर आसमानी हँसने लगी। यह देख विमल तुनक कर बोली, 'तू मर जा ! अपने आप यों क्या हँसती है ?'

आसमानी ने उसी तरह हँसते हुए कहा, 'मैं सोच रही थी कि मेरे चाँद के टुकड़े दिग्गज तुम्हारे साथ जायँ तो कैसा हो।'

विमला ने उल्लास से हँसते हुए कहा, 'यही ठीक है। रसिकराज को साथ ले जाऊँगी।'

'यह क्या ? मैंने तो मजाक किया था।'

'मजाक नहीं। मूर्ख ब्राह्मण पर मुझे विश्वास है। उस जैसे अंधे के लिए दिन और रात सभी बराबर है, वह तो कुछ भी न समझ सकेगा। इसलिए उस पर मुझे पूरा विश्वास है। लेकिन वह ब्राह्मण चलने को तैयार न होगा।'

'यह जिम्मा मेरा रहा। मैं उसे अभी साथ लिए आती हूँ। तुम फाटक के सामने क्षण भर इन्तजार करो न !' यह कह कर आसमानी किले के भीतर एक छोटी सी कुटी की ओर चली गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी कुटी में रसिक राज, अभिराम स्वामी का शिष्य गजपति विद्यादिग्गज रहता है। दिग्गज का नाम और रूप भिन्न है। वह लम्बा है साढ़े पाँच हाथ और चौड़ाई में अधिक से अधिक एक या सवा बालिश्त। कमर से एड़ी तक दोनों पाँव नापने पर साढ़े तीन या चार हाथ होंगे। मोटाई तो मुश्किल से चारपाई की पाटी भर, रंग दावात की स्याही जैसा लगता है कि कभी भूल से अग्निदेव उसके पावों को लकड़ी समझ कर उसे भस्म करने चले थे पर कुछ भी रस न मिलने पर आधा ही जला कर छोड़ दिया है। लम्बाई अधिक और शरीर क्षीण होने के कारण दिग्गज महाशय थोड़े से कुबड़े हैं। चेहरे पर नासिका ही प्रमुख है। सिर घुटा हुआ, नए उगे बाल सुई की तरह गड़ने वाले।

इस गजपति को विद्यादिग्गज की उपाधि यों ही नहीं मिली। उसकी बुद्धि बड़ी पैनी है। पाठशाला में व्याकरण शुरू किया और सात ही महीने में सहर्णेर्घ सूत्र व्याख्या सहित कण्ठस्थ कर लिया। फिर पन्द्रह वर्षों में शब्द-काण्ड समाप्त किया। फिर दूसरा काण्ड प्रारम्भ करने के पहले अध्यापक ने पूछा, 'अच्छा बताओ कि राम शब्द में अम् लगाने पर क्या होता है ?' शिष्य ने तत्काल बताया, 'रामकान्त !'

अध्यापक विचलित हो उठे। खीझ कर कहा, 'बच्चा, तुम्हारी विद्या पूरी हो गई। अब तुम घर जाओ। अब यहाँ तुम्हारे पढ़ने को कुछ नहीं बचा मेरे पास अब कोई विद्या नहीं जो तुम्हें दे सकूँ।'

गजपति ने प्रसन्न हो कर अहंकार के साथ कहा, 'मेरा एक निवेदन है—मेरी उपाधि ?'

'बच्चा ! तुमने जो विद्या अर्जित की है, उसके लिए सभी पुरानी उपाधियाँ बेकार हैं। तुम्हारे लिए कोई नई उपाधि होनी चाहिए। बल्कि तुम 'विद्यादिग्गज' उपाधि ही ग्रहण करो।'

उपाधि पाकर प्रसन्न होकर गुरु के चरणों में प्रणाम करके दिग्गज घर चले गये।

घर आकर दिग्गज पण्डित ने सोचा कि व्याकरण तो इतना पढ़ा, अब स्मृति पढ़ना आवश्यक है। सुना है इस विषय में अभिराम स्वामी बड़े माने हुए पंडित हैं। फिर उनके सिवा मुझे और कौन पढ़ा सकता है। अब उन्हीं के पास चल कर स्मृति पढ़नी चाहिए। यही सोच कर दिग्गज महाराज किले में आ डटे। अभिराम स्वामी बहुतों को पढ़ाते थे। सोचा—एक यह भी रहे, क्या हानि है !

दिग्गज महाराज थोड़े आलंकारिक और रसिक भी हैं। उनकी रसिकता का स्रोत आसमानी के लिए कुछ अधिक ही तीव्र था। इसका एक गूढ़ मतलब भी था। गजपति सोचते थे कि उनका जन्म इस देश में केवल लीला करने को ही हुआ है। यही उनका वृन्दावन है और आसमानी उनकी राधा है। और आसमानी भी कम रसिका नहीं थी, ऐसे मदनमोहन को पाकर वह बन्दर पालने की साध मिटा लेती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कभी-कभी पता पाकर विमला भी बन्दर नचाने जाती थी दिग्गज सोचते थे—यह उसकी चन्द्रावली है। होगी भी क्यों नहीं, घृतभाण्ड वाली बात ठीक ही तो कही है।

१२

आसमानी

आसमानी की वेणी नागिन जैसी है। शायद इसी ताप से नागिन ने सोचा कि यदि मैं वेणी से परास्त हो गई तो क्या मुंह लेकर लोगों के सामने यह देह ले कर घूमूँगी ? इसीलिए वह बिल में जा समाई। तब ब्रह्मा की आफत हुई। उन्होंने सोचा कि नागिन तो बिल में चली गई, अब आदमी को काटेगा कौन ? यही सोच कर उन्होंने नागिन की पूँछ पकड़ कर उसे बिल से बाहर निकाला। विवश नागिन को फिर बाहर आ कर मुँह दिखाना पड़ा। इसी क्षोभ से वह अपना सिर पटकने लगी। पटकते-पटकते उसका सिर चिपटा हो गया। तभी से साँप के फन है।

आसमानी का चेहरा सुन्दर है, मुखचन्द्र। अस्तु, चन्द्रदेव ने ब्रह्मा से फारियाद की। ब्रह्मा ने कहा कि डरो मत, स्त्रियों का चेहरा ढँका रहेगा, तभी से घूँघट की सृष्टि हुई। आसमानी की आँखें खंजन जैसी हैं, यह खंजन कहीं पंख फैलाकर उड़ न जाये, अतः विधाता ने पलकों का द्वार लगाया। नासिका गरुण की नाक जैसी बड़ी। नाराज हो कर गरुण पेड़ पर जा बैठे-तब से सभी पक्षी पेड़ों पर ही रहने लगे। आसमानी के ही कारण, एक दूसरे कारण से अनार फल बंगाल छोड़ कर पटना भाग गया और हाथी कुम्भ लेकर बरमा देश भाग गये। बाकी रहा धवलगिरि। उसने देखा, मेरा शिखर कितना ऊँचा, मात्र ढाई कोस ही तो, पर यह शिखर तीन कोस से कम न होगा, यह सोचते ही धवलगिरि का माथा गर्म हो गया, तब उसके सिर पर बर्फ रखी गई, तभी से वह सिर पर बर्फ रखे बैठा है।

लेकिन यह सब होते हुए भी भाग्य के लिखे दोष के कारण आसमानी विधवा है।

आसमानी ने आ कर देखा कि दिग्गज की कुटी का दरवाजा बंद है, लेकिन भीतर दिया जल रहा था। पुकारा, 'अजी, महाराज जी ?'

कोई जवाब न आया।

फिर पुकारा, 'अरे गोसाईं जी ?'

फिर जवाब नदारद।

'मर जा मरदुआ ! जाने भीतर क्या कर रहा है ! अरे ओ रसिकराज रसोपाध्याय, प्रभू ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब भी जवाब नहीं ।

आसमानी ने कुटी के दरवाजे के छेद से झाँक कर देखा कि ब्राह्मण भोजन करने बैठा है । भोजन के बीच में वह नहीं बोल सकता । बोल देने से भोजन अशुद्ध हो जायगा । आसमानी को लगा कि इसकीनिष्ठा की परीक्षा ली जाय । देखूँ, बोल कर फिर खाता है या नहीं !

'कहती हूँ, ओ रसिकराज ?'

उत्तर नहीं ।

'ओ रसराज ?'

'हूँ—।'

मुँह में कौर भर कर जवाब देता है ? इससे बातचीत कैसे होगी ? सो फिर बोली, 'ओ रसमाणिक ।'

'हुँ—।'

'कहती हूँ कि बोल तो दो । बाद में फिर खा लेना ।'

'हूँ—हूँ—।'

'अच्छा । ब्राह्मण होकर यह कर्म । आज ही स्वामी जी से कहती हूँ । यह घर के भीतर दूसरा कौन है ?'

ब्राह्मण शंका से अपने ही घर में चारो ओर देखने लगा । किसी को न देख कर फिर खाने लगा ।

आसमानी चीखी, 'यह चण्डालिन औरत जात है न ! मैं इसे पहचानती हूँ ।'

दिग्गज का चेहरा सूख गया । बोला, 'कौन चण्डालिन है ? छू तो नही गई ?'

तब आसमानी बोली, 'अरे, तुम तो फिर खाने लगे । बोलने के बाद भी खाते हो ?'

'कहाँ ? मैं कहाँ बोला ?'

आसमानी खिलखिला कर हँस पड़ी । बोली, 'यह क्या, फिर बोले ?'

'अच्छा, हाँ, हाँ, अब नहीं खाऊँगा ।'

'तो उठ कर दरवाजा तो खोलो ।'

आसमानी छेद से देख रही थी । ब्राह्मण सचमुच थाली छोड़ कर उठने को हुआ । तो बोली, 'नहीं, नहीं, वह जो बचा है उसे भी पेट में डाल लो ।'

'नहीं, अब नहीं खाऊँगा, बोल चुका हूँ ।'

'यह क्या ? न खाओ तो तुम्हें मेरे सिर की कसम ।'

'राधे माधव ! बोलने के बाद क्या फिर खाना चाहिए ?'

'अच्छा तो मैं जाती हूँ । अपनी बहुत-सी भीतरी बातें कहने आई थी । लेकिन अब कुछ नहीं कहूँगी । जाती हूँ ।'

'नहीं, नहीं आसमान ! तुम नाराज मत होना । लो, मैं भोजन कर लेता हूँ ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण फिर खाने लगा। दो-तीन ही कौर खाए होंगे कि आसमानी बोल उठी, 'उठो, हो गया, अब दरवाजा खोलो।'

'बस थोड़ा-सा है, यह भी खा लूँ।'

'यह तेरा पेट कभी न भरेगा। उठो, नहीं तो कह दूँगी कि तुमने बोलने के बाद भी भोजन किया है।

'अरे, लो उठ गया।'

बड़े दुख से ब्राह्मण बचा खाना छोड़ कर उठा। कुल्ला किया और दरवाजा खोला।

|१३|

आसमानी का प्रेम

कुटी का दरवाजा खुला तो आसमानी भीतर गई। दिग्गज ने सोचा कि आज प्रणयिनी खुद आयी है, इसका सरस स्वागत होना चाहिए। अतः हाथ उठा कर कहा, 'ओं, आयाहि वर दे देवि !'

आसमानी ने कहा, 'यह तो बड़ा सरस काव्य है। कहाँ पाया ?'

'तुम्हारे लिए आज ही बनाया है।'

'तो क्या यों ही तुम्हें रसिकराज कहती हूँ ?'

'सुन्दरी, तुम बैठो, मैं जरा हाथ धो लूँ।'

आसमानी ने मन ही मन कहा—'अरे मूर्ख, तू हाथ धोएगा, अभी वही जूठा मैं तुझे फिर खिलाऊँगी।' फिर बोली, 'यह क्या, हाथ क्यों धोने लगे ? जरा भोजन तो पूरा कर लो।'

'यह कैसे हो सकता है ? खाना छोड़ कर उठ आया हूँ। अब फिर कैसे बैठूँ, खाने ?'

'क्यों खाना तो अभी पड़ा है। क्या उपवास करोगे ?'

'क्या करूँ ! तुमने ही तो जल्दी मचा दी।'

'तो फिर से खाना होगा !'

'हे ईश्वर ! आसन से उठ आया, कुल्ला भी कर चुका। अब फिर कैसे खाऊँगा ?'

'वाह, खाओगे कैसे नहीं ? मेरा जूठा खाओगे।' कह कर आसमानी ने उसकी थाली से एक ग्रास निकाल कर खा लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण अवाक् देखता रहा ।

आसमानी ने कहा, 'खाओ ।'

ब्राह्मण एक शब्द भी न बोला ।

'सुनो, खा लो, किसी से नहीं कहूँगी । किसी को मालून न होगा ।'

'अरे, ऐसा भी कहीं होता है ?' कह कर ही दिग्गज ने अनुभव किया कि अभी उसकी भूख मिटी नहीं ।

आसमानी समझ गई, बोली, 'अच्छा चाहे मत ही खाना, पर एक बार थाली के पास बैठे तो जाओ ।'

'क्यों इससे क्या होगा ?'

'मेरी इच्छा है । क्या तुम मेरी इतनी साध भी पूरी नहीं कर सकते ?'

अब ब्राह्मण चुपचाप थाली के पास जा बैठा ।

आसमानी ने पूछा, 'शूद्र का जूठा अगर ब्रह्मण छू ले तो क्या होता है ?'

'नहाना पड़ता है ।'

'मैं आज जान लूँगी कि तुम मुझे कैसा प्यार करते हो ? क्या तुम मेरी बात पर आज रात को नहा सकते हो ?'

'यह कौन-सी बड़ी बात है ? अभी नहा सकता हूँ ।'

'तुम्हारी थाली का प्रसाद पाने की इच्छा है । तुम अपने हाथ से दल-भात सान दो ।'

'यह कौन-सी बड़ी बात है !' कह कर दिग्गज दाल-भात सानने लगा ।

'मैं एक लतीफा सुनाती हूँ । जब तक मैं कहती रहूँ तुम दाल-भात सानते रहना । नहीं तो मैं नही खाऊँगी ।'

'अच्छा ।'

आसमानी ने राजरानी की कहानी शुरू की । दिग्गज अपना मुँह फैलाए, उसका मुँह ताकते सुनता रहा । सुनते-सुनते दिग्गज का मन आसमानी के चेहरे से अटक गया । आसमानी की हँसी, चितवन और नथ के बीच में अटक गया । दिग्गज को होश नहीं कि वह कहाँ है । उसका हाथ अपने आप दाल-भात सानते-सानते, एक कौर लेकर मुँह तक चला गया । मुँह भी फैल गया । कौर भीतर । दाँत भी स्वभावगत चलने लगे । उधर दिग्गज कहानी में भूला और आसमानी के चेहरे से चिपटा था ।

अचानक आसमानी हँस पड़ी, खिलखिला कर हँसी । बोली, 'क्यों रे ढोंगी ? कहता था मेरा जूठा नहीं खायेगा ।'

तब दिग्गज के होश लौटे ! झटपट एक और कौर मुँह में डाल कर निगलने लगा । फिर जूठे हाथों आसमानी के पाँव पकड़ लिये । रो कर बोला, 'मुझे बचा लो आसमानी ! किसी से मत कहना !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिग्गज-हरण

ठीक इसी समय बाहर से विमला ने कुण्डी खटखटाई। विमला दरवाजे के छेद से सब देख रही थी। कुण्डी की खटखटाहट सुन कर दिग्गज का चेहरा उतर गया। आसमानी ने भी घबराहट दिखाते हुए कहा, 'क्या गजब हो गया ! यह तो विमला आ गई है; छिपो, छिपो।'

दिग्गज महाराज रो पड़े। पूछा, 'कहाँ छिपूँ ?'

आसमानी ने कहा, 'उस अंधेरे कोने में सिर पर एक काली हाँड़ी रख कर जा बैठो। अंधेरे में वह देख न सकेगी।'

दिग्गज वैसा ही करने चले। लेकिन दुर्भाग्य से ब्राह्मण ने अरहर की दाल वाली हाँड़ी सिर पर औंधा ली। उसमें आधी हाँड़ी दाल बची थी—दिग्गज ने ज्यों ही सिर पर हाँड़ी औंधाई कि सिर से दाल की अनेक धारें बहीं—ब्राह्मण की चोटी से दाल का झरना फूट कर बह निकला। कंधे, छाती, पीठ और बाहों से होकर अरहर की दाल की धाराएँ पर्वत से उतरती नदियों की भाँति दिखने लगीं। विमला को देख कर दिग्गज फों-फों कर के रोने लगे। इससे विमला को बड़ी दया आई। विमला ने कहा, 'दिग्गज महाराज, रोओ नहीं। तुम यह बचा हुआ बाकी भात भी खा लो तब मैं किसी से यह बात नहीं कहूँगी।'

सुनकर ब्राह्मण की बाँछें खिल उठीं। फिर से खुश होकर भोजन करने बैठे। इच्छा थी कि देह-वाली दाल भी पोंछ लें, लेकिन ऐसा करने की हिम्मत न पड़ी। बरबाद गई आधी हाँड़ी दाल के लिए पछताते हुए सब चावल खा गये। भोजन कर लेने पर आसमानी के कहने से नहाया। फिर ब्राह्मण के स्थिर होने पर विमला ने कहा, 'रसिक, एक जरूरी बात है।'

'क्या ?'

'तुम हमें प्यार करते हो न ?'

'हाँ।'

'हम दोनों को ?'

हाँ, दोनों को।'

'तो, जो कहें, वह कर सकोगे ?'

'क्यों नहीं कर सकूँगा ?'

'अभी ?'

'अभी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इसी समय ?'

'हाँ ।'

'हम दोनों क्यों आई हैं, जानते हो ?'

'नहीं ।'

तब विमला बीच में बोल उठी, 'हम दोनों तुम्हारे साथ भाग जाएँगी ।'

ब्राह्मण विस्मय से मुँह फैला कर रह गया । बड़ी कठिनाई से विमला हँसी रोक सकी । पूछा, 'बोलते क्यों नहीं ?'

'आँय···आँय···लेकिन, लेकिन···'

आसमानी ने पूछा, ' क्या तुमसे न होगा ?'

'जरा···जरा, स्वामी जी से पूछ आऊँ ।'

विमला बोली, 'स्वामी जी से क्या पूछोगे ? क्या यह तुम्हारी अम्मा की सराध है जो स्वामी जी से पूछोगे ?'

'नहीं, अच्छा, नहीं पूछूँगा, परन्तु कब चलना है ?'

'कब क्या, अभी, तुरन्त ! देखते नहीं, मैं जेवर-कपड़े ले आई हूँ ।'

'अभी ?'

'अभी नहीं तो कब ? नहीं तो कहो न, हम दूसरा आदमी खोजें ।'

'नहीं, नहीं, चलो अभी चल रहा हूँ ।'

'रामनामी ले लो ।''

दिग्गज ने रामनामी गले में डाल ली । विमला आगे-आगे चली और ब्राह्मण देवता पीछे-पीछे । इसी समय दिग्गज ने कहा, 'सुन्दरी ?'

'क्या ?' पूछा विमला ने ।

'फिर कब आओगी ?

'अब क्या आऊँगी ? सदा के लिए चली ।'

'सामान तो सब रहा जा रहा है ।'

'यह सब मैं खरीद दूँगी ।'

'लेकिन पोथियाँ ?'

'हाँ, वह जल्दी से ले लो ।'

दिग्गज की कुल जमा दो ही पोथियाँ थीं । एक व्याकरण की, एक स्मृति की । फिर व्याकरण की भी पोथी हाथ में लेकर सोचा कि इसकी भला क्या आवश्यकता है ? यह तो पूरी कण्ठस्थ है । अतः सिर्फ स्मृति-पोथी ली । फिर भगवती का नाम ले कर विमला और आसमानी के पीछे चले ।

'तुम लोग आगे-आगे चलो, मैं पीछे से अभी आ रही हूँ ।' कहकर आसमानी घूम कर अपने घर चली गई। विमला और दिग्गज साथ-साथ चले । अँधेरे में छिपकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों किले के द्वार के बाहर गये। कुछ दूर चल कर दिग्गज ने पूछा, 'लेकिन अभी आसमानी नहीं आई ?'

'वह शायद नहीं आ सकी। अब उसका क्या करोगे ?'

रसिकराज चुप हो गए।

थोड़ी देर बाद फिर साँस छोड़ कर कहा, 'बर्तन-भाँड़े सब रह गये।'

| १५ |

दिग्गज की हिम्मत

तेजी से आगे बढ़ती जाती विमला जल्दी ही मन्दारन से आगे निकल गई। रात गहरी अंधेरी थी। तारों की झिलमिल रोशनी में ही वह सतर्कता पूर्वक चलती रही। मैदान के रास्ते पर पाँव रखते ही विमला कुछ शंकित हुई। उसका साथी चुपचाप पीछे-पीछे आ रहा था। वह कुछ भी नहीं बोल रहा था। ऐसे में आदमी की आवाज सुनने से हिम्मत बढ़ती है, कुछ सुनने को जी चाहता है। विमला ने साथी गजपति को चुप देख कर पूछा, 'क्यों रसिक-रतन, क्या सोच रहे हो ?'

उदास स्वर में दिग्गज ने कहा, 'कहता हूँ कि बासन-भाँड़े···।'

जवाब न देकर विमला बीच में ही खिलखिलाकर हँस पड़ी।

कुछ देर बाद विमला ने फिर कहा, 'क्यों दिग्गज, तुम्हें भूतों से डर लगता है ?'

'राम-राम, राम-राम कहो' कहता हुआ दिग्गज बढ़ कर विमला के अति निकट आ गया।

'इस क्षेत्र में भूतों का बड़ा उपद्रव है।' विमला ने कहा।

सुन कर दिग्गज ने आगे बढ़ कर विमल का आँचल पकड़ लिया।

विमला कहती गई, 'हम उस दिन शैलेश्वर की पूजा करने जा रहे थे। रास्ते में बड़े बरगद के नीचे एक विकराल मूरत खड़ी देखी थी।'

आँचल के कंपन से विमला समझ गई कि ब्राह्मण बुरी तरह थर-थर काँप रहा है। सोचा कि अब और अधिक डरवाने से शायद ब्राह्मण आगे बढ़ने से इन्कार कर दे, अतः सम्हल कर शांत स्वर में पूछा, 'रसिकराज, तुम्हें गाना आता है ?'

दिग्गज बोला, 'आता क्यों नहीं ?'

'तो एक गीत गाओ।'

दिग्गज ने तत्काल ही शुरू किया—'एक—हूँ—जाने दो मो को सजनवा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास्ते में बैठी एक गाय पागुर कर रही थी। वह यह अलौकिक संगीत-स्व सुन कर उठ कर, भागी।

रसिकराज का गाना चलता रहा। बोल थे—

'काहे करत तुम नित-नित हमसों रार
नहीं नहीं मानूँगी तिहार।'

अचानक दिग्गज का गाना एकाएक रूक गया। अचानक उसके कानों में ऐसे मधुर शब्द पड़े कि उसके कान ही जाग गए, स्वर सो गया, कंठ रुक गया। अमृत मय शब्द सा मधुर संगीत उसके कानों में गया। विमला खुद ही खूब खुल कर पूरी आवाज में गाने लगी थी।

सुनसान मैदान से उठ कर संगीत स्वर आकाश की ओर उठने लगा। गरमी की हवा में भी शीतलता का आभास मिलने लगा।

दिग्गज सांस रोक कर सुनने लगा। जब विमला ने समाप्त किया तो एकाएक दिग्गज बोल उठा, 'फिर ?'

'फिर क्या ?'

'एक और गाओ।'

'क्या गाऊँ ?'

'कोई बंगाली गीत गाओ ?'

'अच्छा गाती हूँ। कह कर विमला ने फिर शुरू किया।

गाते गाते विमला को लगा कि जैसे कोई उसका आँचल जोरों से पकड़ कर खींच रखा हो। उसने पीछे मुड़ कर देखा कि गजपति बिल्कुल उसके पैरों के पास आ गया था और अपनी शक्ति भर जोर लगा कर उसका आँचल पकड़ रखा था। विमला ने चकित होकर पूछा, 'क्या बात हैं क्या हुआ ? फिर भूत देखा क्या ?'

ब्राह्मण का कण्ठ जैसे जकड़ा था। उँगली उठा कर एक ओर दिखाया, 'वह।'

विमला भी स्तब्ध होकर उसी ओर देखने लगी। तेजी से चलती साँस की आवाज उसके कानों ने सुनी और उस दिशा में सड़क के किनारे कोई चीज दिखाई दी।

साहस करके पास जाकर विमला ने देखा, एक खूब सजा-बजा घोड़ा खूब घायल होकर पड़ा दम तोड़ रहा था। पास ही एक सैनिक को भी पड़ा देखा।

विमला वहाँ रुकी नहीं, रास्ते पर बढ़ती गई। सैनिक और घोड़े को इस अवस्था में देख कर चिन्तित अवश्य हुई। लेकिन कोई बातचीत उसने नहीं की और चुपचाप आगे बढ़ती गई। लगभग एक मील चलने के बाद दिग्गज ने फिर उसका आँचल पकड़ कर खींचा। विमला ने पूछा, 'क्या है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिग्गज ने एक चीज लेकर दिखाई। विमला ने देख कर कहा—'यह किसी सिपाही की पगड़ी है।'

देख कर विमला गहरी चिन्ता में डूब गई। फिर अपने आप ही बोली, 'जिसका घोड़ा है, उसी की पगड़ी है ? नहीं, यह तो किसी पैदल सवार की पगड़ी है।'

थोड़ी देर बाद चाँद निकला। विमला और भी अनमनी हो गई। बड़ी देर के बाद हिम्मत करके दिग्गज ने कहा, 'सुन्दरी, कुछ बोलती क्यों नहीं हो ? बातचीत क्यों नहीं करतीं ?'

'रास्ते पर कुछ निशान दिखते हैं तुम्हें ?'

दिग्गज ने खूब सावधानी से रास्ते पर देख कर कहा, 'हाँ, बहुत से घोड़ों की टापों के निशान देख रहा हूँ।'

'कुछ समझे ?'

'नहीं।'

'वहाँ वह घायल घोड़ा, सिपाही की खुली पगड़ी, यहाँ इतने घोड़ों के टापों के निशान, इतने से भी कुछ नहीं समझ सके ? कहूँ भी तो किससे ?'

'क्या ?'

'इस रास्ते से अभी-अभी एक बड़ी सेना आ गई है।'

दिग्गज डर कर बोला, 'तो जरा धीरे-धीरे चलो, ताकि वे लोग काफी दूर बढ़-कर चले जायँ।'

उदास व चिन्तित स्वर में विमला ने कहा, 'बड़े मूर्ख हो ! वे लोग बढ़ कर कहाँ जायँगे ? देखते हो, घोड़ों के टापों के निशान से उनका किस ओर बढ़ना दिखाई देता है ? देखते नहीं, यह सेना गढ़ मन्दारन की ओर गई है।'

दोनों ने जल्दी-जल्दी पाँव बढ़ाया। जल्दी ही शैलेश्वर के मन्दिर की उज्ज्वल पताका दीख पड़ी। विमला ने मन में सोचा कि राजकुमार जगतसिंह के साथ इस मूर्ख ब्राह्मण की भेंट की कोई आवश्यकता नहीं है। बल्कि इससे नुकसान होने की ही संभावना है। इसलिये वह ब्राह्मण को टालने का ही उपाय सोचने लगी। ब्राह्मण ने खुद ही रास्ता बता दिया।

विमला की पीठ से लगभग सटते हुए ब्राह्मण दिग्गज ने उसका आँचल पकड़ कर खींचा। विमला ने पूछा, 'अब क्या हुआ ?'

दिग्गज ने घुटती हुई आवाज में पूछा, 'अब कितनी दूर है ?

'क्या ?'

'वही बरगद !'

'कौन सा बरगद ?'

'वही, जहाँ उस दिन तुम लोगों ने कुछ देखा था ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्या देखा था ?'

'रात को उसका नाम नहीं लेना चाहिये ।'

समझ कर विमला ने सुयोग का लाभ उठाया । गंभीर स्वर में बोली, 'वह !'

दिग्गज और भी डर गया । पूछा, 'क्या ?'

विमला ने एक ओर उँगली उठा कर कहा, 'वही है वह बरगद ।'

दिग्गज जैसे जम गया । फिर न हिला । गतिहीन व शक्तिहीन होकर पीपल के की तरह काँपने लगा ।

विमला बोली, 'आओ ।'

दिग्गज ने काँपते हुए कहा, 'मैं अब आगे न जा सकूँगा ।'

'डर तो मुझे भी लग रहा है ।'

सुनते ही दिग्गज पीठ फेर कर भागने का उपक्रम करने लगा । विमला ने पेड़ की ओर गौर से देखा । पेड़ के नीचे कुछ सफेद-सफेद दिखाई पड़ा । विमला जानती थी कि पेड़ के नीचे शैलेश्वर का साँड़ रहता है, पर दिग्गज से कहा, 'दिग्गज, अब इष्टदेव का नाम लो । पेड़ के नीचे कुछ देख रहे हो ?'

'अरे बाप रे !' कह कर दिग्गज भाग कर खड़ा हुआ । लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ, देखते-देखते वह आधा मील दूर चला गया ।

विमला दिग्गज को खूब अच्छी तरह जानती थी । वह समझ गई कि दिग्गज भाग कर सीधे किले के दरवाजे पर ही पहुँचेगा ।

अब विमला निश्चिन्त होकर मन्दिर की ओर बढ़ी ।

सब बातें सोच विचार कर विमला आई थी, पर एक बात उसने नहीं सोचा था । जगतसिंह मंदिर में आये हैं या नहीं ? मन में इस शंका के आते ही विमला का मन कष्ट पाने लगा । सोच कर देखा—राजकुमार ने निश्चयपूर्वक आने को नहीं कहा था । मात्र इतना ही कहा था—यहीं तुमसे भेंट होगी । यदि यहाँ भेंट न हो तो फिर नहीं होगी ।—तब तो आना निश्चित नहीं है ।

यदि राजकुमार नहीं आये तो इतनी झंझट बेकार ही उठाई । उदास होकर विमला अपने आपही कहने लगी—'यह मैंने पहले क्यों नहीं सोचा ? दिग्गज को भी व्यर्थ ही भगा दिया ! अब इतनी रात में अकेले कैसे लौटूँगी ? हे शैलेश्वर, तुम्हारी ही इच्छा पूरा हो !'

शैलेश्वर के मन्दिर में जाने का मार्ग उसी बरगद के नीचे से है । पेड़ के नीचे पहुँच कर विमला ने देखा, वहाँ वह साँड़ नहीं है, पेड़ के नीचे जो सफेद चीज दिखी थी, वह भी अब वहाँ नहीं है । विमला को ताजुब हुआ । साँड़ यदि टहल गया होता तो मैदान में अवश्य दिखता ।

तभी विमला ने पेड़ के तने की ओर तेज निगाह फेंकी । लगा कि पेड़ के पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
से किसी आदमी के सफेद कपड़े का एक भाग दिख रहा है। विमला बहुत चंचल हो उठी। तेज कदम मन्दिर की ओर चली। मन्दिर में पहुँच कर दरवाजे पर जोरों का धक्का मारा।

दरवाजा भीतर से बन्द था। एक गम्भीर स्वर गूँजा, प्रश्न हुआ, 'कौन ?'

शून्य मन्दिर के भीतर ही प्रतिध्वनि गूँजी, 'कौन ?'

खूब साहस बटोर कर विमला ने कहा, 'रास्ते की थकी एक स्त्री।'

दरवाला खुल गया।

देखा, मंदिर में दिया जल रहा है। सामने हाथ में खुली तलवार लिए एक दीर्घकाय पुरुष खड़ा है।

देखते ही विमला पहचान गई, कुमार जगतसिंह है।

| १६ |

जगतसिंह से भेंट

घबराहट और उत्तेजना के कारण विमला इतनी अस्थिर हो गई थी कि मन्दिर में घुसने के बाद थोड़ी देर वह चुपचाप वहीं बैठी रही, तब वह स्थिर हो सकी। फिर उठकर उसने अत्यन्त श्रद्धा से झुक कर शैलेश्वर को प्रणाम किया, फिर घूम कर उसने युवराज को आदरपूर्वक प्रणाम किया।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। कौन पहले और क्या कह कर अपने मन का भाव व्यक्त करे, यह संकट दोनों के मन पर छाया रहा। पहले क्या कह कर बात शुरू की जाय ?

विमला ऐसे अवसरों के लिए बड़ी चतुर स्त्री है। मुस्करा कर बोली, 'युवराज ! आज शैलेश्वर की कृपा से आपके दर्शन हुए। अकेले, ऐसी भयानक रात में, सुनसान मैदान से आते हुए डर रही थी। अब मंदिर में आकर जब आपके दर्शन हुए तब साहस लौटा।'

युवराज ने पूछा, 'सब कुशल तो है ?'

विमला को यही अवसर का सुयोग मिला कि वह जान ले कि क्या सचमुच युवराज भी तिलोत्तमा पर अनुरक्त हैं या नहीं ? उसने सोचा कि पहले यही बात जान ली जाय तब दूसरी बात की जायगी। अतः खूब सोच कर उसने कहा, 'जिसमें कुशल हो, उसी लिए तो शैलेश्वर की पूजा करने आई हूँ। अब जान गई कि आपकी ही पूजा से शैलेश्वर प्रसन्न हैं, उन्हें अब मेरी पूजा स्वीकार न होगी। अब आज्ञा हो तो मैं चलूँ ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'हाँ जाओ, लेकिन तुम्हारा अकेले जाना उचित नहीं, हम तुम्हें पहुँचा आते हैं।'

विमला समझ गई कि युवराज ने इस उम्र तक केवल अस्त्र-शिक्षा ही नहीं पाई है। बोली, 'अकेले जाना अनुचित क्यों हैं ?'

'रास्ते में अनेकों प्रकार के डर हैं।'

'तो मैं महाराज मानसिंह के पास जाऊँगी।'

'क्यों, किसलिए ?'

'उनसे फरियाद करूँगी कि जिन्हें आपने सेनापति नियुक्त किया है, उनसे हमारे रास्ते के भय दूर नहीं हुए हैं। शत्रु को विनाश करने में वे सक्षम नहीं हैं।'

युवराज हँस पड़े। बोले, 'तब सेनापति कहेंगे कि शत्रु का विनाश तो देवताओं के लिये भी सहज नहीं, आदमी की क्या विसात ? उदाहरण है कि स्वयं महादेव ने तपोवन में मन्मथ शत्रु को भस्म किया था। अभी एक ही पखवारा बीता है कि उसने उन्हीं के मन्दिर में भारी उत्पात किया है।'

'इसका दुष्प्रभाव किस पर हुआ है ?'

'सेनापति पर ही।'

'क्या ऐसी असम्भव बात पर महाराज विश्वास करेंगे ?।

'मेरे पास गवाह है।'

'ऐसा गवाह कौन है ?'

'सुचरित्रे·····।'

युवराज की बात को बीच में ही काट कर विमला बोली, 'महाराज, यह दासी बड़ी दुश्चरित्रा है, मुझे विमला कह कर पुकारियेगा।'

'तो विमला ही गवाह है।'

'विमला ऐसी गवाही नहीं देगी।'

'हो सकता है। जिसे एक पखवारे में ही अपनी प्रतिज्ञा याद न रहे, वह भला सही गवाही कैसे दे सकती है ?'

'महाराज, कौन सी प्रतिज्ञा थी ?'

'सखी का परिचय देने की।'

एकाएक विमला सतर्क हो गई, व्यंग्य-वार्ता छोड़ कर गम्भीर स्वर में बोली, 'युवराज परिचय देते संकोच होता है। परिचय पाकर संभव है आप सुखी न हों ?'

युवराज क्षण भर सोचते रहे। वे भी गम्भीर हो गये थे। सोच कर गम्भीर भाव से बोले, 'विमला, ठीक-ठीक परिचय पाकर क्या मेरे सुखी न होने का उपयुक्त कारण है ?'

'हाँ युवराज !'

राजकुमार चिन्तित हो उठे। थोड़ी देर बाद बोले, 'कुछ भी परिणाम हो, तुम मेरी जिज्ञासा शांत करो। मेरी उत्सुकता बढ़ती जा रही है। इससे बढ़ कर मेरी बेचैनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का और कोई कारण नहीं हो सकता। तुम्हारी शंका यदि सत्य भी हो तो वह भी इस बेचैनी से अधिक सुखकर होगा। अपने मन को समझाने को एक बात तो मिलेगी। विमला, मैं मात्र कौतूहल-निवारण के लिए नहीं आया। इधर पूरे पखवारे भर मैं घोड़े की पीठ छोड़ कर किसी अन्य शय्या पर नहीं लेटा हूँ। मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है, तभी मैं आया हूँ।'

यही बात जानने के लिये तो अब तक विमला इतना प्रयत्न कर रही थी। लेकिन अभी भी वह संतुष्ट न थी। और भी कुछ सुनने के लिए उसने कहा, 'युवराज, आप राजनीति में परम प्रवीण हैं। सोच कर देखिए, क्या इस समय, युद्ध के समय एक दुष्प्राप्य रमणी में मन लगाना उचित है! मैं दोनों के ही कल्याण के लिए कह रही हूँ। आप मेरी सखी को भूल जाने का प्रयत्न कीजिये। युद्ध में आप अवश्य ही अशस्वी होंगे।'

युवराज के चेहरे पर मन का क्लेश प्रकट करने वाली मुस्कान आई। बोले, 'किसे भूलूँगा? एक बार के दर्शन-मात्र से ही मेरे हृदय पर तुम्हारी सखी का रूप गहरी छाप छोड़ गया। अब वह छाप कभी मिट नहीं सकती। लोग मेरे हृदय को पत्थर कहते हैं। और पत्थर में जो चित्र एक बार अंकित हो जाता है, वह पत्थर के नष्ट हुए बिना कभी नहीं मिटता। और युद्ध की बात क्या कहती हो? विमला, तुम्हारी सखी को देखने के बाद से ही मैं लड़ाई लड़ रहा हूँ। रणक्षेत्र हो या शिविर, मैं एक पल के लिए भी उस मुँह की छवि नहीं भूला हूँ। जब सिर काटने के लिए ही पठानों ने खंजर उठाया है, तब, मरने पर, फिर वह मुँह कभी नहीं देख सकूँगा। दुबारा देखने को नहीं मिला, बार-बार यही बात याद आती है। विमला, बताओ! मैं तुम्हारी सखी को कहाँ देख सकता हूँ?'

और ज्यादा सुन कर विमला क्या करती! बोली, 'तो गढ़मन्दारन में मेरी सखी को देख सकिएगा। मेरी सखी, सुन्दरी तिलोत्तमा, वीरेन्द्र सिंह की कन्या हैं।'

जगतसिंह को एक झटका सा लगा, जैसे उन्हें काले साँप ने डस लिया हो। तलवार के सहारे वे सिर झुकाये खड़े रहे। थोड़ी देर तक चिन्ता-मग्न रह कर फिर लम्बी साँस छोड़ कर बोले, 'तुम्हारी ही बात सच निकली। हाँ, तिलोत्तमा मेरी नहीं हो सकती। अब मैं रणक्षेत्र में चला। शत्रु के रक्त में ही अपने मन की अभिलाषा बहा दूँगा।'

युवराज को इस प्रकार कातर देख कर विमला बोली, 'युवराज! यदि स्नेह का पुरस्कार है तो मात्र आप ही तिलोत्तमा को प्राप्त करने के योग्य हैं। अभी से इतने निराश क्यों होते हैं? आज यदि विधाता वैरी है तो कल वही परम सदय भी हो सकता है।'

आशा बड़ी ठगिनी है, बड़ी मृदु वा मधुरभाषिणी। बहुत बुरे दिनों में भी वह मनुष्य के कान में लगातार कहती रहती है— 'ये तूफान और बादल हमेशा नहीं रहेंगे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तुम दुखी क्यों होती हो ? मेरी बात सुनो।' आज विमला के मुंह से आशा ही बोल रही थी—'क्यों दुखी होते हो ? मेरी बात सुनो।'

जगतसिंह ने आशा की ही बात सुनी। ईश्वर-इच्छा को कौन टाल सकता है ? विधाता की लिपि को पहले से कौन पढ़ सकता है ? इस संसार में अघटन कौन सी घटना नहीं घटी ?'

युवराज ने आशा की बात सुनी। बोले, 'जो भी हो पर आज मेरा मन बहुत अस्थिर हो गया है। समझ में नहीं आ रहा कि क्या करना चाहिए, क्या नहीं। जो कुछ भाग्य में लिखा होगा, हो कर रहेगा। विधाता का लिखा कौन मेट सकता है ? इस समय मैं केवल अपना मन ही खोल कर कह सकता हूँ। इस समय, यहाँ शैलेश्वर के सामने सच ही कह रहा हूँ कि मैं जीवन में तिलोत्तमा को छोड़ कर और किसी को प्यार नहीं कर सकूँगा। तुमसे मेरी केवल एक भिक्षा है कि तुम अपनी सखी से कुल बातें साफ-साफ खोल कर कह देना और कहना कि मैं केवल एक बार उनके दर्शन का भिखारी हूँ। दूसरी बार के लिए कभी प्रयत्न भी न करूँगा, यह स्वीकार करता हूँ।'

विमला का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा, बोली, 'मेरी सखी की प्रतिक्रिया आप कैसे जान सकेंगे ?'

'मैं तुम्हें बार-बार तो कष्ट नहीं दे सकता। पर यदि तुम मुझसे फिर इसी मन्दिर में मिलो तो मैं सदा तुम्हारे हाथों बिका रहूँगा। जगतसिंह से कभी न कभी तुम्हारा उपकार ही हो सकता है।'

विमला बोली, 'युवराज, मैं आप की दासी हूँ, आज्ञाकारिणी हूँ। लेकिन रात को अकेले इस रास्ते से आने में बहुत डर लगता है। कहे हुए बचन का पालन किए बिना नहीं बनता, इसी विवशता से आज आ सकी हूँ। आप जानते हैं कि इस समय यह प्रदेश शत्रुओं से भरा पड़ा है। अतः दुबारा आऊँगी, ऐसा कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।'

फिर कुछ देर के बाद राजकुमार ने कहा, 'तुम यदि कोई विशेष हानि न देखो तो मैं इस समय तुम्हारे साथ गढ़ मन्दारन चलूँ। वहाँ उपयुक्त व सुरक्षित जगह पर मैं प्रतीक्षा करूँगा। तुम मुझे आ कर खबर दे जाना।'

प्रसन्न स्वर से विमला ने कहा, 'तो चलिए।'

मन्दिर से दोनों बाहर आये और चलने का उपक्रम करने लगे। ठीक इसी समय मन्दिर के बाहर किसी के सावधानी से चलने की पदचाप सुनाई पड़ी। राजकुमार ने आश्चर्य से विमला से पूछा, 'तुम्हारा कोई साथी भी है ?'

'नहीं तो !'

'तो यह किसके चलने की आहट आई। लगता है कि किसी ने छिप कर हमारी बातचीत सुनी है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार ने बाहर खुले में आकर मन्दिर के चारों ओर घूम कर देखा पर कहीं कोई दिखाई न पड़ा।

| १७ |

वीर-पंचमी

शैलेश्वर को प्रणाम कर शंकित मन से दोनों गढ़ मन्दारन की ओर चुपचाप चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद पहले जगतसिंह ने ही बात शुरू की। बोले, 'विमला, एक बात की मुझे जिज्ञासा है। तुम सुन कर क्या कहोगी, कह नहीं सकता।'

'कहिये क्या है ?'

'मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि तुम दासी नहीं हो।'

'ऐसा विश्वास आप को कैसे हुआ ?'

'वीरेन्द्र सिंह की कन्या अम्बर नरेश की पुत्र बधू नहीं हो सकती, इसका एक विशेष रहस्य है। वह रहस्य बहुत गुप्त है। तुम दासी हो कर यह गुप्ततम रहस्य कैसे जान सकती हो ?'

लम्बी साँस छोड़ कर बड़े कातर स्वर में विमला ने कहा, 'आपका विश्वास ही ठीक है। मैं दासी नहीं हूँ। भाग्य के कुचक्र से ही दासी की तरह समय काट रही हूँ। अदृष्ट को भी दोष क्या दूँ ? मेरा अदृष्ट बुरा नहीं।'

राजकुमार को लगा कि इस बात से विमला का मन आहत हुआ है, अतएव इस संबंध में आगे और बात नहीं की। विमला खुद ही बोली, युवराज, मैं अपना ठीक परिचय आपको अवश्य दूँगी, पर अभी नहीं। वह कैसी आवाज है ? क्या कोई पीछे आ रहा है ?'

इसी समय, पीछे से कई आदमियों के चलने की पदचाप सुनाई पड़ी। ऐसा लगा, जैसे दो आदमी आपस में फुसफुसा रहे हैं। तब तक मन्दिर प्रायः मील भर पीछे छूट गया था।

युवराज बोले, 'मेरा संदेह बढ़ता जा रहा है, मैं देख आऊँ', कहकर वह कुछ दूर लौटे, इधर उधर भी देखा पर कहीं भी किसी आदमी का नाम-निशान न था। लौट कर विमला से कहा, 'मुझे संदेह है कि कोई हमलोगों के पीछे लगा है। अब हमें बहुत सतर्कता से चलना और बातचीत करना चाहिए।'

अब दोनों बहुत ही धीमी आवाज में बातचीत करते आगे बढ़े। थोड़े समय बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गढ़ मन्दारन गाँव में आकर किले के सामने पहुंचे। राजकुमार ने पूछा, 'इस समय तुम किले के भीतर कैसे जाओगी ? इतनी रात को अवश्य ही फटक बन्द होगा।'

'आप चिन्ता न करें। इसका प्रबन्ध करके ही मैं बाहर निकली थी।'

'क्या कोई गुप्त-मार्ग है ?'

'जहाँ चोर हैं, वहाँ सेंध भी है।'

'तो अब और आगे जाने की मेरी जरूरत नहीं। मैं किले के पास वाले आम के बगीचे में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। मेरी खातिर तुम मेरी ओर से अपनी सखी से निष्कपट भाव से सब निवेदन करना। एक पखवारे बाद हो या एक महीने के बाद, मैं एक बार उन्हें देख कर अपनी आँखों की जलन मिटाऊँ गा।'

'यह आम का बगीचा, सुरक्षित स्थान नहीं है। आप मेरे साथ आइए।'

'और कितनी दूर चलना होगा ?'

'किले के भीतर चलिए।'

'विमला, यह तो शायद उचित न होगा। दुर्ग-स्वामी की आज्ञा बिना मैं तो किले के भीतर नहीं जा सकता।'

'चिन्ता क्या है ?'

'राजकुमार लोग कहीं जाने में चिन्ता नहीं करते। तुम्हीं सोच कर देखो, अम्बर-नरेश के युवराज के लिए क्या यह उचित है कि वह किले में स्वामी की आज्ञा बिना चोर की तरह प्रवेश करे ?'

'लेकिन मैं आप को आमंत्रित करके लिवा जा रही हूँ।'

'यह न सोचना कि मैं दासी समझ कर तुम्हारी अवज्ञा कर रहा हूँ। पर तुम्हीं कहो न कि किले के भीतर मुझे लिवा जाने का तुम्हें क्या अधिकार है ?'

'मेरा क्या अधिकार है, यह जाने बिना क्या आप भीतर न चलेंगे ?'

'कदापि नहीं।'

तब विमला ने निकट जाकर, झुक कर युवराज के कान में कुछ कहा।

राजकुमार बोले, 'तो चलिए।'

विमला बोली, 'युवराज मैं दासी हूँ। दासी से 'चलिए' नहीं, 'चलो' कहिए।'

'यही सही।'

जिस राजपथ से विमला युवराज को लिवाए ले जा रही थी, उसी राह से किले के दरवाजे पर जाना पड़ता है। किले की बगल में ही आम का बगीचा है। लेकिन सिंह द्वार से बगीचा दिखाई नहीं पड़ता। अन्तःपुर के पीछे जहाँ आमोदर नदी बहती है, उस ओर जाने पर आम के बगीचे के भीतर से होकर जाना पड़ता है। विमला इस समय राजमार्ग छोड़ कर युवराज के साथ आम के बगीचे में घुसी।

आम के बगीचे में घुसते ही फिर सूखे पत्तों के कुचले जाने के साथ मनुष्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पावों की ध्वनि आने लगी। सुन कर विमला ठमकी। बोली, 'फिर वही।'

युवराज ने कहा, 'तुम जरा ठहरो। मैं देख आता हूँ।'

म्यान से तलवार निकाल कर युवराज आवाज आने की दिशा की ओर बढ़े। लेकिन कहीं कुछ न दिखा। बगीचे में बीच-बीच में अनेक जंगली लताओं के कारण ऐसा जंगल हो गया था और पेड़ों की छाया के कारण रात में बगीचे में ऐसा अंधकार छा गया था कि युवराज जिधर भी बढ़ते, आगे अधिक दूर तक कुछ न देख पाते। अंत में उन्होंने मन को समझाया कि जंगली जानवरों के चलने से भी सूखे पत्तों के कुचले जाने की आवाज आ सकती है। फिर भी, कुछ भी हो, संदेह दूर कर लेना चाहिए, यह सोच कर युवराज तलवार हाथ में लिए हुए एक पेड़ के ऊपर चढ़ गये। पेड़ पर काफी ऊपर जाकर वह इधर-उधर देखने लगे। बड़ी देर तक देखने के बाद देख सके कि एक बड़े आम के पेड़ की शाखाओं के बीच अंधेरे में दो जन बैठे हैं। उनकी टोपियों पर चाँदनी पड़ रही है, उसी से दिखना संभव हो सका। बाकी शरीर अंधेरे में छिपा था। राजकुमार ने ठीक से देखा, टोपियाँ पहने दो आदमी ही हैं, अब इसमें कोई संदेह नहीं रहा। उन्होंने अच्छी तरह उस पेड़ को पहचान लिया ताकि दुबारा आने में भ्रम न हो। फिर वह धीरे-धीरे पेड़ से उतर कर चुपचाप विमला के पास आये। जो कुछ देखा था, विमला से बातया। फिर कहा, 'इस समय अगर दो बरछे होते!'

'बरछे लेकर क्या कीजिए?'

'इन दोनों के लिए। मालूम करता कि ये कौन हैं? लक्षण अच्छे नहीं दीख रहे। टोपियों से शक हो रहा है कि पठानों ने किसी बुरे अभिप्राय से हमारा पीछा किया है।'

तब विमला को राह में देखे घायल, मृत प्राय घोड़े, पगड़ी और घोड़ों की टापों के निशान की याद आयी। बोली, 'तो आप यहाँ पल भर प्रतीक्षा कीजिए। मैं झटपट किले से बरछे लेकर आती हूँ।'

विमला भाग कर किले में गई। जिस कमरे में बैठ कर उसने शृंगार किया था, उसके नीचे के कमरे में आम के बगीचे की ओर एक झरोखा था। आँचल से चाभी निकालकर विमला ने कल में घुमाई। फिर झरोखे का डण्डा पकड़ कर दीवार की ओर खींचा। शिल्प-कौशल से झरोखा, उसके किवाड़े, चौखट, सींखचे, सभी दीवाल के भीतर एक बड़े छेद में समा गए। कमरे में घुसने के लिए विमला को रास्ता मिल गया। कमरे के भीतर-जाकर विमला ने दीवार के भीतर से झरोखे के चौखट को पकड़ कर खींचा। झरोखा निकलकर फिर अपनी जगह स्थिर हो गया। झरोखे में भीतर से भी चाभी लगाने की कल थी। विमला ने फिर उस कल में चाभी लगाई। झरोखा अपनी जगह दृढ़ हो गया। बाहर से खुलने का डर न रहा।

फिर विमला जल्दी से किले के शस्त्रागार में गई। वहाँ खड़े पहरेदार से कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं तुमसे जो भी कहती हूँ, वह तुम किसी से मत बताना। बस मुझे अभी दो बरछे दो, मैं अभी वापस ला दूँगी।

पहरेदार ने विस्मित होकर पूछा, 'माँ, बरछे ले कर तुम क्या करोगी ?'

आज मेरा वीर पंचमी का व्रत है। यह व्रत करने से वीर पुत्र होता है। इसके लिए शस्त्र पूजा का अनुष्ठान होता है ? मुझे एक वीर पुत्र की कामना है। आज की रात अस्त्र पूजा करनी है। पर यह बात किसी से मत कहना।'

विमला ने जो कुछ और जितना कहा, पहरेदार उतना ही समझा। किले के सभी कर्मचारी विमला की आज्ञा मानते थे। आगे कोई बात न कर के पहरेदार ने दो तेज बरछे विमला को दे दिया।

बरछे लेकर विमला पहले की तरह झरोखे के रास्ते जल्दी से जगतसिंह के पास वापस आ गई। लेकिन जल्दी की उत्तेजना के कारण हो या यह सोच कर कि अभी तो वापस आना ही है, विमला बाहर आते समय उस झरोखे को अच्छी तरह बन्द किए बिना ही चली आई। झरोखे के बिल्कुल पास ही आम का एक बड़ा पेड़ था। उसकी आड़ में छिपकर एक अस्त्रधारी पुरुष खड़ा था। उसने विमला को आते और जाते देखा। विमला जब आँखों से ओझल हो गई तब तक वह शस्त्रधारी आड़ में ही खड़ा रहा। फिर वह व्यक्ति जूते उतार कर नंगे पाँव धीरे धीरे झरोखे के पास आया, झाँक कर भीतर देखा। कमरे में किसी को न देख कर चुपचाप भीतर गया और वहाँ से अन्तःपुर के भीतर घुसा।

इधर विमला से बरछा पा कर युवराज दौड़ कर अपने पहले वाले पेड़ पर चढ़े और दूसरे लक्षित पेड़ की ओर निगाह दौड़ाई तो पाया कि इस समय वहाँ एक ही टोपी दिख रही है, दूसरा व्यक्ति वहाँ से गायब हो चुका था। राजकुमार एक बरछा बाएँ हाथ में लिया और दूसरे को दाहिने हाथ में ले कर पेड़ वाली टोपी पर निशाना साधा। फिर पूरी शक्ति से बरछा फेंका। पहले तो पेड़ की पत्तियों का मर्मर-शब्द हुआ फिर दूसरे ही क्षण किसी भारी चीज के नीचे गिरने का एक धमाका हुआ। अब पेड़ पर टोपी नहीं दिखी। युवराज को यह समझते देरी न लगी कि टोपी वाला आदमी ही पेड़ पर से नीचे गिरा है।

युवराज झटपट पेड़ पर से उतरे। वहाँ गये जहाँ वह आदमी गिरा था। देखा कि एक सशस्त्र पठान सैनिक मुर्दा सा पड़ा है। उसे आँख के पास बरछा लगा था। उसे टटोल कर युवराज ने देखा कि वह मर चुका है। लाश के कवच में से एक पत्र युवराज ने खोज निकाला। चाँदनी में जगतसिंह ने वह पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था—

'कतलू खाँ के हुक्म की तामील करने वाले इस खत को देखते ही वाहक का हुक्म मानें।

—कतलू खाँ।'

विमला ने सिर्फ आवाज सुन सकी। कुछ जान न सकी। थोड़ी देर बाद युवराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने आकर उसे कुल हाल बताया। सुन कर विमला बोली, 'युवराज, मैं यदि इतना जानती तो बरछा ला कर आप को न देती। मैं बड़ी पापिनी हूँ, आज जो काम किया है, इसका प्रायश्चित बहुत दिनों तक नहीं हो सकेगा।'

'शत्रु-वध पर इतना क्लेश क्यों ? शत्रु-वध तो धर्मकार्य है।'

'यह विचार तो योद्धा करें, हम तो स्त्री जाति हैं।'

फिर थोड़ी देर बाद विमला बोली, 'युवराज ! अब देर करने से अनिष्ट होगा। जल्दी किले में चलिए। मैं दरवाजा खुला ही छोड़ आई हूँ।'

दोनों झरोखे की राह जल्दी से किले में गये। पहले विमला और फिर जगत सिंह भीतर गये। भीतर जाते समय युवराज का दिल धड़का, पैर काँपे। हजारों सिपाहियों की सेना के सामने जो कभी डरा न हो उसका मन इस सुख के निवास में पाँव रखते समय काँप गया।

विमला ने पहले तो झरोखा बंद किया फिर युवराज को अपने कमरे में ले जाकर कहा, 'आप थोड़ी देर इस पलंग पर बैठें, मैं अभी आती हूँ।'

विमला चली गई। फिर थोड़ी देर बाद आ कर पास के कमरे का दरवाजा खोला और बोली, 'युवराज, इधर आकर पास में जरा एक बात सुनिए।'

युवराज का हृदय फिर काँप उठा। पलंग से उतर कर वे विमला के पास दूसरे कमरे में गये। विमला बिजली की गति से उसी क्षण वहाँ से हट गई। युवराज ने देखा, खूब सुसज्जित और सुवासित कमरा है। रजत-दीप जल रहा है। कमरे में एक अवगुण्ठन वाली रमणी है—यही तिलोत्तमा है।

| १८ |

दाँव पर दाँव

विमला वापस आकर अपने पलंग पर बैठ गई। प्रसन्नता से उसका चेहरा खिल रहा था। किसी तरह अपना मनोरथ सफल करके वह संतोष का अनुभव कर रही थी। कमरे में दिया जल रहा था। सामने ही दर्पण था। उसमें विमला ने क्षण भर के लिए अपना रूप देखा। वेशभूषा व केश-विन्यास वैसा ही था जैसा उसने शृंगार किया था। बड़ी-बड़ी आँखों के कोनो में काजल चमक रहा था और ओंठ पान की लाली से दीप्त थे। विमला पलंग पर अधलेटी बैठी थी, दर्पण में अपनी ही रूपराशि देख-देख कर मुस्करा रही थी। वह सोच कर हँस पड़ी कि दिग्गज पण्डित सचमुच बिना कारण ही घर छोड़ने को तत्पर नहीं हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमला जगतसिंह के वापस आने की प्रतीक्षा कर रही थी। ठीक इसी समय आम की बगिया से तूर्यनाद का गँभीर शोर उठा। विमला डर कर चौक उठी। सिंह द्वार के सिवा आम कीं बगिया में कभी तूर्यनाद नहीं होता। फिर इतनी रात को यह तूर्यनाद क्यों ? अचानक उसे वह सब याद आ गया जो उसने मंदिर जाते समय रास्ते में और लौटते समय बगिया में देखा था। विमला के मन में यह विश्वास जम गया कि यह तूर्यनाद किसी अमंगल अनहोनी घटना की पूर्वसूचना है। अतः वह शंकित मन से झरोखे के पास जाकर आम की बगिया की ओर देखने लगी। लेकिन बगिया में उसे कोई खास बात नहीं दिखाई पड़ी। तब घबरा कर वह अपने कमरे से बाहर निकली। उसके कमरे की कतार के बाद ही आँगन है। उसी कतार में किले के ऊपर जाने की सीढ़ी है। कमरे से निकल कर वह उसी सीढ़ी से ऊपर गई। इधर-उधर देखने लगी। फिर भी बगिया में छाये अंधकार के कारण ठीक से कुछ भी न दिखा। विमला दूनी उद्विगनता के साथ छत की चारदीवारी के पास गई। उस पर छाती टिका कर झुक कर किले के नीचे तक झांका। बगिया में सर्वत्र अंधकार था। कहीं कहीं चाँदनी पहुँचती थी। आमोदर के स्थिर जल में चाँद और तारों की परछाईं चमक रही थी। और कहीं कुछ दिखाई नहीं देता। विमला निश्चिन्त मन हो लौटने को हुई कि अक्समात् उसे लगा जैसे पीछे से किसी ने उसकी पीठ पर उँगली रखी। घबरा कर विमला ने मुँह फेर कर देखा तो पाया कि एक शस्त्रधारी अज्ञात पुरुष खड़ा था। विमला एकाएक जैसे प्रतिमा सी पाषाण हो गई।

शस्त्रधारी ने कहा, 'चिल्लाना मत। तुम जैसी सुन्दरी के मुँह से चीख अच्छी नहीं लगती।'

जिस व्यक्ति ने अचानक विमला को इतना डराया, उसका पहनावा पठान सैनिक का था। वेषभूषा की तड़क-झड़क और चमक देख कर सहज ही जाना जा सकता था कि यह व्यक्ति कोई बड़ा अधिकारी है। उम्र भी तीस से ज्यादा न थी। कान्ति भी श्रीयुक्त थी। उसके चमकदार माथे पर जो टोपी थी उसमें एक बहुमूल्य हीरा लगा था। यदि विमला के मन में इस समय स्थिरता रहती तो वह देख सकती कि जगतसिंह की तुलना में यह व्यक्ति बहुत हेठा नहीं है। जगतसिंह की तरह यह बहुत ऊँचा और चौड़ी छाती वाला तो नहीं पर देहराशि वैसी ही कांतिपूर्ण और सुकुमार है। उसके कीमती कमरबन्द में, रत्नजड़ित खोल में छुरी थी और हाथ में नंगी तलवार थी। और कोई दूसरा हथियार नहीं दिख रहा था। वह बोला, 'देखो, चिल्लाना मत, चिल्लाओगी तो तुम्हारे लिए मुसीबत आ सकती है।'

तेज बुद्धि वाली विमला थोड़ी देर तो विह्वल रही, शस्त्रधारी के कहने से उसका मतलब समझ गई। विमला के पीछे ही छत का छोर था और सामने यह सशस्त्र योद्धा। छत से विमला को पल भर में नीचे फेंक देना मुश्किल न था। यह स्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समझ कर बुद्धिमती विमला ने संयत होते हुए पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मेरा परिचय जान कर तुम क्या करोगी ?'

'तुम इस किले के भीतर क्यों आये हो ? चोरों को शूली पर चढ़ा दिया जाता है। क्या तुमने नहीं सुना ?'

'सुन्दरी मैं चोर नहीं हूँ।'

'तो तुम किले में कैसे आये ?'

तुम्हारी ही मेहरबानी से आया हूँ। तुमने चोर-दरवाजा खुला छोड़ दिया था, उसी से आया हूँ। तुम्हारे ही पीछे-पीछे इस छत पर भी आया हूँ।'

विमला ने मन ही मन सिर पीट लिया। फिर पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'तुम्हें बताने में भी कोई नुकसान नहीं। मैं पठान हूँ।'

'यह तो पूरा परिचय नहीं हुआ। माना कि जाति के पठान हो पर तुम हो कौन ?'

'खुदा के फज्ल से मेरा नाम है ओसमान खाँ।'

'ओसमान खाँ कौन है, मैं नहीं जानती।'

'ओसमान खाँ, कतलू खाँ का सेनापति है।'

विमला की देह काँपने लगी। इच्छा हुई कि किसी तरह भाग कर वीरेन्द्र सिंह को खबर करे लेकिन इसके लिए कोई उपाय न दिखा। सामने यह सेनापति रास्ता रोके खड़ा था। और कोई रास्ता न देख विमला ने सोचा कि इस समय सेनापति को बातचीत में जितनी देर भी लगा रख सके उतना ही अवकाश है। शायद तब तक किले का कोई पहरेदार ही इधर आ जाय, अतएव फिर से बातचीत शुरु की। बोली, 'आप इस किले के भीतर क्यों आये हैं ?'

'हमने विनयपूर्वक वीरेन्द्रसिंह के पास दूत भेजा था, लेकिन जवाब में उन्होंने कहलवाया कि हो सके तो सेना के साथ ही किले में आना।'

'अच्छा, किले के मालिक ने आप का साथ न दे कर मुगलों का साथ दिया है, इसीलिए आप किले पर कब्जा करने आये हैं, लेकिन मैं तो आप को अकेला ही देख रही हूँ।'

'हाँ, अभी तो मैं अकेला ही हूँ।'

'लगता है, इसीलिए डर कर आप मुझे जाने नहीं दे रहे हैं।'

हँस कर ओसमाल खाँ ने कहा, 'सुन्दरी, तुम्हारे कटाक्ष के सिवा तुम्हारे पास डराने लायक और क्या है ? लेकिन मुझे इसका भी बहुत डर नहीं है। तुमसे एक भिक्षा है।'

विमला उत्तर न देकर कौतूहल से उसका मुँह ताकने लगी। तब ओसमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
खाँ ने कहा, 'तुम्हारी ओढ़नी में जो चाभी बँधी है, वह मुझे दे दो। तुम्हें छू कर तुम्हारा अपमान करते मुझे संकोच हो रहा है।'

झरोखे की चाभी सेनापति के लिए कितनी आवश्यक है, यह समझते विमला जैसी चतुर स्त्री को देर न लगी। विमला ने देखा कि और कोई उपाय भी नहीं है। जो जबरदस्ती ले सकता है, उसका यों माँगना उपहास करना ही है। चाभी न देने से सेनापति अभी ही छीन सकता है। कोई दूसरी होती तो चाभी उसी क्षण फेंक देती परन्तु चालाक विमला ने कहा, 'अगर मैं खुशी से चाभी न दूँ तो आप किस तरह लेंगे ?' कहते हुए विमला ने ओढ़नी उतार कर हाथ में समेट ली।

ओसमान की आँखें ओढ़नी में ही लगी थीं। उसने कहा, 'सीधे से न दोगी तो तुम्हारी देह छूने का सुख पाऊँगा।'

'तो कीजिए।' कह कर विमला ने एक झटके से ओढ़नी को आम के बगीचे की ओर फेंक दिया। ओसमान भी कम चतुर न था। विमला ने जैसे ही ओढ़नी फेंकी कि ओसमान ने हाथ बढ़ा कर उड़ती हुई ओढ़नी को पकड़ लिया।

ओढ़नी को हथिया कर ओसमान खाँ ने दूसरे हाथ से विमला का एक हाथ जकड़ कर पकड़ लिया फिर दाँतों से ओढ़नी दबा कर एक हाथ से चाभी खोल कर कमर में खोंस ली। फिर जो कुछ किया उससे विमला का मुँह सूख गया। विमला को बार-बार सलाम करके ओसमान खाँ ने हाथ जोड़ कर कहा, 'माफ कीजिएगा।' फिर ओढ़नी से विमला के दोनों हाथों को छत की छेददार दीवार से कस कर बाँध दिया। विमला बोली, ' यह क्या ?'

'प्रेम की फाँस है यह।'

'इस बुरे काम का आप को जल्दी ही फल मिलेगा।'

ओसमान विमला को उसी स्थिति में छोड़ कर चला गया। विमला चिल्लाने लगी, पर कोई नतीजा न निकला। कोई सुन न पाया।

ओसमान पहले वाले रास्ते से उतर कर कमरे के नीचे वाले कमरे में गया। वहाँ विमला की ही तरह झरोखे में चाभी लगा कर उसे दीवार के भीतर कर दिया। रास्ता बन जाने पर ओसगान धीरे-धीरे सीटी बजाने लगा। जिसे सुन कर पेड़ की आड़ से एक योद्धा जूते उतार कर झरोखे के पास आया और भीतर चला गया। फिर एक दूसरा सैनिक आया, वह भी भीतर चला गया। इस तरह बहुत से पठान सैनिक चुपचाप किले के भीतर घुस गये। आखिर में जो आदमी झरोखे के पास आया उससे ओसमान ने कहा, 'अब जरूरत नहीं है। तुमलोग बाहर ही रहो। पहले बताया हुआ, इशारा मिलने पर तुम लोग बाहर से किले पर हमला करना। यह बात तुम ताज खाँ से भी कह देना।

वह आदमी लौट गया।

ओसमान खाँ, भीतर गए सैनिकों को लेकर फिर धीरे-धीरे पैर रखते हुए भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। जिस छत पर विमला बँधी थी उसके पास से जाते हुए कहा, 'यह औरत निहायत चालाक है। इसकी किसी बात पर विश्वास मत करना। शैख रहीम, तुम इसके पहरे पर रहो। अगर भागने की या किसी से बातचीत करने की कोशिश करे या चिल्लाए तो इसे जान से खतम करने में मत हिचकना।'

'जो हुक्म।' कह कर रहीम वहीं पहरे पर डट गया।

छत पर से होकर पठान सैनिक दूसरी ओर चले गये।

| १९ |

कटाक्ष

जब विमला ने देखा कि ओसमान खाँ दूसरी ओर दूर चला गया तो उसे आशा बँधी कि अब प्रयत्न करने से छुटकारा मिल सकता है। वह छुटकारे का उपाय सोचने लगी।

पहरे वाला थोड़ी दूरी पर चुपचाप खड़ा रहा। तब विमला ने ही उससे बातें शुरू कीं। पहरेदार हो या यमदूत, सुन्दरी रमणी से कौन इच्छापूर्वक बातें नहीं करता? विमला ने पहले तो इधर-उधर की ऐसी-वैसी मालूली बातें शुरू कीं। धीरे-धीरे उसने पहरेदार से उसका नाम-धाम, घर का काम, सुख-दुख सब कुछ पूछ कर जान लिया। अपने बारे में विमला की इतनी दिलचस्पी देख कर पहरेदार मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। अब शिकार को सधता और रास्ते पर आता देख कर विमला ने अपने संग्रह से एक-एक करके हथियार निकालना शुरू किया। एक तो विमला की अमृत-पगी रसीली बातचीत, साथ ही उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की तेज धार वाली कटाक्ष, पहरेदार जल्दी ही बिल्कुल बेकाबू हो गया। जब विमला को पहरेदार के हाव-भाव से मालूम हो गया कि वह आप समर्पण के लिए तैयार है तब उसने अत्यन्त मीठे स्वर में कहा, 'मुझे जाने क्यों बड़ा डर लग रहा है। शेख जी, तुम मेरे पास आकर बैठो।'

पहरेदार कृतार्थ होता हुआ आकर विमला के पास बैठ गया। फिर थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके विमला ने देखा कि दवा का असर बढ़ रहा है, क्योंकि उसके निकट बैठने के समय से पहरेदार बार-बार उसकी तरफ देख रहा था, तब विमला बोली, 'शेखजी, तुम तो बहुत गरमाये हुए हो। तुम्हें तो पसीना आ रहा है। अगर मेरे हाथ खुले होते तो मैं तुम्हें पंखा झल देती। चाहो तो हाथ खोल दो। फिर बाँध देना।'

शेख रहीम के माथे पर पसीने की एक बूँद भी नहीं थी, लेकिन विमला भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बिना पसीना देखे क्यों कहेगी, यही सोच कर कि इन हाथों की हवा फिर कभी क्या नसीब होगी, उसने चटपट विमला को बंधन-मुक्त कर दिया।

थोड़ी देर तक अपनी ओढ़नी से पहरेदार को हवा करके विमला ने ओढ़नी ओढ़ ली। उसे फिर से बाँधने का नाम लेने को पहरेदार का मुँह नहीं खुला। इसका भी एक विशेष कारण था। जब ओढ़नी का बन्धन नहीं रहा और विमला ने ओढ़नी ओढ़ ली तब उसका लावण्य और भी चमक उठा। जिस लावण्य को दर्पण में देख कर विमला अपने आप हँसी थी, वही लावण्य इतने निकट देख कर पहरेदार भी स्तब्ध था।

विमला ने कटाक्ष करके पूछा, 'शेखजी ! क्या तुम्हारी बीबी तुमसे मोहब्बत नहीं करती ?'

शेख ने घबरा कर पूछा, 'क्यों ?'

'अगर वह मोहब्बत करती होती तो इस बसन्त के मौसम में (यद्यपि तब घोर गरमी थी और बरसात सिर पर थी) किस लालच से तुम्हारे जैसे मियाँ को छोड़ती ?'

शेख ने एक लम्बी साँस छोड़ी।

अब विमला के तरकस से एक के बाद एक तीर निकलने लगे।

'शेख जी, कहते हुए तो लाज लगती है, लेकिन अगर तुम मेरे मियाँ होते तो मैं तुम्हें किसी कीमत पर भी लड़ाई में न आने देती।'

शेख ने फिर लम्बी साँस छोड़ी।

विमला कहती गई, 'अहा ! काश, तुम मेरे मियाँ होते।'

यह कह कर विमला ने भी एक निःश्वास छोड़ी। साथ ही साथ अपनी शक्ति भर एक तीक्ष्ण और कुटिल कटाक्ष भी छोड़ा। जिसे देख कर शेख जी का सिर चक्कर खाने लगा। धीरे-धीरे खिसक कर वह विमला के और पास आ बैठा। विमला भी उसकी ओर कुछ और खिसक गई।

पहरेदार शेख जी के खुरदुरे हाथ पर विमला ने अपना पत्ते जैसा कोमल हाथ रखा। पहरेदार की बाछें खिल गईं।

विमला बोली, 'कहते लाज आती है, पर अगर तुम लड़ाई जीत कर जाओ तो क्या मुझे याद रखोगे ?'

'भला तुम्हें याद नहीं रखूँगा ?'

'तो मन की एक बात तुमसे कहूँ ?'

'कहो न !'

'नहीं, नहीं कहूँगी। तुम जाने क्या सोचो !'

'नहीं, नहीं ! कहो, कहो। मुझे अपना गुलाम समझो !'

'मेरी बड़ी इच्छा हो रही है कि अपने पापी पति के मुँह में कालिख लगा कर तुम्हारे साथ चली जाऊँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर वही कुटिल कटाक्ष। और शेख जी आनन्द से झूम उठे। पूछा, 'चलोगी ?'

'ले चलो तो जरूर चली चलूँगी।'

'नहीं, तुम्हें नहीं ले चलूँगा। बल्कि तुम्हारा गुलाम बन कर यहीं रहूँगा।'

'तुम्हारी इस मोहब्बत का क्या इनाम दूँ ? यही इस समय ले लो।' कह कर विमला ने गले का सुनहरा हार उतार कर पहरेदार के गले में डाल दिया। लगा कि शेखजी सशरीर स्वर्ग पहुँच गये। विमला बोली, 'हमारे शास्त्रों में लिखा है कि एक के गले की माला जब दूसरे के गले में पड़ती है तब दोनों में ब्याह हो जाता है।'

शेख इस तरह हँस पड़ा कि उसकी काली दाढ़ी के अँधेरे के भीतर से सफ़ेद दाँत निकल पड़े। अतिप्रसन्न होकर बोला, 'तब तो तुमसे मेरी शादी हो गई, समझो।'

'हाँ, हो तो गई ही।' कह कर विमला कुछ सोचने लगी।

शेख ने पूछा, 'क्या सोच रही हो ?'

'सोच रही हूँ कि शायद मेरे नसीब में सुख नहीं है। तुम लोग किला जीत कर वापस जा नहीं सकोगे।'

'क्या हमारी जीत में तुम्हें शक है ? अब तक हमारा कब्जा हो चुका होगा।'

'नहीं, इसमें एक छिपी बात है।'

'वह क्या ?'

'तुमसे यह बात बता देती हूँ। तुम शायद किसी तरह बच जाओ।'

पहरेदार मुँह खोल कर सुनने लगा। विमला कहने में संकोच करने लगी। पहरेदार ने उतावली दिखा कर पूछा, 'बोलो, मामला क्या है ?'

'तुम लोग नहीं जानते। इस किले के पास ही जगतसिंह दस हजार सेना लिए बैठा है। यह जान कर कि तुम लोग आज छिप कर आओगे, वह पहले से ही आकर बैठ गया है। अभी कुछ नहीं बोलेगा, पर जब तुम लोग जीत कर निश्चिन्त होगे तब घेरा डालेगा।'

सुन कर पहरेदार हक्का-बक्का-सा रह गया। फिर बोला, 'यह क्या ?'

'इस बात को यहाँ किले में सभी जानते हैं। हमें भी मालूम है।'

खूब प्रसन्न हो कर पहरेदार बोला, 'मेरी जान ! आज तुमने मुझे बहुत बड़ा आदमी बना दिया। मैं अभी जाकर यह खबर सेनापति को दे आऊँ। ऐसी बड़ी खबर देने के लिए खिताब पाऊँगा। तुम यहीं बैठो, मैं जल्द आता हूँ।'

पहरेदार के मन में विमला की ओर से रत्ती भर भी संदेह न था।

विमला ने ठुनक कर पूछा, 'तो आ जाओगे न ?'

'वाह, आऊँगा क्यों नहीं ? बस अभी आया।'

'मुझे भूलोगे तो नहीं ?'

'हरगिज नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'देखो, तुम्हे मेरे सिर की कसम है।'

'तुम सब्र तो रखो।' कह कर पहारेदार तेजी से भागा।

पहरेदार ज्यों ही आँखों से ओझल हुआ कि विमला भी उठ कर भागी। ओसमान खाँ की बात ही सही निकली—'विमला के कटाक्ष से ही डर है।'

२०

कमरों की लूट

छुटकारा पाकर विमला ने सबसे पहले वीरेन्द्रसिंह को खबर देना चाहा। वह भागती हुई वीरेन्द्रसिंह के कमरे की ओर गई।

आधी दूर जाते न जाते पठान सेना की चिल्लाहट उसके कानों में पड़ी—'अल्ला—ल्ला—हो।'

सुन कर विमला व्याकुल हो उठी। यह क्या पठानों की सेना की जयध्वनि है? फिर उसे असीम कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। विमला समझी कि किले के लोग जाग गये हैं।

विमला ने उसी उतावलेपन से वीरेन्द्रसिंह के कमरे में जाकर देखा कि वहाँ तो भयानक कोलाहल है। पठान सेना दरवाजा तोड़ कर कमरे में घुस गई है। विमला ने झाँक कर देखा—वीरेन्द्रसिंह की मुट्ठी बँधी हुई है, हाथ में नंगी तलवार हैं। शरीर से खून की धाराएँ बह रही हैं। वे उन्मत्त की तरह तलवार घुमा रहे हैं। उनका युद्ध-कौशल विफल हो गया। एक बलवान पठान की बड़ी तलवार से टकरा कर उनकी तलवार हाथ से छूट कर दूर जा गिरी। वीरेन्द्रसिंह बन्दी कर लिए गए।

यह सब देख कर, हताश हो विमला वहाँ से भागी। अभी भी तिलोत्तमा को बचाने का समय है। विमला उसके पास दौड़ कर भागी। रास्ते में देखा कि तिलोत्तमा के कमरे तक पहुँचना कठिन है। सभी ओर पठान सेना फैल गई है। पठानों ने किले पर कब्जा कर लिया है, इसमें शक नहीं है।

विमला ने देखा कि तिलोत्तमा के कमरे तक जाने के माने हैं कि पठानों के हाथों में पड़ना, अतः वह लौट पड़ी। वह व्याकुल होकर सोचने लगी कि किस तरह जगतसिंह और तिलोत्तमा को इस संकट के समय खबर दे। विमला एक कमरे में खड़ी यही सोचती रही। इसी समय कुछ सैनिकों को एक कमरा लूट कर इसी ओर आते देखा। घबराहट में विमला उसी कमरे में एक बड़ी संदूक की बगल में जा छिपी। सैनिक आकर उसी कमरे की चीजें लूटने में व्यस्त हो गये। विमला समझ गई कि अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचना संभव नहीं है। लुटेरे जब उस संदूक को खोलने आयेंगे तब उसे जरूर पकड़ लेंगे। फिर भी विमला ने हिम्मत करके थोड़ी देर प्रतीक्षा की। वह संदूक के बगल से झाँक कर देखने लगी कि अब लुटेरे क्या कर रहे हैं। विमला में साहस की कमी नहीं। फिर विपत्ति में साहस और बढ़ा। जब उसने देखा कि सैनिक अंधे हो कर लूटने में ही व्यस्त हैं तब वह चुपचाप वहाँ से उठ कर भागी। सैनिक लूट में लगे थे। उसे किसी ने न देखा। विमला ने घूम कर देखा—वही शेख रहीम था। उसने कहा, 'क्यों री भगोड़ी ? अब कहाँ भाग कर जायेगी ?'

दूसरी बार शेख के हाथों पड़ने से विमला का चेहरा एकाएक सूख गया, परन्तु मात्र क्षण भर के ही लिए। उसकी बुद्धि ने काम किया, वह प्रसन्न हो कर बोली, 'चुप रहो। आहिस्ता-आहिस्ता बाहर आओ।' अब शेख रहीम का हाथ खींच कर उसे विमला बाहर ले गई। रहीम भी खिंचा चला गया। उसे एक ओर निर्जन में ले जाकर बोली, 'छिः छिः ! तुमसे मुझे ऐसी उम्मीद न थी ! मुझे अकेली छोड़ कर कहाँ चले गये थे ? तुम्हें मैंने न जाने कहाँ-कहाँ खोजा।'

कह कर विमला ने शेख रहीम पर फिर कटाक्ष का वार किया।

शेखजी का गुस्सा जाने कहाँ उड़ गया। बोला, 'मैं जगतसिंह वाली खबर देने के लिए सेनापति को खोजता फिरा। पर उसे कहीं भी न पाकर तुम्हारे पास लौट आया। फिर तुम्हें छत पर न पाकर इधर-उधर खोजता भागा।'

'तुम्हारे लौटने में देर हुई तो मैंने सोचा कि शायद तुम मुझे भूल गये। इसी-लिये तुम्हें खोजने आई थी। अब देरी करने का क्या मतलब है ? किले पर तुम लोगों का कब्जा हो ही गया है। अब चलो भागने का रास्ता खोजें।'

रहीम बोला, 'आज नहीं, कल सुबह। मैं बिना कहे, कैसे जा सकता हूँ ? कल सबेरे सेनापति से छुट्टी ले कर तब चलूँगा।'

विमला बोली, 'तो चलो, मैं अपने गहने ले कर इसी समय रख लूँ, नहीं तो कोई दूसरा सिपाही लूट लेगा।'

'चलो।'

'रहीम को साथ ले चलने का अर्थ था कि वह दूसरे सिपाहियों से उसे बचा लेगा। विमला की शंका सच निकली। थोड़ी दूर जाते न जाते वे लोग एक दूसरे लूटने में व्यस्त सिपाही-दल के सामने पड़े।

विमला को देखते ही सभी एकबारगी कोलाहल कर उठे, 'अरे वाह, बड़ा प्यारा शिकार मिला है।'

तब रहीम ने डाँटा, 'अपना-अपना काम करो। इधर नजर मत डालो।'

सैनिक कुछ मतलब समझ कर चुप हो गये। एक बोला, 'रहीम, तेरी ही किस्मत अच्छी है। कहीं नवाब साहब तेरा माल हड़प न बैठें !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहीम और विमला आगे बढ़ गये। विमला रहीम को अपने कमरे के नीचे वाले कमरे में ले जाकर बोली, 'यह मेरा नीचे वाला कमरा है। यहाँ को जो चीजें ले चलना चाहो, उन्हें इकट्ठा करो। इसके ऊपर मेरा लेटने का कमरा है। मैं वहाँ से गहने ले कर अभी आती हूँ।' यह कह कर उसने रहीम को तालियों का एक गुच्छा पकड़ा दिया।

कमरे में खूब सारा सामान देख कर रहीम खुश हो संदूक-पिटारे खोलने व देखने लगा। तालियों का गुच्छा पाकर विमला पर उसे रत्ती भर भी संदेह न रहा। कमरे से बाहर आ कर विमला ने बाहर से जंजीर चढ़ा दी और ताला लगा दिया। अब रहीम कमरे में कैद हो गया।

विमला तब जल्दी-जल्दी ऊपर वाले कमरे में गई। विमला व तिलोत्तमा के कमरे किले के एक किनारे थे। वहाँ अभी तक अत्याचारी सेना नहीं पहुँची थी। तिलोत्तमा व जगतसिंह कोलाहल भी सुन पाये या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

विमला अक्समात तिलोत्तमा के कमरे में जाकर कौतूहल से दरवाजे पर बने छोटे से छेद से चुपचाप तिलोत्तमा व युवराज के भाव देखने लगी। अपना-अपना स्वभाव ही तो है। इस समय विमला के मन में कौतूहल जाग गया था। लेकिन कमरे में उसने जो कुछ देखा, देख कर विस्मित हुई।

तिलोत्तमा पलंग पर बैठी थी, जगतसिंह पास ही खड़े होकर उसका चेहरा निहार रहे थे। तिलोत्तमा रो रही थी। जगतसिंह भी आँखें पोंछ रहे थे।

विमला ने सोचा कि यह शायद विदाई के समय के विछोह वाले आँसू हैं।

| २१ |

तहस-नहस

विमला को देख कर जगतसिंह ने पूछा, 'यह कैसा शोर हो रहा है ?'

'पठानों की जय-ध्वनि है। जल्दी कुछ उपाय सोचिये। क्षण भर बाद शत्रु इस कमरे में भी आ जायेंगे।'

जगतसिंह ने पूछा, 'वीरेन्द्रसिंह क्या कह रहे हैं ?'

'उनको शत्रु ने बन्दी कर लिया है।'

सुनते ही तिलोत्तमा के मुँह से एक चीख निकली और वह मूर्छित होकर पलंग पर गिर पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगतसिंह का भी मुँह सूख गया। वह विमला से बोले, 'देखो, देखो, तिलोत्तमा को सम्हालो।'

झटपट गुलाबपाश से गुलाबजल निकाल कर विमला ने तिलोत्तमा के चेहरे पर छींटे मारे और कातर भाव से हवा करने लगी। शत्रुओं का कोलाहल और निकट आ गया। विमला ने लगभग रोते हुए कहा, 'वे आ रहे हैं। युवराज, अब क्या होगा ?'

जगतसिंह की आँखों से चिनगारियाँ बरसने लगीं। बोला, 'मैं अकेला क्या कर सकता हूँ ? पर मैं तुम्हारी सखी की रक्षा में अपनी जान दे दूँगा।'

शत्रुओं का उन्मत्त शोर और पास आ गया। हथियारों की झनकार भी सुन पड़ने लगी। विमला चीख कर बोली, 'तिलोत्तमा, इस समय तुम क्यों बेहोश हो गईं ? अब किस तरह तुम्हारी रक्षा की जाय ?'

तिलोत्तमा ने आँखें खोलीं। विमला बोली, 'तिलोत्तमा को होश आ रहा है ? युवराज ! युवराज ! अब भी तिलोत्तमा को बचाइये।'

जगतसिंह ने कहा, 'इस कमरे के भीतर रहने से भला कोई कैसे बचा सकता है ? इस समय भी अगर कमरे से बाहर निकल सकती तो मैं तुम लोगों को किले के बाहर, शायद अवश्य ही ले जा सकता। लेकिन तिलोत्तमा में तो चलने की शक्ति भी नहीं है। विमला, पठान लोग अब जीने पर चढ़ रहे हैं। मैं तो अपनी जान दे ही दूँगा पर पछतावा यही है कि जान दे कर भी तुम लोगों को बचा न सकूँगा।'

क्षण भर में तिलोत्तमा को गोद में उठा कर विमला ने कहा, 'तो चलिये, मैं तिलोत्तमा को लेकर चल रही हूँ।'

विमला और जगतसिंह कमरे के दरवाजे पर आये। उसी समय चार पठान सैनिक लपक कर कमरे के दरवाजे पर आ गये। जगतसिंह ने कहा, 'विमला अब क्या हो सकता है ! पर तुम मेरे पीछे पीछे आओ।'

सामने शिकार देख कर पठान 'अल्ला—ल्ला—हो' चिल्लात हुए यमदूत की तरह उछलने लगे। कमर की तलवार झनझनाने लगी। उस शोर के खतम होने के पहले ही जगतसिंह की तलवार एक पठान के कलेजे में मूँठ तक घँस गई। गहरी चीख के साथ पठान की जान निकल गई। उसके कलेजे से तलवार निकालने के पहले ही एक दूसरे पठान के भाले की नोंक जगतसिंह के गले तक जा पहुँची। भाला लगे-लगे कि बिजली की तरह हाथ घुमा कर जगतसिंह ने भाला पकड़ लिया और झटके से खींच कर उसी भाले से भाला चलाने वाले को मार गिराया। बाकी दो पठानों ने पलक मारते जगतसिंह के सिर पर एक साथ तलवारों के वार किए। जगतसिंह भी पल भर का भी मौका न दे कर दायें हाथ की तलवार की वार से एक ही बार में एक की तलवार के साथ उसकी बाँह काट कर गिरा दी। लेकिन दूसरे के वार को वे नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रोक सके। वार सिर पर तो बैठा पर कंधे पर गहरी चोट आई। चोट खा कर युवराज भी घायल शैर की तरह दूने शक्तिशाली हो उठे। पठान के दूसरी बार वार करने के पहले ही युवराज ने दोनों हाथों की मुट्ठी बाँध कर, उछल कर आक्रमणकारी पठान के सिर पर तलवार का ऐसा भरपूर वार किया कि टोपी के साथ पठान का सिर दो टुकड़े हो गया। लेकिन ठीक इसी समय उस सैनिक ने जिसका हाथ कट गया था, बायें हाथ से कमर से तेज छुरी निकाल कर जगतसिंह पर झपटा। जगतसिंह का उछलने से उठा शरीर जमीन पर आ रहा था कि छुरी उनकी बाँह में गहरी चुभ गई। उस चोट को सूई चुभने जैसी समझ कर युवराज ने पठान की कमर में जोरों से लात मारी। पठान दूर जा गिरा। जगतसिंह दौड़ कर उसका सिर काटने जा ही रहे थे कि 'अल्ला—ल्ला—हो' के शोर के साथ अनगिनत पठान कमरे में आ गये। अब जगतसिंह समझ गए कि लड़ना केवल मृत्यु के लिए ही है।

राजकुमार जगतसिंह खून से लथपथ हो रहे थे। काफी खून बह जाने से उनकी शक्ति क्षीण होती जा रही थी। तिलोत्तमा अभी तक बेहाशी की दशा में विमला की गोद में ही थी। विमला तिलोत्तमा को सम्हाले हुए रो रही थी। उसकी धोती भी जगतसिंह के खून के फौवारे से गीली हो रही थी।

पठान सैनिकों से कमरा भर गया।

जगतसिंह ने तलवार के सहारे खड़े होकर साँस ली।

तब एक पठान चिल्लाया, 'अरे गुलाम ! हथियार डाल दे। तुझे हम जान से नहीं मारेंगे।'

मंद पड़ती आग में जैसे किसी ने घी उँडेल दिया हो। अग्निशिखा की तरह लपक कर राजकुमार ने एक ही वार में बोलने वाले पठान का सिर धड़ से अलग कर के पैरों के नीचे डाला और तलवार घुमाते हुए ललकार कर कहा, 'यवन ! देख ले, राजपूत किस तरह जान देते हैं।'

राजकुमार जगतसिंह की तलवार बिजली की तरह कौंधने लगी। उन्होंने देखा कि अब अकेले युद्ध नहीं किया जा सकता। फिर भी जहाँ तक हो सके, शत्रुओं का संहार करना उनका उद्देश्य था ही। वे दोनों हाथों से तलवार चलाने लगे। उन्हें आत्मरक्षा का तनिक भी ध्यान न रहा। बस वे वार पर वार करते गये। एक-दो-तीन-पाँच, हर वार पर या तो कोई पठान धराशायी होता या उसके अंग कटते। राजकुमार के शरीर पर चारों ओर से अस्त्र पड़ने लगे। लगा, अब हाथ नहीं चलता। शरीर से रक्त भी तेजी से बहने लगा। बाहें थकने लगीं। सिर चकराने लगा। आँखों के आगे अंधेरा छाने लगा। कानों में मात्र कोलाहल सुनाई पड़ता।

तभी सुनाई पड़ा—'राजकुमार को कोई जान से मत मारना। जीते—जागते बाघ को पिंजड़े में बन्द करना है।' यह बात ओसमान खाँ ने कही थी।

जगतसिंह की बाँहें शिथिल हो कर लम्बी हो गईं। शक्तिहीन मुट्ठियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छूट कर तलवार झनझना कर गिर पड़ी। अचेत होकर जगतसिंह, मारे गए एक पठान के शव पर गिर पड़े। बीस पठान एक साथ जगतसिंह की पगड़ी में लगे रत्नों को निकालने के लिए दौड़ पड़े। तभी ओसमान ने वज्र गम्भीर स्वर से कहा, 'खबरदार राजकुमार को कोई छूना मत।'

सभी रुक गये। ओसमान खाँ ने एक अन्य पठान सैनिक की सहायता से राजकुमार को उठा ला कर पलंग पर लिटाया। जगतसिंह ने कुछ देर पहले यह कल्पना की थी कि तिलोत्तमा से विवाह कर के एक दिन उसी पलंग पर तिलोत्तमा के साथ विराजेंगे—वही पलंग अब उनके लिए मृत्युशैय्या बन गई।

जगतसिंह को लिटा कर ओसमान खाँ ने सैनिक से पूछा, 'औरतें कहाँ हैं ?'

ओसमान खाँ ने विमला और तिलोत्तमा को नहीं देखा। जब दूसरी बार सेना धड़धड़ाती हुई कमरे में घुसी तभी विमला की समझ में भविष्य आ गया था। दूसरा कोई उपाय न देख कर वह तिलोत्तमा को लेकर पलंग के नीचे छिप गई थी। यह किसी ने देखा न था। उन्हें वहाँ न देख कर ओसमान खाँ ने पूछा, 'औरतें कहाँ हैं ? तुम लोग उन्हें किले में खोजो। वह बाँदी बड़ी होशियार है। वह अगर भाग जाएगी तो मेरा मन शांत न होगा, लेकिन होशियार रहना, बीरेन्द्रसिंह की लड़की पर कोई जोर-जुल्म न हो।'

छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँट कर सैनिक किले के दूसरे हिस्सों में खोजने गये। दो एक जन कमरे के भीतर ही खोजने लगे। एक ने दूसरी तरफ देखने के बाद दिया ले कर पलंग के नीचे निगाह दौड़ाई। जिसकी तलाश हो रही थी, देख कर कहा, 'यहीं हैं।'

ओसमान खाँ का चेहरा खुशी से खिल उठा। कहा, 'तुम लोग बाहर आओ, घबराओ मत।'

पहले विमला पलंग के नीचे से बाहर आई, फिर तिलोत्तमा को बाहर निकाल कर बैठाया। तिलोत्तमा को अब होश आने लगा था। वह बैठ सकी। धीरे-धीरे विमला से पूछा, 'हम कहाँ हैं ?'

विमला ने कान में कहा, 'घबराओ मत। कोई चिन्ता नहीं है। घूँघट काढ़ कर बैठो।'

जिस सैनिक ने औरतों को खोज कर निकाला था, उसने ओसमान खाँ से कहा, 'जनाब, इस गुलाम ने इन्हें खोज कर बाहर निकाला है।'

ओसमान खाँ ने कहा, 'क्या तुम इनाम चाहते हो ? क्या नाम है तुम्हारा ?'

'गुलाम का नाम तो है करीमबख्श पर कहने पर कोई पहचानता नहीं। पहले मैं मुगलों की फौज में था, इसलिए सभी मजाक में मुझे मुगल-सेनापति कहते हैं।'

सुन कर विमला काँप उठी। अभिराम स्वामी की ज्योतिषगणना उसे याद आई।

ओसमान खाँ ने कहा, 'अच्छा, ठीक है, याद रहेगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा भाग

|१|

आयशा

जगतसिंह की जब आँखें खुलीं तब उन्होंने देखा कि वे एक सुसज्जित कमरे में एक बड़ी पलंग पर लेटे हुए हैं। कमरा किसी तरह भी पहचाना नहीं लग रहा था, न ऐसा ही याद पड़ता था कि वहाँ पहले कभी आये हों। कमरा खूब लम्बा-चौड़ा और सजा हुआ था। फर्श पर रंगीन पत्थर जड़े थे। कीमती गलीचे बिछे हुए, ऊपर गुलाब-पाश आदि सोने व चाँदी और हाथी दाँत की कीमती चीजें रखी हुई थीं। कमरे के दरवाजों और खिड़कियों पर नीले परदे पड़े थे, अतः दिन की रोशनी भी बहुत मद्धिम होकर कमरे में आती थी। कमरे में चित्त प्रसन्न करने वाली तरह-तरह की सुबास थी।

कमरे में घोर सन्नाटा, जैसे आस-पास भी कोई आदमी न हो। एक सेविका एक सुसज्जित व सुवासित पंखा लिए झल रही थी। एक और सेविका कुछ दूर पर चुपचाप मूर्ती की तरह खड़ी थी। हाथी दाँत के जिस पलंग पर राजकुमार लेटे थे, उसी पर बैठी एक स्त्री उनके घावों पर सावधानी से कोई लेप लगा रही थी। फर्श के गलीचे पर बढ़िया पोशाक पहने बैठा एक पठान पान चबा रहा था और फारसी की एक किताब पढ़ रहा था। कोई भी बोलता न था, न कहीं से कोई आवाज ही आ रही थी।

राजकुमार ने आँखें खोल कर कमरे में चारों ओर देखा। करवट बदलने की कोशिश की, लेकिन वे हिल भी न सके। सारे बदन में भयानक पीड़ा थी।

जो स्त्री पलंग पर बैठी लेप लगा रही थी, उसने राजकुमार की चेष्टा देख कर कहा, 'शांत रहिए। हिलिए डुलिए मत।'

राजकुमार ने धीरे से पूछा, 'मैं कहाँ हूँ ?'

'हिलिये नहीं, बोलिए भी मत। आप अच्छी जगह हैं।'

'क्या समय हुआ है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'दिन का पिछला पहर है। आप शांत रहें, बातचीत करेंगे तो अच्छे होने में बाधा होगी। और अगर आप चुप न होंगे तो हम यहाँ से चले जायेंगे।'

तब जगतसिंह ने उस रमणी से पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'आयशा।'

राजकुमार चुपचाप आयशा को देखने लगे। क्या इसे पहले भी और कहीं देखा है ? नहीं, और तो कहीं नहीं देखा।

आयशा की आयु होगी कोई बाइस वर्ष। देखने में अतीव सुन्दरी। यों तो तिलोत्तमा भी परम सुन्दरी है, पर आयशा का सौंदर्य वैसा नहीं। स्थिर यौवना विमला का सौंदर्य भी इस समय तक आकर्षक था, लेकिन आयशा का रूप वैसा भी नहीं। किसी-किसी तरुणी का रूप बासन्ती मल्लिका की तरह जब विकसित होता है, कोमल, निर्मल और परिमलमय। तिलोत्तमा का रूप ऐसा ही है। किसी किसी रमणी का रूप दिन के पिछले पहर के कमल जैसा होता है—निर्वास, मुद्रितोन्मुख और शुष्क-पल्लव, फिर भी आकर्षक, अधिक विकसित, अधिक प्रभामय और मधु से परिपूर्ण। विमला वैसी ही सुन्दरी रमणी है। आयशा का रूप सवेरे के कमल जैसा, विकसित, रसपूर्ण, न संकुचित न शुष्क, कोमल व उज्ज्वल, ओठों से हँसी फूटी पड़ती है। रूप का उजाला उसमें था। लेकिन रूप का उजाला भी कई प्रकार का होता है। विमला के रूप में भी उजाला है, टिमटिमाता हुआ, तेल चाहिए, नहीं तो नहीं जलेगा। घर का सब काम चलता है पर छूने पर जलना पड़ता है। तिलोत्तमा भी रूप से उजाला करती है, वह नए चाँद की किरणों की तरह सुविमल, मधुर, शीतल है। पर उससे घर का काम नहीं चलता, उतना प्रखर नहीं है। आयशा के रूप में भी उजाला है, लेकिन वह सवेरे की सूर्य रश्मि की तरह, दीप्त और हँसी की प्रफुल्लता से परिपूर्ण।

आयशा यहाँ वैसी ही है जैसे बगीचे में कमल। रंग न चंपई, न लाल, न सफेद। भरा हुआ ललाट, बंकिम केश, कानों पर बालों की गोल गोल लटें, बालों के बीच महीन रेखा सी माँग। घनी भौंहें, आपस में मिलती सी, चंचल आँखें, लम्बी नासिका, रसभरे ओंठ, लम्बी ग्रीवा, भरे हुए कंधे, स्थूल बाँहें, भरा-उभरा वक्ष।

जगतसिंह आयशा की ओर देर तक निहारते रहे। उन्हें तिलोत्तमा की याद आ गई। याद आते ही मन में काँटे चुभने लगे। नसों में रक्त-प्रवाह तेज हो गया। गहरे घाव से फिर खून की धारा फूट पड़ी। राजकुमार ने फिर अचेत होते हुए आँखें मूँद लीं।

यह देख कर उसी पल पलंग पर बैठी सुन्दरी आयशा घबरा कर उठ खड़ी हुई। जो आदमी फर्श पर बैठा किताब पढ़ रहा था वह रह-रह कर आँखें उठा कर सरस दृष्टि से आयशा को देख रहा था। जब वह पलंग से उठी, तब भी पठान उसे मंत्र-मुग्ध हो कर देखता रह गया। आयशा ने उठ कर धीरे से पठान के पास जा कर उसके कान में कहा, 'ओसमान, जल्दी से हकीम के पास आदमी भेजो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़ मन्दारन का किला जीतने वाला आसमान खाँ ही फर्श पर बैठा था। आयशा की बात सुन कर उठ कर चला गया।

चाँदी की तिपाई पर जो बर्तन रखा था, उससे पानी जैसा कोई पदार्थ लेकर आयशा फिर राजकुमार के चेहरे पर छींटे मारने लगी।

ओसमान खाँ जल्दी ही हकीम को साथ ले कर लौटा। हकीम ने बड़े यत्न से खून का बहना रोका और कई तरह की दवाइयाँ आयशा को दे कर उसके सेवन की व्यवस्था बता दी।

आयशा ने कान में पूछा, 'कैसी हालत है ?'

'बुखार बहुत तेज है।'

ओसमान ने हकीम के साथ दरवाजे तक जा कर पूछा, 'बच जायगा तो ?'

'मालूम तो नहीं देता। पर फिर दर्द बढ़े तो मुझे बुलाइएगा।'

|२|

पत्थर का दिल

उस रात बहुत देर तक ओसमान खाँ और आयशा जगतसिंह के पास बैठे रहे। जगतसिंह को कभी होश आता, कभी वे अचेत हो जाते। हकीम भी कई बार आ-आकर देख गये। आयशा लगातार कुमार की सेवा में लगी रही। जब रात का दूसरा पहर हुआ तब एक बाँदी ने आकर आयशा से कहा, 'आप को बेगम याद कर रही हैं।'

'चलती हूँ।' कह कर आयशा उठी। ओसमान भी उठा। आयशा ने पूछा, 'तुम भी चले।'

'हाँ, रात हो गई है। चलो तुम्हें पहुँचा आऊँ।'

दास-दासियों को सावधानी से रहने का आदेश देकर आयशा मातृगृह की ओर चली। रास्ते में ओसमान ने पूछा, 'क्या तुम आज बेगम के पास ही रहोगी ?'

'नहीं, मैं अभी फिर राजकुमार के पास लौट आऊँगी।'

'आयशा, तुम्हारे गुणों की कोई हद नहीं। तुम इस परम शत्रु की जैसी सेवा कर रही हो, उतनी तो कोई बहन अपने भाई के लिए भी नहीं करती। तुम तो उस पर अपनी जान निछावर किए दे रही हो।'

आयशा हल्के से मुस्करा उठी। बोली, 'ओसमान, मैं तो स्वभावत: भी स्त्री हूँ। बीमार की सेवा करना हमारा धर्म है। न करने में पाप है। करने में तारीफ नहीं है पर तुम्हारा क्या है ? जो तुम्हारा परम शत्रु है, रणक्षेत्र में तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी है। तुमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हाथों जिसकी यह दशा की है, उसे अच्छा करने का प्रयत्न कर रहे हो, इसलिए तुम्हीं वास्तविक प्रशंसा के अधिकारी हो।'

ओसमान बोला, 'आयशा, तुम तो अपने मधुर व सुन्दर स्वभाव के अनुरूप ही सब को देखती हो। मेरा उद्देश्य इतना ऊँचा नहीं। क्या तुम यह नहीं समझती हो कि यदि जगतसिंह बच जाये तो कितना फायदा होगा ? राजकुमार यदि अभी मर जाए तो हमारा क्या लाभ होगा ? रणक्षेत्र में मानसिंह जगतसिंह से घट कर नहीं है। एक योद्धा के बदले दूसरा योद्धा आयेगा। लेकिन अगर जगतसिंह जिन्दा रह कर हमारे पास कैद रहे तो मानसिंह को हम मुट्ठी में कर सकेंगे। अपने बेटे को छुड़वाने के लिए वह विवश हो कर हमारी शर्तों पर हमसे संधि करेगा। अकबर बादशाह भी ऐसे कुशल सेनापति को वापस पाने के लिए सन्धि का पक्ष लेगा। और अगर हम अपने अच्छे सुलूक से जगतसिंह को अपना लें तो वह भी सन्धि के लिए कोशिश करेगा और उसकी कोशिश बेकार न जायेगी ! और मान लो कि ऐसा कुछ भी नहीं होता तो जगतसिंह के छुटकारे के लिए हमें एवज़ में मानसिंह से बहुत धन मिलेगा। लड़ाई में जीत हासिल करने से ज्यादा लाभदायक है कि जगतसिंह बच जाय।'

यही सब सोच-विचार कर ओसमान खाँ ने जगतसिंह की जान बचाने की कोशिश की थी। और भी एक बात थी। किसी-किसी का स्वभाव होता है कि आदमी को कहीं दयालु प्रकृति न कहा जाय, इस लज्जा की आशंका के कारण वह कठोरता दिखाता है और दानशीलता को नारी-स्वभाव कह कर उपहास करते-करते परोपकार कर बैठता है। पूछने पर बड़े व गुप्त प्रयोजन की बात कहता है। आयशा जानती थी कि ओसमान खाँ ऐसे ही आदमियों में है। उसने हँस कर कहा, 'ओसमान, अगर सभी लोग तुम्हारी तरह मतलब साधने में पटु हों तो दूसरे धर्म की जरूरत नहीं रह जायेगी।'

कुछ देर इधर उधर, टालमटोल करके ओसमान खाँ ने मृदु स्वर में कहा, 'हाँ मैं बड़ा स्वार्थी हूँ। इसका एक और सुबूत देता हूँ।'

आयशा ने अर्थभरी नजर से ओसमान खाँ को देखा।

ओसमान खाँ ने कहा, 'मैं तो आशा की लतर पकड़े बैठा हूँ। उसकी जड़ में और कितने दिनों तक पानी डालता रहूँ ?'

आयशा का चेहरा गंभीर हो गया। उसके इस बदले भाव में भी ओसमान खाँ को नए तरह का सौंदर्य दिखा। आयशा बोली, 'ओसमान, मैं तो भाई-बहन के रिश्ते से तुम्हारे साथ उठती-बैठती हूँ। अगर ज्यादा आगे बढ़ोगे तो मैं तुम्हारे सामने निकल न सकूँगी।'

ओसमान का खिला चेहरा मुरझा गया। बोला, 'यही बात तो बराबर सुनता हूँ। या खुदा, इस फूल सी देह में क्या तूने पत्थर का दिल लगाया है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
फिर दोनों चुपचाप चलते रहे। आयशा को बेगम के कमरे तक पहुँचा कर ओसमान उदास मन से अपने घर लौट गया।

और उधर जगतसिंह भीषण बुखार में बेहोश पलंग पर पड़े रहे।

| ३ |

तुम या तिलोत्तमा

दूसरे दिन जगतसिंह के कमरे में आयशा, ओसमान खाँ और हकीम चुपचाप बैठे थे। आयशा पलंग पर बैठी दवा तैयार कर रही थी। जगतसिंह बेहोश थे। हकीम ने कहा है, इसी रात को बुखार उतरने के साथ-साथ जगतसिंह की मौत की भी सम्भावना है। अगर उस समय संभल गये तो फिर जरूर बच जायेंगे, फिर कोई चिन्ता न रहेगी। अब बुखार उतरने का समय आ गया है। इसीलिए सभी लोग व्याकुल और व्यग्र हो उठे हैं। हकीम बार-बार नाड़ी देख रहे हैं—नाड़ी कमजोर है, और कमजोर हो गई, कुछ सम्हल गई। बार-बार धीमी आवाज में यही सब कह रहे हैं। एकाएक हकीम का चेहरा काला पड़ गया। बोले, 'अब समय आ गया।'

आयशा और ओसमान खाँ पत्थर की तरह हो गये, हकीम नाड़ी पकड़े रहे।

थोड़ी देर बाद हकीम बोले, 'हालत बहुत खराब है।'

आयशा का चेहरा बेहद उदास हो गया।

तभी एकाएक जगतसिंह के चेहरे पर विकट भाव प्रकट हुआ। चेहरा एकबारगी सफेद पड़ गया। हाथों की मुट्ठियाँ बँध गईं। आँखों में अजीब भंगिमा प्रकट हुई। आयशा समझ गई, दिये का तेल सूख गया। अब बुझने में देर नहीं। हकीम हाथ में दवा लिए बैठे थे। यह लक्षण देखते ही रोगी का मुँह फैला कर उँगली से दवा चटा दी। दवा भीतर जा कर फिर मुँह के बाहर आ गई, पेट में बहुत थोड़ी ही पहुँची। लेकिन उतनी ही पेट में जाते रोगी की हालत बदलने लगी। चेहरे पर स्थिर भाव आ गया। रंग की सफेदी मिट गई, रक्त संचार होने लगा। हाथ की मुट्ठियाँ खुल गईं। हकीम गंभीर भाव से फिर नाड़ी देखने लगे। बहुत देर तक सावधानी से देख कर खुश हो कर बोले, 'अब बच गये। अब चिन्ता की कोई बात नहीं।'

ओसमान ने लपक कर पूछा, 'बुखार उतर गया ?'

'हाँ, उतर गया।'

आयशा और ओसमान दोनों के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे। तब हकीम ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कहा, 'अब कोई चिन्ता नहीं। मेरे बैठने की भी अब कोई जरूरत नहीं है। यही दवा दोपहर रात बीतने तक घड़ी-घड़ी भर बाद खिलाते रहिये।'

हकीम चले गये। थोड़ी देर और बैठ कर ओसमान खाँ भी अपने घर चले गये। आयशा पहले जैसी पलंग पर बैठी दवा देती रही।

रात को दो पहर के कुछ पहले जगतसिंह ने आँखें खोलीं। उन्हें सब से पहले आयशा का प्रसन्न मुख ही दिखाई पड़ा। आँखों की भंगिमा व भाव से आयशा को मालूम हुआ कि शायद जगतसिंह को बुद्धिभ्रम हो रहा है। जैसे वे कुछ याद करने की कोशिश कर रहे हैं पर कुछ याद नहीं आ रहा हो। थोड़ी देर बाद आयशा को देख कर पूछा, 'मैं कहाँ हूँ ?'

पूरे दो दिनों के बाद जगतसिंह यही पहली बार बोले।

आयशा ने कहा, ' कतलू खाँ के किले में।'

राजकुमार फिर कुछ याद करने लगे। थोड़ी देर बाद पूछा, 'मैं यहाँ क्यों आया हूँ ?'

'आप बीमार हैं।'

'नहीं नहीं, मैं कैद हूँ।'

आयशा ने कोई जवाब न दिया। देखा कि जगतसिंह की स्मरण-शक्ति वापस आ रही है।

थोड़ी देर बाद राजकुमार ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मैं आयशा हूँ।'

'आयशा कौन ?'

'कतलू खाँ की बेटी।'

राजकुमार फिर चुप हो गये। ज्यादा बोलने की शायद शक्ति ही न थी। कुछ देर बाद आराम करने के बाद पूछा, 'मैं यहाँ कितने दिनों से हूँ ?'

'चार दिनों से।'

'गढ़ मन्दारन अभी तक तुम लोगों के ही कब्जे में है ?'

'जी हाँ।'

'वीरेन्द्रसिंह का क्या हुआ ?'

'वह कैदखाने में हैं। आज उनका फैसला होगा।'

जगतसिंह का चेहरा उदास हो गया। पूछा, 'और जो लोग थे, उनकी क्या हालत है ?'

आयशा उद्विग्न हुई, बोली, 'सब बातें मुझे नहीं मालूम।'

राजकुमार अपने आप जैसे बड़बड़ाने लगे। एक नाम उनके मुँह से निकला। आयशा ने सुना—तिलोत्तमा।

धीरे-धीरे उठ कर आयशा हकीम द्वारा बताई दवाई लाने गई। राजकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी इठलाती-झूमती देहराशि की महिमा देखते रहे। आयशा दवा ले कर वापस आई। राजकुमार ने दवा पी कर कहा, 'मैं पीड़ा में भी सपना देख रहा था कि एक देवकन्या मेरे सिरहाने बैठ कर सेवा कर रही है। वह तुम हो या तिलोत्तमा ?'

आयशा मुरझा कर बोली, 'आपने तिलोत्तमा को ही स्वप्न में देखा होगा।'

| ४ |

घूँघटवाली

गढ़ मन्दारन के किले पर कब्जा होने के दो दिन बाद, एक पहर दिन चढ़ने पर, अपने किले में कतलू खाँ का दरबार लगा। दोनों ओर कतार बाँध कर दरबारी खड़े हुए। सामने की फर्श पर कई हजार आदमी चुपचाप बैठे। आज वीरेन्द्रसिंह को सजा दी जायगी।

वीरेन्द्रसिंह को जंजीरों से बाँध कर हथियारबन्द पहरेदारों के बीच दरबार में लाया गया। वीरेन्द्रसिंह का रंग लाल हो रहा था, उनके चेहरे पर भय का कोई भी चिह्न नहीं था। तेज आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। नथुने रह-रह कर फूल कर काँप उठते थे। वह रह-रह कर दाँतों से ओंठ चबा रहे थे। जब उन्हें कतलू खाँ के सामने ले आया गया तो कतलू खाँ ने कहा, 'वीरेन्द्रसिंह, हम तुम्हारे कुसूर की सजा देंगे। तुम क्यों हमारे खिलाफ दल में शामिल हुए ?'

अपने तमतमाते चेहरे पर स्पष्ट हो रहे क्रोध को रोक कर वीरेन्द्रसिंह ने कहा, 'तुम्हारे खिलाफ मैंने कौन सा काम किया है ? पहले मुझे यही तुम बता दो ?'

एक दरबारी बीच में ही बोल उठा, 'अदब से बातें करो।'

कतलू खाँ बोले, 'मेरे हुक्म के बाद भी तुम रुपये और सेना भेजने पर क्यों राजी नहीं हुए ?'

वीरेन्द्रसिंह ने निडर भाव से कहा, 'तुम राज के खिलाफ काम करने वाले डाकू हो। तुम्हें रुपये क्यों दूँ ? तुम्हें अपनी सेना भी क्यों दूँ ?'

उपस्थित जन-समुदाय ने देखा कि वीरेन्द्रसिंह अपने ही हाथों अपना सिर काटने को तत्पर हैं।

वीरेन्द्रसिंह का जवाब सुन कर कतलू खाँ का सारा शरीर क्रोध से काँपने लगा। लेकिन वह अपना क्रोध रोक लेने का अभ्यासी था। कुछ देर में संयत हो कर कहा, 'तुम मेरे अधिकार में रह कर मुगलों से क्यों मिल गये ?'

'तुम्हारा अधिकार कहाँ है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'सुन पापी, तुझे तेरे किये का उचित फल मिलेगा। अभी तक तेरे जीवन की कुछ आशा भी थी, लेकिन तू नासमझ है, अपने ही घमण्ड से अपने वध का इन्तजाम कर रहा है।'

वीरेन्द्रसिंह स्थिर होकर हँस पड़े। बोले, 'कतलू खाँ, जब मैं जंजीरों से बँध कर तेरे सामने आया हूँ तब तुझसे रहम की उम्मीद करके नहीं आया। तुम्हारे जैसे दुश्मन की दया पर जिसकी जिन्दगी हो, उसे जीने की क्या जरूरत है ? तुम्हें आशीर्वाद देकर मरता, लेकिन तूमने मेरे पवित्र कुल को कलंकित किया है। तुमने मेरी जान से ज्यादा धन को .....'

वीरेन्द्रसिंह आगे बोल न सके। गला ही रुद्ध हो गया। आँखों में भाप सी लगी। निडर, गर्वीले वीरेन्द्रसिंह सिर झुका कर रो पड़े।

कतलू खाँ स्वभाव से ही निर्दयी है। इतना कि दूसरे को तकलीफ पहुँचाने में उसे खुशी होती है। गर्वीले दुश्मन की यह दशा देख कर उसका चेहरा खुशी से खिल गया। कहा, 'वीरेन्द्रसिंह, क्या तुम मुझसे कुछ भी न माँगोगे ? जरा सोच कर देखो, तुम्हारा समय बहुत नजदीक है।'

जिस भयानक संताप से वीरेन्द्रसिंह का कलेजा जल रहा था, वह आग रोने से कुछ ठण्डी पड़ गई। पहले से भी अधिक संयत होकर बोले, 'और कुछ नहीं चाहिये, केवल यही चाहता हूँ कि मेरी हत्या करने का काम जल्दी ही पूरा करो।'

'ठीक है, ऐसा ही होगा।'

'इस जन्म में और कुछ नहीं चाहिए।'

'क्या मरते समय अपनी बेटी से भी नहीं मिलोगे ?'

यह प्रश्न सुनते ही सभी उपस्थित-जन शोक से जड़ हो गए। वीरेन्द्रसिंह की आँखों से फिर आग बरसने लगी। बोले, 'अगर मेरी बेटी तुम्हारे घर में जिन्दा हो तो नहीं मिलूँगा, और अगर मर गई हो तो ले आओ। उसकी लाश को गोद में लेकर मरूँगा।'

सभी दर्शक एकदम साँस रोके चुप रहे। नवाब के इशारा करने पर सिपाही वीरेन्द्रसिंह को वध-स्थल की ओर खींच ले चले। वहाँ पहुँचने के कुछ पहले एक मुसलमान सैनिक ने वीरेन्द्रसिंह के कान के पास आकर कुछ कहा लेकिन वीरेन्द्रसिंह ठीक से सुन न सके। तभी उस सैनिक ने धीरे से उनके हाथ में एक मुड़ा हुआ कागज पकड़ा दिया। अनमने भाव से उन्होंने कागज खोल कर देखा, विमला की लिखावट थी। लिखावट पहचानते ही उन्होंने घृणा से कागज मसल कर दूर फेंक दिया। वह सैनिक कागज उठा कर एक ओर चला गया। पास के किसी दर्शक ने वीरेन्द्र का यह कृत्य देख कर दूसरे से फुसफुसाकर कहा, 'शायद बेटी का पत्र है।'

यह बात वीरेन्द्रसिंह ने सुन लिया। उसी तरफ मुड़ कर तेज स्वर में कहा, 'कौन कहता है कि मेरी बेटी है ? मेरी कोई बेटी नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चिट्ठी लाने वाला सैनिक चिट्ठी लेकर जाते-जाते पहरेदारों से कहता गया, 'मैं जब तक न लौटूँ, मेरा इन्तजार करना।'

'जो हुक्म, सरकार।' एक पहरेदार ने कहा।

चिट्ठी लाने वाला और कोई नहीं, ओसमान खाँ ही था।

ओसमानखाँ चिट्ठी वापस लेकर चहारदीवारी के भीतर गये। वहाँ एक मौलश्री के पेड़ के पीछे आड़ में घूँघट काढ़े एक स्त्री खड़ी थी। ओसमान ने उसके पास जाकर फिर चारों ओर सतर्कता से देख कर, सब हाल ब्योरेवार बताया। घूँघटवाली ने कहा, 'आपको बड़ी तकलीफ दे रही हूँ। लेकिन क्या करूँ, आपकी बदौलत ही हमारी यह दुर्दशा हुई है। आपको मेरा यह काम करना ही होगा।'

ओसमान खाँ चुप रहे।

घूँघटवाली मर्माहत स्वर में बोली, 'न करना चाहें तो न कीजिए। इस समय तो हम अनाथ हैं। लेकिन ईश्वर तो सहारा है ही।'

ओसमान ने व्यग्र होकर कहा, 'माँ, तुम नहीं जानतीं कि कैसे कठिन काम में मुझे तुम लगा रही हो। कतलू खाँ सुन पायेगा तो मुझे जिन्दा न छोड़ेगा।'

'कतलू खाँ ? क्या मुझे धोखा देते हो ? कतलूखाँ की भला क्या मजाल कि तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके ?'

'तुम कतलू खाँ को नहीं जानतीं। लेकिन चलो, मैं तुम्हें वध-स्थल तक तो ले ही चलता हूँ।'

ओसमान खाँ के पीछे-पीछे जाकर घूँघटवाली वध-स्थल के पास चुपचाप खड़ी हो गई। वीरेन्द्रसिंह उसे देख न सके। वे उस समय एक भिखारी वेष वाले ब्राह्मण से बातें कर रहे थे। घूँघटवाली ने घूँघट के छेद से देखा कि वह भिखारी और कोई नहीं, अभिराम स्वामी थे।

वीरेन्द्रसिंह ने अभिराम स्वामी से कहा, 'गुरुदेव ! अब विदा होता हूँ। मैं आप से भला क्या कह कर जाऊँ ? इस लोक के सम्बन्ध में कहने को मेरे पास कुछ नहीं। प्रार्थना भी किसके लिए करूँ ?'

तब अभिराम स्वामी ने उँगली के इशारे से पीछे खड़ी घूँघटवाली को दिखाया। वीरेन्द्रसिंह ने उधर मुँह घुमा कर देखा ही था कि घूँघटवाली स्त्री झट से घूँघट हटा कर वीरेन्द्रसिंह के जंजीरों से जकड़े पैरों पर लोटने लगी। देख कर गद्‌गद् स्वर में वीरेन्द्रसिंह ने पुकारा, 'कौन, विमला ?'

'स्वामी ! प्राणेश्वर !' कह कर उन्मादिनी सी विमला ऊँचे स्वर में कहने लगी, 'आज मैं संसार के सामने ही कहूँगी, अब कौन रोकेगा ? स्वामी ! प्राणेश्वर ! मुझे छोड़ कर कहाँ जाते हो ? मुझे कहाँ रखे जाते हो ?'

वीरेन्द्रसिंह की आँखों से आँसू की धारा बह निकली। हाथ पकड़ कर विमला से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बोले, 'विमला ! प्रियतमे ! अब इस समय मुझे क्यों रुलाती हो ? शत्रु देखेगा तो कहेगा कि मरने से डरता है।'

विमला चुप हुई, तब वीरेन्द्रसिंह ने फिर कहा, 'विमला मैं तो जाता हूँ। तुम लोग मेरे पीछे आना।'

विमला धीरे से बोली ताकि कोई दूसरा न सुने, 'आऊँगी ! नाथ जरूर आऊँगी ! लेकिन पहले तो इस यन्त्रणा का बदला लूँगी।'

बुझने वाले दीपक की लौ की तरह वीरेन्द्रसिंह का चेहरा चमक उठा। पूछा, 'बदला ले सकोगी ?'

दाहिने हाथ में बाएँ हाथ की उँगली छुला कर विमला उसी स्वर में बोली, 'इसी हाथ से। यह मैंने हाथ का सोना त्याग दिया। अब इसकी क्या जरूरत ?' कह कर कंगन आदि आभूषण उतार कर दूर फेंकते हुए बोली, 'तेज अस्त्र छोड़ कर अब इस हाथ से अलंकार न छुऊँगी।'

वीरेन्द्र ने प्रसन्न हो कर कहा, 'तुमसे यह काम अवश्य हो सकेगा। भगवान तुम्हारी कामना पूरी करें।'

तभी जल्लाद पुकार उठा, 'अब और देरी नहीं कर सकता।'

वीरेन्द्रसिंह ने विमला से कहा, 'तो अब तुम यहाँ से चली जाओ।'

'नहीं, मेरे सामने ही मेरा वैधव्य प्रकट हो। तुम्हारे रक्त में मन के संकोच को विसर्जित करूँगी।' विमला ने संयत स्वर से कहा।

'अच्छा।' कह कर वीरेन्द्रसिंह ने जल्लाद को इशारा किया। विमला ने देखा कि कुठार सूर्य किरणों से चमक उठा। क्षण भर को उसकी पलकें अपने आप मुँद गईं। फिर पलकें खोलीं तो पाया कि वीरेन्द्रसिंह का कटा सिर खून से सना धूल में लोट रहा है।

विमला चट्टान की तरह दृढ़ हो कर खड़ी रही। सिर का एक बाल भी हवा में न उड़ा। एक बूँद आँसू भी न गिरा। आखों की पलकें भी नहीं झपीं। वह एकटक कटे सिर की ओर देखती रही।

| ५ |

विधवा

कहाँ है तिलोत्तमा ? कहाँ है पितृहीन अनाथ बालिका ? कहाँ है विमला ? कहाँ से विमला पति के वध-स्थल पर अचानक आकर दिखाई पडी थी ? उसके बाद फिर कहाँ चली गई ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु के समय वीरेन्द्रसिंह अपनी प्यारी बेटी से क्यों नहीं मिले ? नाम लेते ही शोले की तरह भभक कर क्यों जल उठे ? क्यों कहा था कि मेरी कोई बेटी नहीं ? क्यों विमला का पत्र बिना पढ़े ही दूर फेंक दिया था ?

क्यों ? कतलू खाँ के प्रति वीरेन्द्रसिंह के तिरस्कार की घटना कितनी भयंकर थी ? पवित्र कुल को कलंकित किया है—कर कह जंजीरों में जकड़ा शेर दहाड़ उठा था।

अब तिलोत्तमा और विमला कहाँ हैं ? क्या कतलू खाँ के हरम में ?

संसार की यही गति है। अदृश्य चक्र की ऐसी ही कठोर गति है। रूप, यौवन, सरलता सब इस चक्र में पड़ कर पिस जाते हैं।

कतलू खाँ का यही नियम था कि किसी किले या गाँव पर विजय पाने के साथ यदि कोई सुन्दरी रमणी बन्दिनी होती थी तो उसे उसकी सेवा में भेजा जाता था। गढ़ मन्दारन की जीत के दूसरे दिन कतलू खाँ वहाँ पहुंच कर बन्दियों की व्यवस्था और भविष्य में किले के प्रबन्ध के लिए सेना को आदेश देता रहा। बन्दियों में विमला और तिलोत्तमा को देखते ही, उसने अपना विलास-गृह सजाने के लिए उन्हें भेज दिया। फिर वह दूसरे कामों में उलझ गया। कहा जाता था कि जगतसिंह की गिरफ्तारी की बात सुन कर राजपूत सेना पास ही कहीं आक्रमण की योजना बनाने लगी। उनसे मोर्चा लेने की व्यवस्था आदि करने में व्यस्त रहने के कारण कतलू खाँ नई आई बन्दिनियों के संग-सुख का अवसर नहीं पा सका।

विमला और तिलोत्तमा अलग-अलग कमरों में रखी गई थीं। तिलोत्तमा की धूल-धूसरित देह फर्श पर पड़ी थी। उसकी ओर भला कौन देखता ! वसंत के आगमन पर जब मन्द वायु के झोकों से नई वल्लरी झूम उठती है तब उसकी सुगंध पाने के लिए भला कौन उसके पास खड़ा नहीं होता ? और जब गर्मी की आँधी में वही वल्लरी नीचे गिर जाती है तब कौन उसकी ओर आँख उठा कर देखता है ? लकड़हारा भी लकड़ी काट कर वल्लरी को पावों से कुचल कर ही चला जाता है।

और विमला ? चंचल, रसप्रिया, रसिका विमला की जगह अब एक गम्भीर, स्थिर, मलिना विधवा आँखों में आँचल लगाए बैठी है।

क्या यही पहले वाली विमला है ? अब वह केश-विन्यास नहीं, सिर पर धूल ही चढ़ी है। अब वह रंगीन ओढ़नी नहीं, वह रत्न जड़ित चोली भी नहीं। कपड़े भी मैले कुचैले। फटा-सा छोटा-सा वस्त्र बदन में लपेटे है। आँखें सूजी हुईं। कटाक्ष नदारद। ललाट पर गहरा घाव, खून बह रहा है।

विमला ओसमान खाँ की प्रतीक्षा कर रही है।

ओसमान खाँ पठान-कुल-दीपक है। युद्ध उसके लिये स्वार्थ का साधन, व्यवसाय और धर्म है। इसीलिए युद्ध में विजय पाने के लिए ओसमान खाँ कुछ भी करने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नहीं हिचकता। लेकिन युद्ध में विजय पा लेने के बाद, पराजितों पर किसी तरह का अत्याचार भी नहीं सह पाता। यह कतलू खाँ खुद ही विमला और तिलोत्तमा के लिए यह कठोर आदेश न दिये होता तो ओसमानखाँ की कृपा से वे कदापि बन्दिनी न बनने पातीं। उसकी ही कृपा से पति के वध के समय विमला उनसे भेंट कर सकी। बाद में जब ओसमान खाँ को मालूम हुआ कि विमला वीरेन्द्रसिंह की पत्नी है तब उसका मन और द्रवित हो उठा। ओसमान खाँ, कतलू खाँ का भतीजा है। इसलिए अन्तःपुर में आने-जाने की उसे कोई रोक नहीं है। लेकिन जिस हरम में कतलू खाँ की उप-पत्नियाँ रहती थीं, वहाँ कतलू खाँ के लड़के भी नहीं जा सकते थे, ओसमानखाँ भी नहीं, लेकिन ओसमान कतलू खाँ का दाहिना हाथ था। उसके बाहुबल से वह आभोदर से लेकर उड़ीसा तक अधिकार कर सका था। इसीलिए ओसमान का महत्व कतलू से कम न था। इसीलिए विमला की प्रार्थना पर अंतिम समय में पति से उसकी भेंट संभव हो सकी।

वैधव्य प्रकट होने के दो दिनों बाद विमला ने बाकी बचे सभी आभूषण कतलू खाँ की बाँदी को दे दिये। बाँदी ने गहने पाकर पूछा, 'मेरे लिए क्या हुक्म है ?'

'बस एक हुक्म है कि, कल तुम जिस तरह ओसमान खाँ के पास गई थीं, एक बार उसी प्रकार और जाओ। कहना कि मैं एक बार उनसे और मिलना चाहती हूँ। कहना कि यह आखिरी बार है। फिर और कभी इसके लिये प्रार्थना नहीं करूँगी'

बाँदी ने वैसा ही किया। ओसमान ने कहलाया, 'वहाँ मेरे आने से हम दोनों पर मुसीबत आ सकती है। उन्हें मेरे मकान पर आने के लिए कहना।'

विमला ने पूछा, 'मैं कैसे जाऊँगी ?

बाँदी ने कहा, ' उन्होंने इसके लिए उपाय करने को कहा है।'

शाम के बाद आयशा की एक दासी ने आकर हरम के पहरेदार खोजा से कुछ बातचीत की और फिर विमला को अपने साथ ओसमान के पास ले गई।

ओसमान ने पूछा, 'अब मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ ?'

बहुत छोटी सी बात है। बताओ कि राजपुत्र जगतसिंह क्या जिन्दा है ?'

'हाँ।'

'आजाद हैं या बन्दी ?'

'बन्दी। लेकिन कारागार में नहीं हैं। शरीर में गहरे घावों के कारण पीड़ित होकर शय्या पर हैं। कतलू खाँ को बताए बिना उन्हें अन्तःपुर में ही रखा गया है। ताकि वहाँ अच्छी तरह सेवा हो सके।'

सुन कर विमला बोली, 'इस अभागिन के सम्पर्क में आने से ही उनका यह अमंगल हुआ है। वह तो देवता-तुल्य हैं। अब जब राजकुमार चंगे हो जायें तो उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मेरा यह पत्र दे दीजिएगा। अभी तो इसे अपने ही पास रखिये। बस, मेरी यही भीख है।'

पत्र लौटाते हुए ओसमान खाँ ने कहा, 'मेरे लिए यह काम करना अनुचित होगा। राजकुमार चाहे जिस स्थिति में हों, हैं वे बन्दी। बन्दियों के पास कोई पत्र बिना पढ़े हुए जाने देना नियम-विरुद्ध है।'

'इस पत्र में आपके अहित की कोई बात नहीं है, इसलिए उन्हें देना कदापि अनुचित न होगा।'

'मैं कभी-कभी कुछ बातों में चाचा साहब के विरुद्ध आचरण भी करता हूँ पर ऐसी बातों में नहीं। लेकिन आप जब कह रही हैं कि पत्र में कोई विरोधी बात नहीं है, तो मुझे विश्वास करना ही पड़ेगा। लेकिन इसके लिए मैं नियम कैसे तोड़ूँ ? मुझसे यह काम न होगा।'

विमला नाराज होकर बोली, 'तो आपही पढ़ कर दे दीजिएगा।'

पत्र लेकर ओसमान पढ़ने लगा।

| ६ |

विमला का पत्र

'युवराज' ! मैंने वायदा किया था कि एक दिन आपको अपना परिचय दूँगी। आज उसका समय आ गया है।

पहले तो सोचा था कि मेरी तिलोत्तमा जब अम्बर के राजसिंहासन पर बैठेगी तब परिचय दूँगी। पर आज सभी आशाएँ धूल में मिल गई हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि कुछ दिनों में आप सुनियेगा कि इस धरती पर न कोई तिलोत्तमा है न विमला। हमारी जीवन आयु समाप्त हो गई है।

इसीलिए इस समय आप को लिख रही हूँ।

मैं बड़ी पापिन हूँ। मैंने जीवन में बहुतेरे अवैध काम किये हैं। मेरे मरने पर लोग अवश्य निन्दा करेंगे, तरह-तरह की बुरी बातें भी कहेंगे, तब मेरे घृणित नाम पर लगी कालिख कौन धोयेगा ? ऐसा दयालु कौन है ?

एक दयालु है, पर वे जल्दी ही बस्ती छोड़ कर तपस्या करने चले जायेंगे। उन दयालु अभिराम स्वामी से इस दासी का काम न बनेगा। राजकुमार, चाहे एक दिन के लिये ही सही, पर मुझे जाने क्यों यह विश्वास हुआ था कि मैं कभी आपके आत्मीयजनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में गिनी जाऊँगी। सो एक ही दिन के लिए सही आप मेरे आत्मीय का काम कीजिए। मैं यह बात कह भी किससे रही हूँ ? अभागिनियों का फूटा भाग्य अग्निशिखा की तरह है। जो हितैषी पास थे, उन्हें भी अग्निशिखा ने स्पर्श किया है। जो भी हो दासी की यह भीख याद रखिएगा। जब लोग कहें कि विमला कुलटा थी, दासी के रूप में गणिका थी, तब कहियेगा कि नीच जाति की फूटे भाग्यवाली विमला रसना-दोष से सैकड़ों अपराधों की अपराधिनी होने पर भी गणिका नहीं थी। जो इस समय स्वर्ग गये हैं उन्होंने विमला के सौभाग्य से शास्त्र संगत ढंग से उसका पाणिग्रहण किया था। विमला एक दिन के लिए भी अपने नाथ के सम्मुख विश्वासघातिनी नहीं थी।

इतने दिनों तक यह बात किसी को मालूम नहीं थी, आज भी कौन विश्वास करेगा ? लेकिन पत्नी होकर भी दासी का रूप बना कर क्यों रही थी सुनिये। गढ़मन्दारन के पास एक गाँव में शशिशेखर भट्टाचार्य रहते थे। शशिशेखर एक सम्पन्न ब्राह्मण थे। युवावस्था में उन्होंने नियमित ढंग से विद्याध्ययन किया था। किन्तु अध्ययन से स्वभाव का दोष दूर नहीं होता। ईश्वर ने शशिशेखर को हर प्रकार के गुणों से सम्पन्न करके भी एक प्रबल दोष दे रखा था। वह था यौवनकालीन प्रबल दोष।

गढ़ मन्दारन में जयधरसिंह के किसी अनुचर वंश में एक विधवा स्त्री थी। वह अपरूपा सुन्दरी थी। उसका स्वर्गीय पति राजसेन का सिपाही था, इसलिए बहुत काल तक घर से बाहर रहा। उस अलौकिक सुन्दरी पर शशिशेखर की दृष्टि पड़ी। थोड़े समय में ही उसके औरस से पति विरहणी सुन्दरी के गर्भ रह गया।

आग और पाप को बहुत दिनों तक नहीं छिपाया जा सकता। शशिशेखर के दुष्कृत्य की बात उसके पिता ने सुनी। पुत्र के किए पर कुल-कलंक से मुक्ति पाने के लिये शशिशेखर के पिता ने पत्र लिख कर गर्भवती स्त्री के पति को जल्दी घर बुलवाया साथ ही उन्होंने अपने दोषी पुत्र का भी भरपूर तिरस्कार किया। फिर कलंकित नाम ले कर शशिशेखर देश छोड़ कर भाग गये।

भाग कर शशिशेखर सीधे काशी गये। वहाँ किसी सर्वश्रद्ध दण्डी के पाण्डित्य की चर्चा सुन कर उन्हीं से विद्यादान लेने लगे। उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी, दर्शन शास्त्र में गहन अध्ययन किया और ज्योतिष में महामहोपाध्याय हो गये।

वहाँ शशिशेखर एक शूद्रा के घर के पास रहते थे। शूद्रा के एक युवती कन्या थी। ब्राह्मण पर भक्तिभाव रखनेवाली युवती शशिशेखर के घर का काम तथा भोजन की तैयारी करा देती थी। माता-पिता के पापों पर पर्दा डालना सन्तान का परम कर्तव्य है। अधिक क्या कहूँ, शूद्र कन्या और शशिशेखर के सम्बन्ध से ही इस हतभागी का जन्म हुआ।

यह सब सुन कर एक दिन दण्डी पण्डित ने कहा, "शिष्य दुष्कर्मी को मेरे यहाँ अध्ययन के लिये स्थान नहीं है। तुम अब काशी में मुँह मत दिखाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विवश शशिशेखर को लज्जित होकर काशी छोड़ देना पड़ा।

माता को भी उनकी माँ ने दुराचारिणी की उपाधि देकर घर से निकाल दिया। दुखिनी माता मुझे लेकर एक कुटी में रहने लगी तथा मिहनत मजदूरी कर के पेट पालने लगी। मेरी समाज उपेक्षिता दुखिनी माँ की ओर आँख उठा कर कोई देखता भी न था। पिता की भी कोई खबर नहीं मिली। कुछ बरसों बाद जाड़े के दिनों में एक धनी पठान बङ्गाल से दिल्ली जाते समय काशी से होकर गुजरा। वह काफी रात बीते काशी पहुँचा और रात के आश्रय के लिये परेशान था। उनके साथ उनकी बेगम और एक छोटा बच्चा भी था। मेरी माँ की कुटी के पास आकर उसने कहा, 'इतनी रात को हिन्दू टोले में किसी ने हमें ठहरने की जगह नहीं दी। अब हम इस छोटे बच्चे को लेकर कहाँ जायें ? ठण्डक भी ऐसी है कि यह बरदाश्त न कर सकेगा। हमारे साथ ज्यादा आदमी भी नहीं हैं। अगर तुम्हीं हमें आश्रय दे दो तो इस कुटिया में ही हम गुजर कर लेंगे। तुम्हें इस मेहरबानी के लिये बहुत सा इनाम दूँगा।'

पठान किसी अति आवश्यक कार्य से दिल्ली जा रहे थे। उनके साथ एक नौकर भी था। मेरी माता दरिद्र भी थी और दयालु भी। चाहे धन की लालच हो या बच्चे पर दया खाकर उन्होंने पठान को कुटिया से रहने दिया। पठान अपनी बेगम व बच्चे के साथ कुटिया के एक बगल लेट गया और दूसरी बगल हमलोग लेटे।

उन दिनों काशी में लड़के चुराने वालों का बड़ा आतंक था। मैं थी सिर्फ छ साल की। सब कुछ तो मुझे याद नहीं, मां से सुनी बातें ही कह रही हूँ।

करीब आधी रात को मेरी नींद टूट गई। दिया जल रहा था। मैंने देखा कि सेंध लगा कर एक चोर कुटिया से पठान बालक को चुरा कर लिए जा रहा था। मैं जोर से चिल्ला उठी। मेरी चीख सुन कर सभी जाग गये।

बच्चे की माँ ने जब बच्चा वहाँ न पाया तो वह भी चीख उठी। चोर बच्चे को लिये हुए खाट के नीचे छिपा था। पठान ने उससे बच्चे को छीन लिया। चोर पैरों पर लोट कर गिड़गिड़ाने लगा। तब तलवार से उसका एक कान काट कर पठान ने उसे छोड़ दिया।'

इतना पढ़ते-पढ़ते ओसमान अनमना होकर कुछ सोचने लगा फिर विमला से पूछा, 'क्या कभी तुम्हारा कोई और नाम भी था ?'

विमला ने बताया 'हाँ था। लेकिन वह मुसलमानी नाम था, इसलिये मेरे पिता ने वह नाम बदल दिया था।'

'वह नाम माहरू था ?'

चकित होकर विमला ने पूछा, 'आप को कैसे मालूम हुआ ?'

'वह चोरी जाने वाला लड़का मैं ही हूँ।'

विस्मय से विमला जड़ हो गई। ओसमान आगे पढ़ने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'—दूसरे दिन विदा होते समय पठान ने माँ से कहा तुम्हारी बेटी ने मेरा जो उपकार किया है, उसका बदला देने की स्थिति में मैं इस समय नहीं हूँ लेकिन तुम्हारी जो भी इच्छा हो मुझसे कहो, मैं वहाँ जाकर पूरी करूँगा। रुपये चाहो तो वह भेज दूँगा।

माँ ने कहा था—मुझे रुपयों की जरूरत नहीं। मिहनत मजदूरी से मेरा गुजर हो जाता है लेकिन अगर बादशाह तक आपकी पहुँच हो तो—

बीच ही में पठान बोला—खूब है। मैं बादशाह सलामत के दरबार में आप का भला कर सकता हूँ।

तो इस बच्ची के बाप की खोज कराकर मुझे खबर दीजिएगा।

पठान ने वायदा किया। माँ को एक मोहर दी पर माँ ने नहीं ली। पठान ने वचन के अनुसार मेरे पिता की खोज की लेकिन कुछ पता न चला।

पता चला चोदह बरसों बाद। वहाँ से माँ के पास पत्र आया तब पिता दिल्ली थे। अपना शशिशेखर भट्टाचार्य नाम बदल कर उन्होंने नया नाम अभिराम स्वामी रख लिया था।

जब यह खबर आयी थी तब मेरी माँ का देहान्त हो चुका था। और पिता की खबर पाकर मेरा मन भी अब काशी में न लगता। जब पिता दिल्ली में है तो मैं काशी में किसके लिये रहूँ ? यही सोच कर मैं अकेली पिता के पास चल पड़ी। मेरे वहाँ जाने पर पहले तो पिता नाराज हुए लेकिन मेरे रोने-धोने पर उन्होंने मुझे अपने साथ रख लिया। उन्होने मेरा माहरू नाम बदल कर विमला रख दिया। मैं भी पिता जी के साथ रह कर उनकी खूब सेवा करने लगी। मैं वही काम करने लगी जिससे उनके मन को खुशी हो। पिता की सेवा करके मुझे भी आन्तरिक सन्तोष होता, सोचती कि पिता की सेवा से बढ़ कर दुनिया में दूसरा सुख नहीं है। और शायद मेरी सेवा को देख कर अपने दयालु स्वभाव के कारण ही पिता जी मुझसे खूब स्नेह करने लगे। समुद्र की ओर तेजी से बढ़ती हुई नदी की तरह स्नेह भी जितनी तीव्रता से प्रभावित होता है उतना ही वह बढ़ता है। जब मेरे सुख के दिन बीत गये तब मुझे मालूम हुआ कि पिता जी सचमुच मुझे कितना प्यार करते थे।'

|७|

विमला का शेष-पत्र

'मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि गढ़-मन्दारन में मेरे पिता से एक निर्धन स्त्री गर्भवती हुई थी। मेरी माता का जो भविष्य हुआ, वही उस स्त्री का भी हुआ। उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी गर्भ से एक कन्या ने जन्म लिया। मेरी माँ की तरह वह भी मेहनत-मजदूरी करके अपना निर्वाह करने लगी। विधाता का ऐसा कोई विधान नहीं है कि जैसा स्थान हो, उसी के अनुरूप सभी चीजें पैदा हों। पहाड़ के पत्थरों पर भी कोमल दूब उगती है और अँधेरी खान में भी उज्ज्वल-रत्न पैदा होते हैं। उस दरिद्र स्त्री के घर भी एक अद्वितीय सुन्दरी कन्या ने जन्म पाया। विधवा की वह बेटी गढ़ मन्दारन गाँव में अतीव सुन्दरी के रूप में प्रसिद्ध हो गई।

काल के गर्भ में सब कुछ समा जाता है। समय बीतने पर विधवा का कलंक भी लोग भूल गये। विधवा की सुन्दरी कन्या एक जारज सन्तान है, यह बात धीरे-धीरे बहुत से लोग भूल गये। बहुतों को यह सब मालूम भी न था। दुर्ग की यह गुप्त बात तो अब शायद कोई भी नहीं जानता। मैं अधिक क्या कहूँ ? उसी सुन्दरी के गर्भ से तिलोत्तमा का जन्म हुआ है।

तिलोत्तमा जब माता के गर्भ में थी तभी इस विवाह के कारण मेरे जीवन की प्रमुख घटना घटी। एक दिन पिता जी अपने दामाद को साथ लेकर आश्रम में आये। उनका परिचय मुझे यही दिया कि वह उनके मंत्र-शिष्य हैं। स्वर्गीय नाथ से ही मुझे उनका असली परिचय मालूम हुआ था।

मैंने जिस क्षण उन्हें देखा, मेरा मन मेरा न रह गया। लेकिन वह सब बातें आपको बताऊँ भी कैसे ? वीरेन्द्रसिंह जल्दी ही जान गये कि बिना विवाह किए वे मुझे नहीं पा सकते। शायद पिता जी भी सारी स्थिति समझ गये। एक दिन दोनों में इस संबंध में बातचीत हो रही थी, जो मैंने आड़ में छिप कर सुना था।

पिता जी ने कहा था, 'मैं विमला को छोड़ कर नहीं रह सकता। लेकिन तुम यदि विमला से विवाह करोगे तो मैं तुम्हारे पास रहूँगा। और अगर तुम्हारा वह अभिप्राय न हो तो·····'

पिता की बात के बीच में ही रुष्ट हो कर मेरे पति बोले, 'महाराज, एक शूद्र-कन्या से कैसे विवाह कर सकता हूँ ?'

पिता ने व्यंग्य से कहा था, 'उस जारज कन्या से जिस तरह किया था ?'

पति नाराज होकर बोले, 'जब विवाह किया था तब नहीं जानता था कि वह जारज है। जानबूझ कर एक शूद्रा से किस तरह विवाह करूँ ? और फिर आपकी बड़ी लड़की जारज होने पर भी कम से कम शूद्रा तो नहीं ही थी।'

पिताजी ने कहा, 'तुम विवाह नहीं करना चाहते तो मत करो। लेकिन तुम्हारे आने-जाने से विमला का अनिष्ट हो रहा है। अतः अब इस आश्रम में तुम्हारे आने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारे घर आकर ही तुमसे मिल लिया करूँगा।'

उस दिन के बाद थोड़े दिनों के लिए उन्होंने आना-जाना बन्द कर दिया था। मैं चातकी की तरह बैठी दिन रात उनके आने की राह देखती रहती। लेकिन कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समय तक आशा बेकार जाती रही। लेकिन अधिक दिन वे संयम नहीं रख सके। पहले की तरह ही आने-जाने लगे। उनके फिर से दर्शन पा कर मैंने भी उनसे लज्जा करना छोड़ दिया। पिता जी ने यह सब देखा। एक दिन मुझे अपने पास बुला कर कहा, 'मैंने अनाश्रम-व्रत धारण किया है। अब मैं हमेशा यहाँ नहीं रह सकता। अब मैं दूसरे स्थानों की यात्रा करूँगा। तब तुम कहाँ रहोगी ?'

पिताजी की बात सुन कर व्याकुल होकर मैं रोने लगी। कहा, 'मैं भी आपके साथ चलूँगी। नहीं तो काशी में जिस तरह अकेली रहती थी, वैसे ही यहाँ भी रहूँगी।'

पिता जी ने कहा, 'नहीं विमला, मैंने इससे भी उत्तम संकल्प किया है। उपाय किया है कि मेरे न रहने पर भी तुम्हारी रक्षा हो सके। तुम महाराज मानसिंह की नई रानी के साथ रहना।'

तब मैंने रो कर कहा, 'नहीं पिता जी, मेरा इस तरह परित्याग मत कीजिए।'

पिता जी ने कहा, 'नहीं, मैं अभी नहीं जाऊँगा। तुम अब महाराज मानसिंह के यहाँ जाओ। मैं यहीं रहूँगा। रोज तुम्हें देखने आऊँगा। तुम वहाँ कैसे रहती हो, यह देख कर, ठीक होने पर जैसा होगा करूँगा।'

युवराज ! इस प्रकार मैं तुम्हारे घर की बाशिन्दा हो गई। बड़े कौशल से पिता जी ने मुझे अपने दामाद की आँखों से दूर कर दिया।

युवराज ! मैं तुम्हारे पिता के संरक्षण में बहुत दिनों तक रही पर तुम मुझे नहीं पहचानते ! तब तुम मात्र दस साल के थे, और अम्बर के राजमहल में माता के पास रहते थे ! मैं तुम्हारी विमाता के पास दिल्ली में रहती थी। फूल की माला की तरह महाराज मानसिंह के गले में अनेक रमणियाँ झूलती रहती थीं। क्या तुम अपनी सभी विमाताओं को पहचानते थे ? क्या तुम्हें जोधपुर की उर्मिला देवी की याद है ? उर्मिला देवी के गुणों का कितना वर्णन करूँ ? उन्होंने मुझे कभी दासी नहीं समझा, मुझे प्राणों से बढ़ कर सगी बहन जैसा मानती थीं। उन्होंने मुझे नाना प्रकार की विद्या सिखाने का प्रबन्ध किया। उन्हीं की कृपा से मैंने सब कुछ सीखा। उन्होंने स्वयं भी मुझे पढ़ना-लिखना सिखाया। इन अटपटे अक्षरों से यह पत्र लिखने के योग्य हो सकी हूँ, यह उन्हीं, तुम्हारी विमाता उर्मिला देवी की कृपा से।

उर्मिला देवी की कृपा से और भी बहुतेरे लाभ हुए। वे जिस स्नेह से मुझे देखती थीं, वैसा ही परिचय महाराज से भी देतीं। गाने में मुझे निपुणता प्राप्त हो गई थी। मेरे गीत सुन कर महाराज सदा प्रसन्न होते थे। महाराज मुझे अपने परिवार की ही समझते। उन्हें मेरे पिताजी पर भक्ति थी। पिताजी आकर बराबर मुझसे मिलते रहते थे।

उर्मिला देवी के पास मैं हर प्रकार से सुखी थी। केवल एक क्लेश था, जिसके लिए धर्म को छोड़ कर और सब कुछ त्यागने को मैं तैयार थी, उनके दर्शन न हो पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। क्या वे भी मुझे भूल गये थे ? नहीं, ऐसा नहीं था। युवराज ! क्या आपको आसमानी नाम की दासी की याद है ? आसमानी से मेरा गहरा स्नेहमय सखी-भाव था। उसे ही मैंने अपने नाथ की खबर लाने को भेजा। उनका पता लगा कर वह उन्हें मेरा संदेश दे आई। उत्तर में उन्होंने भी बहुत-सी बातें कहलाईं। अब उन सब को क्या लिखूँ ? आसमानी के हाथ मैंने उन्हें पत्र भेजा। उन्होंने उसका उत्तर भी दिया, फिर यह क्रम बार-बार चला। इस प्रकार बिना मिले भी हम एक दूसरे से बातचीत करते रहे।

इसी तरह तीन साल बीत गये। तीन वर्षों के इस बिछोह में भी हम एक दूसरे को नहीं भूले। हम दोनों ही यह समझते थे हमारा प्रणय सेवार की तरह पानी के ऊपर ही ऊपर नहीं तैर रहा है बल्कि पद्म की तरह नीचे जड़ भी है। मैं नहीं जानती, कि अचानक उनका संयम क्यों टूट गया। एक दिन उन्होंने उल्टा काम किया। मैं रात को अपने कमरे में अकेली सो रही थी। एकाएक नींद टूटी तो दिए के टिमटिमाते प्रकाश में देखा कि मेरे सिरहाने कोई बैठा है। मेरे उठने के पहले ही मेरे कानों ने ये मधुर शब्द सुने, 'प्राणेश्वरी, डरो मत। मैं तुम्हारा सेवक हूँ।'

मैं भला क्या उत्तर देती ? तीन साल के बाद भेंट हुई थी। मैं सब कुछ भूल गई। उनके गले से लिपट कर रोने लगी। जल्दी ही मैं मरूँगी, इसलिए अब मुझे लाज नहीं है, सब बातें खोल कर कहे दे रही हूँ।

जब मेरा बोल फूटा तो मैंने पूछा, 'यहाँ तुम कैसे आ सके ?'

वे बोले, 'आसमानी से पूछना। उसी के साथ पनभरा कहार बन कर भीतर आया, तभी से छिपा हूँ।'

'अब !'

'अब क्या ? तुम जो करो।'

मैं सोचने लगी कि क्या करूँ, किस तरह बचाऊँ ! चित जिधर जाने लगा, उधर ही मति भी भागने लगी। यही सब सोच ही रही थी कि मेरे कमरे का दरवाजा खुला। देखा, सामने महाराज मानसिंह खड़े हैं।

विस्तार की जरूरत नहीं। वीरेन्द्र सिंह कैदखाने में बंद किए गए। महाराज ने उन्हें दण्डित करने का निश्चय किया। मेरे मन की क्या दशा हुई, आप सहज ही समझ सकते हैं। मैं जाकर उर्मिला देवी के पैरों में लोटने लगी, अपना दोष माना। सब दोष अपने सिर ओढ़ लिया। पिता जी से भेंट होने पर उनके पाँवों पर भी पड़ी। महाराज उन पर श्रद्धा रखते थे, जरूर ही उनकी बात मान लेंगे। मैंने कहा, 'आप अपनी बड़ी लड़की की बात याद कीजिए।'

लगता है कि पिता जी ने महाराज से बातें की होंगी। उन्होंने मेरे रोने-धोने पर तनिक भी ध्यान न दिया। क्रोध से बोले, 'पापिनी, तू बिलकुल निर्लज्ज हो गई है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी रक्षा के लिए उर्मिला देवी ने महाराज से बहुत तरह से कहा सुना। महाराज बोले, 'चोर यदि विमला से विवाह कर ले तो हम उसे क्षमा कर सकते हैं।'

महाराज का मतलब समझ कर मैं चुप हो गई। लेकिन मेरे नाथ तो महाराज की बात सुन कर अत्यन्त क्रोधित होकर बोले, 'मैं जीवन भर चाहे इसी कारागार में पड़ा रहूँ, पर प्राणदण्ड भी चाहे मिले, लेकिन एक शूद्रा की बेटी से विवाह कदापि न करूँगा। आप हिन्दू होकर ऐसी बात कैसे कहते हैं?'

महाराज बोले, 'जब मैं अपनी बहन का विवाह शाहजादा सलीम से कर चुका हूँ तो तुमसे एक ब्राह्मण कन्या से विवाह करने को कहने में हानि क्या है?'

फिर भी वे तैयार न हुए, बल्कि कहा, 'महाराज! जो कुछ होना था वह हुआ। आप मुझे छोड़ दीजिए, मैं फिर कभी अब विमला का नाम भी न लूँगा।'

महाराज ने पूछा, 'तो तुमने जो अपराध किया है, उसका प्रायश्चित कहाँ हुआ? अब यदि तुम विमला का त्याग करोगे तो दूसरे उसे कलंकिनी कह कर उससे घृणा करेंगे, उसे छुएँगे नहीं।'

फिर भी उस समय वे विवाह के लिए तैयार नहीं हुए। बाद में जब कारागार का कष्ट न सहा गया तब लाचार हो कर आधे मन से कहा, 'विमला यदि मेरे घर में दासी बन कर रह सके, विवाह की बात मेरे जीते जी कभी न उठाए, कभी पत्नी रूप में अपना परिचय न दे तो मैं उस शूद्रा से विवाह कर सकता हूँ, अन्यथा नहीं।'

मैंने अतीव प्रसन्नता से वह भी स्वीकार किया। सचमुच मैं धन, यश, गौरव या परिचय आदि के लिए इच्छुक न थी। पिताजी और महाराज दोनों ही सहमत हुए। तब मैं राजभवन से अपने पति के घर दासी बन कर आई।

वास्तव में उन्होंने अनिच्छा तथा दूसरों के दबाव से ही विवाह किया था। ऐसी स्थिति में विवाह करने पर भला कौन स्त्री का आदर करेता है? विवाह के बाद पति की आँखों में मैं विष की तरह खटकने लगी। पहले का प्रणय अब बिल्कुल ही नहीं रह गया था। महाराजा मानसिंह द्वारा किए गए अपमान को याद कर वे मुझे बराबर ही भला-बुरा कहते थे। लेकिन उस तिरस्कार को ही मैं आदर समझती थी। इसी तरह काफी समय बीत गया। उस समय कुल के परिचय का भला अर्थ ही क्या है? मैं अपना परिचय दे चुकी, और बातें जरूरी नहीं हैं। समय आने पर मैं फिर से अपने पति की प्रणयभागिनी हुई थी। परन्तु अम्बरपति पर उनकी पहले से रोष-दृष्टि थी। भाग्य में यही सब लिखा था, नहीं तो यह सब दुर्घटनाएँ क्यों होतीं?

युवराजा मैं अपना पूरा परिचय दे चुकी। इससे अपने पतिज्ञा का पालन-मात्र ही मेरा उद्देश्य नहीं है। बहुत से लोग सोचते हैं कि कुल धर्म छोड़ कर मैं गढ़ मन्दारन के अधिपति की रक्षिता थी। मेरे मर जाने के बाद मेरे नाम के साथ जुड़ा यह कलंक आप मिटा देंगे, इसी आशा से इतना सब लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पत्र में मैंने मात्र अपना ही विवरण लिखा है। जिसकी बातों के लिए आप का मन चंचल है, इसका नाम भी नहीं लिया। अब समझ लीजिए कि वह नाम इस धरती पर से सदा के लिए लुप्त हो गया है। कभी कोई तिलोत्तमा नाम की भी थी, यह भूल जाइए।'

ओसमान ने पूरा पत्र पढ़ कर कहा, 'माँ, आप ने कभी मेरी जान बचाई थी। अब मैं उसका बदला दूँगा।'

विमला ने लम्बी सांस छोड़ कर कहा, 'अब इस धरती पर ऐसा कौन सा उपकार बचा है जो तुम मेरे लिए करोगे ? लेकिन एक उपकार·····'

'हाँ, कहिए, मैं वही उपकार करूँगा।'

विमला की आँखें चमक उठीं। बोली, 'ओसमान ! क्या कह रहे हो ? इस जले दिल को और धोखा क्या देते हो ?'

उँगली से एक अंगूठी उतार कर ओसमान ने कहा, 'यह अँगूठी ले लो। दो एक दिन में तो कोई काम न हो सकेगा। कतलू खाँ का जन्म दिन जल्दी ही आ रहा है। उस दिन बड़ा भारी उत्सव होता है। सभी पहरेदार भी खुशी से मतवाले रहते हैं। मैं उसी दिन तुम्हारा उद्धार कर सकूँगा। उसी दिन आधी रात को तुम अन्तःपुर के द्वार पर आना। वहाँ पर अगर कोई दूसरा आदमी तुम्हें ऐसी ही दूसरी अँगूठी दिखाए तो उसी के साथ बाहर चली आना। मुझे विश्वास है कि तुम बिना किसी संकट के चली आ सकोगी। आगे सब खुदा की मरजी पर है।'

'ईश्वर तुम्हें लम्बी उम्र दें और मैं क्या कहूँ ?' इसके आगे विमला कुछ न कह सकी। उसका गला भर आया।

विमला वहाँ से चलने वाली थी तभी ओसमान ने कहा, 'एक बात के लिए सर्तक करे देता हूँ कि अकेली ही आइएगा। आप के साथ कोई और होगा तो काम बनने की जगह बिगड़ जायगा।'

विमला समझ गई कि ओसमान का इशारा तिलोत्तमा के लिए है। मन ही मन सोचा, 'ठीक है, दो जन न जा सकेंगे तो तिलोत्तमा अकेले ही जाएगी।'

विमला चली गई।

| ८ |

आरोग्य

दिन बीत जायेंगे। चाहे जैसे भी हो, दिन बीत ही जाते हैं, ठहरे नहीं रहते। यात्री चाहे जितने बड़े तूफान में फँसा हो, आश्रय न मिलता हो, तब भी दिन बीतेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही, रुका नहीं रहेगा। कल तक ठहरो, थोड़ा धैर्य धरो। प्रतीक्षा करो। अच्छे दिन आवेंगे, सूरज उगेगा। और किसके दिन नहीं बीतते ? दुख को स्थायी करने को कौन सा दिन ठहरा रहता है ? फिर यह रोना क्यों ?

तिलोत्तमा एक प्रकार से धूल में पड़ी लोट रही है, फिर भी दिन तो बीत ही रहे हैं।

विमला के दिल में प्रतिहिंसा की एक नागिन बैठी हुई शरीर को विष से जर्जर कर रही है। पल भर के लिए उसका दर्शन असहनीय हो उठता है, फिर भी दिन बीत ही रहे हैं।

कतलू खाँ मसनद लगा कर बैठा है। शत्रु पर विजय पा कर उसके दिन सुख से बीत रहे हैं। उसके दिन भी नहीं ठहरते।

बीमार जगतसिंह शैय्या पर हैं। रोगी का दिन कितना बड़ा और कठिन होता है। कौन नहीं जानता ! फिर भी, उनके भी दिन बीत ही रहे हैं।

सभी के दिन बीत रहे हैं।

दिन पर दिन जगतसिंह चंगे होने लगे। मृत्यु के मुँह से वापस आकर राजकुमार दिन पर दिन स्वस्थ होने लगे। खाना खाने लगे। शरीर में शक्ति बढ़ने लगी। फिर उन्हें कई चिन्ताओं ने आ घेरा—

पहली चिन्ता थी—तिलोत्तमा कहाँ है ? राकुमार जितने स्वस्थ होते, उतनी ही व्यग्रता से व्याकुल हो सब से पूछते। पर कोई ठीक से संतोषप्रद जवाब न दे सका। आयशा को नहीं मालूम। ओसमान को नहीं मालूम। शायद दास-दासियों को ज्ञात होगा पर आदेश न होने पर वे बताते नहीं। राजकुमार तो यों व्यग्र हो उठे जैसे काँटों की शय्या पर सो रहे हों !

दूसरी चिन्ता थी—अपना भविष्य ! क्या होगा ? एकाएक इसका उत्तर कौन दे ? राजकुमार बन्दी हैं। ओसमान और आयशा की दया से कारागार के बदले इस आरामदेह कमरे में रह रहे हैं। सेवा-टहल के लिए दास-दासियाँ हैं। जब जिस चीज की जरूरत होती है, हाजिर की जाती है। आयशा एक सगी बहन से अधिक स्नेह से सेवा करती है। फिर भी दरवाजे पर पहरेदार हैं। वे वैसे ही कैद हैं जैसे सोने के पिंजड़े में कोई पक्षी। इससे कब छुटकारा होगा ? क्या कभी छुटकारा हो सकेगा ? उनकी सेना कहाँ है ? सेनापति के बिना उसकी क्या हालत होगी ?

तीसरी चिन्ता थी—आयशा ! यह विस्मय में डालने वाली, सेवा व परोपकार की प्रतिमूर्ति भला कैसे इस मिट्टी की धरती पर उतर आई है ?

जगतसिंह ने देखा, आयशा को विश्राम नहीं, थकावट नहीं, अवहेला नहीं, दिन रात एकरस हो रोगी की सेवा में लगी है। जब तक राजकुमार निरोग नहीं हुए, वह रोज सबेरे आ उपस्थित होती। जब तक रहती पलंग पर बैठी रहती। और जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी माँ बेगम बाँदी भेज कर न बुलवातीं वह कभी न जाती।

रोगी होकर चारपाई पर सभी को लेटना पड़ता है। रोग शय्या में जिसके सिरहाने बैठ कर सुन्दरी रमणी ने पंखा झला हो, वही जानता है कि रोगी बनने में भी कितना सुख है।

शय्या पर लेटे जगतसिंह देखते—इस शत्रुपुरी में भी सगी बहन का स्नेह आयशा देती। वह रमणी और युवती है। पूर्ण विकसित कमल। आकर्षक मूर्ति। कुछ-कुछ लम्बा कद, वैसी ही गठन, देवी प्रतिमा सा रूप। प्रकृति ने रानी मूर्ति गढ़ी है। बाँकी चाल है, हंस की चाल। सुन्दर ग्रीवा की कोमल भंगिमा। घने, घुँघराले केश-गुच्छ।

जब तक रोगी जगतसिंह को सेवा की जरूरत थी, आयशा हर समय उपस्थित रही। लेकिन ज्यों-ज्यों जगतसिंह निरोग होते गये, आयशा का आना भी कम होता गया। अब तो बस दो-एक बार ही आती है।

एक दिन। दिन के पिछले पहर, जगतसिंह कमरे की खिड़की पर खड़े किले के बाहर देख रहे थे। दूर और पास में कितने ही आदमी अपने कामों में व्यस्त आ-जा रहे थे। दुखी हो कर राजकुमार उन पथिकों से अपनी तुलना करने लगे। एक जगह देखा—एक आदमी को घेर कर कई लोग भीड़ लगाए खड़े थे। समझे कि कोई तमाशा होगा। मन में कौतूहल हुआ। थोड़ी देर बाद भीड़ छँटने पर देखा कि भीड़ के बीच वह आदमी कोई पुस्तक लेकर उन्हें कुछ पढ़ कर सुना रहा था। उसका आकार देख कर राजकुमार को विस्मय हुआ। पत्ते-विहीन मझोले आकार के ताड़-वृक्ष जैसा आदमी। पुस्तक पढ़ते समय हाथ भी झटकता था। जगतसिंह चकित होकर उसे देख रहे थे। ठीक इसी समय ओसमान खाँ कमरे में आये।

ओसमान खाँ ने पूछा, 'खिड़की से यों अनमने हो कर क्या देख रहे हैं?'

'एक सीधी सी लकड़ी। आप भी देखिए।'

'उसे क्या आप ने पहले कभी नहीं देखा?'

'नहीं।'

'वह तो आपलोगों का ही ब्राह्मण है। बातचीत में बड़ा मजेदार। उसे मैंने गढ़ मन्दारन के किले में देखा था।'

राजकुमार मन ही मन चिन्तित हुए। गढ़ मन्दारन के किले में था? तो क्या यह व्यक्ति तिलोत्तमा की कोई खबर दे सकता है? व्याकुल हो कर पूछा, 'इसका नाम क्या है?'

'उसका नाम कुछ मुश्किल है। एकाएक याद नहीं आता। गणपत! नहीं गजपत, या ऐसा ही कुछ।'

'गजपत? गजपत तो इस देश का नाम नहीं है। यों देखने में तो यह बङ्गाली ही जान पड़ता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बङ्गाली ही है। भट्टाचार्य। उसकी कोई उपाधि भी है—इल्म-इल्म.....'

'जनाब, बङ्गाली उपाधि में इल्म कैसे होगा ? बङ्गला में इल्म को कहते हैं, विद्या। विद्याभूषण या विद्यावागीश.....'

'हाँ, हाँ। विद्या के बाद ऐसा ही कुछ और है। बङ्गला में हाथी को क्या कहते हैं ?'

'हस्ती।'

'और कुछ ?'

'करी, दन्ती, वारण, नाग, गज.....'

'बस, बस, याद आया। उसका नाम है, गजपति विद्यादिग्गज।'

'विद्यादिग्गज ! भारी उपाधि है। जैसा नाम, वैसी ही उपाधि। उससे तो बात-चीत करने की इच्छा हो रही है।'

ओसमान ने गजपति की कुछ-कुछ बातें सुनी थी। सोचा, इससे बातें करने में किसी तरह का अनिष्ट नहीं हो सकता। कहा, 'हाँ, कीजिए न !'

दोनों ही साथ-साथ पास के बाहर वाले कमरे में गये और नौकर भेज कर गज-पति को बुलवाया।

| ९ |

दिग्गज-संवाद

नौकर के साथ-साथ गजपति विद्यादिग्गज कमरे में आये। राजकुमार ने पूछा, 'आप क्या ब्राह्मण हैं ?'

दिग्गज ने हाथ की मुद्रा बनाते हुए कहा—

'यावत् मेरौ स्थिता देवा यावत् गंगा महीतले ।।
असारे खलु संसारे सारं श्वसुर मन्दिरम् ।।

किसी तरह हँसी रोक कर जगतसिंह ने प्रणाम किया। गजपति ने आशीष दिया, 'खुदा खाँ बाबूजी को अच्छी तरह रखें।'

युवराज बोले, 'महाशय, मैं मुसलमान नहीं, मैं तो हिन्दू हूँ।'

दिग्गज ने मन में सोचा—बेटा यवन, मुझे झाँसा दे रहा है। कोई मतलब होगा, नहीं तो बुलाता क्यों ? मारे डर के मुँह सूख गया। बोला, 'खाँ बाबूजी, मैं आपको पहचानता हूँ, आप के अन्न से पला हूँ। नाराज मत होइएगा। श्रीचरणों का दास हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगतसिंह ने कहा, 'महाशय, आप ब्राह्मण हैं, मैं राजपूत, आप ऐसा मत कहिए। आप का नाम है—गजपति विद्यादिग्गज।'

दिग्गज ने सोचा, 'लो, नाम भी जानता है! न जाने क्या आफत आने को है! हाथ जोड़ कर कहा, 'दोहाई शेखजी की! मैं गरीब हूँ। आपके पैरों पड़ता हूँ।'

जगतसिंह ताड़ गया कि ब्राह्मण मूर्ख और डरपोक है, इससे कीई मतलब न निकलेगा। पूछा, 'आपके हाथ में कौन सी पोथी है?'

'जी, यह मानिक पीर की पोथी है।'

'ब्राह्मण के हाथ में मानिकपीर की पोथी?'

'जी—जी, मैं ब्राह्मण था, पर अब ब्राह्मण नहीं हूँ।'

राजकुमार ने विस्मित हो कर पूछा, 'यह कैसे? आप तो गढ़ मन्दारन में रहते थे न?'

दिग्गज ने सोचा—लो फिर आफत आई। मैं वहाँ रहता था, यह भी मालूम है। क्या मेरी भी वीरेन्द्रसिंह जैसी दशा होगी? डर के मारे ब्राह्मण रोने लगा। राजकुमार ने रोका, 'यह क्या करते हो?'

रोकर दिग्गज बोला, 'दोहाई खाँ साहब, मेरी जान मत लेना। मैं तुम्हारा गुलाम हूँ। बाबा। तुम्हारा गुलाम। बाबा!'

'क्या तुम पागल हो?'

'नहीं बाबा! मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारा ही बाबा!'

'ठीक है तुम डरो नहीं। तुम मानिक पीर की पोथी पढ़ो। मैं सुनूँगा।'

ब्राह्मण झटपट गा—गा कर पढ़ने लगा।

राजकुमार ने रोक कर पूछा, 'ब्राह्मण होकर मानिक पीर की पोथी क्यों पढ़ते हो?'

'मैं मुसलमान हो गया हूँ।'

'सो क्यों?'

'जब बहुत से मुसलमान बाबू गढ़ में गये तो एक ने कहा—आ ब्राह्मण, तेरी जात मार दें। कह कर उसने मुझे पकड़ कर मुरगी का पालो बना कर खिला दिया।'

'यह पालो क्या होता है?'

'चावल और घी का बनता है।'

राजकुमार समझ गए। बोले, 'कहते रहो।'

'फिर उन्होंने कहा कि 'अब तुम मुसलमान हो गये। तब से मैं मुसलमान हूँ।'

'बाकी लोगों का क्या हुआ?'

'बहुत ब्राह्मण इसी तरह मुसलमान हो गये।'

राजकुमार ने ओसमान की ओर ताका। राजकुमार के मौन में भी ओसमान ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीव्र तिरस्कार का भाव देखकर कहा, 'राजकुमार इसमें क्या हानि है ? मुसलमानों की नजर में मुस्लिम धर्म ही श्रेष्ठ है। बल से हो या छल से, सत्य धर्म का प्रचार धर्म ही है।'

ओसमान को उत्तर न देकर राजकुमार ने दिग्गज से पूछा, 'कहिए विद्यादिग्गज महाशय।'

'अब मैं शैख दिग्गज !'

'वही सही। शैख जी, गढ़मन्दारन के और किसी प्राणी की आप को खबर है ?'

वार्ता के इस क्षेत्र में राजकुमार को बढ़ते देख कर ओसमान विचलित हुए। दिग्गज ने कहा, 'हाँ, अभिराम स्वामी भाग गये।'

राजकुमार ने समझा, ब्राह्मण मूर्ख है। साफ साफ पूछा, 'वीरेन्द्रसिंह का क्या हुआ ?'

'नवाब कतलू खाँ ने उन्हें कटवा डाला।'

सुनते ही राजकुमार का चेहरा तमतमा उठा। ओसमान से पूछा, 'यह क्या ? क्या यह मनगढ़ंत ही कह रहा है ?'

ओसमान ने गंभीरता से कहा, 'नवाब ने विद्रोही समझ कर फैसला करके उन्हें प्राणदण्ड दिया है।'

राजकुमार की आँखों से चिनगारियाँ बरसने लगीं। ओसमान से पूछा, 'क्या एक बात पूछूँ ? क्या यह काम आप की सलाह से किया गया है ?'

'मेरी सलाह के विरुद्ध।'

राजकुमार चुप हो गये। ओसमान ने मौका पाकर दिग्गज से कहा, 'अब तुम जा सकते हो।'

दिग्गज उठ कर चलने को हुए कि राजकुमार ने उसका हाथ पकड़ कर रोक कर पूछा, 'एक बात और ? विमला कहाँ है ?'

साँस छोड़ने के साथ ही दिग्गज की कलाई छूट गई। बोला, 'विमला इस समय नवाब की उपपत्नी है।'

राजकुमार ने फुँफकारती आँखों से ओसमान को देख कर पूछा, 'क्या यह भी सच है ?'

ओसमान ने राजकुमार को जवाब न देकर ब्राह्मण से कहा, 'अब तुम और क्या कर रहे हो ? चले जाओ, फौरन।'

राजकुमार ने कस कर ब्राह्मण का हाथ पकड़ लिया। दिग्गज में हिलने की भी शक्ति न रही। बोले, 'पल भर ठहरो। सिर्फ एक बात और है ! तिलोत्तमा ?'

'तिलोत्तमा भी नवाब को उपपत्नी हुई हैं। दास-दासियां लेकर वे सब खूब मजे में हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार ने झटके से ब्राह्मण का हाथ छोड़ दिया। ब्राह्मण लड़खड़ा गया। गिरते-गिरते बचा।

ओसमान लज्जित होकर कोमल बन कर बोले, 'मैं सेनापति मात्र हूँ।'

राजकुमार ने घृणा से कहा, 'आप पिशाच के सेनापति हैं।'

| १० |

उस रात पल भर को भी जगतसिंह को नींद न आई। जैसे पलंग पर आग बिछी हो, दिल में भी आग धधक रही हो। जिस तिलोत्तमा के मरने से जगतसिंह का संसार सूना हो जाता, इस समय वह तिलोत्तमा जान पर क्यों नहीं खेल गई? यही उनके मार्मिक क्लेश का कारण था।

तिलोत्तमा मर क्यों नहीं गई? फूल सी सुकुमार देह, जिस पर जगतसिंह आँख फेरते, वह देह श्मशान की मृत्तिका होगी? इस विस्तृत धरती पर कहीं भी उस देश का नाम निशान न रहेगा। सोच कर जगतसिंह की आँखों से आँसू बह चले। साथ ही कतलू खाँ के हरम की कल्पना-स्मृति भी कौंध गई। फूल सी वह सुकुमार देहराशि पापी पठान के अंक में—सोच कर अग्नि से शरीर भस्म होने लगा।

तिलोत्तमा उनके हृदय मंदिर की देवी प्रतिमा है।

वही तिलोत्तमा पठान के कब्जे में है। कतलू खाँ की उपपत्नी है!

राजपूत क्या अब भी उस प्रतिमा की आराधना कर सकता है?

जिस प्रतिमा को अपने हाथों स्थापित किया है उसे अपने ही हाथों पदच्युत करते संकोच करना क्या राजपूत कुलोचित है? जो प्रतिमा जगतसिंह के हृदय में स्थापित थी, उसे उठा कर फेंकने में हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। फिर किस तरह सदा के लिए उस मोहिनी प्रतिमा को भूलें? जब तक मेधा रहेगी, अस्थि, मज्जा और रक्त की बनी देह भी रहेगी। तब तक वह हृदयेश्वरी बन कर रहेगी।

इसी चिन्ता में राजकुमार के मन की स्थिरता तो गई ही, बुद्धि भी भ्रमित होने लगी, स्मृति भी भटकने लगी। रात बीत जाने पर भी वह सिर पकड़े बैठे रहे। सिर चकरा रहा है। कुछ भी सोचने-विचारने की शक्ति नहीं रही।

एक ही आसन में बहुत देर से बैठे-बैठे जगतसिंह की देह अकड़ गई। मानसिक यन्त्रणा से ज्वर का आभास मिला। वे उठ कर जा कर खिड़की पर खड़े हो गये।

ठण्डी हवा जगतसिंह के सिर से आ लगी। आकाश घने बादलों से ढँका। तारे भी नहीं दिखते, ठण्डी हवा के छूने से जगतसिंह थोड़े स्थिर हुए। खिड़की पर हाथ रख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कर खड़े हुए। कुछ अनमने हुए। अब तक आशा की किरण जो छुपी थी, वह रुक गई। आशा छोड़ना ही बड़ा कष्टप्रद है। एक बार मन में निराशा जम जाने के बाद फिर उतना कष्ट नहीं होता। अंधेरे आकाश की ओर सजल आँखों से जगतसिंह देखते हुए सोचने लगे—अपने हृदय का आकाश भी इसी तरह अंधकारपूर्ण और नक्षत्रविहीन हो गया है। पहले की बहुत सी घटनायें याद आने लगीं। मन स्मृतियों में डूब गया। वहीं खड़े-खड़े उन्हें कब नींद आ गई, उन्हें पता नहीं चला। खड़े-खड़े सोते हुए राजकुमार ने स्वप्न देखा। भयानक कष्टप्रद स्वप्न। ओंठ काँपे, माथे पर पसीना आया, हाथों की मुट्ठियाँ बँध गईं।

चौंकने से नींद टूटी। व्याकुल हो राजकुमार कमरे में टहलने लगे। कब तक वे यंत्रणा से जलते रहे। कहना मुश्किल है। जब प्रभात की किरणें सर्वत्र फैल गईं, तब फर्श पर पड़े जगतसिंह निद्रा में खोये थे।

ओसमान खाँ ने आकर उन्हें जगाया। जगने पर ओसमान ने उन्हें एक पत्र दिया। पत्र लेकर राजकुमार एक टक ओसमान की ओर देखते रहे। ओसमान ने कहा, 'आप नीचे क्यों सो रहे थे ? यह पत्र जिसने भेजा है, उसे मैं वचन दे आया था कि पत्र आपको दूँगा। अब तक जिस कारण से यह पत्र आपको नहीं दिया था, वह कारण अब नहीं रहा। अब आपको सब कुछ मालूम हो चुका है। अब आप पत्र पढ़ लीजिएगा, मैं फिर आऊँगा। जवाब देना चाहें तो वह भी पहुँचा दूँगा।'

कह कर ओसमान खाँ चले गये।

अकेले बैठे राजकुमार विमला का पत्र पढ़ने लगे। पढ़ कर पत्र को जला डाला। जब तक पत्र जलता रहा। एकटक उसे देखते रहे। फिर अपने आप बोले, 'स्मृति-चिह्न को आग में जला दिया पर स्मृति के संताप के लिए क्या करूँ ?'

नहा-धोकर, पूजा-पाठ समाप्त कर राजकुमार ने हाथ जोड़ कर दृष्टि ऊपर उठा कर कहा, 'गुरुदेव, दास को भूलना मत। मैं राजधर्म की रक्षा करूँगा। क्षत्रियोचित कार्य करूंगा। विधर्मी की उपपत्नी को चित्त से दूर करूंगा। इस कर्म में यदि शरीर का अंत हो तो तुम्हें पाऊँगा। मनुष्य के लिए जो कुछ संभव है, कर रहा हूँ। मैं अब तिलोत्तमा को देखना नहीं चाहता। उसकी आकांक्षा छोड़ दी है। क्या उसकी स्मृति भी मिटा सकूँगा ? अब उस स्मृति की यातना नहीं सही जाती।'

प्रतिमा विसर्जित हो गई।

उधर धूल की शय्या पर लेटी तिलोत्तमा एक नक्षत्र की ओर देख रही थी। वहाँ से भी उसे अब प्रकाश नहीं मिलता। इस घोर तूफान में जिस लता से उसने अपने प्राण बाँधे थे, वह भी टूट गई। जिस बेड़े को हृदय से लगा कर वह समुद्र पार कर रही थी, वह भी डूब गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहान्तर

उसी दिन पिछले पहर राजकुमार के पास आकर ओसमान ने पूछा, 'युवराज ! क्या आप कोई जवाब देना चाहते हैं ?'

राजकुमार ने उत्तर लिख रखा था। पत्र ओसमान को पकड़ा दिया। तब ओसमान ने कहा, 'क्षमा कीजिएगा, हमारा नियम यह है कि कोई दुर्गवासी जब किसी को पत्र भेजता है तो दुर्गरक्षक पत्र को पढ़े बिना नहीं भेजता।'

'इतना कहना काफी है, आप पत्र पढ़ लीजिए। जी चाहे तो दे दीजिएगा।'

ओसमान ने पत्र पढ़ा। सिर्फ इतना ही लिखा था—

'अभागिन ! मैं तेरे अपराधों को कभी न भूलूँगा। यदि तुम सचमुच पतिव्रता होओ तो जल्दी ही पति का मार्ग पकड़ कर अपने कलंक को धो डालो।

जगतसिंह।'

पत्र पढ़ कर ओसमान ने कहा, 'राजकुमार, आपका हृदय पत्थर है।'

राजकुमार ने व्यंग्य से पूछा, 'पठानों से भी कड़ा ?'

ओसमान का चेहरा लाल हो गया। बोला, 'मेरा ख्याल है कि पठानों ने सब तरह की अशिष्टता आप से न बरती होगी।'

राजकुमार थोड़ा कुपित हुए, थोड़ा लज्जित भी। बोले, 'नहीं महाशय, मैं अपनी बात नहीं कह रहा। आपने तो मुझ पर हर प्रकार से दया का ही व्यवहार किया है। बन्दी करके भी जान नहीं ली। दवा-दारू कराई है। जिसे कारागार में जंजीर से बँधा होना चाहिये उसे आपने राजमहल का सुख दिया है। इससे ज्यादा और क्या कीजिएगा ? मैं आपकी शराफत के जाल में फँसता जा रहा हूँ। इस सुख का नतीजा मेरी समझ में नहीं आता। मैं बन्दी हूँ तो मुझे कारागार में जगह दीजिये। दया की इस जंजीर से मुक्त कीजिए। अगर मैं बन्दी न होऊँ तो मुझे इस सोने के पिंजड़े में अटका रखने की भी क्या जरूरत है ?'

ओसमान ने संयत स्वर में कहा, 'राजकुमार, अशुभ के लिए आप इतने उतावले क्यों हो रहे हैं ? अमंगल को बुलाना नहीं पड़ता। वह तो अपने आप ही आ जाता है।'

'इस फूल-शय्या को छोड़ कर कारागार की पाषाण-शय्या पर लेटने को राजपूत अमंगल नहीं मानते।'

'पाषाण-शय्या भी अगर अंतिम अमंगल होती तो हानि ही क्या थी ?'

'यदि कतलू खाँ को उचित दंड नहीं दे सका तो मृत्यु से भी क्या हानि है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'युवराज ! सावधान ! पठान जो कहता है वही करता है ।'

'सेनापति ! यदि आप मुझे धमकाने आये हों तो, यह प्रयास व्यर्थ होगा ।'

'राजकुमार, हम एक दूसरे को इतना जानते हैं कि बेकार बात बढ़ाना किसी का उद्देश्य नहीं हो सकता । मैं आपके पास एक खास काम से आया हूँ ।'

'तो कहिए ।'

'मैं इस समय जो प्रस्ताव करूँगा उसे कतलू खाँ की आज्ञा से किया हुआ समझिएगा ।'

'ठीक है ।'

'सुनिए, राजपूतों और पठानों की लड़ाई में दोनों की हानि है ।'

'पठानों का नाश करना ही इस युद्ध का उद्देश्य है ।'

'सच है, पर दोनों के नाश के सिवा एक के उत्थान की कितनी सम्भावना है, यह आप देख रहे हैं । आपने देखा कि गढ़ मन्दारन को जीतने वाले बिल्कुल कमजोर ही नहीं हैं ।'

'बलवान तो नहीं, हाँ चतुर-होशियार जरूर हैं ।'

'कुछ हो, अपनी तारीफ करना मेरा उद्देश्य नहीं । मुगल बादशाह से बैर करके पठान उड़ीसा में सुख से नहीं रह सकेंगे, लेकिन मुगल बादशाह भी कभी पठानों को अपना गुलाम नहीं बना सकेंगे । सोच कर देखिए, दिल्ली से उड़ीसा कितनी दूर है । माना कि दिल्ली के बादशाह ने मानसिंह की शक्ति के कारण इस बार उड़ीसा को जीत भी लिया तो उनकी विजय-पताका इस देश में भला कितने दिनों फहरा सकेगी ? महाराज मानसिंह के जाते ही उड़ीसा से दिल्ली का अधिकार भी चला जायगा । इसके पहले भी तो दिल्ली ने उड़ीसा पर फतह किया था, पर कितने दिनों टिक सके ? इस बार भी वैसा ही होगा । पठानों ने कभी गुलामी नहीं मानी । एक पठान भी जीता रहेगा तो लड़ता रहेगा । तो फिर राजपूतों और पठानों का खून बहाने से क्या लाभ ?'

'तो आप चाहते क्या हैं ?'

'मैं कुछ नहीं चाहता । मेरे नवाब सुलह करने के लिए कहते हैं ।'

'किस तरह की सुलह ?'

'दोनों पक्ष थोड़ा-थोड़ा झुकें । नवाब कतलू खाँ ने बंगाल का जो हिस्सा जीता है, उसे वे छोड़ देंगे । बादशाह भी उड़ीसा से नज़र फेर लें, अपनी सेना ले जायँ, और फिर कभी हमला न करें । इसमें भी पठानों का ही नुकसान है, बादशाह का नहीं । हम तो जीती हुई जमीन छोड़ रहे हैं, बादशाह को तो जो नहीं जीता, वही छोड़ना है ।'

'अच्छी बात है, पर यह प्रस्ताव मुझसे क्यों किया जा रहा है ? सुलह की बात तो महाराज मानसिंह करेंगे । उनके पास ही दूत भेजिए ।'

'महाराज के पास दूत भेजा गया था । दुर्भाग्य से किसी ने उन्हें खबर दे दी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कि पठानों ने आपको मार डाला है। उसी शोक व क्रोध से महाराज ने दूत की बात पर विश्वास नहीं किया। अगर आप खुद सुलह का प्रस्ताव करें तो वे अवश्य राजी होंगे।'

'साफ-साफ कहिये। मेरे पत्र भेजने से ही जब महाराज को विश्वास हो सकता है तो मेरे जाने की बात क्यों करते हैं ?'

'इसलिए कि महाराज हमारी स्थिति ठीक-ठीक नहीं जानते। आप उन्हें हमारी ताकत का सही अंदाज दे सकेंगे। और आपके कहने से वे जल्दी मानेंगे। फिर पत्र से पूरा काम भी न होगा। इससे आपको भी कारागार से मुक्ति मिल जायेगी। इसलिए नवाब कतलू खाँ की इच्छा है कि आप सुलह की बात चलावें।'

'पिताजी के पास जाने में मुझे कोई एतराज नहीं है।'

'लेकिन एक निवेदन और है। आप अगर सुलह न करा सकें तो फिर यहीं लौट आने का वचन दे जायँ।'

'वचन देकर भी लौट आऊँगा, इसका क्या भरोसा ?'

'पूरा भरोसा है। राजपूत कभी वचन-भंग नहीं करते।'

'तो मैं वचन देता हूँ कि पिताजी से मिल कर मैं लौट आऊँगा।'

'तो आप महाराज से हमारी इच्छानुसार सुलह का प्रयत्न करेंगे, यह भी कह जाइए।'

'सेनापति ! मैं यह वायदा नहीं कर सकता। दिल्ली के बादशाह ने मुझे पठानों को जीतने के लिए भेजा है। मैं तो पठानों को जीतूंगा ही। सुलह के लिए मुझे नहीं भेजा गया। इसलिए न तो सुलह करूँगा न उसके लिये कोशिश करूँगा।'

ओसमान दुखी हो गये। बोले, 'आपने युवराज जैसा ही जवाब दिया है, लेकिन सोच कर देखिये, आपके छुटकारे का और दूसरा उपाय क्या है ?'

'मेरे छूटने न छूटने से दिल्ली के बादशाह का क्या बनता बिगड़ता है ? राजपूत-कुल में और भी बहुत से राजकुमार हैं।'

'युवराज ! यह जिद छोड़ दीजिये।'

'क्यों ?'

'साफ बात यह है कि आपके द्वारा सुलह हो सकती है, इसी उम्मीद पर नवाब ने आपको इतने आदर से यहाँ रखा है। आप इतने टेढ़े पड़ेंगे तो तकलीफें बढ़ सकती हैं।'

'फिर डराते हो ? अभी-अभी मैंने आपसे कारागार जाने को कहा है।'

'युवराज ! अगर कारागार भर से नवाब साहब मान जाएँ तब खैर ही समझिये।'

युवराज के भवों में बल पड़े। आँखों से अंगारे फूट निकले। बोले, 'बहुत होगा, वीरेन्द्रसिंह की तरह ही कटवा देंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ठीक है, मैं जाता हूँ। मैंने अपना फर्ज पूरा किया। अब कतलू खाँ का हुक्म दूसरे दूत से सुनिएगा।'

थोड़ी देर बाद ही दूसरा दूत आया। वह सैनिक था। उसके साथ चार और हथियारबन्द सैनिक थे। राजकुमार ने पूछा, 'क्या है ?'

'आपकी जगह बदली जाएगी।'

'हम तैयार हैं, चलो।' कहकर युवराज सैनिकों के साथ चल पड़े।

| १२ |

मुक्ति-प्रयास

उत्सव का दिन। आज कतलू खाँ का जन्म-दिन है। दिन भर लोग राग-रंग में लगे रहे। रात के लिये और तैयारी है। अभी-अभी शाम बीती है। किले में सब तरफ रोशनी ही रोशनी है। सभी दासियाँ सजी-बजी हैं। सुनहरे, जरीदार, नीले, लाल, गुलाबी, हरे कपड़े पहने और गहनों से लदी सभी चमकती घूम रही हैं। सुन्दरियाँ अपने-अपने कमरे में बैठी साज-शृंगार कर रही हैं। आज नवाब हरम में आकर प्रमोद करेंगे। नाच-गाना भी होगा।

एक सुन्दरी बालों को सजा कर कमरे-कमरे में घूम रही है। आज किसी को कहीं आने-जाने की रोक नहीं है। वह सुन्दरी अनुपम रूप वाली है। कतलू खाँ के दिये आभूषण भी उसके पास खूब हैं। पर सुन्दरी के चेहरे पर रूप का जरा भी घमण्ड या आभूषणों का गर्व नहीं है। वह गम्भीर व स्थिर थी। आँखों से कठोर ज्वाला निकल रही थी।

इस तरह कमरे-कमरे घूमती हुई विमला एक सजे हुए कमरे में घुसी। घुस कर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। इस उत्सव के दिन भी उस कमरे में एक दिया टिमटिमा रहा था। एक किनारे एक पलंग पड़ा था। उस पर कोई सिर से पाँव तक चादर ओढ़े पड़ा है। पलंग के पास खड़ी हो कर विमला ने नम्रता से कहा, 'मैं आई हूँ।'

चादर हटी। एक रमणी उठ कर बैठी। बोली नहीं। विमला ने फिर कहा, 'तिलोत्तमा, मैं आई हूँ।'

तिलोत्तमा चुपचाप विमला की ओर एकटक देखने लगी।

तिलोत्तमा अब पहले वाली शर्मीली लड़की नहीं है। उस हल्की रोशनी में भी देखा जा सकता है कि उसकी उम्र दस साल बढ़ गई है। देह बहुत ही शीर्ण और चेहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदास है। एक बहुत छोटी धोती पहने है। उलझी लटें धूल से भरी हैं। शरीर पर एक भी आभूषण नहीं है। पहले के पहने आभूषणों के निशान भर हैं।

विमला बोली, 'मैंने कहा था, इसलिए आई हूँ। बोलती क्यों नहीं हो ?'

'क्या बोलूँ ? जो भी कहना था, सब कह चुकी हूँ।'

स्वर से विमला समझ गई कि तिलोत्तमा रो रही है। माथे पर हाथ रख कर चेहरा ऊपर उठा कर देखा। आँसू बह रहे थे। जिस तकिया पर सिर रख कर वह लेटी थी, उस पर हाथ रख कर देखा, वह गीली थी। विमला बोली, 'इस तरह दिन-रात रोते रहने से कितने दिन जी सकोगी ?'

'जीने की जरूरत ही क्या है ? इतने दिनों रही, इसी का पछतावा है।'

विमला चुप हो गई। वह भी रोने लगी थी। थोड़ी देर बाद बोली, 'अब आज क्या उपाय होगा ?'

तिलोत्तमा ने तिरस्कार से विमला के अंगों पर चढ़े आभूषणों को देख कर कहा, 'उपाय की जरूरत भी क्या है ?'

'बेटी ! बात मानो। तुम क्या अभी तक कतलू खाँ को नहीं जान पाई ? फुरसत न मिलने से कहो या हमारा शोक कम करने के लिए समय देने के लिए ही, अभी तक उस दुष्ट ने हमें छोड़ रखा है। लेकिन आज आखिरी दिन है। आज हमें नृत्यशाला में न देखेगा तो आफत मचा देगा।'

'अब और कौन सी आफत बाकी है ?'

'तिलोत्तमा इतनी निराश मत हो। अभी हमारे पास प्राण है, धर्म है।'

'तब माँ, ये गहने उतार डालो। तुमने पहने हैं। मेरी आँखों में गड़ रहे हैं।'

'बेटी, मेरे सभी गहनों को देखे बिना तिरस्कार मत करो।' कह कर विमला ने अपने कपड़ों में छिपाई एक छुरी निकाली। उसका तेज फल बिजली की तरह चमका। विस्मित व शंकित हो कर तिलोत्तमा ने पूछा, 'यह तुम्हें कहाँ मिली ?'

'कल अन्तःपुर में एक नई दासी आई है। उसे देखा है।'

'हाँ, आसमानी आई है।'

'अभिराम स्वामी के पास से इसे मैंने आसमानी से मंगवाया है।'

थोड़ी देर बाद विमला ने पूछा, 'इस वेष को तुम आज नहीं छोड़ोगी ?'

'नहीं।'

'नाच-गाने में नहीं जाओगी ?'

'नहीं।'

'इससे छुट्टी नहीं पाओगी ?'

तिलोत्तमा रोने लगी। विमला बोली, 'शान्त हो कर सुनो। मैंने तुम्हारे छुटकारे का प्रबन्ध किया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिलोत्तमा प्रश्नभरी दृष्टि से विमला की ओर देखने लगी। तब विमला ने ओसमान वाली अँगूठी देकर तिलोत्तमा से कहा, 'यह अँगूठी लो। नृत्यशाला में मत जाना। आधी रात से पहले उत्सव पूरा न होगा। तब तक मैं पठान को साफ कर दूँगी। मैं तेरी विमाता हूँ, यह उसे मालूम हो चुका है। मेरे सामने तुम वहाँ नहीं जाओगी, इस बहाने उत्सव समाप्त होने तक, तुम्हें देखने की उसकी इच्छा को मैं रोके रहूँगी। तुम आधी रात को अन्तःपुर के द्वार पर जाना। वहाँ एक आदमी तुम्हें इसी तरह की दूसरी अँगूठी दिखाएगा। बस तुम उसी के साथ बेखटके चली जाना। तुम उससे जहाँ पहुँचाने को कहोगी, वह पहुँचा देगा। तुम उससे अभिराम स्वामी की कुटी तक पहुँचाने को कहना।'

सुन कर तिलोत्तमा चमक उठी। विस्मय और आनन्द के प्रभाव से काफी देर तक वह बोल ही न सकी। बाद में बोली, 'यह सब क्या है? यह अँगूठी किसने दी?'

'वह सब बहुत सी बातें हैं। कभी समय मिलने पर कहूँगी। अभी तो तुम वैसा ही करना जैसा मैंने तुमसे कहा है।'

'तुम्हारा क्या होगा? तुम कैसे निकलोगी?'

'मेरी फिकर छोड़ो। मैं किसी तरह तुमसे कल सबेरे मिलूँगी।'

विमला ने तिलोत्तमा के लिए ही अपने छुटकारे का रास्ता रोका है, यह वह तिलोत्तमा को नहीं समझा पाई। तिलोत्तमा अब प्रसन्न थी। यह देख विमला खुश हुई। बोली, 'तो मैं चली।'

तब कुछ संकुचित हो तिलोत्तमा ने पूछा, 'तुम्हें तो यहाँ का सब हाल मालूम हो गया है। और ··और सब लोग कैसे हैं?'

विमला ने देखा कि इस विपत्ति के समय भी तिलोत्तमा के दिल में जगतसिंह जमे हैं। तब तक विमला को युवराज का वह निष्ठुर पत्र मिल चुका था। उसमें कहीं तिलोत्तमा का नाम भी न था। यह बात तिलोत्तमा जानेगी तो उसके घाव पर नमक पड़ जाएगा। अतः उस बात को छिपा कर विमला ने कहा, 'जगतसिंह इसी किले में हैं और शरीर से कुशल हैं।'

तिलोत्तमा चुप हो गई। आँखें पोंछती हुई विमला वहाँ से चली गई।

१३

अँगूठी का उपयोग

विमला के जाने के बाद तिलोत्तमा अनेक प्रकार की चिन्ताओं में डूब गई। पापी, दुरात्मा की कैद से जल्द मुक्ति की आशा हुई है, यही बात बार-बार याद आने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी। पर यही बात नहीं, विमला भी उसे प्राणों से ज्यादा प्यार करती है। उसने मुक्ति की व्यवस्था की है, यही सोच कर तिलोत्तमा प्रसन्न हुई। लेकिन छुटकारा पा कर भी तिलोत्तमा कहाँ जायेगी ? अब तो पिता जी का भी घर नहीं रहा। यही सोच कर वह रो पड़ी। तभी अन्य सभी चिन्ताओं को दबा कर एक नई चिन्ता उपजी—राजकुमार तो कुशल से हैं ? कहाँ है ? क्या वे भी बन्दी हैं ? सोचते-सोचते तिलोत्तमा की आँखें बरसने लगीं। सोचा, हे भगवान ! राजकुमार मेरे ही कारण बन्दी बनाए गए। उनके लिए अपनी जान देकर भी क्या कभी उऋण हो सकती हूँ ? फिर सोचा—कि वे भी कारागार में हैं ? वह कारागार कैसा होगा ? क्या वहाँ और कोई नहीं जा सकता ? वे वहाँ अकेले बैठे क्या सोचते होंगे ? क्या उन्हें मेरी याद आती होगी ? जरूर आती होगी। मैं ही तो उनकी यंत्रणा का कारण हूँ। वे मुझे अवश्य ही खूब कोसते होंगे।' फिर सोचा—नहीं, वे भला कोसेंगे क्यों ? जैसे वे बन्दी हैं, वैसे ही तो मैं भी बन्दिनी हूँ। फिर भी यदि वे घृणा करेंगे तो मैं, पाँव पकड़ कर समझाऊँगी। अगर न मानेंगे तो मैं उनके सामने ही अपनी जान दे दूँगी। लेकिन उनसे कब भेंट होगी ? किस तरह उन्हें छुटकारा मिलेगा ? मेरे अकेले छुटकारा पाने से भला क्या काम बनेगा ? विमला को यह अँगूठी कहाँ मिली ? क्या युवराज के छुटकारे के लिए यही कौशल काम न देगा ? क्या उन्हें यह अँगूठी देने से उन्हें मुक्ति नहीं मिलेगी ? मुझे लिवाने कौन आयेगा ? उसके माध्यम से क्या कोई उपाय नहीं हो सकता ? अच्छा, उसी से पूछूँगी। क्या एक बार भी भेंट नहीं हो सकती ? लेकिन किस तरह भेंट करूँगी ? भेंट होने पर क्या कह कर मन की तड़प को मिटा सकूँगी ?

तभी एक बाँदी कमरे में आई। उससे तिलोत्तमा ने पूछा, 'कितनी रात है ?' बाँदी ने कहा, 'रात का दूसरा पहर बीत चला।'

तिलोत्तमा दासी के बाहर जाने की प्रतीक्षा करने लगी। उसके जाते ही विमला द्वारा दी गई अँगूठी ले कर वह कमरे से बाहर आई। उसका मन एक बार फिर आशंका से भर उठा। पैर काँपे, हृदय काँपा, मुँह सूखा। एक कदम आगे बढ़ती तो एक कदम पीछे हटती। फिर हिम्मत कर के अन्तःपुर के द्वार पर गई, पहरेदार, खोजे, हबशी सभी नशे में धुत् थे। कोई उसे देख न सका। देखा भी होगा तो ध्यान नहीं दिया। लेकिन तिलोत्तमा के ऐसा लगता जैसे सभी उसे ही घूर रहे हैं। किसी तरह दरवाजे तक गई। वहाँ पहरेदारों में कोई सो रहा था, कोई जागा था, पर बेहोश था, कोई-कोई कुछ-कुछ होश में थे। किसी ने उसे रोका नहीं। एक व्यक्ति पहरेदार के वेष में द्वार पर खड़ा था। उसने तिलोत्तमा को देख कर पूछा, 'आपके हाथ में अँगूठी है ?'

डरी हुई, सहमी तिलोत्तमा ने विमला की दी अँगूठी दिखा दी। पहरेदार ने अच्छी तरह अँगूठी देख कर अपने हाथ की अँगूठी तिलोत्तमा को देखने को दी। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोला, 'मेरे साथ आइए, कोई डर की बात नहीं।'

तिलोत्तमा धड़कते दिल से पहरेदार के पीछे-पीछे चली। सभी ओर के पहरेदार आज अचेत थे। कहीं किसी ने कुछ न पूछा। पहरेदार तिलोत्तमा को साथ लिए कई दरवाजों, आँगनों को पार करता चलता गया। बाद में किले के फाटक पर आकर पूछा 'आप अब कहाँ जाइएगा ?'

घबराहट में तिलोत्तमा को याद नहीं रहा कि विमला ने कहाँ जाने को कहा था। याद करने ही कोशिश करने पर सर्वप्रथम जगतसिंह याद आए। इच्छा हुई कि कह दे—जहाँ राजकुमार हों वहीं ले चलो—पर शत्रु-लज्जा ने मुँह न खुलने दिया। तभी पहरेदार ने फिर पूछा, 'कहाँ ले चलूँ ?'

तिलोत्तमा फिर भी न बोली। दिल धड़कने लगा।। आँखों से कुछ दिखता नहीं, कानों से कुछ सुनाई नहीं पड़ता। मुँह से बोल नहीं निकलता। लेकिन उचेत सी वह कुछ फुसफुसाई। पहरेदार ने सुना—'जगतसिंह।' पहरेदार बोला, 'जगतसिंह तो कैद खाने में हैं। वहाँ कोई नहीं जा सकता। मुझे हुक्म है कि आप जहाँ जाना चाहें वहाँ पहुँचा आऊँ।'

पहरेदार किले के भीतर गया। पीछे-पीछे तिलोत्तमा कठपुतली सी चलती गई। पहरेदार ने कैदखाने के दरवाजे पर जा कर देखा कि वहाँ पहरेदार सजग हैं। उसने एक से पूछा, 'राजकुमार कहाँ हैं ?'

उसने उँगली से इशारा किया।

पहरेदार ने पूछा, 'सो रहे हैं या जाग रहे हैं ?'

कमरे के द्वार तक जाकर वह लौटा और बोला, 'जाग रहे हैं।'

पहरेदार ने कहा, 'कमरे का दरवाजा खोल दो। ये मुलाकात करने जायेंगी।

रक्षक ने कहा, 'ऐसा हुक्म नहीं है।'

तब पहरेदार ने रक्षक को ओसमान की अँगूठी दिखाई, जिसे देखते ही झुक कर उसने सलाम किया और दरवाजा खोल दिया।

कमरे में एक मामूली खाट पर राजकुमार पड़े थे। दरवाजा खुलने की आवाज से चौंक कर उधर ही देखने लगे। तिलोत्तमा दरवाजे तक पहुँच कर भी आगे न बढ़ सकी।

पहरेदार ने कहा, 'यह क्या ? आप देर क्यों कर रही हैं ?'

फिर भी तिलोत्तमा के पैर नहीं उठे।

'न जाना हो तो वापस चलिए। यहाँ ठहरना नहीं हो सकता।'

एक आवेश में भर कर तिलोत्तमा आगे बढ़ गई। कमरे में राजकुमार को देखते ही तिलोत्तमा फिर जड़ हो गई। दीवार पकड़ कर चेहरा झुकाए खड़ी हो गई।

राजकुमार एकाएक तिलोत्तमा को पहचान न सके। एक स्त्री को आया देख कर चकित हुए। चारपाई से उठ कर दरवाजे के पास आए। देखा और पहचाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षण भर को आँखों से आँखें मिलीं। तिलोत्तमा की दृष्टि पृथ्वी से हट कर राजकुमार के पैरों से जा लगी ?

राजकुमार एक झटके से थोड़ा पीछे हटे। तिलोत्तमा की देह भी स्थिर हो गई। राजकुमार बोले, 'वीरेन्द्रसिंह की बेटी ?'

तिलोत्तमा के हृदय में काँटा चुभा। यहाँ भी यही सम्बोधन ! जगतसिंह क्या उसका नाम भूल गए ?

दोनों ओर से सन्नाटा।

राजकुमार ने पूछा, 'यहाँ किसलिए ?'

कैसा अजीब प्रश्न है ! तिलोत्तमा का सिर चकराने लगा। कमरा, खाट, दिया, दीवारें सभी जैसे घूमने लगे। सहारे के लिए तिलोत्तमा ने दीवार से सिर टिका लिया।

राजकुमार उत्तर की प्रतीक्षा करते रहे। कौन उत्तर दे ? उत्तर मिलता न देख कर बोले, 'तुम्हें कष्ट हो रहा है, लौट जाओ। पिछली बातों को भूल जाओ।'

अचानक तिलोत्तमा पेड़ से छूटी लता की तरह जमीन पर गिर पड़ी।

| १४ |

भेंट

जगतसिंह ने झुक कर देखा कि तिलोत्तमा बेहोश है। अपने वस्त्र से वे हवा करने लगे। होश न आता देख, पहरेदार को बुलाया।

तिलोत्तमा का साथी पहरेदार पास आया। जगतसिंह ने कहा, 'एकाएक ये बेहोश हो गई हैं। इनके साथी को खबर दो।'

'मैं ही अकेला इनके साथ आया हूँ।'

'तो किसी दासी को खबर दो।'

पहरेदार चला। राजकुमार ने कहा, 'सुनो, किसी दूसरे से कहोगे तो बेकार शोर होगा। आज रात की खुशी छोड़ कर भला कौन इनकी मदद को आयेगा ?'

'हाँ, कारागार में कोई नहीं आ सकता। मैं भी नहीं ला सकता।'

'हाँ एक उपाय है। तुम किसी तरह नवाब की बेटी को खबर दे दो।'

पहरेदार जल्दी से चला गया।

राजकुमार तिलोत्तमा की दशा देख कर बुरी तरह व्यस्त हुए। अगर आयशा को खबर न मिल सके ! यदि आयशा भी कुछ न कर सके तो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे-धीरे तिलोत्तमा को कुछ-कुछ होश आया। उसी समय खुले द्वार के रास्ते पहरेदार के साथ दो औरतें आईं। एक परदे में थी। दूर से परदे वाली का ऊँचा शरीर, संगीतमय मधुर चाल और लावण्यमयी ग्रीवा-भंगी देख कर जगतसिंह समझ गए कि दासी के साथ खुद आयशा ही आई है।

दोनों के दरवाजे पर पहुँचने पर रक्षक ने पहरेदार से पूछा, 'क्या इन्हें भी जाने दूँ ?'

'यह तुम समझो, मैं नहीं जानता।'

'अच्छा।' कह कर रक्षक ने दोनों औरतों को रोक दिया।

तब आयशा ने बुरका उलट दिया। बोली, 'पहरेदार ! हमें जाने दो।'

रक्षक आयशा को पहचानता न था। तब दासी ने धीरे से उससे बताया। झट-पट झुक कर रक्षक ने सलाम किया और बोला, 'कसूर माफ हो, आप के लिए कोई रोक नहीं।'

आयशा कमरे में गई। जाते ही पूछा, 'राजकुमार ! कहिए क्या हाल हैं ?

राजकुमार ने कोई जवाब न देकर उँगली से जमीन पर पड़ी तिलोत्तमा की ओर इशारा किया।

आयशा ने पूछा, 'ये कौन हैं ?'

संकोच से युवराज ने कहा, 'वीरेन्द्रसिंह की बेटी।'

झपट कर आयशा ने तिलोत्तमा को गोद में उठा लिया। दासी के हाथों में गुलाबपाश था। आयशा ने तिलोत्तमा के चेहरे पर गुलाबजल छिड़का। दासी हवा करने लगी। थोड़ी देर में तिलोत्तमा उठ बैठी।

चारो ओर देखते ही तिलोत्तमा को सब याद आ गया। उठ कर कमरे से भाग जाना चाहा उसने। पर शरीर में इतनी शक्ति न थी। आयशा ने उसका हाथ पकड़ कर कहा, 'बहन, घबराओ मत। तुम बहुत कमजोर हो। मेरे यहाँ चल कर आराम करो। फिर जहाँ जाना चाहोगी भिजवा दूँगी।'

तिलोत्तमा बोली नहीं। आयशा ने फिर कहा, 'मुझ पर विश्वास करो। मैं तुम्हारे शत्रु की बेटी जरूर हूँ, पर बुरी नहीं हूँ। शक छोड़ो। सबेरा होने के पहले ही, जहाँ जाना चाहोगी भिजवा दूँगी।'

तिलोत्तमा के भाव से लगा जैसे वह तैयार हो।

आयशा ने कहा, 'तुम तो चल न सकोगी। इस दासी का सहारा ले कर चलो।'

दासी का कंधा पकड़ कर तिलोत्तमा धीरे-धीरे चली। आयशा भी चलने को हुई। उसने राजकुमार की ओर देखा। लगा, जैसे राजकुमार कुछ कहना चाहते हों। तब आयशा ने दासी से कहा, 'इन्हें तुम मेरे कमरे में पलंग पर लिटा कर फिर मेरे पास आ जाना।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासी के साथ तिलोत्तमा चली गई।

जगतसिंह ने मन ही मन में कहा, 'मेरी तुम्हारी यही आखिरी भेंट है।'

पहरेदार भी चला गया।

| १५ |

साफ बातें

आयशा खाट पर बैठ गई। बैठने को और कुछ वहाँ न था। जगतसिंह खड़े ही रहे।

आयशा बोली, 'राजकुमार, लगता है आप को कुछ कहना है ? मेरे लायक कोई काम हो तो बिना संकोच कहिए। आप की सेवा करके मुझे खुशी होगी।'

राजकुमार बोले, 'नवाबजादी, मुझे किसी खास बात की जरूरत नहीं है। मेरी जो हालत है, उससे आप से अब फिर मुलाकात होने की आशा नहीं है। लगता है यही आखिरी भेंट है। आप का मुझ पर जो ऋण हैं उसे मैं बातों से क्या चुकाऊँ ! ऐसा भी नहीं लगता कि कभी कोई काम करके चुका सकूँगा। लेकिन यही भीख माँगता हूँ कि यदि कभी अवसर आ जाय तो मुझे याद करने में संकोच न कीजिएगा।'

जगतसिंह की करुण आवाज से आयशा को दुख हुआ। बोली, 'आप इतने हताश क्यों हैं ? आज का अमंगल कल नहीं रहेगा।'

'मैं हताश नहीं हूँ। लेकिन अब मैं झूठी आशा भी नहीं बाँध सकता। अब यह जीवन मैं नहीं चाहता। यह कारागार छोड़ने को भी जी नहीं चाहता। मेरे मन की कुल स्थिति भी आप को नहीं मालूम। मैं बता भी नहीं सकता।'

आयशा ब्याकुल हुई। स्नेह से उसने राजकुमार का हाथ पकड़ा फिर फौरन छोड़ भी दिया। ऊपर आँखें उठा कर बोली, 'कुमार, तुम्हारे दिल में इतना दुख क्यों है ? मुझे दूसरी न समझना। यदि बुरा न मानो तो कहूँ कि वीरेन्द्रसिंह की बेटी क्या·····'

'उस बात के अब क्या माने हैं ? वह एक सपना था, टूट चुका है।'

फिर दोनों चुप रहे।

अचानक ही राजकुमार काँप उठे। उनके हाथों पर गर्म आँसू की बूँदें गिरीं। राजकुमार ने चौंक कर देखा, आयशा रो रही थी।

'आयशा ! तुम रो रही हो ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'युवराज ! मैंने सोचा न था कि आज तुमसे इस तरह बिदा होऊँगी। मैं बहुत कुछ सह सकती हूँ। लेकिन कैदखाने में तुम्हें अकेला यह मानसिक पीड़ा भुगतने के लिए छोड़ कर जाते मुझसे नहीं बनता। जगतसिंह, तुम मेरे साथ बाहर चलो। अस्तबल से तुम्हें घोड़ा दूँगी। इसी रात में तुम अपने शिविर में चले जाओ।'

उस समय यदि ईष्ट देवी भवानी भी साक्षात प्रकट हो कर वरदान देतीं तो भी जगतसिंह को इतना ताज्जुब न होता। एकाएक राजकुमार कुछ कह न सके। आयशा ने फिर कहा, 'राजकुमार, आओ मेरे साथ।'

'आयशा ! क्या तुम मुझे कारागार से बाहर भेज सकोगी ?'

'अभी, इसी समय।'

'अपने पिता को जानती हो तो ?'

'इसकी फिक्र मत करो। तुम जब अपने शिविर में पहुँच जाओगे तब मैं उन्हें सब बता दूँगी।'

'पहरेदार जाने देंगे ?'

अपने गले का रत्नहार तोड़ कर, दिखा कर आयशा ने कहा, 'इस इनाम की लालच में यमदूत भी रास्ता छोड़ देंगे।'

'बात खुलने पर तुम्हारे पिता तुम्हें सजा देंगे।'

'देखा जायगा।'

'नहीं, आयशा, मैं नहीं जाऊँगा।'

आयशा का चेहरा उतर गया। नाराज हो कर पूछा, 'क्यों ?'

'तुमने मेरी जान बचाई है। मैं ऐसा कुछ न करूँगा कि तुम्हें सजा मिले।'

'तो तुम सचमुच न जाओगे ?'

'नहीं, तुम अकेली ही जाओ।'

आयशा फिर रोने लगी।

राजकुमार बोले, 'आयशा, रो क्यों रही हो ?'

आयशा चुप रही। राजकुमार बोले, 'आयशा ! मेरी बात मानो। रोने का कारण बता सको तो बताओ। मैं जान दे कर भी रोने का कारण दूर करूँगा। मेरा कारागार में रहना तुम्हारे रोने का कारण नहीं है। मुझ जैसे जाने कितने कैदी यहाँ यातना भोग चुके हैं।'

आयशा ने आँचल से आँसू पोंछे। फिर बोली, 'राजकुमार ! अब मैं नहीं रोऊँगी।'

तभी कबरे की दीवार पर किसी की छाया पड़ी। किसी ने उसे देखा नहीं। वह आदमी आ कर इन दोनों के पास खड़ा हो गया। फिर भी कोई जान न पाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब आने वाले ने क्रोध से काँपती तेज आवाज में कहा, 'नवाबजादी ! यह खूब रही !'

दोनों ने एक साथ देखा, ओसमान खाँ है ।

वापस गए पहरेदार से सब बातें सुन कर ओसमान खाँ आयशा को देखने आये थे । ओसमान को देख कर राजकुमार आयशा के लिए चिंतित हुए । ओसमान का क्रोध देख कर समझा कि ओसमान और कतलू खाँ द्वारा अब आयशा का अपमान अवश्य होगा । लेकिन ओसमान की आवाज सुन कर आयशा उसका मतलब समझ गई । क्षण भर को वह लाल हो उठी । अधीरता का चिन्ह न प्रकट कर के संयत स्वर में पूछा, 'क्या खूब रही ओसमान ?'

ओसमान वैसे ही बोला, 'इस आधी रात को कैदी के साथ आपका अकेले रहना क्या मतलब रखता है ? रात में कारागार में कायदे के खिलाफ बन्दी से मिलने आना, क्या माने रखता है ?'

यह तिरस्कार आयशा के लिए असह्य हो उठा । ओसमान की ओर देख कर दर्प से कहा, 'आधी रात को कैदखाने में आकर एक कैदी से बातें करने की मेरी इच्छा थी । मेरे काम की अच्छाई-बुराई से तुम्हें मतलब ?'

'मतलब है या नहीं, यह कल सबेरे नवाब साहब के मुँह से सुनना ।'

'नवाब साहब को मुझे जवाब देना पड़ेगा, तुम क्यों परेशान होते हो ?'

'अगर मैं ही जवाब माँगूँ ?'

आयशा तमक कर खड़ी हो गई । एकटक ओसमान को देखती रही । क्रोध से उसकी बड़ी-बड़ी आँखें और भी बड़ी हो गईं । चेहरा तमतमा कर और खिल उठा ! भौंरे सी काली अलकों के साथ माथा एक ओर को हिला । बहुत ही साफ शब्दों में आयशा ने कहा, 'ओसमान, तुम जवाब चाहते हो तो तुम्हारे लिए मेरा यही जवाब है कि यह कैदी मेरी जान का मालिक है, मेरा आशिक है ।'

उस समय अगर कमरे पर बिजली भी गिरती तो एक राजपूत और एक पठान इतना न चौंकते । राजकुमार के मन में जैसे घोर अंधकार में किसी ने तेज रोशनी कर दी । वे तत्काल समझ गये कि आयशा क्यों रोई थी । ओसमान को भी पहले से थोड़ा-थोड़ा संदेह था, इसीलिए उसने आयशा का इस समय इतना तिरस्कार किया था । लेकिन इतनी बड़ी बात आयशा उसके मुँह पर इतना खोल कर कह देगी, इसकी उसने सपने में भी आशा न की थी । ओसमान ने कुछ भी जवाब न दिया ।

आयशा फिर बोली, 'ओसमान, फिर से सुन लो कि यह कैदी मेरा शौहर है । अब इस जिन्दगी में कोई दूसरा मेरे दिल में जगह नहीं पा सकता । अब कल अगर वध-स्थल इनके खून से रंग जाय· · · ' कहते-कहते आयशा काँपने लगी, 'तो भी देखना कि दिल में यही बसा रहेगा, इसी को मैं हमेशा देखूँगी । इस पल के बाद अगर फिर कभी भेंट न हो या कल अगर छुटकारा पाकर ये सैकड़ों औरतों से घिर कर आयशा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूल जायँ तो भी इनके मोहब्बत की याद में मैं जिन्दगी काट दूँगी। और भी सुन लो कि अभी तक अकेले में मैं इनसे क्या बातें कर रही थी ? मैं कह रही थी कि बातों से और दौलत से मैं पहरेदारों को बश में कर लूँगी, अस्तबल से घोड़ा दूँगी ताकि कैदी भाग जाए। लेकिन यह कैदी ऐसा है कि भागने को तैयार ही नहीं होता। नहीं तो तुम्हें अब तक इनकी छाया भी न मिलती।'

आयशा ने आँसू पोंछ लिए। फिर थोड़ा चुप लगा कर, थोड़ी देर बाद स्वर को संयत कर के कहा, 'ओसमान, ये बातें कह कर मैंने तुम्हें तकलीफ दी है, माफ करना। हम तुम एक दूसरे को स्नेह करते हैं, हमारा झगड़ना बुरा है। लेकिन तुमने आज आयशा पर अविश्वास दिखाया। लेकिन आयशा और चाहे जो कुछ हो पर अविश्वासिनी नहीं है। जो कुछ करती है उसे छिपाती नहीं। इस समय तो तुम्हारे सामने कहा है। कल जरूरत होगी तो नवाब साहब के सामने भी कहूँगी।'

फिर आयशा ने जगतसिंह की ओर मुड़ कर कहा, 'राजकुमार तुम भी माफ करना। अगर आज ओसमान मुझे इतनी दिमागी तकलीफ न देते तो आग से तपते इस दिल का यह रहस्य कभी तुम्हारे सामने भी प्रकट न होता। कभी शायद किसी को कानोंकान खबर भी न होती।'

राजकुमार चुप खड़े रहे। उनका अन्तःकरण संताप से दहक उठा।

ओसमान कुछ न बोला। आयशा ने फिर कहा, 'ओसमान फिर कहती हूँ कि तुम्हें तकलीफ हुई हो तो माफ करना। पहले की तरह ही मैं तुम्हारी बहन हूँ। बहन के नाते तुम भी मेरे लिए मुहब्बत कम मत करना। किस्मत की मार से इस समुद्र में कूद पड़ी हूँ। भाई के प्रेम से वंचित करके मुझे गहरे पानी में मत डुबाना।'

सुन्दरी आयशा इतना कह कर, दासी के आने का इन्तजार न करके अकेली ही बाहर निकल गई।

ओसमान भी कुछ देर काठ मारा सा खड़ा रह कर वापस चला गया।

| १६ |

दासी का प्रेम

उस रात कतलू खाँ के विलास-गृह में नाच हो रहा था। लेकिन वहाँ न तो कोई नाचने वाली थी न कोई दरबारी। जन्मदिन के उत्सव पर मुगल-सम्राट जिस तरह सभी के साथ मिल कर खुशियाँ मनाते थे, वैसा कतलू खाँ का नियम न था। कतलू खाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभाव से अकेले और आत्मसुख-रत तथा इन्द्रिय-सुख का इच्छुक था। रात के उत्सव के स्थान पर वह आज अपने हरम की औरतों से घिरे रह कर उन्मत्त हो रहा था। खोजा पहरेदारों के अलावा कोई पुरुष वहाँ नहीं जा सकता था। औरतों में ही कोई नाच रही थी, कोई गा रही थी, कोई बजा रही थी। बाकी सब कतलू खाँ को घेर कर आमोद-प्रमोद में व्यस्त थीं।

आमोद-प्रमोद की चीजें वहाँ कम न थीं। सुगंधित जल से तर कमरा सुवासित था। कीमती शमादानों से कमरा जगमगा रहा था। फूलों से कमरा भरा था। खूब खुशबू ! फूलों की खुशबू ! सुगंधित जल की खुशबू ! दीपों की खुशबू ! औरतों की खुशबू !

कोई कतलू खाँ की बगल में बैठी सुरा ढाल रही थी। किसी की लावण्यमयी देह को कतलू खाँ अपनी आँखों से पी रहा था।···दूर खड़ी विमला भी अपनी अनोखी व धारवती कटाक्ष से कतलू खाँ का कलेजा छलनी कर रही थी।

एक क्षण बाद। विमला कतलू खाँ की बगल में बैठी सुरा ढाल रही थी। अजीब तरह से हँस रही थी। करलू खाँ भी कामुक निगाहों से देख कर तड़प रहा था। कतलू खाँ के शरीर में जैसे आग लग गई। यह रमणी ! यह शराब ! यह कटाक्ष !

अंधे कतलू खाँ से कौन कहे—इस कटाक्ष की छुरी का वार तो झेल जाओगे, पर एक छुरी और है विमला के पास। उसका वार न झेल सकोगे।

कतलू खाँ उन्मत्त हो उठा। विमला को पुकार कर कहा, 'मेरी जान ! तुम कहाँ हो ?'

विमला ने कतलू खाँ के गले में बाँहें डाल कर उससे चिपटते हुए कहा, 'यहाँ रही यह गुलाम !'

विमला के एक हाथ में छुरी चमकी।

उसी समय बेतरह चीख कर कतलू खाँ ने विमला को झटके से दूर फेंक दिया और खुद भी बेदम हो कर लड़खड़ा गया। विमला ने उसकी छाती में मूठ तक छुरी भोंक दी थी।

कतलू खाँ चिल्ला पड़ा, 'शैतान की औलाद !'

'शैतान की औलाद नहीं। वीरेन्द्र सिंह की बेवा।' कहती हुई विमला भी उस कमरे से भाग गई।

धीरे-धीरे कतलू खाँ की बोलने की शक्ति जाती रही, फिर भी वह चिल्लाने की कोशिश कर रहा था। सभी औरतें हाय-तोबा करने लगीं। विमला चिल्ला कर भागी। एक कमरे में देखा, पहरेदार और खोजे थे। शोर सुन कर विमला की डरी शक्ल देख कर एक ने पूछा, 'क्या हुआ ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सब चौपट हो गया। जल्दी जाओ। कमरे में मुगल घुस आये हैं। शायद नवाब साहब का खून कर डाला है ?'

पहरेदार और खोजे उसी तरफ दौड़े।

विमला अन्तःपुर की ओर भागी। द्वार पर पहरेदार गहरी नींद में था। विमला बेरोक भीतर चली गई।

बाहर फाटक पर पहरेदार जाग रहे थे। एक ने पूछा, 'कौन हो तुम ? कहाँ जाती हो ?'

उधर अन्तःपुर में भयानक कोलाहल मचा था। सभी उसी तरफ दौड़ते जा रहे थे। विमला ने डाँट कर कहा, 'बैठे-बैठे क्या देख रहे हो ? यह शोर नहीं सुनते हो ?'

'यह कैसा शोर है ?'

'भीतर सत्यानाश हो गया। नवाब साहब का कत्ल हो गया है।'

पहरेवाले फाटक छोड़ कर उधर ही भागे। विमला बेखटके बाहर चली गई।

फाटक से कुछ आगे जाने पर विमला ने देखा कि एक आदमी एक पेड़ के नीचे खड़ा है। विमला तत्काल पहचान गई। वे अभिराम स्वामी थे। पास जाते ही विमला से पूछा, 'मैं बहुत परेशान हो रहा था, किले में यह शोर क्यों है ?'

'मैं ही अपने वैधव्य-दुख का बदला चुका कर आ रही हूँ। यहाँ ज्यादा मत रुकिये। जल्दी आश्रम में चलिए। बाद में सब हाल बताऊँगी। तिलोत्तमा पहुँची या नहीं ?'

'तिलोत्तमा आगे-आगे आसमानी के साथ जा रही है। वहीं भेंट होगी।'

दोनों जल्दी-जल्दी आगे बढ़े। कुटी में पहुँच कर देखा कि आयशा की कृपा से आसमानी के साथ तिलोत्तमा वहाँ पहुँच चुकी थी। तिलोत्तमा अभिराम स्वामी के पैरों में गिर कर रोने लगी। उसे शान्त करते हुए स्वामी जी बोले, 'प्रभू की कृपा से तुम दोनों को मुक्ति मिल गई। अब इस क्षेत्र में एक पल भी ठहरना उचित नहीं है। यवनों को पता लगे गा तो वे हमारी जान लेकर ही नवाब की मृत्यु का बदला लेंगे।'

| १७ |

अंतिम समय

विमला के भागने के थोड़ी ही देर बाद घबराहट में एक कर्मचारी ने कारागार में आकर जगतसिंह से कहा, 'युवराज ! नवाब साहब का अन्तिम समय है। उन्होंने आपको याद किया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौंक कर युवराज ने पूछा, 'यह क्या ?'

'अन्त:पुर में शत्रु घुस आए थे। नवाब साहब का कत्ल करके भाग गये। अभी थोड़ी जान बाकी है। जल्दी चलिए, नहीं तो मुलाकात न होगी।'

'तो इस समय मुझसे क्या जरूरत है ?'

'मैं यह नहीं जानता।'

युवराज वहाँ गये। कतलू खाँ की जान खत्म होने वाली थी। उसके चारो ओर, उसे घेर कर ओसमान, आयशा, नाबालिग लड़के, बेगम, उप-पत्नियाँ, दास-दासियाँ खड़े थे। कोई-कोई तो जोर-जोर से रो भी रहे थे। बच्चे कुछ समझे बिना ही चीख रहे थे। आयशा की आँखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। जगतसिंह ने देखा— आयशा स्थिर, गंभीर और अचल है।

युवराज के वहाँ पहुँचते ही ख्वाजा ईसा उनका हाथ पकड़ कर उन्हें खींचता हुआ मरनासन्न कतलू खाँ के पास ले गया। उसने जोर से कहा, 'जगतसिंह युवराज आये हैं।'

कतलू खाँ ने बहुत कोशिश करके क्षीण आवाज में कहा, 'मैं दुश्मन हूँ, मर रहा हूँ। अब दुश्मनी छोड़ो।'

जगतसिंह ने कहा, 'इस समय छोड़ दिया।'

'तो अनुरोध स्वीकार है ?'

'कैसा अनुरोध ?'

'सब लड़के हैं, लड़ाई है, बड़ी प्यास.....'

आयशा ने नवाब के मुँह में शरबत डाला।

'लड़ाई नहीं, सुलह.....'

कतलू खाँ आगे नहीं बोल सका। जगतसिंह भी चुप रहे।

कतलू खाँ ने कातर निगाहों से जगतसिंह की ओर ताका। उत्तर न पाकर रुक-रुक कर बोला, 'तो नहीं मानते ?'

'पठान लोग दिल्ली के बादशाह को स्वामी मान लें तो मैं सुलह करा दूँ।'

'उड़ीसा.....'

'आपके बेटे के हाथ से उड़ीसा न जायेगा।'

मृत्यु के अति निकट कतलू खाँ का चेहरा चमक उठा।

जगतसिंह जाने को हुए। आयशा ने नवाब से कुछ कहा। कतलू खाँ ने युवराज की ओर देखा, कहा, 'आप···छोड़···दिए···गए···खुदा···आप से और···बातें···हैं।'

राजकुमार रुक गये।

कतलू खाँ ने कहा, 'कान···'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ कर राजकुमार ने झुक कर नवाब के मुँह के पास कान लगाया। कतलू खाँ ने कहा, 'वीर···वीरेन्द्रसिंह···प्यास···।'

आयशा ने फिर शरबत पिलाया।

'वीरेन्द्रसिंह···की बेटी···'

राजकुमार को जैसे बिच्छू ने डंक मारा हो। चौंक कर सीधे खड़े हुए, थोड़ा पीछे हटे। नवाब बोले, 'बिना बाप की··· मैं पापी···प्यास।'

आयशा बार-बार उसका गला तर करने लगी। लेकिन बोल अब कठिनाई से भी न निकले। साँस तोड़ते हुए नवाब ने कहा, 'वह सती है···तुम देखना···'

'क्या ?' युवराज गरज उठे।

'मेरी इस बेटी की तरह ही पवित्र है···तुम···आह···बड़ी प्यास···आयशा··· मैं चला···आयशा···'

फिर बोल बन्द हो गए। इतनी बातें करने में ही शक्ति समाप्त हो गई। फिर नवाब का निर्जीव शरीर जमीन पर लुढ़क गया। बेटी का नाम लेकर बाप ने साँस तोड़ दी।

| १८ |

प्रतियोगिता

पठानों की कैद से मुक्त हो कर जगतसिंह अपने पिता के पास गए। फिर जैसा वचन दे आये थे, उसी के अनुसार पठानों व मुगलों में सुलह करा दी। दिल्ली के बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली पठानों ने। लेकिन उड़ीसा के अधिकारी उन्हें मुगल-सम्राट ने बनाए रखा।

सुलह करके दोनों पक्ष कुछ दिनों तक अपनी-अपनी जगह शांतिपूर्वक रहे। नई दोस्ती को स्थायी बनाने के लिए कतलू खाँ के मंत्री ख्वाजा ईसा कतलू खाँ की लड़की को लेकर ओसमान खाँ के साथ महाराजा मानसिंह के शिविर में गये। डेढ़ सौ हाथी और दूसरी बहुत-सी बहुमूल्य चीजें उपहार-स्वरूप दे कर महाराजा को प्रसन्न किया। राजा ने भी उनका बहुत तरह से सम्मान करके सबको खिलत देकर प्रेमपूर्वक विदा किया।

सुलह की शर्तें पूरी करने तथा शिविर समेटने में स्वाभाविक रूप से कुछ दिन लग गये। फिर राजपूत सेना के पटना लौटते समय एक दिन पिछले पहर जगतसिंह पठानों से विदा लेने उनके किले में गये। कारागार में उस दिन आयशा के सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने के बाद से फिर किसी भी दिन ओसमान ने युवराज के प्रति सौहार्द्र प्रकट नहीं किया। आज भी जगतसिंह साधारण बातचीत करके साधारण शिष्टाचार दिखा कर विदा हुए।

ओसमान से ऊपरी मन से विदा ले कर जगतसिंह ख्वाजा ईसा से विदा लेने गये। फिर वहाँ से आयशा के पास गये। अन्तःपुर के एक सेवक से आयशा के पास खबर भेजी। उससे कहलाया, 'कहना कि नवाब साहब की मौत के बाद फिर नवाब-जादी से भेंट नहीं हो सकी और अब मैं पटना वापस जा रहा हूँ। फिर कभी भेंट न हो सकेगी, ऐसी आशा कम ही है। इसलिए उन्हें सलाम करके जाना चाहता हूँ।'

उस सेवक ने थोड़ी देर में लौट कर कहा, 'नवाबजादी का कहना है कि अफसोस है कि युवराज से भेंट न कर सकेंगी। युवराज इसके लिए माफ करें।'

राजकुमार दुखी हो कर शिविर में लौट आये। आते समय किले के दरवाजे पर देखा कि ओसमान खाँ इन्तजार कर रहे हैं।

ओसमान को देख कर जगतसिंह ने फिर एक बार नमस्कार किया और आगे बढ़ गये। ओसमान भी पीछे-पीछे हो लिए। उन्हें पीछे आता देख कर राजकुमार ने कहा, 'सेनापतिजी ! अगर कोइ सेवा हो तो कहिये। मैं सौभाग्य मानूँगा।'

ओसमान बोले, 'युवराज ! आपसे कुछ कहना है। लेकिन बात ऐसी है कि सब के सामने नहीं कह सकूँगा। मेरे साथ अकेले आइये।'

राजकुमार निःसंकोच भाव से घोड़े पर सवार हो ओसमान के साथ एक ओर को चल पड़े। कुछ दूर जाकर दोनों घोड़े से उतरे और एक शाल वन में जाकर बैठे। वन के बीच में एक खण्डहर था। पुरानी हवेली का अवशेष। घोड़ों को पेड़ों से बाँधकर ओसमान राजकुमार को उस खण्डहर में लिवा ले गया। वहाँ चतुर्दिक सन्नाटा था। बीच में बड़ा सा टूटा आँगन था। उसमें एक ओर एक ताजी खुदी कब्र थी। लेकिन वहाँ कोई शव न था। दूसरी ओर एक चिता सजाई गई थी पर वहाँ भी कोई लाश न थी।

आँगन में आ कर राजकुमार ने पूछा, 'सेनापति ! यह सब क्या है ?,

'यह सब मेरे ही आदेश से हुआ है। अगर आज मैं मर जाऊँ तो आप मुझे इसी कब्र में दफन कर दीजिएगा, और अगर आपकी मृत्यु होगी तो इस चिता पर ब्राह्मण द्वारा आप का दाह करा दूँगा। किसी को मालूम भी न होगा।'

आश्चर्य से भरे युवराज ने पूछा, 'मतलब ?'

'युवराज ! हम पठान हैं। दिल में जब आग लगी होती है तो हम उचित अनुचित का ध्यान नहीं रखते। इस धरती पर आयशा के दो प्रेमी एक साथ नहीं रह सकते। आज एक को यहीं रह जाना पड़ेगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब कुल बातें समझ कर राजकुमार बहुत क्षुब्ध हुए। पूछा, 'आपका मतलब क्या है ?'

'मतलब साफ है। हथियार उठाओ और लड़ो। ताकत हो तो मुझे मार कर अपना रास्ता साफ कर लो। नहीं तो मेरे हाथों मर कर मेरा रास्ता साफ करो।' कह कर ओसमान ने तलवार उठा कर युवराज पर वार किया। विवश युवराज ने भी म्यान से तत्काल तलवार खींच कर वार रोका। ओसमान राजकुमार की जान लेने पर तुला था। लेकिन राजकुमार केवल अपना बचाव करते रहे। शस्त्र चलाने में दोनों ही प्रवीण थे। देर तक लड़ाई होने पर भी कोई किसी को परास्त न कर सका। ओसमान के आक्रमण से युवराज घायल हो गये। उनके शरीर से कई जगह खून बहने लगा। लेकिन इतने पर भी उन्होंने ओसमान पर एक भी चोट न की, न ओसमान घायल ही हुआ। खून बहने से जगतसिंह को कमजोरी लगने लगी। इस तरह लड़ने में अपनी मृत्यु निश्चित समझ कर युवराज ने कहा, 'ओसमान, ठहर जाओ। मैं हार मानता हूँ।'

ओसमान बोला, 'मुझे मालूम न था कि राजपूत वीर मरने से डरते हैं। मुकाबला करो। मैं तुम्हें माफ नहीं करूँगा, मारूँगा। तुम जीते रहोगे तो आयशा कभी मेरी नहीं हो सकेगी।'

'लेकिन मैं आयशा को नहीं चाहता।'

'पर आयशा तो तुम्हें चाहती है।'

जगतसिंह ने तलवार फेंक दी। बोले, 'मैं नहीं लड़ूँगा। तुमने दुर्दिन में मेरा उपकार किया हैं। तुमसे नहीं लड़ सकता।'

ओसमान ने तलवार रोक दी और युवराज को एक लात मार कर कहा, 'जो वीर लड़ने से भागता है, उससे यों लड़ाता हूँ।'

इस अपमान को राजकुमार सह न सके। धैर्य ने भी उसका साथ छोड़ दिया। उन्होंने लपक कर अपनी तलवार उठाई और एक छलाँग लगा कर ओसमान पर हमला किया। उस प्रहार को ओसमान झेल न सका। युवराज के शक्तिशाली धक्के से ओसमान लड़खड़ा कर गिर पड़ा। उसकी छाती पर सवार हो कर युवराज ने तलवार छीन ली और उसके गले पर अपनी तलवार रख कर कहा, 'अब बोलो, लड़ने का हौसला पूरा हुआ या नहीं ?'

'जान रहते नहीं होगा।'

'जान तो अभी खत्म कर सकता हूँ।'

'कर दो, नहीं तो तुम्हारा जानी दुश्मन जीता रहेगा।'

'जीता रहे तो भी मैं नहीं डरता। मैं अभी तुम्हारी जान ले सकता हूँ। पर तुमने एक बार मेरी जान बचाई थी, इसलिए छोड़े देता हूँ'

फिर ओसमान के सभी अस्त्र छीन कर कहा, 'अब अपने घर जाओ। यवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर तुमने राजपूत को लात मारी थी, इसलिए तुम्हारी यह दशा की। नहीं तो उपकार करने वाले पर मैं हाथ नहीं उठाता।'

ओसमान सिर झुकाए घोड़े पर चढ़कर चुपचाप किले की ओर चला गया।

युवराज ने पानी में कपड़ा भिगो कर अपने घाव पोंछे। फिर वे घोड़े पर सवार हुए। सवार होने के बाद देखा कि घोड़े की लगाम से एक पत्र बँधा है। पत्र खोल कर देखा, वह लम्बे बालों से बँधा था और उसके ऊपर लिखा था—'इस पत्र को दो दिनों तक मत खोलिएगा।'

थोड़ा सोच कर युवराज ने वही करना निश्चय किया। पत्र कवच में रख कर, घोड़ा दौड़ाते शिविर की ओर चले गये।

फिर दूसरे दिन राजकुमार को आयशा का एक पत्र मिला।

| १९ |

आयशा का पत्र

आयशा कलम लेकर पत्र लिखने बैठी। उसका चेहरा अत्यन्त गम्भीर था। जगतसिंह को पत्र लिख रही थी। पहले लिखा—'प्राण प्यारे' फिर काट कर लिखा—'राजकुमार।' यह काटते-लिखते आयशा के आँसू बह चले। आयशा ने वह कागज फाड़ डाला। दूसरे कागज पर लिखना शुरू किया। पर दो तीन शब्द लिखते-लिखते उसके आँसुओं से कागज भींग गया। वह कागज भी फाड़ डाला। फिर संयत होकर पत्र पूरा किया। किसी तरह पत्र बन्द करके दूत को दिया। पत्र ले कर दूत जगतसिंह के शिविर की ओर चला गया। आयशा पलंग पर लेट कर रोने लगी।

पत्र पाकर जगतसिंह ने पढ़ा, लिखा था—

'राजकुमार,

मै तुमसे सिर्फ इसलिए नहीं मिली कि मुझे अपने आप पर अब विश्वास नहीं रहा। यह मत सोचना कि आयशा उतावली है। ओसमान ने अपने दिल में भयानक आग लगा ली है। तुमसे मिलती तो उसे जरूर क्लेश होता, इसीलिए नहीं मिली। न मिलने पर तुम दुखी होगे—ऐसा भरोसा भी न था। मैंने अपना सुख-दुख सब खुदा पर छोड़ दिया है। तुम्हें अपने सामने विदा करती तो, उस क्लेश को सह लेती। तुमसे भेंट नहीं हुई, इस क्लेश को भी दिल पर पत्थर रख कर सह रही हूँ।

मैं एक भीख के लिए यह पत्र लिखा रही हूँ कि यदि तुमने सुना हो कि मैं तुमसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रेम करती हूँ तो यह भूल जाना। सोचा था कि इस जिन्दगी में कभी यह बात खुलने न दूँगी, लेकिन खुदा की इच्छा कि बात खुल गई। खैर अब भूल जाना।

मैं नहीं चाहती कि तुम मुझसे प्रेम करो। मुझे जो कुछ देना था वह मैं दे चुकी हूँ। तुमसे मैं बदला नहीं चाहती। मेरा स्नेह इतना गहरा है कि तुम्हारा स्नेह पाये बिना भी मैं सुखी हूँ। लेकिन इस बात के अब मतलब क्या है ?

तुम्हें मैंने दुखी देखा था। कभी सुखी होना तो आयशा को याद करना और खबर देना। न चाहना तो न देना। लेकिन अगर कभी क्लेश पाओ तो क्या आयशा को याद करोगे ?

तुम्हें मैं यदि भविष्य में पत्र लिखूँ तो लोग निन्दा करेंगे। लेकिन मैं तो निर्दोष हूँ। इसलिए मुझसे किसी तरह के नुकसान की कल्पना मत करना, जब इच्छा हो तब पत्र लिखना।

तुम इस देश को छोड़ कर जा रहे हो ? पर ये पठान शान्त नहीं है। इसलिए संभव है तुम फिर देश में आओ। लेकिन अब मुझसे भेंट न होगी। दिल में बार-बार सोचकर यह निश्चय किया है। स्त्री के हृदय से बहुत हिम्मत की आशा नहीं करनी चाहिए।

तुमसे मिलने की एक बार और इच्छा है। अगर तुम इस देश में विवाह करना तो खबर देना। मैं तब हाजिर रह कर अपने सामने तुम्हारा ब्याह कराऊँगी। जो तुम्हारी रानी बनेगी, उसके लिए मैंने कुछ गहने इकट्ठा कर रखे हैं। समय आया तो उन्हें अपने हाथों पहनाऊँगी।

एक बात और है। जब तुम्हें आयशा की मौत की खबर मिले तो एक बार इधर जरूर आना, तुम्हारे लिए संदूक में जो कुछ रख छोड़ा है, वह ले लेना, प्रार्थना है।

और क्या लिखूँ। बहुत सी बातें लिखने का मन होता है। लेकिन इसकी जरूरत नहीं। भगवान तुम्हें सुखी रखें। आयशा को याद करके कभी दुखी न होना।'

पत्र पढ़ने के बाद, पत्र को हाथ में ले कर युवराज टहलने लगे। फिर अचानक, झपट कर कागज ले कर एक पत्र लिखा और दूत को दे दिया।

पत्र में लिखा था—

'आयशा,

तुम नारी-रत्न हो। आदमी को मानसिक कष्ट देना ही विधाता का काम है। मैं तुम्हें उचित जवाब नहीं दे सका। लेकिन पत्र से मैं बहुत दुखी हुआ हूँ। इस पत्र का सही उत्तर मैं अभी नहीं दे सका। लेकिन मुझे भूलना मत। अगर जीवित रहूँगा तो एक वर्ष के बाद इसका उत्तर दूँगा।'

यही उत्तर ले कर दूत आयशा के पास लौट आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुझता दीपक

आयशा से विदा होकर जब से आसमानी के साथ तिलोत्तमा आई थी, तब से किसी को भी उसकी खबर न थी। तिलोत्तमा, विमला, आसमानी और अभिराम स्वामी, किसी का भी कोई पता नहीं। पठानों और मुगलों में सुलह हो जाने के बाद जब दोनों पक्षों को वीरेन्द्र सिंह के परिवार वालों के कष्टों का पूरा हाल मिला तो दोनों पक्ष इस बात के लिए तैयार हो गये कि वीरेन्द्रसिंह की बेटी को खोज कर के उसे ही गढ़ मन्दारन का अधिकार सौंप दिया जाय। इसलिए ओसमान खाँ, ख्वाजा ईसा और महाराजा मानसिंह आदि ने तिलोत्तमा का पता लगाने का अथक प्रयत्न किया। लेकिन इससे आगे वे कुछ भी पता न लगा सके कि आयशा के पास से तिलोत्तमा आसमानी के साथ गई थी। बाद में पूरी तरह निराश हो कर महाराजा मानसिंह ने अपने एक विश्वासपात्र अनुचर को गढ़-मन्दारन में बैठाया और आदेश दिया, 'तुम वहाँ रह कर स्वर्गीय जागीरदार वीरेन्द्रसिंह की बेटी का बराबर पता लगाते रहो और पता लगने पर उन्हें ही किले का अधिकार सौंप कर तुम वापस आ जाना। उसके लिए तुम्हें समुचित पुरस्कार और जागीर मिलेगी।'

यही निश्चय करके तथा यही व्यवस्था करके महाराजा मानसिंह पटना वापस जाने की तैयारी करने लगे।

मरते समय कतलू खाँ ने जो कुछ कहा था उसे सुन कर युवराज जगतसिंह के मन का भाव बदला या नहीं यह नहीं कहा जा सकता।

महाराजा मानसिंह के आदेश से उनकी सेना भी शिविर समेटने लगी। अगले दिन सवेरे सेना भी चली जायगी। चलने के एक दिन पहले जगतसिंह ने देखा कि अब घोड़े की लगाम से बँधा पत्र पढ़ने का समय आ गया है। उन्होंने पत्र को खोल कर पढ़ा। उसमें बस इतना ही लिखा था—'यदि तुम्हें धर्म का भय हो, ब्रह्मशाप का भय हो, तो यह पत्र पढ़ते ही यहाँ अकेले आ जाना—अहंब्रह्मणः।'

पत्र पढ़ कर राजकुमार का विस्मित होना स्वाभाविक था। एक बार सोचा, शायद किसी शत्रु की चालाकी हो। जाना उचित होगा या नहीं? एक निष्ठावान राजपूत के लिए ब्रह्मशाप वाले भय के सिवा और कोई दूसरा भय महत्वपूर्ण न था। इसलिए उन्होंने जाने का ही निश्चय किया। अतः जाने से पहले अपने अनुचरों से कहा कि अगर कूच करने के समय हम पहुँच न सकें तो सेना मेरी प्रतीक्षा न करके कार्यक्रम के अनुसार आगे बढ़े। हम वर्दमान या राजमहल में आ कर मिलेंगे।—यही बात कह कर जगतसिंह उसी शालवन की ओर चल पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी दिन चौथे पहर खण्डहर के दरवाजे पर पहुँच कर जगतसिंह ने एक पेड़ से घोड़े को बाँध दिया। फिर इधर-उधर देखा, पर कोई भी दिखाई न पड़ा। फिर वे सतर्कतापूर्वक खण्डहर के भीतर गये। देखा कि आँगन में पहले की तरह ही एक ओर एक कब्र खुदी है और एक ओर एक चिता सजी हुई है। चिता पर चढ़ कर एक ब्राह्मण देवता बैठे हुए हैं। वे बैठे मुँह झुकाए रो रहे हैं।

राजकुमार ने पूछा, 'महाराज, यहाँ आपने ही मुझे बुलाया है ?'

ब्राह्मण ने चेहरा ऊपर उठाया। पूछने पर राजकुमार जान सका कि वे ही अभिराम स्वामी हैं।

अभिराम स्वामी को देख कर जगतसिंह के मन में विस्मय, कौतूहल और प्रसन्नता के, तीनों भाव एक साथ जाग उठे। प्रणाम करके आदरपूर्वक पर व्यग्रता से पूछा, 'आप के दर्शन पाने के लिए मैंने कितना प्रयत्न किया है, अब कैसे कहूँ ? आप यहाँ यों क्यों बैठे हैं ?'

'अब मैं यहीं रहता हूँ।'

'तो मुझे आप ने किसलिए याद किया है ? आप इस तरह रो क्यों रहे हैं ?'

रोने का जो कारण है, वही कारण आपको बुलाने का भी है। तिलोत्तमा का अंतिम समय, मृत्युकाल आ गया है।'

सुन कर धीरे-धीरे, भीतर ही भीतर तिल-तिल करके राजपूत वीर टूटता हुआ जमीन पर बैठ गया। तिलोत्तना के संबंध में प्रारम्भ से अन्त तक की सभी घटनायें एक-एक करके याद आने लगीं। एक-एक घटना की स्मृति से हृदय में तेज छुरी चुभने लगी।—मंदिर में प्रथम-दर्शन, शैलेश्वर की प्रतिमा के सामने प्रतिज्ञा। कमरे में प्रथम भेंट के समय दोनों के उमड़े आँसू, उस कालरात्रि के दृश्य, तिलोत्तमा का मूर्छित चेहरा, यवनगृह में तिलोत्तमा को यातना, कारागार में निर्मम व्यवहार। फिर बनवास और अब यह मृत्यु की सूचना ' ये सभी बातें एक-एक करके राजकुमार के दिल पर तूफान की तरह उठ कर भयानक आघात करने लगीं। दिल में पहले से जलती आग अब प्रचण्ड ज्वाला की तरह जल उठी।

राजकुमार देर तक जड़ बने चुपचाप बैठे रहे।

अभिराम स्वामी ने कहा, 'जिस दिन विमला ने यवन नवाब की हत्या करके अपने वैधव्य का बदला लिया, उसी दिन से मैं अपनी बेटी और नतिनी को ले कर यवनों के अत्याचार के डर से जगह-जगह छिपता फिरा। तब से ही तिलोत्तमा बीमार है। वह क्यों बीमार हुई यह तुम्हें खूब अच्छी तरह मालूम है।'

जगतसिंह के दिल में जैसे कुछ खूब गहरे तक छिद गया।

स्वामी जी कहते गये, 'उस दिन से जगह-जगह सुरक्षित रख कर मैं उसकी तरह-तरह की चिकित्सा करता रहा। मैं खुद चिकित्सक हूँ और चिकित्सा-शास्त्र का मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अध्ययन भी किया है। मैं ऐसी बहुत-सी दवाइयाँ जानता हूँ जो दूसरे चिकित्सक नहीं जानते। लेकिन हृदय में गहरे छिपे रोग की चिकित्सा करना किसी भी चिकित्सक के लिए संभव नहीं है। अब इसी स्थान को निर्जन और सुरक्षित जान कर हमलोग पाँच दिनों से इस खण्डहर के ही एक कोने में छिप कर रह रहे हैं। दैवयोग से उस दिन तुम्हें यहाँ आया देख कर तुम्हारे घोड़े की लगाम में पत्र बाँध दिया था। पहले से ही निश्चय कर रखा था कि यदि अपने उद्योग से तिलोत्तमा को बचा न सकूँगा तो उसका अंतिम समय निकट आने पर उसकी एक बार तुमसे भेंट करा कर उसके धधकते अन्तःकरण को थोड़ी तृप्ति दे सकूंगा ! बस इसी प्रयोजन से तुम्हें यहाँ बुलाया है। उस समय भी मैं तिलोत्तमा को ठीक कर लूँगा, ऐसी आशा बाँधे था, पर अब निराश हो गया हूँ। यह समझ में आ गया था कि दो दिनों में अगर वह नहीं सम्हली तो उसका अंतिम समय निकट आ जायगा। इसी से दो दिनों बाद पत्र पढ़ने को लिखा था। मुझे जो डर था वही अब सच होने जा रहा है। तिलोत्तमा के जीवन की अब बुझे तनिक भी आशा नहीं है। जीवन का दीप अब बुझने ही वाला है।'

कहते-कहते अभिराम स्वामी रोने लगे।

सब सुनते-सुनते जगतसिंह भी रो पड़े।

अभिराम स्वामी ने फिर कहा, 'तुम एक ब एक तिलोत्तमा के सामने मत चले जाना। यह ठीक न होगा। क्या पता, शायद इस हीनावस्था में वह तुम्हें अचानक देख कर प्रसन्नता के आधिक्य को सम्हाल न पावे ! मैंने पहले ही कह रखा है कि तुम्हें बुलवाया गया है। अब जा कर खबर दे आऊँ कि तुम आ गये हो। फिर तुम जाना।'

इतना कह कर उस खण्डहर के एक कोने में स्वयं ही बनाए अन्तःपुर की ओर स्वामी जी चले गये। फिर थोड़ी देर बाद लौट कर राजकुमार से बोले, 'अब आओ।'

स्वामी जी के पीछे-पीछे राजकुमार अन्तःपुर की ओर गये। उधर जा कर देखा कि एक कमरा टूटते-टूटते किसी प्रकार बच गया है। उसी पर एक टूटी पुरानी खाट पर बीमारी से अत्यन्त दुर्बल हो चुकी, रूपराशि खो कर तिलोत्तमा लेटी है। इतना होने पर भी पहले से रूप-लावण्य की फीकी चमक अभी भी उसे घेरे हुए है। सबेरे के प्रभात-नक्षत्र के बुझने के पहले जैसी आभा है। पास बैठी एक स्त्री विधवा का रूप धरे, बैठी उसके शरीर पर अपना हाथ फेर रही है। वह विधवा विमला है। दीन, मलिन, आभूषण विहीन। पहली बार में जगतसिंह उसे पहचान ही न सके। पहचानते भी कैसे ? जो सौंदर्य की प्रतिमा थी, स्थिर-यौवना थी, वह अब बुढ़िया हो गई थी।

जब जगतसिंह आ कर तिलोत्तमा की खाट के पास खड़े हुए तब वह आँखें बन्द किए लेटी थी।

अभिराम स्वामी ने पुकार कर कहा, 'तिलोत्तमा आँखें खोलो ! राजकुमार जगतसिंह आये हुए हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन कर तिलोत्तमा ने धीरे-धीरे आँख खोलीं और राजकुमार की ओर देखा। तिलोत्तमा की वह दृष्टि ! सूनी, भावहीन, कोमल, स्नेह-व्यंजक, तिरस्कार या अभिलाषा से शून्य, किसी भी इच्छा के चिन्हमात्र से भी रहित। एक बार भर नजर जगतसिंह को देख कर तिलोत्तमा ने आँखें झुका लीं। पल भर बाद उन्हीं सूनी आँखों में एक अजीब सी भंगिमा आई और आँसुओं की धारा वह चली।

अब राजकुमार सह न सके, खड़े भी न रह सके, एकाएक उनके मन से लाज का भाव गायब हो गया और तिलोत्तमा के पैरों के पास आवेश के झटके से बैठ कर उन्होंने अपने आँसुओं से उसकी देहराशि को गीली कर दिया।

२१

अनाथ बालिका तिलोत्तमा क्षीण-काया ले कर रोगशय्या पर पड़ी थी। शय्या के पास ही राजकुमार जगतसिंह बैठे थे।

दिन जाता है, रात आती है, फिर रात जाती है, दिन आता है, फिर रात आती है। राजपूत कुल-भूषण रोगिणी की टूटी खाट की बगल में बैठे रोगिणी की सेवा—सुश्रुमा में व्यस्त हैं। रोगिणी की एकमात्र सहचरी, उस दीन, हीन, शब्दहीन विधवा के अथक परिश्रम में और कार्य में यथासम्भव सहयोग व मदद कर रहें हैं। थकान से चूर क्षीणकाया, दुखियारी विधवा की आँखें उसे खोजती है या नहीं, उसके चमकदार चेहरे के निष्प्रभ अवशेष पर पहले की सी हँसी आती है या नहीं, यही जानने की जिज्ञासा से वे बार-बार उसके चेहरे को देखने का प्रयत्न कर रहे हैं।

कहाँ रहा शिविर ? कहाँ गई सेना ?—शिविर तो विखर गया। उठकर सेना भी पटना चली गई है। कहा हैं सब अनुचर ? वे तो शायद दारूकेश्वर के किनारे अपने युवराज के आने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। लेकिन कहाँ हैं उनके युवराज ! वे तो एक खण्डहर के टूटे कमरे में भयानक लू और गरमी से सूख गई, मुरझा गई, एक सुकुमार कली को अपने आँसुओं से सींच कर फिर से खिलाने के प्रयत्न में व्यस्त हैं।

सेवा और स्नेह का संबल पा कर वह कुसुम-कली फिर से धीरे-धीरे उत्फुल्ल होने लगी। इस संसार में स्नेह से बढ़ कर और कौन सा जादू है ! रोग-व्यधि के शमन के लिए सब से प्रभावकारी प्रधान औषधि है—प्रणय। नहीं तो हृदय रोग की और कौन क्या चिकित्सा कर सकता है ?

जैसे बुझने को तत्पर दीपक तेल की एक बूँद के सहारे फिर धीरे-धीरे प्रज्वलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर हँसने लगता है, जैसे भीषण गरमी से सूखी और झुलसी लता आषाढ की नई वर्षा का पानी पा कर फिर धीरे-धीरे विकसित, हरी होने लगती है वैसे ही जगतसिंह का स्नेह-अमृत-जल पा कर तिलोत्तमा की समाप्तप्राय देहराशि फिर से दिन-दिन पुनर्जीवन पाने लगी।

अब तिलोत्तमा में थोड़ी सी शक्ति का भी संचार हुआ है। वह स्वयं प्रयत्न कर के उठ कर खाट पर बैठने लगी है। विमला के वहाँ न रहने पर एकांत पा कर दोनों पास-पास बैठ कर बहुत दिनों की अपने-अपने मन की बातें खोल कर कहते-सुनते हैं। बहुत दिनों की संचित बहुत सी बातें हैं। कितने ही मानस-अपराध अभियोग कहे और क्षमा किये गये। कितने नए-नए विश्वास व भरोसे मन में उठ कर विलीन हो गये थे, उन सब की पुनरावृत्ति हुई। जागते और सोते जिसने भी जो महमोहक सपने देखे, वे सभी कहे-सुने गये।

बीमारी की दशा में बेहोशी में, तिलोत्तमा ने एक सपना देखा था। एक दिन कहा—

'नए बसन्त की शोभा से परिपूर्ण एक छोटी सी पहाड़ी पर मैं तुम्हारे सङ्ग पुष्पक्रीड़ा में व्यस्त थी। बहुत से बसन्ती फूलों को इकट्ठा कर के मैंने तम्हारे लिए मालाएँ तैयार कीं। एक तुम्हे पहनायी, एक स्वयं पहनी। तुम्हारी कमर की तलवार की मूठ से फँस कर माला टूट गई। तब मैंने कहा, 'अब तुम्हें माला न पहनाऊँगी। पैरों में बेड़ी डाल कर बाँधूँगी।' कह कर मैंने फूलों की बेड़ी बनाई। तुम्हारे पैरों में फूल-बेड़ी बाँधने चली तो तुम पीछे हट गए। मैं तुम्हारे पीछे दौड़ी। तुम तीव्र वेग से पहाड़ी से नीचे उतरने लगे। रास्ते में एक क्षीण निर्झरिणी थी। तुम एक ही छलाँग में कूद कर उसे पार कर गये। लेकिन मैं ठहरी स्त्री, प्रयत्न करके भी कूद कर पार न कर सकी। आगे जहाँ निर्झरिणी खूब सकरी थी, वहाँ से पार करने की आशा से मैं निर्झरिनी के किनारे-किनारे दौड़ती हुई पहाड़ी से उतरने लगी। लेकिन हुआ क्या ? निर्झरिणी का संकरा होना तो दूर रहा, मैं जितना ही उसके किनारे बढ़ती जाती उसका विस्तार उतना ही बढ़ता जाता। वह निर्झरिणी जल्दी ही एक छोटी सी नदी बन गई। फिर वह छोटी नदी, बड़ी नदी बन गई। फिर तुम भी दूर जा कर मेरी आँखों से ओझल हो गए। किनारे भी खूब ऊँचे और ऊबड़-खाबड़ दिखे। फिर मेरे पैर नहीं उठे। थोड़ी देर के बाद मेरे पैरों के नीचे कगारे तीव्र धमाके के साथ टूट-टूट कर पानी में गिरने लगे। नीचे प्रचण्ड वेग से चक्कर खाती भँवरों को भी देखने की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी। नदी में डूबने के डर से बचने के लिए मैं फिर पहाड़ी पर चढ़ने लगी। रास्ता बीहड़, पैर नहीं उठते। मैं जोर-जोर से रोने लगी। अक्समात देखा कि कालमूर्ति कतलूखाँ फिर जी उठा है और आ कर उसने मेरा रास्ता रोका है। मेरे गले में पड़ी फूलों की माला अचानक लोहे की वजनदार जंजीर बन गई। पुष्प बेड़ी हाथों से छूट कर पैरों पर जा गिरी, वह भी लोहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की बेड़ी बन गई और मेरे पैरों से लिपट गई। एकाएक मेरे सभी अङ्ग जकड़ गये। तब कतलू खाँ ने मेरा गला पकड़ा और उठा कर घुमा कर मुझे नदी के बहाव में झोंक दिया।'

स्वप्न सुना कर तिलोत्तमा ने गीली आँखों को पोंछ कर कहा, 'युवराज, यह केवल मेरा स्वप्न ही न था तुम्हारे लिये फूलों की जो बेड़ी बनाई थी, जान पड़ता है वह सचमुच ही मेरे पैरों में लोहे की बेड़ी बन कर पड़ी है। जो फूलों की माला पहनाई थी, वह तलवार की मूठ से लग कर टूट गई।'

सुन कर युवराज हँस पड़े। अपने कमर में लटकती तलवार निकाल कर तिलोत्तमा के पैरों पर रख दी। बोले, 'लो तिलोत्तमा, मैंने यह तलवार तुम्हारे चरणों में रख दी। अब फिर से माला पहना कर देखो तो। कहो तो मैं तलवार को अभी ही तुम्हारे सामने दो टुकड़े कर दूँ।'

तिलोत्तमा चुप रही तो राजकुमार ने कहा, "तिलोत्तमा! मैं सच कह रहा हूँ हँसी नहीं कर रहा।'

तिलोत्तमा ने लजा कर सिर झुका लिया।

उसी दिन की बात है। शाम बीतने के बाद अभिराम स्वामी दूसरे कमरे में दिया जला कर पोथी पढ़ रहे थे। राजकुमार ने जाकर विनीत भाव से कहा, 'महाराज जी, मेरा एक आग्रह है। अब तिलोत्तमा इतनी तो स्वस्थ हो ही गई हैं कि यहाँ से किसी दूसरी जगह जाने का कष्ट सहन कर सकेगी। इसलिए अब इस खण्डहर के इस टूटे कमरे में कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है? कल का दिन यदि ठीक हो तो सब को गढ़ मन्दारन ले चलिए। और अगर आप को सम्बन्ध मंजूर हो तो अम्बर के वंश में अपनी नतिनी को दे कर मुझे कृतार्थ कीजिए।'

अभिराम स्वामी पोथी बन्द कर के उठे। भावना व आवेश में आ कर उन्होंने जगतसिंह को अपनी बाँहों में भर लिया। उन्हें इतना भी होश न था कि वे उस समय पोथी पर पैर रख कर खड़े थे।

राजकुमार जब अभिराम स्वामी के पास आये थे, तब कुछ मतलब ताड़ कर विमला और आसमानी भी राजकुमार के पीछे-पीछे वहाँ तक आई थीं। उन्होंने बाहर खड़ी हो कर सब बातें ध्यान से सुनी थीं।

राजकुमार जब बाहर निकले तो देखा कि विमला में फिर वही पहले वाला भाव लौट आया है। लगातार पहले की तरह हँस रही है और आसमानी के बाल खींच खींच कर उसे घूँसे मार रही है। आसमानी भी घूँसों की कुछ भी परवाह न कर के विमला के सम्मुख नृत्य की परीक्षा दे रही है।

मुस्करा कर राजकुमार एक ओर बढ़ गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्ति

फूल खिला। अभिराम स्वामी सब के साथ गढ़ मन्दारन चले गये। उन्होंने बड़ी धूमधाम से अपनी नतिनी तिलोत्तमा का ब्याह जगतसिंह के साथ कर दिया।

उत्सव आदि के लिए जगतसिंह ने अपने बहुत से अनुचरों को न्योता भेज कर जहानाबाद से बुलवा लिया था। वीरेन्द्रसिंह के मित्रों में भी बहुत से लोग बुलाने पर आए थे। उन्होंने आ कर इस मांगलिक कार्य में आनन्द की मात्रा बढ़ाई।

आयशा की इच्छा के अनुसार ही जगतसिंह ने न्योता भेज कर उसे भी बुलाया। आयशा अपने छोटे भाई और अन्य संगी-साथियों के साथ आई भी थी।

यवन हो कर भी आयशा जगतसिंह और तिलोत्तमा से अत्यधिक स्नेह-भाव रखती थी। अत: उसकी सहचरियों के साथ उसे भी अन्त:पुर में ही ठहराया गया था। सम्भव है कि तप्त हृदय के कारण आयशा विवाह के अवसर पर पूरा आनन्द न मना सकी हो। लेकिन वास्तविकता ऐसी न थी। आयशा अपने चित्त की प्रसन्नता प्रकट कर के सब को प्रसन्न रख रही थी। उसकी निश्चल हँसी से सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बिखरा था।

रात को विवाह हुआ। आयशा अपने दलबल के साथ वापस जाने को तैयार हुई। हँस कर विमला से विदा ली। विमला उसका कुछ भेद नहीं जानती थी। हँस कर बोली, 'नवाबजादी साहबा, अब हमें आपके माँगलिक कार्य में आने का न्यौता कब मिलेगा ?'

उत्तर न दे कर मुस्कराती हुई आयशा विमला से विदा हो कर तिलोत्तमा के पास गई और उसे बुला कर एक एकान्त कमरे में ले गई। वहाँ तिलोत्तमा का हाथ पकड़ कर बोली, 'बहन, अब मैं चली। मन और कण्ठ से खूब आशीर्वाद देकर जा रही हूँ। तुम सदा सुखी रहो।'

तिलोत्तमा ने पूछा, 'अब कब फिर आपके दर्शन होंगे ?'

'यह निश्चय रूप से कैसे कहूँ ?'

तिलोत्तमा का चेहरा मुरझा गया।

दोनों चुप रहीं।

थोड़ी देर बाद आयशा बोली, 'भेंट हो या न हो। तुम तो आयशा को नहीं भूलोगी न ?'

'आयशा को भूल जाऊँ तो युवराज मेरा मुँह फिर कभी न देखेंगे।'

'इतनी बात से मैं संतुष्ट नहीं हो सकती। एक वायदा करो कि तुम मेरी चर्चा कभी युवराज के आगे नहीं करोगी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आयशा समझती थी कि जगतसिंह के लिए मैंने अपने कुलों का जो तिलांजलि इस जन्म में दी है, उसे सोच कर जगतसिंह के दिल पर छुरियाँ चलती होंगी। मेरी थोड़ी सी चर्चा भी उन्हें विचलित कर दे सकती है।

तिलोत्तमा ने बात मान ली। आयशा ने फिर कहा, 'लेकिन भूल मत जाना। यादगार के रूप में जो निशानी देती हूँ, उसे कभी मत त्यागना।'

उसी समय आयशा ने पुकार कर दासी को हुक्म दिया। दासी ने हुक्म पा कर, हाथी-दाँत की बनी संदूकची में भरे रत्नाभूषण ला कर रखे। दासी को फिर बाहर भेज कर आयशा अपने हाथों तिलोत्तमा को वे सब गहने पहनाने लगी।

धनी व सम्पन्न जमींदार की बेटी हो कर भी तिलोत्तमा उन गहनों की अद्‌भुत रचना और उनमें जड़े बेशकीमती हीरों और रत्नों की अभूतपूर्व चमक देख कर चौंक उठी। आयशा ने नवाब के दिये अपने आभूषणों को तुड़वा कर तिलोत्तमा के लिये नये-नये ढंग के रत्नाभूषण बनवाये थे। तिलोत्तमा उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी। तब आयशा ने कहा, 'बहन, इनकी इतनी तारीफ मत करो। तुमने आज जो रत्न अपने हृदय में धारण किया है, उसकी पैरों की धूल के बराबर भी ये नहीं है।' कहते-कहते आयशा की आँखों में आँसू छलछला आये, जिन्हें गिरने से उसने बड़ी कठिनाई से रोका। तिलोत्तमा न यह देख पाई न इस सम्बन्ध में कुछ जान ही सकी।

कुल गहने पहना चुकने के बाद आयशा ने तिलोत्तमा के दोनों हाथ पकड़ कर उसके मुँह को ऊपर उठाया और देर तक देखती रही। सोचती रही कि यह मनमोहिनी, सरल, प्रेम प्रतिमा का हँसमुँख चेहरा देख कर तो लगता है कि जगतसिंह को शायद कभी कोई मानसिक क्लेश न होगा। यदि खुदा ने कुछ उल्टा न किया तो यही आरजू है कि इसके जरिये जगतसिंह हमेशा खुश रहें। फिर वह तिलोत्तमा से बोली, 'बहन! अब मैं चलती हूँ। तुम्हारे पति को तो बहुत काम है। वे व्यस्त होंगे, अतः उनसे विदा माँगने जा कर उनका समय बरबाद नहीं करूँगी। मैंने ये जो थोड़े से गहने महज चिह्न के रूप में दिए हैं, इन्हें पहनना। और मेरे—अपने कीमती रत्न को हमेशा दिल में रखना।'

यह कहते-कहते आयशा का गला फिर भर आया। तिलोत्तमा इस बार देख पाई की आयशा की पलकें आँसुओं से भर कर काँप रही हैं।

समदुःखिनी की भाँति बड़े स्नेह से तिलोत्तमा ने पूछा, 'तो फिर रो क्यों रही हो?'

इतना सुनना था कि आयशा की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। लेकिन फिर आयशा वहाँ अधिक न रुकी। वहाँ से झटपट बाहर निकल कर वह तामजान में जा बैठी।

आयशा जब अपने घर पहुँची तब खूब रात हो गई थी। कपड़े बदल कर ठण्डी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवा की लालच से वह कमरे के झरोखे पर जा कर खड़ी हो गई। आकाश में अनगिनत तारे झिलमिला रहे थे। मंद-मंद बहती हवा के झोंको से अंधेरे में पेड़ों के पत्ते मर्मर आवाज कर रहे थे। किले की दीवार पर बैठा उल्लू चीख रहा था। सामने किले की दीवार के नीचे, जहाँ आयशा खड़ी थी, उसी के नीचे पानी से भरी खाई आकाश की परछाईं से भरी थी।

झरोखे पर खड़ी आयशा बड़ी देर तक जाने क्या सोचती रही। उसने अपनी उँगली से एक अँगूठी उतारी। उसमें जहर था। सोचा, इससे अपने दिल की कुल प्यास क्यों न बुझा लूँ? फिर सोचा, क्या मैं यही फर्ज पूरा करने को इस दुनिया में आई हूँ? यदि यह झटका मैं न सह सकूँ तो नारी-जन्म पाया ही क्यों? भला सुनेंगे तो जगतसिंह क्या कहेंगे?

आगे और कुछ न सोच, आयशा ने अँगूठी को किले की खाई में फेंक दिया।

• • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपालकुण्डला

□

[रचनाकाल : सन् १८६६]

□

'कपालकुण्डला' बंकिमचन्द्र की प्रकाश में आने वाली दूसरी कथाकृति है।

'दुर्गेशनन्दिनी' के प्रकाशन के एक साल के भीतर ही 'कपालकुण्डला' का प्रकाशन हुआ और समस्त बंगला-साहित्य संसार बंकिमचन्द्र की औपन्यासिक-प्रतिभा से चौंक उठा। बंकिमचन्द्र ने यह कृति भी अपने मँझले-बड़े भ्राता श्री संजीबचन्द्र चट्टोपाध्याय को समर्पित की थी।

'कपालकुण्डला' की कथा के जन्म के संबंध में श्री पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय ने लिखा है :

'जब बंकिमचन्द्र नेगुंया में राजकीय पदाधिकारी थे, तब वहीं एक संन्यासी कापालिक से उनकी भेंट हुई। वे समुद्र के किनारे चाँदपुर रंगालय में रहते थे। चाँदपुर से कुछ दूरी पर समुद्र तट पर बड़ा भारी जंगल था। वह संन्यासी वहीं जंगल में रहता था। उसी संन्यासी से कुछ घटनाओं का वर्णन सुन कर बंकिमचन्द्र ने इस कथा को गढ़ा और उसी संन्यासी को कथा का प्रमुख पात्र भी बनाया।....इस कथा को बंकिमचन्द्र ने खुलना आने पर लिखा।....'*

यह संन्यासी कापालिक बंकिमचन्द्र के मन में बहुत दिनों तक बसा रहा। खुलना आने पर एक दिन बंकिमचन्द्र ने दीनबन्धु मित्र से प्रश्न किया, 'यदि शिशुकाल से तरुणाई तक कोई लड़की समुद्र-तीर पर, जंगल में, किसी कापालिक द्वारा पाली जा कर रहे, और इस आयु तक कापालिक के सिवा और किसी मनुष्य के सम्पर्क में न आवे, समाज के बारे में कुछ न जाने, केवल समुद्र तट पर जंगलों में घूमती रहे, फिर घटना-चक्र से कोई उससे विवाह कर के उसे समाज में ला कर खड़ी कर दे, तो समाज के अनुरूप उसमें कितना परिवर्तन हो सकेगा, तथा वह किस हद तक कापालिक के प्रभाव से मुक्त हो सकेगी ?'

यह प्रश्न जब किया गया तब वहाँ श्री संजीवचन्द्र चट्टोपाध्याय उपस्थित थे। प्रश्न सुन कर उन्होंने व्यंग्य करते हुए कहा, 'कुछ दिनों तो संन्यासी का प्रभाव रहेगा ही। फिर जब पति के प्रति स्नेह उत्पन्न होगा तो वह समाज की प्राणी बन जायगी।'

---

* बंकिम-प्रसंग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीनबन्धु मित्र ने कोई मत प्रकाशित नहीं किया।

लेकिन अपनी जिज्ञासा के समाधान हेतु दो वर्षों तक हृदय-मंथन के बाद बंकिमचन्द्र ने 'कपालकुण्डला' की रचना की। उन्होंने कापालिक-पालिता, समुद्र तट-विहारिणी, वनचारिणी, अपूर्व-मधुर-प्रकृति मोहिनी एक काल्पनिक कन्या को सजीव पात्री बनाया।

'कपालकुण्डला' में पहले बत्तीस परिच्छेद थे। बाद में बंकिमचन्द्र ने स्वयं ही कुछ परिच्छेद निकाल दिए और वर्तमान रूप में कथा को पूरी किया।

'कपालकुण्डला' का साहित्य-संसार में विशेष समादर हुआ।

बंकिम-गोष्ठी के अन्यतम प्रधान श्री अक्षयचन्द्र सरकार का कहना है, 'इस उपन्यास के आते ही बंकिम बाबू का यश चतुर्दिक फैल गया और श्रेष्ठ बंगला ग्रंथकार के रूप में उन्हें प्रसिद्धि मिली। उनके उपन्यासों को उत्कृष्टतम रचना के रूप में स्वीकार किया गया।'

Literary History of India (London, 1898) नामक ग्रंथ में इस उपन्यास की प्रशंसा में लिखा गया है :

'Outside in 'Marige de Loti' there is nothing comparable to the 'Kopala Kundala' in the history of Western fiction.'

'कपालकुण्डला' का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। अंग्रेजी में तो इसके एकाधिक अनुवाद हैं। जर्मन में प्रोफेसर क्लेम ने इसे अनूदित किया। पंडित हरिचरण विद्यारत्न ने इसका संस्कृत में अनुवाद किया। हिन्दी, गुजराती, तमिल, तेलेगु में भी इस कथा के अनुवाद बंकिमचन्द्र के जीवनकाल में ही हुए थे। प्रसिद्ध नाट्यकार गिरीशचन्द्र घोष ने 'कपालकुण्डला' का नाट्य-रूपान्तर भी किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला भाग

|१|

सागर-संगम्में

'Floating straight obedient to the stream'

—Comedy of Errors

प्राय: ढाई सौ वर्ष पहले, एक दिन, माघ महीने की रात बीतते-बीतते यात्रियों से भरी एक नाव गंगासागर से वापस आ रही थी। पुर्तगाली और दूसरे जल दस्युओं के भय के कारण नावों का दल बना कर आना-जाना ही उस समय की प्रथा थी। लेकिन इस नाव के यात्री संगीहीन थे। क्योंकि रात खतम होते-होते चारों ओर गहरा कुहरा छा गया था और मल्लाह दिशा का ठीक अन्दाज न पाने के कारण अपने गोल से बिछुड़ कर दूर निकल आये थे। अब वे किस दिशा में किधर जा रहे हैं, इसका उन्हें ठीक अंदाज न था। नाव के अधिकांश यात्री नींद में डूबे थे। एक वृद्ध एवं एक युवा पुरुष, मात्र यही दो जन जाग रहे थे। वृद्ध युवक से बात कर रहा था। बीच में एकबार बात को रोक कर वृद्ध ने मल्लाहों से पूछा, 'माझी, आज कितनी दूर जा सकोगे ?' माझी ने कुछ टाल-टूल के स्वर में कह, 'कुछ नहीं कह सकता।'

सुन कर वृद्ध नाराज हो उठे और मल्लाह को तिरस्कृत करने को खरी-खोटी सुनाने लगे। युवक ने समझाया, 'महाशय, जो भगवान की मरजी है उसे तो पंडित भी नहीं बता सकते, भला यह मूर्ख क्या बताएगा ? आप परेशान न हों।'

तब वृद्ध ने उग्र-भाव से कहा, 'परेशान न होऊँ ? तुम कहते क्या हो ? बदमाश बीस-पच्चीस बीघे का धान काट ले गये, अब साल भर लड़के-बच्चे भला खाएँगे क्या ?'

गंगासागर पहुँचने के बाद वृद्ध सज्जन को अपने पीछे आने वाले यात्रियों से यह खबर मिली थी। युवक ने कहा, 'मैं तो पहले ही कहता था महाशय, कि आपके घर पर कोई दूसरा देखने-सुनने वाला नहीं है, आप का आना ठीक नहीं हुआ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्ध ने पूर्ववत् उग्रता-भरे स्वर में कहा, 'आऊँगा नहीं ? तीन पन बीत गए, अब चौथे पन में पड़ा हूँ। परलोक के लिए अभी से नहीं चेतूँगा तो भला और कब चेतूँगा ?'

युवक ने कहा, 'यदि मैंने शास्त्र को ठीक समझा है तो तीर्थ-दर्शन से परलोक की जैसी व्यवस्था होती है, वह तो घर बैठे भी हो ही सकता है।'

वृद्ध ने पूछा, 'तो तुम क्यों आये भला ?'

युवक ने उत्तर दिया, 'मैं तो पहले ही बता चुका हूँ न, कि मेरी समुद्र देखने की बड़ी लालसा थी। बस इसीलिए आया।' फिर अपने स्वर को और भी कोमल बना कर बोला, 'अहा ! क्या देखा ! जन्म-जन्मांतर तक भूल न सकूँगा।'

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलंक रेखा॥'

वृद्ध ने कविता की ओर जैसे कान ही न दिए। वे तो एकाग्रचित्त हो कर, आपस में बातें करते मल्लाहों की बातों को ही सुनने में लगे थे।

एक मल्लाह दूसरे से कह रहा था, 'अरे भाई ! यह तो बहुत ही खराब काम हुआ। इस समय हम बाहर-दरिया में आ पड़े हैं या किसी दूसरे देश में आ गए हैं, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।'

कहने वाले का स्वर अत्यन्त भय-कातर था। वृद्ध ने समझा, अवश्य ही कोई विपत्ति आने वाली है। बहुत शंकालु हो कर पूछा, 'माझी, क्या बात है ?' मल्लाह ने कोई जवाब न दिया। तभी युवक उत्तर की प्रतीक्षा न करके बाहर निकल आया। बाहर आ कर देखा, लगभग सवेरा हो गया। चारो ओर छाया गहरा कुहरा। आकाश, नक्षत्र, चाँद, उपकूल, किसी ओर कुछ भी नहीं दिखता। मन में समझा कि मल्लाहों को दिशा-भ्रम हुआ है। अब किस ओर जा रहे हैं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कहीं अनजान सागर में पड़ कर अकूल में मारे जायँ, इसी डर से मन में आशंका उपजी।

ओस से बचाव के लिए सामने एक परदा लटकाया गया था, इसीलिए नाव के भीतर के यात्री यह सब देख-समझ नहीं सके थे। लेकिन जब युवक ने सविस्तार सारी स्थिति से वृद्ध को परिचित कराया तो नाव में बड़ा कोलाहल मचा। नाव में जितनी औरतें थीं उनमें से शायद कोई बातचीत सुन कर जाग गई। सुनते ही वह आर्तनाद कर उठी। घबरा कर वृद्ध ने कहा, 'किनारे लगाओ, किनारे, किनारे !'

युवक ने जरा मुस्करा कर कहा, 'किनारा कहाँ है ? यही मालूम होता तो भला यह विपत्ति क्यों आती ?'

युवक की बात सुन कर नाव के यात्रियों का कोलाहल और बढ़ गया। किसी तरह उन लोगों को शांत कर के युवक ने मल्लाहों से कहा, 'अब डर की कोई बात नहीं है। सवेरा हो गया है। बस, थोड़ी ही देर में सूरज भी उग आए गा। और अब इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
देर में नाव के लिए कोई खतरा भी नहीं हो सकता। अब तुम लोग इस समय डाँड़ चलाना बन्द कर दो। नाव अपने आप बहाव में जहाँ चाहे जाय, बाद में धूप निकलने पर सलाह की जायगी।'

मल्लाह लोग सलाह मान कर वैसा ही करने लगे।

बहुत देर तक मल्लाह लोग निश्चेष्ट रहे। भय के कारण यात्रियों के प्राण कण्ठ तक आ गए थे। हवा का तो जैसे नामोनिशान भी न था। इसी कारण न तो तरंगों के झकोरे थे, न कम्पन। सबों ने मन में यही माना कि मौत अब पास ही है। पुरुष लोग मन ही मन भगवान के नाम जपने लगे। और स्त्रियाँ तरह-तरह की आवाजों में रोने लगीं। एक स्त्री गङ्गासागर में समुद्र को अपना लड़का भेंट कर आई थी। लड़के को पानी में उतार कर फिर निकाल न सकी थी, सिर्फ वही नहीं रोई।

इसी तरह प्रतीक्षा करते-करते लगभग एक पहर बीत गया, दिन भी चढ़ आया। तभी अचानक नाव के मल्लाह लोग नदी के पाँचपीर का नाम ले ले कर महाकोलाहल कर उठे। यात्रियों में सब के सब एक स्वर में पूछ उठे, 'क्या हुआ, माझी, क्या हुआ? क्या बात है?' मल्लाह लोग भी उसी तरह के कोलाहलमय स्वर में कहने लगे—'धूप निकली! धूप निकली! किनारा! किनारा! किनारा!'

सुनते ही सभीं यात्री भाग कर बाहर आ गए और कहाँ आए हैं, क्या माजरा है, कहाँ किनारा है, देखने लगे। सबों ने देखा, सूरज निकल आया है। कुहरे का अँधेरा आकाश में चारों ओर कहीं नहीं बचा। दिन भी पहर भर से ज्यादा ही चढ़ गया है। नाव जहाँ पहुँच गई थी वह असल में महासमुद्र नहीं, नदी का मुहाना था लेकिन वहाँ नदी का जैसा पाट था वैसा और कहीं नहीं देखा। नदी का एक किनारा नाव के काफी पास था जरूर, यहाँ तक कि पचास हाथ से कम ही दूर था, लेकिन दूसरे किनारे का कहीं नामनिशान भी न था। जिस ओर भी आँखें उठतीं, अनन्त जलराशि चंचल सूर्य-रश्मियों से प्रदीप्त हो कर आकाश से मिल रही थी। पास का पानी भी प्रायः गंदला, नदी के पानी की तरह ही था। लेकिन दूर की जलराशि नीली थी। यात्रियों ने मन ही मन सोचा कि वे अवश्य ही महासमुद्र में आ फँसे थे, पर सौभाग्य से अब किनारा पास ही है। अब डर की कोई बात नहीं। सूरज की ओर देख कर चारो दिशाओं का अंदाज किया। सामने जो उपकूल देख रहे थे, वह समुद्र का पश्चिमी तट है, यह सहज ही समझ गए। तट के बीच, नाव से कुछ ही दूर एक दूसरी नदी का मुँह मंथर व मंदगति प्रवाह की तरह आकर मिल रहा था। उस संगम-स्थल के दाहिनी ओर बालू के एक बड़े भाग में टिटिहरी आदि अनेक चिड़ियाँ क्रीड़ा कर रही थीं।

इस नदी का नाम अब 'रसूलपुर की नदी' पड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

|२|

उपकूलमें

"Ingratitude ! Thow marble-hearted fiend !—"

—King Lear

यात्रियों की उत्साह भरी बातों के समाप्त होने के बाद जब वे थोड़ा शान्त हुए तब मल्लाहों ने प्रस्ताव किया कि ज्वार के आने में अभी भी कुछ देर है, इस बीच जो समय है, उसी में यात्रीगण सामने की रेती पर भोजन आदि बना कर निवृत्त हो लें, बाद में जलोच्छवास के शुरू में ही अपने गन्तव्य के लिए यात्रा शुरू कर सकेंगे।

मल्लाहों ने नाव को किनारे लगाया। यात्रीगण प्रसन्नता से निर्भय हो कर उतरे और तत्काल ही प्रातःकृत्य तथा स्नानादि करने में व्यस्त हो गए।

यात्रियों के स्नान कर लेने के बाद, जब वे खाना पकाने का उद्योग करने लगे तब एक नई मुसीबत सामने आई। नाव पर जलावन के लिए लकड़ी नहीं थी। रेती के ऊपर लकड़ी की खोज में जाने की किसी की हिम्मत न पड़ी क्योंकि उधर बाघ का डर था। जलवान जुटने का कोई प्रबन्ध न देख अन्त में सबों ने उपवास की ठानी, तब वृद्ध ने उसी युवक को सम्बोधित करके कहा, 'बेटा नवकुमार ! यदि तुम भी इसका कोई उपाय या प्रबन्ध न करोगे तो हम सब, इतने लोग भूखों मर जाएँगे।'

कुछ देर सोच विचार के बाद नवकुमार ने कहा, 'अच्छा, तो ठीक है, मैं ही जाऊँगा। मुझे कुल्हाड़ी दो, और हँसिया ले कर एक आदमी मेरे साथ-साथ चले।'

लेकिन नवकुमार के साथ जाने को किसी ने उत्साह न दिखाया। तब नवकुमार ने कहा, 'अच्छा तो भोजन के समय समझूँगा।' कह कर नवकुमार कमर कस कर अकेले ही कुल्हाड़ी कंधे पर रख कर लकड़ी लाने चल पड़ा।

किनारे पर आगे बढ़ कर नवकुमार ने देखा, जहाँ तक भी निगाह जाती थी, वहाँ तक कहीं भी बस्ती का कोई नाम-निशान नहीं दिखा। आबादी का कोई लक्षण न दिखा। हर ओर केवल जंगल ही था। लेकिन बड़े पेड़ों वाला जंगल न था। केवल जगह-जगह किसी-किसी भूखण्ड को घेर कर छोटी-छोटी झाड़ियाँ मण्डलाकार बिछी थीं। उनमें कहीं भी नवकुमार को जलावन लायक लकड़ी दिखाई न पड़ी। इसलिए उपयोग लायक पेड़ या लकड़ी की खोज में उसे किनारे से काफी दूर जाना पड़ा। काफी चलने के बाद, अंत में काटने लायक एक पेड़ मिला। उससे काट कर उसने जरूरत के अंदाज से लकड़ी जुटाई। लेकिन इतनी दूर इतनी लकड़ी ढो कर लाना भी एक श्रमसाध्य काम था। नवकुमार किसी गरीब की संतान न था, न ही उसे विषम कामों का अभ्यास ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, अच्छी तरह सोचे-समझे बिना ही वह उत्साह से भर कर लकड़ी लेने चला आया था। इसीलिए अब लकड़ी का बोझ बड़ा कष्टदायक सिद्ध हो रहा था। जो भी हो, किसी काम को उठा लेने के बाद, जरा से कष्ट के कारण उससे मुँह मोड़ना नवकुमार का स्वभाव न था। काफी दूर तक वह बोझ लाद लाने के बाद बैठ कर थोड़ा विश्राम करता, फिर ढोता, फिर रुकता, इसी प्रकार वापस आने लगा।

यही कारण था कि नवकुमार के लौटने में देरी होने लगी। इधर-घाट पर प्रतीक्षा में बैठे उसके सहयात्री विलम्ब होते देख कर उद्विग्न होने लगे। उनके मन में यही आशंका उठी की अवश्य ही नवकुमार को बाघ पकड़ ले गया होगा। लौटने का संभावित समय बीत जाने पर यह आशंका उनके हृदय में विश्वास बनने लगी फिर भी किसी की इतनी हिम्मत न पड़ी कि कोई किनारे से आगे बढ़ कर या कुछ दूर ऊपर चढ़ कर नवकुमार की खोज करे।

नाव के यात्रीगण इसी तरह की आशंका-कल्पना में व्यस्त थे, इसी बीच एकाएक जलराशि में भैरव कल्लोल उठ खड़ा हुआ। मल्लाहों को समझते देर न लगी कि ज्वार आ गया। मल्लाहों को अच्छी तरह मालूम था कि इन जगहों पर ज्वार के समय लहरों के ऐसे भयानक थपेड़े लगते हैं कि किनारे की नाव चकनाचूर हो जाती है। इसीलिए जल्दी-जल्दी कर के वे सब नाव की रस्सी खोल कर उसे नदी के बीच में लाने का प्रयत्न करने लगे।

हुआ यह कि मल्लाहों की तमाम जल्दबाजी व नाव को खोलने के प्रयत्न के बीच ही सामने की समस्त रेती पानी में डूब गई। त्रस्त व निराश भाव से सभी यात्री कूद-कूद कर नाव पर चढ़ने में व्यस्त हो गए। खाना पकाने के लिए चावल आदि जो भी खाद्य-सामग्री उन्होंने किनारे पर बिछा रखी थी, वह सब बह गई। एक दुर्भाग्य और था कि मल्लाह लोग भी बहुत निपुण या अनुभवी न थे। वे इस ज्वार के वेग में नाव को सम्हाल नहीं सके। जल के प्रबल प्रवाह से नाव रसूलपुर की नदी में दिशाहीन बहने लगी। एक यात्री ने कहा, 'अरे, नवकुमार तो रह ही गया।'

दूसरे यात्री ने कहा, 'अब नवकुमार भला कहाँ है? उसे बाघ उठा ले गया होगा या सियार चाट गए होंगे।'

पानी का निर्मम वेग नाव को तिनके की तरह रसूलपुर की नदी के भीतर घसीटे लिए जा रहा था। बह जाने पर लौटने में बड़ी दिक्कत होगी, इसलिए मल्लाह प्राणप्रण से नाव को उस बहाव से बाहर लाने का प्रयत्न कर रहे थे। यहाँ तक कि माघ महीने की उस ठण्डक में भी उनके माथे से पसीने की बूँदें टपकने लगीं। उनके असाध्य श्रम से रसूलपुर की नदी के भीतर से नाव बाहर तो आने लगी, और जैसे ही नाव उस वेगवती धारा से बाहर आई कि वहाँ के पहले से भी अधिक प्रबल स्रोत से उत्तर दिशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर तीर की तरह बह चली। मल्लाहों के तमाम परिश्रम के बाद भी उस बहाव में कोई रुकावट न डाली जा सकी। और फिर नाव लौट न सकी।

काफी अरसे के बाद जब बहाव का प्रकोप मन्द हुआ कि नाव की गति को संयत किया जा सके तब तक यात्रीगण रसूलपुर का मुहाना पार कर बहुत दूर आ चुके थे। अब नवकुमार को लेने के लिए उतनी दूर फिर लौटना होगा या नहीं, इस विषय में विवाद करना आवश्यक हो गया। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इस नाव पर के सभी यात्री नवकुमार के पड़ोसी थे, उनमें उसका आत्मीय कोई भी न था। बहुत विचार के बाद तय पाया कि जहाँ वे सब आ गए थे, वहाँ से लौटने के लिए एक और भाटा की आवश्यकता है। फिर रात हो जायगी और रात में नाव चलाना संभव न हो सकेगा, और फिर दूसरे दिन के ज्वार की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। और उस समय तक सबों को भूखा ही रहना होगा। दो दिनों तक बिना कुछ खाए सबों के प्राणों पर आ बनेगी। इसीलिए यात्रीगण फिर वापस लौटने को उत्सुक न थे। वे किसी प्रकार भी वापस लौटने के किसी भी तर्क को मानने को तैयार न थे। अपने पक्ष को और सशक्त करने को वे बार-बार यही कहते थे कि नवकुमार को अवश्य ही बाघ पकड़ ले गया है। ऐसा होना निश्चित है। फिर क्यों व्यर्थ में इतनी झंझट उठाई जाय!

इस प्रकार काफी देर सोच-विचार कर यात्रियों ने नवकुमार के बिना ही स्वदेश लौटना उचित ठहराया। इस प्रकार नवकुमार उस भीषण समुद्र के किनारे निर्जन में बनवास के लिए विवश हुआ।

इस बात को सुन कर यदि कोई यह प्रतिज्ञा करे कि फिर कभी किसी दूसरे का उपवास तोड़वाने के लिए लकड़ी लेने नहीं जाएँगे, तो वे पामर हैं, इन यात्रियों की ही भाँति पामर हैं। अपना उपकार करने वाले को वन में छोड़ देना जिनकी प्रकृति ही है, वे तो सदा ही उपकार करने वाले को बनवास देंगे ही, फिर भी वे चाहे जितनी दफे भी बनवास दें, दूसरे के लिए, जिसका लकड़ी लाना स्वभाव ही है, वह फिर-फिर दूसरे के लिए लकड़ी लाने जाएगा ही। यदि तुम अधम हो, इसीलिए क्या हम भी उत्तम नहीं होंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजन में

'—Like a veil,
Which if withdrawn; Would but disclorse the frown
Of one who hates us, so the night was shown
And grimly darkled o'er their faces pale
And hopeless eyes.'

—Don Juan

जिस स्थान पर नवकुमार को छोड़ कर यात्रीगण चले गए थे, वहाँ से थोड़ी दूर पर दौलतपुर और दरियापुर नाम के दो गाँव आजकल बसे हुए हैं। लेकिन जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय वहाँ मनुष्य और बस्ती का कहीं कोई चिह्न भी न था। केवल जंगल ही था। लेकिन बंगाल देश में अन्यत्र भूमि जिस तरह सहज उर्वरा है, इस प्रदेश की वैसी नहीं। रसूलपुर के मुहाने से सुवर्ण रेखा तक अबाध रूप से कई योजन तक का मार्ग एक प्रकार के बालुका-स्तूपों से भरा है। यदि ये स्तूप और थोड़े ऊँचे होते तो इन्हें बालू की पर्वत-श्रेणी भी कहा जा सकता था। इस समय लोग इसे बालियाड़ी कहते हैं। इन सभी बालियाड़ी की धवल शिखर-माला दोपहर की सूर्य किरणों में दूर से अपूर्व प्रभावशालिनी दीख पड़ती हैं। इसके ऊपर ऊँचे वृक्ष पैदा नहीं होते। स्तूप के निम्न भाग में साधारण छोटे-छोटे वन बनते हैं। लेकिन बीच के भाग में या शिरोभाग में प्रायः छायाहीन धवल शोभा उपस्थित रहती है। निचले भाग को गोलाई से घेर कर उगने वाले पेड़ों में सरपत, जंगली झाऊ और जंगली फूल ही अधिक हैं।

इस तरह की मनहूस जगह पर नवकुमार का साथियों द्वारा परित्याग हुआ। जब वह पहले लकड़ी का बोझ लादे हुए नदी किनारे आया तो उसे वहाँ नौका न दिखी, तब अवश्य ही उसे बहुत डर लगा, लेकिन साथी उसे सचमुच बिल्कुल ही छोड़ कर चले गए हैं, ऐसा उसे नहीं लगा। विचार कर के उसने सोचा कि ज्वार के कारण रेती के डूब जाने से पास ही किसी दूसरी जगह उन्होंने रक्षा के लिए नाव लगा दी होगी। जल्दी ही वह उन्हें खोज लेगा। यही आशा लगा कर वह वहीं बैठ कर प्रतीक्षा करने लगा। लेकिन नौका न आई। कोई सहयात्री भी दिखाई न पड़ा। नवकुमार खूब भूख लगने से व्याकुल हो उठा था। और प्रतीक्षा करना असम्भव हो गया तो वह नदी के किनारे-किनारे बढ़ कर नाव को खोजने लगा। लेकिन कहीं भी नाव का निशान भी न मिला। तब वह लौट कर पूर्व स्थान पर आ गया। अब भी नौका को न पा कर मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मन विचार किया कि हो सकता है कि ज्वार के वेग के कारण नाव बह गई होगी। अब उल्टी धारा में लौटने में साथियों को विलम्ब तो होगा ही। लेकिन अब तो ज्वार भी समाप्त हो गया था। तब सोचा, उल्टी धारा में तेज वेग के कारण ज्वार में नौका शायद लौट नहीं सकी। अब भाटे में नाव अवश्य ही लौट आएगी। लेकिन भाटे का वेग भी बढ़ा, धीरे-धीरे दिन भी ढल गया, सूर्यास्त भी हो गया। यदि नौका लौटने वाली होती तो अब तक अवश्य लौट आती।

तब नवकुमार को विश्वास हो गया कि ज्वार की भीषणता के कारण तरंगों के थपेड़े खा कर नाव पानी में डूब गई है या साथीगण उसे उस विजन में छोड़ कर ही चले गए हैं।

नवकुमार ने चारो ओर देखा, गाँव नहीं, आश्रय नहीं, कोई आदमी नहीं, खाने को भी कुछ नहीं, पीने को नहीं, नदी का जल भीषण नमकीन। अब भूख की तेजी के कारण उसका हृदय बुरी तरह व्याकुल हो उठा। दूर तक कहीं भी शीत से बचने के लिए कहीं कोई आश्रय नहीं; शरीर पर कपड़े भी पूरे नहीं। इस बर्फीली-शीतल-वायु के वेग से भरा हुआ नदी का किनारा, बर्फ बरसाने वाला आकाश। निराश्रय, निरावरण ही रात काटनी होगी। रात में बाघ और भालू के आने की भी सम्भावना है। अब तो मृत्यु निश्चित है!

मन की चंचलता के कारण नवकुमार एक जगह पर अधिक देर बैठे नहीं रह सके। अब किनारा छोड़ कर वह उपर की ओर चला। इधर-उधर टहलने लगा। धीरे-धीरे अंधेरा हो गया। शिशिर के आकाश में नक्षत्र-मण्डली चुपचाप विकसित होने लगी। उसी तरह जैसे नवकुमार के स्वदेश में विकसित होती है। अन्धकार में चतुर्दिक सन्नाटा, जन-हीन, आकाश, प्रान्त, समुद्र, सब ओर नीरवता, केवल अविरल कल्लोलित समुद्र-गर्जन और कदाचित जंगली जानवरों की चीख सुन पड़ती। फिर भी नवकुमार उसी अंधकार में, बर्फ बरसाने वाले आकाश के नीचे के बालुका स्तूप के चारों ओर भ्रमण करता रहा। चलते-चलते पग-पग पर हिंस्र पशुओं के आक्रमण की सम्भावना। लेकिन किसी एक स्थान पर बैठे रहने पर भी यह डर तो है ही।

घूमते-घूमते नवकुमार थक गया। पूरा दिन अनाहार, इसलिए इस समय और भी अवसन्न हो गया। एक जगह वह बालियाड़ी के किनारे पीठ टिका कर बैठ गया। घर की आरामदेह शैय्या याद आई। शारीरिक व मानसिक कष्ट के थकान में जब चिन्ता आती है, तब कभी-कभी निद्रा भी साथ-साथ आ जाती है। नवकुमार भी चिन्ता करते-करते तन्द्राभिभूत हो गया। लगता है कि यदि प्रकृति का ऐसा नियम न होता, तो सांसारिक क्लेश का अप्रतिहत वेग सब समय सहा भी न जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तूप-शिखर पर

'—सविस्मये देखिला अदूरे
भीषण-दर्शन मूर्ति ।' —मेघनादवध

जब नवकुमार की नींद टूटी तब रात गहरी थी। अभी तक उसकी बाघ ने हत्या नहीं की, इस पर उसे आश्चर्य ही हुआ। इधर-उधर निगाह दौड़ा कर वह देखने लगा, बाघ आ रहा है या नहीं। अचानक सामने की ओर, काफी दूर पर, प्रकाश दिखाई पड़ा। लगा कि शायद यह भ्रम हो, अतः नवकुमार बहुत गौर से उधर ही देखने लगा। प्रकाश की परिधि धीरे-धीरे बढ़ने लगी और अधिक रोशनी होने लगी—उसे विश्वास हो गया कि यह आग की रोशनी है। इस विश्वास ही से नवकुमार को जीवन के प्रति फिर से आशा होने लगी। मनुष्य के हुये बिना यह प्रकाश उत्पन्न होना संभव नहीं, क्योंकि यह दावानल का भी समय न था। नवकुमार उठा और जिधर प्रकाश था उसी ओर बढ़ने लगा। एक बार मन में सोचा, 'यह प्रकाश भूतों का है क्या ?—हो भी सकता है। लेकिन शंका न करने से भी भला जान कहाँ बचती है ?' यही सोच कर निर्भीक मन से वह प्रकाश की ओर बढ़ने लगा। वृक्ष, लता, बालुका-स्तूप पग-पग पर उसका रास्ता रोकने लगे। पौधों को पावों से रौंदता हुआ, बालुका-स्तूप लाँघता हुआ नवकुमार चलता गया। प्रकाश के पास पहुँच कर देखा, बालू के एक बहुत ऊँचे स्तूप के ऊँचे शिखर पर आग जल रही है। उसी की रोशनी में शिखर पर बैठे मनुष्य की मूर्ति आकाश-पट के चित्र की तरह दिख रही थी। नवकुमार शिखर पर बैठे मनुष्य के पास जाए गा ही, ऐसा निश्चित संकल्प करके, दृढ़ मन से वह आगे बढ़ा। फिर वह स्तूप पर चढ़ने लगा। अब कुछ शंका होने लगी। फिर भी अकंपित कदमों से वह स्तूप पर चढ़ता ही चला गया। वहाँ बैठे हुए व्यक्ति के सामने पहुँच कर उसने जो-जो भी देखा, उससे उसे रोमांच हो आया। वहाँ वह ठहरे गा अथवा वापस आएगा, यह वह उस क्षण निश्चय न कर सका।

शिखर पर बैठा व्यक्ति आँखें मूँदे ध्यान में लीन था—वह नवकुमार को पहले देख न सका। नवकुमार ने देखा, उसकी उम्र प्रायः पचास वर्ष की होगी। उसके शरीर पर कपास का कोई वस्त्र है या नहीं, यह वह ठीक से देख न सका। कमर से जाँघ तक का भाग बाघम्बर से ढँका था। गले में रुद्राक्ष की माला। आयत मुखमण्डल दाढ़ी, मूँछ और जटाओं से घिरा था। सामने लकड़ी की आग जल रही थी—इसी अग्नि के प्रकाश को देख कर नवकुमार यहाँ तक आ सका था। तब तक नवकुमार को एक प्रकार की विकट दुर्गन्ध मिलने लगी। उसके आसन की ओर देखते ही उस दुर्गन्ध का कारण वह समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। जटाधारी एक छिन्न-मस्तक गले हुए शव के ऊपर बैठा था। फिर तो भयातुर होकर उसने और भी देखा—सामने एक नर कपाल रखा था जिसमें रक्त वर्ण द्रवपदार्थ रखा था। चारो ओर जगह-जगह पर हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं—यहाँ तक कि, योगासन लगा कर बैठे व्यक्ति के गले में पड़ी रुद्राक्ष की माला के बीच-बीच में हड्डी के टुकड़े पिरोये हुए थे। नवकुमार मन्त्रमुग्ध सा ताकता रहा। आगे बढ़े या यहाँ से चला जाय, यह वह समझ न पाया। उसने कापालिकों की कथाएँ सुन रखी थीं। समझ गया, यह व्यक्ति कापालिक है।

जब नवकुमार ऊपर आया था, तब कापालिक मंत्र-साधन या जप या ध्यान में मग्न था, नवकुमार को देख कर जैसे उसने तनिक भी परवाह न की। काफी देरी के बाद पूछा, 'कस्त्वम् ?'

नवकुमार ने कहा, 'ब्राह्मण।'

कापालिक ने कहा, 'तिष्ठ।' इतना ही कह कर वह पहले की तरह अपने काम में लग गया। नवकुमार खड़ा रहा।

इसी तरह आधा पहर बीत गया। इसके बाद कापालिक उठा और एक ओर चलते हुए उसने नवकुमार से पहले की तरह ही संस्कृत में कहा, 'ममानुसर।'

यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि और कोई समय होता तो नवकुमार कदापि उसका साथी न बनता। लेकिन इस समय तो भूख व प्यास से प्राण गले तक आ गया था। अतएव कहा, 'प्रभू की जैसी आज्ञा। लेकिन मैं तो भूख-प्यास से बहुत विकल हूँ, कहाँ जाने से खाने-पीने की चीजें मिलेंगी, सो बताइए।'

कापालिक ने कहा, 'तुम भैरवी के भेजे हुए हो, ममानुसर, मेरे साथ आओ, भोजन प्राप्त होगा।'

नवकुमार कापालिक के पीछे-पीछे चलने लगा। दोनों ने लम्बा रास्ता पार किया—रास्ते में किसी ने कोई बात न की। अन्त में एक पर्णकुटी मिली, पहले कापालिक भीतर गया फिर नवकुमार को भीतर प्रवेश करने की आज्ञा दी, और नवकुमार ने देखा कि न जाने किस उपाय से एक चैले में उसने आग जलाई। उसी के उजाले में नवकुमार ने देखा कि कुटी चारो ओर से केवड़े के पत्तों से छाई है। उसके भीतर कई बाघ-चर्म है। एक घड़ा जल और थोड़ा सा फल-मूल भी है।

कापालिक ने आग जलाकर कहा, 'फल-मूल यहाँ जो भी है उसे खा जाओ। पत्ते का दोना बना कर घड़े का पानी पी लेना। बाघ-चर्म है, जब मन हो सो जाना। कोइ विघ्न नहीं है, रहो, बाघ का भय मत करना। बाद में मुझसे भेंट होगी। अभी की भेंट पर्याप्त नहीं है, जब तक फिर भेंट न हो तब तक यह कुटी छोड़ना मत।'

यह कह कर कापालिक चला गया। नवकुमार ने वही सब फल-मूल खाया और कड़ुआ पानी पी कर परम संतोष का अनुभव किया। इसके बाद बाघ-चर्म पर लेट कर सो गया। पूरे दिन की थकान के कारण जल्दी ही उसे गहरी नींद भी आ गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र-तट पर

'.....योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ।
विभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ।।'—रघुवंश

सवेरे उठ कर नवकुमार सहज ही घर जाने का उपाय करने में व्यस्त हो गया। विशेष कर यहाँ कापालिक का साथ किसी प्रकार भी उसे श्रेयस्कर न लगा। लेकिन अभी इस पथहीन वन के बीच से किस प्रकार निकलना हो सकेगा ? किस प्रकार रास्ता पहचान कर घर भी जा सकेगा ? कापालिक अवश्य ही रास्ता जानता होगा, पूछने से, क्या बता न देगा ? खास कर, अभी तक तो यही देखा है कि कापालिक ने उसके प्रति शंकासूचक व्यवहार नहीं किया—तब भी जाने क्यों वह डर रहा है ? इधर कापालिक ने दूसरी बार भेंट न होने तक कुटी छोड़ने को मना कर दिया है। उसके आदेश के विरुद्ध आचरण करने से संभव है वह नाराज हो। नवकुमार ने सुन रखा था कि कापालिक लोग मंत्र-बल से असाध्य-साधन कर सकते हैं। इसलिए उनके क्रोध का कारण बनना अनुचित है। यही सब सोच-विचार करके नवकुमार ने अंत में कुटी में बने रहने का ही निश्चय किया।

लेकिन क्रमशः दिन ढलने लगा। अभी तक कापालिक नहीं लौटा। पहले दिन का उपवास, आज भी पूरी तरह अनशन, इस समय भी भूख प्रबल हो उठी थी। कुटी में जो थोड़ा सा फल-मूल था, उसे तो पहली रात में ही खा लिया था—अब इस समय कुटी छोड़ कर यदि फल-मूल की खोज न करेगा तो भूख से जान निकल जाएगी। अभी भी थोड़ा दिन बाकी था, इसलिए भूख से बेहाल हो नवकुमार फल की खोज में बाहर निकला।

नवकुमार फल की खोज में बालुका-स्तूप के चारों ओर परिक्रमा करने लगे। बालू में उगने वाले दो-एक पौधों के फलों को चख कर देखा, एक पेड़ का फल जो देखने में बादाम की तरह था, अति स्वादिष्ट था। उसे ही खा कर उसने इस समय भूख मिटाई।

बालुका-स्तूप-श्रेणी की चौड़ाई कम थी। अतः नवकुमार थोड़ा चलने के बाद ही उसे पार कर गया। उसके बाद बालुकाहीन निविड़ वन में जा पड़ा। जो लोग अनजाने रास्तों के वन में थोड़े समय के लिए भी यात्रा कर चुके हैं, वे जानते हैं कि पथ-विहीन वन में क्षण भर में पथ-भ्रांति हो जाती है। नवकुमार के साथ भी वैसा ही हुआ। थोड़ी दूर आगे बढ़ने के बाद यह निश्चय वह नहीं कर सका कि आश्रम किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर है। गम्भीर जल-कल्लोल सुनाई पड़ा। नवकुमार ने समझा कि आवाज समुद्र-गर्जन की है। थोड़ी देर बाद वन से बाहर निकला तो अक्समात ही सामने समुद्र दिखाई पड़ा। अनन्त विस्तार में फैला नीला जल देख कर मन प्रसन्न हो उठा। वह जा कर बालू पर किनारे पर बैठ गया। नीला फेनिल अनन्त समुद्र। दोनों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी, दूर तक तरंगों से मिली फेन की रेखा, लाखों फूलों की माला की तरह उज्ज्वल फेन रेखा सोने की बालू पर पड़ी थी। नील जल के भीतर हजारों स्थान पर फेनों के साथ तरंगें टूट-टूट रही थीं। यदि कभी ऐसी प्रचण्ड आँधी का चलना सम्भव हो कि उसके वेग से हजारों तारे अपनी जगह छोड़ कर नीले आकाश में डोलने लगें तो यही दृश्य दिखाई पड़ेगा। इस समय डूबते हुए सूरज की मुलायम किरणों से नीले जल का एक अंश द्रवीभूत सोने की तरह जल रहा था। बहुत दूरी पर किसी यूरोपीय व्यापारी का समुद्री जहाज सफेद पर फैलाए, बड़े आकार के पक्षी की तरह समुद्र के हृदय में उड़ रहा था।

कितनी देर तक किनारे पर बैठा नवकुमार एकाग्र मन से समुद्र की शोभा देखता रहा, इसका उसे उस समय ज्ञान न रहा। बाद में प्रदोष अंधकार एकाएक आकर पानी पर छा गया। तब नवकुमार को होश हुआ कि उसे आश्रम की खोज कर लेनी चाहिये। लंबी साँस ले कर वह उठा। इस लम्बी साँस का कारण हम नहीं बता सकते, कि उस समय उसके मन में किस बीती बात को याद करके सुख का अनुभव हो रहा था। उठ कर उसने समुद्र की ओर पीठ फेरी। लेकिन घूमते ही उसने एक अपूर्व मूर्ति देखी। उस प्रचण्ड शोर करने वाले समुद्र के किनारे, बालू के बीच शाम की धुँधली रोशनी में एक युवती खड़ी थी। खुली वेणी-जैसे साँप से लहराते बाल, एड़ी तक लम्बे, और बालों के बीच देह, जैसे परदे पर कोई चित्र हो। बालों की सघनता के कारण चेहरा पूरी तरह नहीं दिख रहा था, फिर बादलों के छँट जाने से निकली चाँद की किरणों सा दिख रहा था। विशाल आँखों में कटाक्ष, बहुत स्थिर व स्निग्ध, बहुत गम्भीर, खूब चमकदार। वे कटाक्ष भी इस समुद्र के हृदय पर तैरने वाली चन्द्र-किरण की तरह चमकदार। बालों ने दोनों कंधों और बाँहों को ढँक लिया था। कंधे बिल्कुल नहीं दिखते, बाँहों की छटा कुछ-कुछ दिखती थी। युवती बिल्कुल वस्त्रहीना थी। उस छवि में जो मोहिनी शक्ति थी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अर्द्धचन्द्र से निकलते कमल का रंग, घने काले बाल, एक दूसरे के मिलाप से जो कान्ति फूट रही थी, उसे प्रचण्ड शोर करने वाले समुद्र के किनारे संध्या का दृश्य न देखने से समझ में नहीं आ सकता। न ही उसके मोहिनी रूप का अंदाज लग सकता है।

ऐसी बीहड़ जगह पर ऐसी देवी-मूर्ति को अक्समात ही देख कर नवकुमार तो जैसे संज्ञाहीन सा खड़ा रह गया। उसकी आवाज जैसे खो गई। स्तब्ध सा वह बस देखता ही रह गया। युवती भी अचल। उसकी विशाल आँखें नवकुमार के चेहरे पर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जमी थीं। दोनों की दृष्टि में मात्र इतना ही अन्तर था कि नवकुमार चकित था और उस युवती की दृष्टि में उद्वेग था।

इस प्रकार समुद्र के एकांत तट पर दोनों देर तक इसी तरह एक दूसरे को देखते रहे। बहुत देर बाद युवती का स्वर सुनाई पड़ा, बड़े ही मधुर स्वर में उसने पूछा, 'पथिक, क्या तुम रास्ता भटक गए हो ?'

उस स्वर को सुनते ही नवकुमार के हृदय में वीणा सी बज उठी। कितनी विचित्र बात है कि मनुष्य के हृदय की तन्त्रियाँ ऐसी लयहीन रहती हैं कि प्रयत्न करने पर भी एक दूसरे से नहीं मिलतीं लेकिन इस समय युवती के स्वर को सुनते ही सब लययुक्त हो उठीं। नवकुमार के कानों में उसी तरह लययुक्त तन्त्रियाँ बज उठीं।

नवकुमार के कानों ने सुना—'पथिक, क्या तुम रास्ता भटक गए हो ?' क्या उत्तर देना चाहिए, कुछ भी समझ में न आया। ध्वनि जैसे हर्ष से काँप उठी, हवा में वही ध्वनि बहने लगी, पेड़ के पत्तों में वही ध्वनि भटकने लगी, समुद्र के गरजन में जैसे वही ध्वनि गूँजने लगी। पृथ्वी सुन्दर है, युवती सुन्दर है, ध्वनि भी सुन्दर है। हृदय में सौंदर्य भरी लय उठने लगी।

नवकुमार से कोई उत्तर न पा कर युवती ने कहा, 'आओ !'

इतना कह कर युवती एक ओर बढ़ चली। उसके पावों की दिशा दिखाई न पड़ी। बसन्त में धीमी हवा से चलने वाले बादलों की तरह ही दिशाहीन कदमों से वह चल पड़ी। नवकुमार कल के पुरजे की तरह पीछे-पीछे चलने लगा। आगे छोटा सा जंगल। जंगल के भीतर जाने पर फिर युवती न दिखी। नवकुमार जंगल ने का चक्कर लगाया, देखा, सामने ही कुटी थी।

६

कापालिक के साथ

'कथं निगडसंयतासि। द्रुतम् नयामि भवतीमितः'—रत्नावली

नवकुमार कुटी में जा कर, दरवाजा बन्द कर के हथेली पर सिर रख कर बैठ गया। फिर देर तक सिर उठा न सका।

नवकुमार संज्ञाहीन हो कर सोचता रहा कि यह देवी है या मानवी, या मात्र कापालिक की माया है। वह कुछ भी समझ न पाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवकुमार अन्यमनस्क थे, इसी से वहाँ वह और कुछ न देख सके। कुटी में उसके आने के पहले ही एक चैला जल रहा था। रात को काफी देर होने पर जब उसे याद आया कि अभी सायंकृत्य बाकी है, तब चिन्ता से मुक्त हो कर पानी की खोज करने पर इस ओर ध्यान दे सका। केवल आग ही नहीं, चावल आदि, खाना पकाने की कुछ कुछ चीजें भी थीं। नवकुमार को विस्मय न हुआ, सोचा, यह सब कापालिक का ही काम है। इसमें विस्मय की कोई बात नहीं।

सायंकृत्य समाप्त कर के नवकुमार कुटी में आए और वहीं एक मिट्टी का पात्र पा कर उसी में चावल उबाल कर खाया।

दूसरे दिन सवेरे चर्म-शय्या से उठ कर तत्काल ही समुद्र किनारे गया नवकुमार। पहले दिन आने-जाने के कारण थोड़ी तकलीफ के बाद ही रास्ता खोज पाया। प्रातःकृत्य से छुट्टी पा कर वह प्रतीक्षा करने लगा। किसकी प्रतीक्षा ? पहले दिन दिखाई पड़ी मायाविनी फिर इसी जगह आएगी, यह आशा नवकुमार के हृदय में कितनी थी, हम नहीं जानते, पर वह उस जगह से हिल न सका। लेकिन काफी दिन चढ़ आने पर भी वहाँ कोई न आया। तब नवकुमार उसी स्थान के आस-पास चक्कर लगाने लगा। लेकिन यह खोज बेकार थी। किसी मनुष्य के आने का चिन्ह तक न दिखा। फिर वापस आकर वह उसी जगह बैठ गया। सूरज डूब गया। अंधेरा भी होने लगा। तब निराश हो कर नवकुमार कुटी में लौट आया। लौट कर नवकुमार ने देखा कि कुटी के भीतर कापालिका चुपचाप बैठा है। नवकुमार ने पहले ही स्वागत सम्बोधन किया, लेकिन कापालिका ने कोई उत्तर न दिया।

तब नवकुमार ने कहा, 'अभी तक मैं प्रभू के दर्शनों से क्यों बंचित रहा ?'

कापालिक ने कहा, 'अपने व्रत में लगा था।'

नवकुमार ने घर जाने की इच्छा व्यक्त की। कहा, 'रास्ता नहीं मालूम—रास्ते के लिए भी कोई प्रबन्ध नहीं। अब तो सब कुछ प्रभू के दर्शनों से ही होगा, इसी भरोसे में हूँ।'

कापालिक ने कहा, 'मेरे साथ आओ।' कह कर उदासीन सा उठ कर खड़ा हुआ। शायद घर जाने का ही कोई उपाय होगा, इसी आशा से नवकुमार उसके पीछे-पीछे चला।

तब तक शाम का प्रकाश समाप्त नहीं हुआ था। कापालिक आगे-आगे और नवकुमार पीछे-पीछे चले जा रहे थे। अचानक नवकुमार की पीठ पर किसी के कोमल हाथ का स्पर्श हुआ। घूम कर जो कुछ देखा उससे वह शून्य सा रह गया। वही एड़ी तक लम्बे घने बालों वाली, वन की वही देवी-मूर्ति। पहले की तरह ही निःशब्द, निःस्पन्द। यह मूर्ति कहाँ से एकाएक आ गई ? नवकुमार ने देखा—युवती मुँह पर उँगली रखे है। समझ गया कि वह बोलने को मना कर रही है। इस मनाही की ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विशेष आवश्यकता भी नहीं थी। नवकुमार वहाँ भला बात भी क्या करता! बस वह चकित हो खड़ा रह गया। कापालिक यह सब कुछ देख न पाया। वह आगे बढ़ता गया। उसके कुछ दूर निकल जाने पर जहाँ उसे आवाज सुनाई न पड़े, युवती ने कहा, 'कहाँ जा रहे हो? मत जाओ। लौट जाओ, भाग जाओ।'

इतना कह कर युवती खिसक गई, जवाब सुनने को भी न ठहरी। नवकुमार कुछ देर तक अभिभूत सा खड़ा रहा। पीछे लौटने की सोचने लगा। लेकिन युवती किस ओर चली गई, इसका अन्दाज न पा कर मन ही मन कहा, 'यह किसी की माया है या मेरा ही यह भ्रम है? जो बात सुनी उससे तो आशंका होती है, लेकिन किस बात की आशंका? तांत्रिक लोग सब कर सकते हैं। तो क्या भागूँ? पर कहाँ है, भागने की जगह?'

नवकुमार यही सोच रहे थे, तभी देखा, कापालिक उसे साथ आता न देख कर वापस आ रहा है। कापालिक ने कहा, 'देरी क्यों कर रहे हो?'

जब आदमी अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर पाता तो वह जिस ओर प्रेरित किया जाता है, उसी ओर जाता है। कापालिक के फिर पुकारने पर बिना कुछ कहे-सुने नवकुमार उसके पीछे चल पड़ा।

कुछ दूर जाने पर मिट्टी की दीवाल से घिरी एक कुटी दिखाई पड़ी। उसे छोटा सा घर भी कह सकते हैं। उसके पीछे ही बालू भरा समुद्र का किनारा है। घर के बगल से कापालिक नवकुमार को उसी बालू पर से ले चला। ठीक इसी समय तेज तीर की गति से वह युवती उसके बगल से निकल गई। जाते-जाते उसके कान में कह गई, 'अब भी भाग जाओ। नर-मांस के बिना तांत्रिक की पूजा नहीं होती। तुम क्या यह नहीं जानते?'

नवकुमार के माथे पर पसीना हो आया। दुर्भाग्य से युवती की यह बात कापालिक ने सुन ली। उसने कहा, 'कपालकुण्डले!'

नवकुमार के कानों को यह स्वर मेघ-गर्जन सा लगा। लेकिन कपालकुण्डला ने कोई उत्तर न दिया।

अब कापालिक नवकुमार का हाथ पकड़ कर लिवा ले जाने लगा। मनुष्य घाती के इस स्पर्श से नवकुमार के नसों में खून सौगुना अधिक वेग से बहने लगा। उसका खो चुका साहस फिर लौट आया। बोला, 'हाथ छोड़िए।'

कापालिक ने जवाब न दिया। नवकुमार ने फिर कहा, 'मुझे कहाँ ले जा रहे हैं?'

कापालिक बोला, 'पूजा के स्थान पर।'

नवकुमार ने पूछा, 'क्यों?'

कापालिक ने कहा, 'वध करने को।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी तेजी से नवकुमार ने अपना हाथ खींचा। जिस शक्ति से उसने हाथ खींचा था, उससे, कोई साधारण आदमी यदि उसका हाथ पकड़े होता तो हाथ छुड़ाना तो दूर, वह जमीन पर गिर पड़ता। लेकिन कापालिक का अंग हिला भी नहीं। नवकुमार की कलाई उसकी मुट्ठी में ही रही। नवकुमार के शरीर के भीतर हड्डियों के सभी जोड़ जैसे अलग हो गए। नवकुमार समझ गया—शक्ति से काम न चलेगा। कौशल की अवश्यकता है। 'ठीक है, देखा जाएगा।' ऐसा सोच कर नवकुमार कापालिक के साथ-साथ चल पड़ा।

बालू के मैदान के बीच में पहुँच कर नवकुमार ने देखा कि पहले दिन की तरह ही वहाँ एक बड़े से लक्कड़ में आग जल रही थी। चारो ओर तांत्रिक पूजा की व्यवस्था। वहाँ नर-कपाल में आसव भरा था, लेकिन कोई शव नहीं। अनुमान किया, उसे ही शव होना पड़ेगा।

वहाँ कुछ सूखे और मजबूत लता-गुल्भ पहले से इकट्ठा किए गए थे। कापालिक उनसे ही नवकुमार को कस कर बाँधने लगा। नवकुमार ने भी भरसक पूरा जोर लगाया। लेकिन कोई फल न निकला। उसने अनुमान लगाया कि इस उम्र में भी कापालिक में मतवाले हाथी का बल है। नवकुमार को जोर लगाते देख कर कापालिक ने कहा, 'मूर्ख! किसलिए शक्ति-प्रदर्शन करते हो? तेरा जन्म आज सार्थक हुआ। भैरवी की पूजा में तेरा यह मांसपिण्ड अर्पित होगा। इससे अधिक तेरे जैसे मनुष्य का और क्या सौभाग्य हो सकता है?'

नवकुमार को अच्छी तरह बाँध कर कापालिक ने उसे बालू पर डाल दिया और वध-प्रारम्भिक-पूजा में तत्पर हुआ।

सूखी लता खूब मजबूत थी और बंधन भी खूब दृढ़! अब मृत्यु निकट है। नवकुमार ने इष्ट देवता के चरणों में ध्यान लगाया। एक बार उसे अपनी जन्मभूमि की याद आई, अपना सुख का घर याद आया, एक बार बहुत दिन पहले का पिता व माता का चेहरा याद आया, दो एक बूँद आँसू गिर कर बालू में ही सूख गए। बध की प्रारंभिक क्रिया समाप्त कर कापालिक वध के लिए खड्ग लेने को आसन छोड़ कर उठा। लेकिन जहाँ खड्ग रखा था, वहाँ वह न था। आश्चर्य! कापालिका को आश्चर्य हुआ। तीसरे पहर जहाँ खड्ग ला कर उसने रखा था वहाँ से हटाया नहीं, फिर खड्ग गया कहाँ? कापालिक ने इधर-उधर खोजा। लेकिन खड्ग कहीं न मिला। तब उसने पहले तो कुटी की ओर मुँह कर के कपालकुण्डला को आवाज दी लेकिन जब बार-बार बुलाने पर भी कपालकुण्डला ने कोई उत्तर न दिया तो कापालिक की आँखें लाल और भवें कुञ्चित हुईं। वह घर की ओर चला। अवसर देख कर नवकुमार ने एक बार फिर बन्धन-मुक्त होने का प्रयत्न किया, परन्तु वह प्रयत्न भी बेकार गया।

इसी समय पास ही बालू पर फिर वही कोमल पदध्वनि सुनाई पड़ी। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पदध्वनि कापालिक की नहीं। नवकुमार ने सिर घुमा कर देखा—वही मोहिनी-मूर्ति—कपालकुण्डला थी। उसके हाथ में खड़ग् झूल रहा था।

कपालकुण्डला ने कहा, 'चुप, आवाज न हो। खड़ग् मेरे ही पास है। चुरा रखा था।'

इतना कह कर कपालकुण्डला जल्दी-जल्दी नवकुमार के लता-बन्धन को उसी खड़ग् से काटने लगी। क्षण-भर में ही उसे मुक्त कर दिया। फिर बोली, 'भागो, मेरे पीछे-पीछे आओ। रास्ता बता देती हूँ।'

कह कर कपालकुण्डला तीर की गति से रास्ता दिखाती हुई चली। नवकुमार उछल कर उसके पीछे दौड़ा।

७

अन्वेषण

'And the great Lord of Luna
Fell at that deadly Stroke,
As falls on mount Alvernus
A thunder—Smitten oak—'

—Lays of Ancient Rome

इधर कापालिक घर में कोना-कोना खोज कर और वहाँ खड़ग और कपाल-कुण्डला को न पा कर शंकित मन से बालू के मैदान में लौट आया। वहाँ आ कर देखा कि नवकुमार वहाँ न था। इससे उसे बड़ा विस्मय हुआ। कुछ देर बाद ही कटे लता बन्धन पर दृष्टि गई। तब सब समझ कर, कापालिक नवकुमार की खोज में दौड़ा। लेकिन भागने वाले किस ओर, किस रास्ते गए हैं, इसका निश्चय करना कठिन था। अंधेरे के कारण उसे कुछ न दिखा। इसलिये आहट को लक्ष्य कर वह देर तक इधर-उधर भागता रहा। लेकिन आहट भी बराबर न मिली। अतएव विशेष रूप से समझने के लिए वह बालू के एक ऊँचे शिखर पर चढ़ गया। कापालिक जिस ओर से चढ़ा उसके दूसरी ओर वर्षा के कारण स्तूप नीचे से कट गया था, उसे यह मालूम न था। शिखर पर चढ़ते ही, कापालिक के शरीर के भार से वह जर्जर स्तूप प्रचण्ड आवाज के साथ धराशायी हो गया। स्तूप के धराशायी होते समय पर्वत के शिखर से गिरे भैंसे की तरह कापलिक भी उसके साथ ही नीचे आ गिरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रय

And that very night—
Shall Romeo bear thee to Mantua. —Romeo and Juliet

अमावस की उस अंधेरी रात में दोनों दम साधे वन के भीतर घुसे। जंगली रास्ते नवकुमार के पहचाने न थे। साथ चलने वाली तरुणी के पीछे-पीछे उसके कदम पर कदम रख कर चलने के सिवा उसके पास उपाय ही क्या था ? लेकिन जंगल के घोर अंधकार के कारण वह तरुणी भी हर समय दिखाई नहीं पड़ रही थी। अक्सर ऐसा होता कि तरुणी एक ओर बढ़ती तो नवकुमार दूसरी ओर बढ़ जाता। तब युवती ने कहा, 'मेरा आँचल पकड़ो।'

नवकुमार तरुणी का आँचल पकड़ कर चलने लगा। धीरे-धीरे उन लोगों की गति कम होने लगी। अंधेरे में कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। मात्र कभी किसी नक्षत्र के प्रकाश से कोई बालू-स्तूप का शिखर दिख जाता या कहीं जुगनुओं से घिरे वृक्ष के आकार का आभास मिल जाता।

नवकुमार को साथ लिए कपालकुण्डला जंगल के गहरे भाग में पहुँची। तब रात का दूसरा पहर था। तभी अंधेरे में ही सामने जंगल के भीतर एक बहुत ऊँचे मन्दिर का शिखर दिखाई पड़ा। उसके पास ही ईंटों की चारदीवारी से घिरा एक घर भी दीख पड़ा। कपालकुण्डला चारदीवारी के दरवाजे के पास जाकर उस पर थपकियाँ देने लगी। काफी देर तक बार-बार खटखटाने के बाद एक व्यक्ति ने भीतर से कहा, 'कौन है ? कपालकुण्डला है क्या ?'

कपालकुण्डला ने कहा, 'दरवाजा तो खोलो।'

दरवाजा खुला। जिस आदमी ने दरवाजा खोला, वही मन्दिर की देवी का सेवक तथा अधिकारी था। आयु उसकी पचास के ऊपर ही थी। कपालकुण्डला ने उसके केश-हीन सिर को हाथों से पकड़ कर झुकाया और उसके कानों के पास अपना मुँह ले जा कर अति संक्षेप में अपने साथी के बारे में बताया।

पुजारी बहुत देर तक सिर पर हाथ रखे कुछ सोचते रहे। फिर कहा, 'यह बड़ा खतरनाक काम है। महापुरुष जो चाहें सो कर सकते हैं। लेकिन और चाहे जो हो पर माँ की कृपा से तुम्हारा अमंगल कदापि न होगा। अच्छा तो वह आदमी कहाँ है ?'

'इधर आओ।' कह कर कपालकुण्डला ने नवकुमार को पुकारा। नवकुमार आड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में ही खड़ा था, बुलाए जाने पर भीतर गया। पुजारी ने उससे कहा 'आज तुम यहीं छिपे रहो। कल सबेरे तुम्हें मेदिनीपुर के रास्ते पर छोड़ आऊँगा।'

पुजारी यह भाँप गया कि नवकुमार ने अभी तक कुछ खाया नहीं है। अतः वह नवकुमार के लिए भोजन-व्यवस्था में व्यस्त हो गया। नवकुमार ने मना किया कि उसकी खाने को तनिक भी इच्छा नहीं है। वह सिर्फ आराम करना चाहता है। तब पुजारी ने अपनी रसोई में ही नवकुमार के लिये बिस्तर बिछा दिया। नवकुमार के लेट जाने के बाद कपालकुण्डला समुद्र के किनारे वापस जाने की सोचने लगी। तब उसकी ओर ममता व स्नेह से देख कर पुजारी ने कहा, 'अभी जाना मत। थोड़ी देर ठहरो।.....एक भीख माँगता हूँ।'

'क्या ?' कपालकुण्डला ने तनिक विस्मय से पूछा।

'जब से तुम्हें देखा है तुम्हें माँ कहता हूँ। देवी के चरणों की शपथ ले कर कहता हूँ कि तुम्हें माता से अधिक स्नेह करता हूँ। मेरी भीख की तुम अवहेलना तो न करोगी ?'

'नहीं, बोलो न !'

'मैं यही भीख माँगता हूँ कि अब तुम लौट कर वहाँ कभी मत जाना।'

'क्यों ?'

'वहाँ जाने पर अब तुम्हारी रक्षा न हो सकेगी।'

'यह तो मैं भी समझती हूँ।'

'तो फिर वापस जाने को क्यों कहती हो !'

'वहाँ वापस न जाकर मैं और कहाँ जा सकती हूँ ?'

'इसी आदमी के साथ दूसरे देश में चली जाओ।'

कपालकुण्डला स्तब्ध रह गई। तब पुजारी ने पूछा, 'माँ क्या सोच रही हो ?'

'जब तुम्हारा शिष्य आया था तब तुमने कहा था कि युवती का इस तरह युवा पुरुष के साथ जाना ठीक नहीं है। अब जाने के लिए क्यों कहते हो।'

'तब तुम्हारे जीवन के लिए शंका नहीं थी, अब है। आओ, चल कर माँ से आज्ञा ले आयें।' यह कह कर दीपक हाथ में ले कर पुजारी ने मन्दिर का द्वार खोला। कपालकुण्डला चुपचाप उसके पीछे-पीछे गई। मन्दिर में आदमकद कराल काली मूर्ति स्थापित थी। दोनों ने भक्ति-भाव से प्रणाम किया। आचमन करके पुजारी ने एक विल्वपत्र उठाया और मंत्र पढ़ कर उसे मूर्ति के पावों में रख कर उसकी ओर एकटक निहारने लगा। थोड़ी देर बाद पुजारी ने कपालकुण्डला से कहा, 'माँ, देखो, देवी ने अर्घ्य ग्रहण कर लिया। विल्वपत्र गिरा नहीं, जिस कामना से अर्घ्य दिया था उसमें अब मंगल ही मंगल है। तुम इस आदमी के साथ निश्चिन्त हो कर जाओ। मैं विषयी मनुष्यों की रीतियों और चरित्र को खूब जानता हूँ। तुम अगर इसके गले पड़ कर इसके साथ जाओगी तो यह व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अपरिचित युवती को साथ ले जाने में संकोच करेगा। लोग भी तुमसे घृणा करेंगे। तुम कहती हो कि यह व्यक्ति ब्राह्मण है, मैं भी इसके गले में यज्ञोपवीत देख रहा हूँ। यदि यह तुम्हें व्याह कर ले जाये तो सब प्रकार से शुभ होगा। नहीं तो मैं भी तुम्हें इसके साथ जाने को न कहूँगा।'

'ब्या.....ह...!' कपालकुण्डला बहुत धीरे से बोली, 'ब्याह का नाम मैंने तुम लोगों के ही मुख से सुना है, लेकिन ब्याह क्या होता है, मैं नहीं जानती। ब्याह के लिये क्या करना होता है ?'

पुजारी मुस्करा उठा। बोला, 'स्त्रियों के लिए ब्याह ही धर्म की एकमात्र सीढ़ी है। स्त्री को पति की सहधर्मिणी कहते हैं। जगतमाता भी तो शिवजी की ब्याहता हैं।'

पुजारी ने समझा कि इतना कह कर उसने सब कुछ समझा दिया। कपालकुण्डला ने भी सोचा कि सब कुछ समझ गई। बोली, 'तो ठीक है, लेकिन उन्हें छोड़ कर जाने को मन नहीं कहता। इतने दिनों तक उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है।'

'पालन-पोषण क्यों किया है, यह तुम्हें नहीं मालूम। स्त्री का सतीत्व नष्ट किये बिना कोई तान्त्रिक सिद्ध नहीं होता। तुम्हें शायद यह बात नहीं मालूम। मैंने भी मन्त्र पढ़ा हैं। माता जगतमाता संसार की माता हैं। वे सतीत्व नाशवाली पूजा कभी ग्रहण नहीं करतीं। इसीलिये मैं उस महापुरुष की इच्छा के विरुद्ध काम कर रहा हूँ। उसकी छाया से भाग कर तुम कभी बुरा न करोगी। अभी तक उसकी साधना की सिद्धि का समय नहीं आया था इसीलिए तुम अभी तक बची हुई हो। आज तुमने जो काम किया है इससे तुम्हारे प्राण जाने का डर है। इसीलिए तुमसे भाग जाने को कह रहा हूँ। भवानी की भी यही आज्ञा है। इसलिए तुम जाओ। अगर मेरे पास तुम्हें रख पाने का उपाय होता तो जरूर रखता। लेकिन यह भरोसा नहीं है यह तो तुम जानती ही हो।'

फिर दोनों मन्दिर के बाहर आये। कपालकुण्डला को एक जगह बैठा कर पुजारी नवकुमार के पास गया। वह जाकर नवकुमार के सिरहाने बैठ गया। पूछा, 'महाशय, क्या आप नींद में हैं ?'

नवकुमार की स्थिति नींद में सोने की न थी। वह चुपचाप पड़ा अपनी दशा पर ही सोच रहा था। बोला, 'नहीं तो।'

पुजारी ने कहा, 'महाशय, मैं आप का पूरा परिचय जानना चाहता हूँ। क्या आप ब्राह्मण हैं ?'

'जी हाँ।'

'किस श्रेणी के ?'

'राढ़ीय।'

'हम लोग भी राढ़ीय ब्राह्मण हैं, वंश में कुलाचार्य हैं, लेकिन इस समय माता के चरणों की सेवा में हैं। महाशय का नाम ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नवकुमार शर्मा ।'

'निवास ?'

'सप्तग्राम ।'

'आपलोग किस घराने के है ?'

'बन्द्योपाध्याय ।'

'अब तक कितनी शादियाँ की हैं ?'

'सिर्फ एक ।'

नवकुमार ने कह तो दिया पर वास्तव में उसकी शादी नहीं हुई थी । रामगोविन्द घोषाल की पुत्री पद्मावती से उसका विवाह अवश्य हुआ था पर उसे विवाह नहीं कहा जा सकता । विवाह के बाद कुछ दिनों तक पद्मावती नैहर में रही फ़िर ससुराल आयी । तब उसकी आयु तेरह वर्ष की थी । रामगोविन्द सपरिवार जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए गये । इस समय पठान बंगाल से निकाले जाकर उड़ीसा में डेरा डाले हुए थे । उनके दमन के लिए अकबर शाह पूरा प्रयत्न कर रहे थे । जब रामगोविन्द घोपाल उड़ीसा से वापस आ रहे थे तब मुगलों और पठानों में खूब लड़ाई चल रही थी । वापस आते समय रास्ते में वे पठान सेना के हाथ में पड़े । पठान उस समय धन के लिए पथिकों को सताते थे । रामगोविन्द उग्र स्वभाव के थे । पठानों से उलझ गए, पठानों ने उन्हें सपरिवार कैद कर लिया । अन्त में जातीय धर्म छोड़ कर सपरिवार मुसलमान धर्म स्वीकार करने पर ही उन्हें छुटकारा मिला ।

रामगोविन्द घोषाल किसी तरह जान बचा कर सपरिवार घर वापस आये, लेकिन मुसलमान धर्म स्वीकार कर चुके थे इसलिए वे समाज व जाति से बहिष्कृत हो गए । तब नवकुमार के पिता जीवित थे । उन्हें जातिभ्रष्ट समधी के साथ जातिभ्रष्टा बहू का भी परित्याग करना पड़ा । फिर नवकुमार की उसकी पत्नी से कभी भेंट न हो सकी ।

जाति से च्युत और समाज से वहिष्कृत होकर रामगोविन्द घोपाल ने गाँव का परित्याग कर दिया । जाति व धर्म का त्याग हो जाने पर राजदरबार से ऊँचा पद पाने की लालसा से वे अपने परिवार के साथ राजधानी—राजमहल में जाकर रहने लगे । अब उन्होंने सपरिवार मुसलमान नाम भी धारण कर लिया । राजमहल जाने के बाद श्वसुर और पत्नी की क्या दशा हुई, इसे मालूम करने का नवकुमार के पास कोई उपाय व साधन न था और वे कुछ भी मालूम न कर सके । पर वैराग्य के कारण नवकुमार ने दूसरी शादी न की ।

पुजारी यह सब बातें न जानते थे । उन्होंने मन में सोचा कि कुलीन ब्राह्मण के दो विवाह भी हों तो कोई बुराई नहीं । फिर कहा, 'आप से एक बात पूछने आया था । जिस कन्या ने आप के प्राणों की रक्षा की हैं, उसके ही प्राण अब खतरे में है । जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
महापुरुष के आश्रम में वह रहती है वे बड़े भीषण व भयंकर स्वभाव के हैं। आप की जो दशा हो गई थी, वापस लौटने से वही दशा इसकी भी होगी। क्या उसकी रक्षा का आप कोई उपाय नहीं सोच सकते ?'

नवकुमार उठ कर बैठ गया। बोला, 'उसकी सुरक्षा की मुझे भी आशंका है। आप तो सब कुछ जानते हैं, आप ही कोई उपाय बताइए। मेरे प्राण देने से भी यदि उसकी रक्षा हो सके तो मैं तैयार हूँ। मैं सोचता हूँ कि यदि मैं उस नरघातक के पास लौट जाकर आत्म-समर्पण कर दूँ तो इसकी रक्षा अवश्य हो जायगी।'

पुजारी हँस पड़ा, बोला, 'तुम पागल हो। भला इससे क्या लाभ होगा ? तुम्हारे प्राण तो जाएँगे ही और उस बेचारी पर भी महापुरुष का क्रोध बना रहेगा। बस एक ही उपाय है।'

'कौन-सा उपाय है ? बतलाइये।'

'यह आपके साथ ही चली जाय। मेरे यहाँ रही तो दो-एक दिनों में ही पकड़ ली जायेगी क्योंकि वह बड़ा दुर्घट है। महापुरुष इस मंदिर में बराबर आते हैं। इसीलिए मैं कपालकुण्डला के भाग्य में स्पष्ट अमंगल देख रहा हूँ।'

नवकुमार ने साग्रह पूछा, 'मेरे साथ जाने में उसकी रक्षा हो सकेगी ? ऐसा कैसे सम्भव है ?'

'यह किसकी कन्या है, किस कुल की है, यह सब आप कुछ भी नहीं जानते। इसका चरित्र कैसा है, यह भी आप नहीं जानते। फिर भी क्या आप इसे जीवनसंगिनी बनाएँगे ? ब्याह करके लिवा ले जाने पर क्या इसे अपने घर में जगह देंगे ?'

थोड़ी देर सोच कर नवकुमार बोला, 'अपने प्राण बचाने वाली के लिए मैं कुछ भी कर सकता हूँ। ये मेरे परिवार में मिल कर रहेंगी।'

'पर जब आपके आत्मीयजन पूछेंगे कि यह किसकी स्त्री है तो आप क्या जवाब देंगे ?'

'आप ही इसका जवाब बता दीजिए, मैं वही कहूँगा।'

'अच्छी बात है। लेकिन एक पखवारे से अधिक का यह रास्ता आप दोनों बिना किसी अन्य की सहायता के काटेंगे कैसे ? देख कर लोग भी क्या कहेंगे ? स्वजनों को क्या समझाओ गे ? फिर मैंने भी इस कन्या को सदा माँ कहा है। मैं भी किस तरह उसे किसी अपरिचित के साथ अकेला ही दूर देश भेज दूँ ?'

'तो आप भी साथ चलिए।'

'मैं चलूँगा तो माता की सेवा कौन करेगा ?'

नवकुमार ने तनिक क्षुब्ध हो कर कहा, 'तो आप भी कोई उपाय नहीं बता सकते ?'

'उपाय तो एक है और बहुत ही अच्छा, लेकिन वह आप की उदारता की प्रतीक्षा में है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'वह क्या है ? मैं किसी काम से भी मुँह नहीं मोड़ता। आप बताइए, क्या उपाय है ?'

'सुनिए, वह ब्राह्मण-कन्या है। मुझे ठीक मालूम है। बचपन में इसे क्रिस्तान-तस्करों ने चुरा लिया था, बाद में समुद्र-तट पर इसे छोड़ गये। बाद में इसे पाकर हमारे कापालिक ने योग-सिद्धि की कामना से इसे पाला। अब वह जल्द ही अपने प्रयोजन की सिद्धि करने वाले हैं। यह अभी तक कुमारी ही हैं। चरित्र परम पवित्र है। आप इससे विवाह करके अपने साथ ले जाइए। तब कोई कुछ न कहेगा। मैं विधिवत् विवाह करा दूँगा।'

नवकुमार उठ कर खड़ा हो गया। वह बेचैन सा इधर-उधर टहलने लगा। कुछ देर बाद पुजारी ने कहा, 'अब इस समय आप सो जाइए। अब कल सुबह निर्णय करूँगा। इच्छा हो तो आप अकेले चले जाइए गा। आप को मेदिनीपुर का मैं रास्ता बता दूँगा।'

१

देव-निकेतन में

'करावं—अलं रुदितेन; स्थिरा भव, इतः पन्थानमालोकय।' —शकुन्तला

सबेरे पुजारी नवकुमार के पास आये। देखा, तब तक शायद नवकुमार सोया नहीं था। पूछा, 'क्या निर्णय किया ?'

नवकुमार ने जवाब दिया, 'आज से कपालकुण्डला मेरी धर्मपत्नी है। उसके लिए यदि मुझे संसार भी छोड़ना पड़ेगा तो वह भी करूँगा। लेकिन कन्या-सम्प्रदान कौन करेंगे ?'

पुजारी का चेहरा खुशी से खिल उठा। मन में सोचा—शायद इतने दिनों बाद माता जगदम्बा की कृपा से मेरी कपालिनी की गति हुई। फिर बोले, 'मैं ही सम्प्रदान करूँगा।'

पुजारी अपने कमरे में गये। वहाँ एक बस्ते में बहुत ही जीर्ण अवस्था में पुराने ताड़-पत्र रखे थे। उनमें तिथि-नक्षत्रादि का लेखा था। उसी में से पढ़ कर और सब समझ कर वापस आये और बोले, 'आज यद्यपि विवाह की लग्न नहीं है, फिर भी कोई बाधा नहीं है। आज ही गोधूलि लग्न में कन्या-सम्प्रदान करूँगा। तुम आज उपवास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोगे। अपने कुल के अन्य आचरण घर जा कर पूरे करना। यहाँ ऐसी जगह है जहाँ तुम्हें एक दिन के लिए छिपा कर रख सकता हूँ। अगर आज वे आवेंगे तो तुम दोनों की टोह भी उन्हें न मिलेगी। बाद में शादी हो जाने के बाद दोनों प्राणी सबेरे अपने घर चले जाना।'

नवकुमार ने सहमति प्रकट की। स्थिति को देखते हुए जहाँ तक संभव था, सब काम शास्त्रानुकूल हुआ। गोधूलि लग्न में ही नवकुमार के साथ उस कापालिक-पालिता कपालकुण्डला का विवाह हो गया।

उस दिन कापालिक की कोई खबर न मिली। दूसरे दिन सबेरे ही तीनों जन यात्रा की तैयारी करने लगे। पुजारी उन्हें छोड़ने मेदिनीपुर के रास्ते तक जाएँगे।

चलते समय कपालकुण्डला काली जी के दर्शन करने गई। भक्ति भाव से देवी को प्रणाम कर एक विल्वपत्र मूर्ति के चरणों पर रख कर एकटक मूर्ति को देखने लगी। विल्वपत्र नीचे गिर गया।

कपालकुण्डला पूरी भक्तिन थी। मूर्ति के चरणों से विल्वपत्र गिर गया, देख कर डर गई। इसकी सूचना उसने पुजारी को भी दी। पुजारी भी उदास हो गये। बोले, 'अब तो कोई उपाय नहीं है। अब तो पति ही तुम्हारा धर्म है। पति अगर श्मशान जाए तो तुम्हें भी साथ ही जाना होगा। सो अब चुपचाप चल ही पड़ो।'

सभी चुपचाप चल पड़े। काफी दिन चढ़ने के बाद मेदिनीपुर वाले रास्ते पर आये। वहाँ से पुजारी वापस हुए। कपालकुण्डला रो पड़ी। उसका इस संसार में जो एकमात्र सुहृद था, वह विदा हो रहा था।

पुजारी भी रो पड़े। फिर आँखों के आँसू पोंछ कर कपालकुण्डला के कानों में धीरे से कहा, 'माँ, तू जानती ही है कि माता की कृपा से मुझे अर्थाभाव नहीं है। तेरी साड़ी में जो कुछ बाँध दिया है उसे अपने पति को दे कर कहना कि एक पालकी किराए पर कर लेगा।'

यह कह कर पुजारी रोते हुए वापस हुए। कपालकुण्डला भी रोती हुई आगे बढ़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा भाग

| १ |

राजपथ में

'There—now lean on me,
Place your foot here—'
—Manfred.

कपालकुण्डला के जीवन का एक सर्ग इस प्रकार समाप्त हुआ।

मेदिनीपुर आ कर नवकुमार ने पुजारी के दिये हुए धन से कपालकुण्डला के लिए एक दासी, एक रक्षक और पालकी-कहार कर दिया। धनाभाव के कारण खुद पैदल चला। पिछले दिन के परिश्रम के कारण वह काफी थक गया था। दोपहर के भोजन के बाद कहार पालकी ले कर काफी आगे बढ़ गये। शाम हुई तो जाड़े के बादलों से आकाश ढँक गया। जब रात आई तब तक सारी पृथ्वी अंधकार में डूब गई थी। धीरे-धीरे वर्षा शुरू हुई। कपालकुण्डला के पास पहुँचने के लिए नवकुमार जल्दी जल्दी चलने लगा। मन में यही आशा थी कि पहली सराय में उससे भेंट होगी। लेकिन सराय में वह न मिली। रात काफी बीत चुकी थी। नवकुमार जल्दी-जल्दी पाँव बढ़ा कर चला। अकस्मात किसी कठोर चीज पर उनका पाँव पड़ा। पाँव के नीचे वह कड़ी चीज चर-चरा कर टूट गई। नवकुमार रुक गया। फिर सम्हल कर आगे बढ़ा। पाँव में लगी चीज को हाथ में उठाया। देखा, टूटा तख्ता सा था।

अँधेरे में भी वह देख सका कि एक बड़ी चीज सामने पड़ी है। टटोल कर समझा—एक बड़ी पालकी थी। उसके मन में तत्काल कपालकुण्डला के सम्बन्ध में विपत्ति की शंका हुई। तभी उसके पाँव से कुछ टकराया। लगा जैसे किसी आदमी का शरीर हो। टटोल कर देखा—किसी की देह ही थी। बहुत ठण्डा स्पर्श। नब्ज देखी, गतिहीन थी। जान निकल चुकी है। फिर प्रयत्न करके अच्छी तरह देखा—जैसे साँस चलने की आहट मिली। साँस मिली पर नब्ज नदारद, ऐसा क्यों ? नाक पर हाथ रख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देखा—साँस नहीं चल रही है। फिर यह भ्रम क्यों? शायद आस-पास कोई जीवित मनुष्य हो। पुकार कर पूछा, 'यहाँ कोई है?'

मृदु स्वर में उत्तर मिला, 'है!'

'तुम कौन हो?'

स्त्री-कण्ठ से उत्तर के स्थान पर प्रश्न आया, 'तुम कौन हो?'

'क्या तुम कपालकुण्डला हो?'

'कौन कपालकुण्डला? मैं नहीं जानती। मैं पथिक हूँ। डाकुओं के हाथों लूटी गई हूँ।'

'क्या हुआ है?'

'डाकुओं ने मेरी पालकी तोड़ दी, मेरे एक कहार को मार डाला, बाकी सब डर कर भाग गये। डाकू मेरे शरीर के गहने छीन कर मुझे पालकी से बाँध गये हैं।'

बढ़ कर नवकुमार ने देखा कि सचमुच एक स्त्री पालकी के साथ कपड़े से कस कर बँधी है। नवकुमार ने शीघ्रता से उसे खोला और पूछा, 'क्या तुम उठ सकती हो?'

'मुझ पर भी एक लाठी पड़ी है। पैर में बड़ा दर्द है। मदद पा कर उठ सकती हूँ।'

नवकुमार ने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। उसे पकड़ कर स्त्री उठी। नवकुमार ने पूछा, 'क्या चल सको गी?'

'आपके पीछे कोई यात्री आ रहा था, आपने देखा है?'

'नहीं।'

'चट्टी कितनी दूर होगी?'

'कह नहीं सकता पर लगता है, पास ही है।'

'अकेले अंधेरे मैदान में बैठ कर क्या करूँगी। आप के साथ चट्टी तक जाना ही ठीक होगा। कोई सहारा दे तो चल सकती हूँ।'

'विपत्ति के समय संकोच करना मूर्खता है। मेरे ही कंधे का सहारा ले कर चलो।'

नवकुमार के कंधे पर भार दे कर स्त्री आगे बढ़ी।

चट्टी सचमुच पास ही थी। उन दिनों चट्टी के इतने निकट भी लूटपाट करने में डाकू हिचकते न थे। नवकुमार उस स्त्री के साथ चट्टी में आया।

नवकुमार ने देखा कि उसी चट्टी में कपालकुण्डला ठहरी थी। नौकरों ने एक कमरा ठीक कर दिया था। उसके बगल वाला कमरा नवकुमार ने अपनी संगिनी के लिए ठीक कर दिया। चट्टी का एक आदमी वहाँ दीपक रख गया। दीपक के प्रकाश में नवकुमार ने संगिनी को देखा, वह अनुपम सुन्दरी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग-अश्राय में

'क्वैषा योषित् प्रकृतिचपला ।'

—उद्धवदूत ।

रमणी अनुपम सुन्दरी थी, पर सर्वाङ्ग सुन्दरी नहीं। उसका कद मझोले से कुछ ही ऊँचा था, होंठ कुछ दबे हुए, और सही अर्थों में उसके रंग को गोरा नहीं कहा जा सकता। बरसात में लता जिस प्रकार अपनी पत्तियों से लहराती रहती है, उसकी देह भी अपनी सम्पूर्णता के कारण टलमल कर रही थी। लम्बाई भी शरीर के सौंदर्य को बढ़ाती थी। रंग गोरा न होने पर भी नये सोने सा आकर्षक व चमक दार है। दोनों आँखें दूसरों के मन तक उतर कर देखती हैं। इन कारणों से जब वह रमणी अपनी लम्बी गरदन टेढ़ी कर के खड़ी होती तो यह सहज ही मालूम होता कि वह सुन्दरियों की रानी है।

रमणी की आयु सत्ताइस वर्ष है।—भादों की भरी नदी। भादों के महीने की नदी के जल की तरह उसकी रूपराशि टलमल कर रही थी। रंग से, आँखों से, सब से उसके सौंदर्य के भराव का ही बोध होता था। पूरी जवानी के भार से उसकी देहराशि सदा चपल रहती। वैसी ही चपल, जैसे वर्षा के बाद नदी। वह चपलता जैसे प्रतिक्षण नई-नई शोभा धारण कर रही हो। नवकुमार एकटक उस शोभा का रसास्वादन करता रहा।

नवकुमार की पलकें नहीं गिर रही हैं, देख कर उस सुन्दरी ने ही पूछा, 'आप क्या देख रहे हैं ? क्या मेरा रूप ?'

नवकुमार भला आदमी है। घबरा कर उसने सिर झुका लिया, बोला कुछ नहीं। तब सुन्दरी हँस कर बोली, 'आपने क्या कभी कोई स्त्री नहीं देखी ? या आप समझते हैं कि मैं बहुत सुन्दरी हूँ ?'

यही बात यदि सहज-भाव से कही जाती तो तिरस्कार जैसी लगती, लेकिन उस रमणी ने यह बात जिस प्रकार मधुर बना कर कही थी वह व्यंग्य के अलावा और कुछ नहीं लगी। नवकुमार जान गया कि वह रमणी बहुत मुखर है। तो ऐसी मुखरा की बात का जवाब भी क्यों न दिया जाय ? उसने कहा, 'मैंने स्त्रियों को देखा है, पर ऐसी सुन्दरी नहीं देखी।'

रमणी ने सगर्व पूछा, 'क्या एक भी नहीं?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचानक ही नवकुमार के मन में कपालकुण्डला का रूप सजीव हो उठा। उसने भी सगर्व ही उत्तर दिया, 'एक भी नहीं, ऐसा नहीं कह सकता।'

जैसे पत्थर पर लोहे की चोट पड़ी। उस रमणी ने कहा, 'यह तो बहुत अच्छा है। वह क्या आपकी गृहणी हैं ?'

'क्यों, गृहणी ही क्यों समझ बैठीं ?'

बंगाली अपनी गृहणी को ही सब से अधिक सुन्दरी समझते हैं।'

'मैं बंगाली हूँ। आप क्या बंगाली नहीं हैं ? बंगाली जैसी ही बातचीत तो आप कर रही हैं। फिर आप किस देश की हैं ?'

रमणी ने एक बार अपने पहनावे की ओर नजर डाली और फिर बोली, 'यह अभागिन बंगालिन नहीं है, पश्चिम की मुसलमानिन है।'

नवकुमार ने बहुत गौर कर के देखा, पहनावा सचमुच पछाँह की मुसलमानिन जैसा ही है, लेकिन बोल-चाल तो ठेठ बंगालिन जैसा ही है। शुद्ध बंगाली उच्चारण !

थोड़ी देर के बाद रमणी ने कहा, 'महाशय, चतुराई से बात-बात में आप ने तो मेरा परिचय पूछ लिया, अब अपना परिचय भी देने की कृपा कीजिए। जिस घर में वह अद्वितीया रूपवती गृहिणी निवास करती है, वह घर कहाँ है ?'

'मैं सप्तग्राम में रहता हूँ।'

सुन कर रमणी चुप रह गई, बोली नहीं। एकाएक मुँह नीचा कर के वह दिये की बत्ती जगाने लागी। थोड़ी देर की खामोशी के बाद बिना मुँह ऊपर उठाए ही उसने कहा, 'खादिमा का नाम मोती है। जनाब का इस्मशरीफ़ ?'

'मुझे नवकुमार शर्मा कहते हैं।'

फिर दिया बुझ गया।

| ३ |

सुन्दरी दर्शन

'—धरो देवि मोहन मूरति
देहो आज्ञा, साजाइ ओ वरवपू आनि
नाना आभरण !' —मेघनादवध

चट्टी के मालिक को बुला कर नवकुमार ने दूसरा दिया लाने के लिए कहा। दूसरा दिया आने से पहले उसने अंधेरे में एक लम्बी साँस सुनी। दिया आ जाने के कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
देर बाद मुसलमान-सा दिखने वाला एक नौकर आया। उसे देख कर रमणी ने कहा, 'यह क्या, तुम लोगों को इतनी देरी क्यों लगी ? और सब कहाँ हैं ?'

नौकर ने उत्तर दिया, 'कहार सब दारू पी कर मतवाले हो रहे थे। उन्हें ही इकट्ठा करके लाने में हम पालकी के पीछे छूट गये थे। बाद में टूटी हुई पालकी पड़ी देख कर और वहाँ आपको न पाकर हमारे तो होश ही उड़ गये थे। कुछ वहीं खड़े हैं, कुछ आप की खोज में इधर-उधर गये हैं। मैं भी यहाँ आप को ढूँढ़ने ही आया था।'

'उन सब को लिवा लाओ।'

नौकर सलाम कर के चला गया। रमणी काफी देर तक हथेली पर गाल धरे बैठी रही।

नवकुमार ने विदा माँगी, तब मोती जैसे स्वप्न से जागी और हड़बड़ा कर खड़ी हो कर पहले के भाव से बोली, 'आप कहाँ रहेंगे ?'

'इसी के बगल वाले कमरे में।'

'इस कमरे के पास एक पालकी देखी थी। क्या आपके साथ कोई है ?'

'हाँ, मेरी स्त्री साथ है।'

मोती बीबी को जैसे फिर व्यंग्य का अवसर मिला, पूछा, 'वही क्या अपरूप सुन्दरी हैं ?'

'वह तो देख कर ही जानिएगा।'

'क्या देख सकती हूँ ?'

'हर्ज क्या है ?'

'तो फिर कृपा कीजिए। अद्वितीया रूपवती को देखने के लिए बड़ा कौतूहल हो रहा है। आगरे जाकर कह सकूँगी। पर अभी नहीं, अभी आप जाइये। थोड़ी देर बाद मैं आप को खबर भेजूँगी।'

फिर नवकुमार चला गया।

कुछ देर बाद बहुत से आदमी, नौकर-चाकर, दासियाँ, कहार संदूक आदि सामान लिए हुए आ उपस्थित हुए। एक पालकी भी आई, उसमें एक नौकरानी थी। थोड़े समय बाद नवकुमार के पास खबर आई कि बीबी ने आप को सलाम कहा है।

फौरन ही नवकुमार मोती बीबी के पास आया। देखा, वहाँ तो इस बार दूसरा ही रंग है। पहले वाली पोशाक उतार कर बीबी ने मोती और सोने के तरह-तरह के कामवाले जेवरात और कपड़े पहन रखे हैं। सारा शरीर जेवरों से भरा था। जैसे जहाँ जो कुछ अटा—कुन्तल में, कबरी में, कपाल में, कोरों में, कानों में, गले में, सीने पर, बाँहों में, सभी जगह सोने के बीच हीरे आदि रत्न जगमगा रहे हैं। नवकुमार की आँखें चौंधिया गईं। उसका अनुभव था कि अधिकांश स्त्रियाँ सोने के अधिक गहने पहनने पर अक्सर कुछ बदसूरत दिखते लगती हैं, लेकिन मोती बीबी इसके विपरीत दिखी। अनगिनत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारों की माला से लदे आकाश की तरह देह पर लदे गहनों की अधिकता और भी सौंदर्य बढ़ाने लगा। सुन्दरता की प्रभा दुगुनी हो उठी थी।

मोती बीबी ने ही नवकुमार से कहा, 'चलिए महाशय, आप की सुन्दरी पत्नी से परिचय प्राप्त कर लूं !'

नवकुमार बोला, 'पर इसके लिए इतने गहने पहनने की जरूरत न थी, मेरी स्त्री के पास तो एक भी गहना नहीं है।'

'समझ लीजिए कि दिखाने के लिए ही गहने पहने हैं। स्त्रियों के पास गहने रहें तो उनसे बिना दिखाए नहीं रहा जाता। खैर, चलिए अब।'

नवकुमार मोती बीबी को साथ ले कर चला। पालकी पर आने वाली नौकरानी भी साथ चली। उसका नाम पेशमन है।

उस समय कपालकुण्डला सराय वाले कमरे के गीले फर्श पर अकेली ही बैठी थी। मात्र एक दिया टिमटिमाता सा जल रहा था। खुले केश पीछे अंधेरा किए हुए थे। मोती बीबी ने जब उसे पहले-पहल देखा तो होठों और कोरों में जरा मुस्कराहट खिली। फिर अच्छी तरह देख सकने के उद्देश्य से मोती बीबी दिया उठा कर कपालकुण्डला के चेहरे के पास ले गई। तब वह मुस्कराहट वाला भाव दूर हो गया। मोती बीबी का चेहरा एकाएक गंभीर हो उठा। वह बस एकटक देखती रही। किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली। मोती बीबी मुग्ध थी और कपालकुण्डला विस्मित।

कुछ देर के बाद मोती बीबी चुपचाप अपने शरीर से गहने उतारने लगी। अपने अंग-अंग से गहने उतार-उतार कर मोती बीबी कपालकुण्डला को पहनाने लगी। कपालकुण्डला कुछ बोल न सकी। नवकुमार ही को बोलना पड़ा, 'यह क्या हो रहा है ?'

मोती बीबी ने कोई जवाब न दिया।

सभी गहने पहनाये जा चुकने पर, मोती बीबी ने नवकुमार से कहा, 'आप ने सच ही कहा था। ऐसा खूबसूरत फूल तो राजाओं की फुलवाड़ी में भी नहीं खिलता। अफसोस यह है कि यह खूबसूरती मैं राजधानी में नहीं दिखा सकी। ये गहने इन्हीं अंगों के लायक हैं, इसीलिए इन्हें ही पहना दिया। आप भी कभी-कभी पहना कर इस मुखरा परदेसिन को याद किया कीजिएगा।'

नवकुमार चकित, बोला, 'यह सब क्या ? ये तो बहुत कीमती हैं ! और मैं यह सब लूँगा भी क्यों कर ?'

'ईश्वर के दिए, मेरे पास और भी हैं। मैं नंगी नहीं रह जाऊँगी। इन्हें पहना कर अगर मैं सुखी होती हूँ तो आप बाधा क्यों डालते हैं ?' कहते हुए मोती बीबी घूम कर दासी के साथ चली गई।

अकेला होने पर पेशमन ने मोती बीबी से पूछा, 'बीबी जान, यह आदमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन था ?'

मुसलमान सुन्दरी ने धीरे से कहा, 'मेरा शौहर।'

|४|

पालकी में

'.....खुलिनु सत्त्वरे,
कंकण, वलय, हार, सींथि, कण्ठमाला,
कुण्डल, नूपुर, काञ्ची।' —मेघनादवध

गहने की क्या दशा हुई सो सुनिये। मोती बीबी ने गहने रखने के लिए एक चाँदी मढ़ी हाथीदाँत की सँदूकची भेज दी। डाकू उसका थोड़ा सा ही सामान लूट सके थे। उसके पास जो कुछ था, उसके अलावा और कुछ नहीं मिला।

दो थान गहने कपालकुण्डला के शरीर पर छोड़ कर बाकी सब नवकुमार ने उसी सन्दूकची में रख दिया। दूसरे दिन मोती बीबी सबेरे ही वर्दमान की ओर और नवकुमार पत्नी के साथ सप्तग्राम की ओर चल पड़े। कपालकुण्डला को पालकी पर बैठा कर नवकुमार ने गहनों की सन्दूकची भी साथ ही रख दी। कहार सहज ही नवकुमार को पीछे छोड़ कर पालकी लेकर आगे बढ़ गये। बीच-बीच में पालकी का दरवाजा खोल कर चारो ओर देखती हुई कपालकुण्डला चली जा रही थी। उसे देख कर एक भिखारी भीख माँगता हुआ पालकी के साथ-साथ चला।

कपालकुण्डला ने कहा, 'मेरे पास तो तुम्हें देने लायक कुछ भी नहीं है।'

कपालकुण्डला की देह पर जो दो थान गहने थे, उनकी ओर उँगली उठा कर भिखारी ने कहा, 'यह क्या कहती हो माँ ? तुम्हारे पास इतने हीरे-मोती हैं, और कहती हो कि कुछ नहीं है ?'

कपालकुण्डला ने पूछा, 'गहने पाकर तुम संतुष्ठ होगे ?'

भिखारी थोड़ा विस्मित हुआ। भिखारी की आशा अपरिमित। क्षण भर चुप रह कर बोला, 'होऊँगा क्यों नहीं ?'

अकपट मन से कपालकुण्डला ने गहनों की संदूकची भिखारी के हाथों में रख दी। देह पर लदे गहने भी उतार कर दे दिये।

भिखारी कुछ देर तक विह्वल रहा। दास-दासियों को कुछ भी मालूम न हो सका। भिखारी की विह्वलता क्षणिक थी। उसी क्षण इधर-उधर देख कर उसने ऊँची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
साँस खींची और गहने ले कर भाग खड़ा हुआ।

कपालकुण्डला कुछ समझ न सकी। मन ही मन पूछा, 'भिखारी भागा क्यों ?'

५

स्वदेश में

शब्दारण्ये यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्।
कर्णे लोलं कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्॥ —मेघदूत

कपालकुण्डला को साथ ले कर नवकुमार अपने देश पहुँचा। नवकुमार था पितृहीन। घर में थीं विधवा माँ और दो बहनें। बड़ी बहन तो विधवा थी ही और दूसरी बहन श्यामासुन्दरी सधवा हो कर भी विधवा ही थी। वह कुलीन की पत्नी थी।

यदि किसी अन्य परिस्थिति में नवकुमार अज्ञात कुलशीलवाली किसी तपस्विनी कन्या को ब्याह कर घर ले आता तो उसके आत्मीय-स्वजन कितना खुश होते, कहना कठिन है, पर इस स्थिति में उसे वास्तव में किसी प्रकार की भी उलझन नहीं हुई। उसके वापस आने के संबंध में सभी निराश हो चुके थे। क्योंकि उसके साथियों ने लौट कर यही घोषित किया था कि नवकुमार को रास्ते से बाघ पकड़ ले गया। ऐसा लोगों ने अपनी धारणा और विश्वास के अनुसार ही कहा था और अपनी कल्पना-शक्ति की सच्चाई के लिए कभी इस घटना की चर्चा करते हुए वे बाघ की बड़ाई करते हुए कहते, 'बाघ आठ हाथ का रहा होगा।' कोई कहता, 'नहीं, चौदह हाथ से कम नहीं।' एक ने कहा, 'कुछ भी हो, मैं तो खूब बचा। पहले तो बाघ मेरी ओर ही झपटा था, लेकिन मैं भाग कर बच गया। नवकुमार में उतनी हिम्मत नहीं थी, वह भाग नहीं पाया।'

शुरू में जब यह चर्चा नवकुमार की माँ आदि सुनतीं तब घर के भीतर इतनी भीषण रुलाई शुरू होती कि उसे शांत होने में कई दिन लगते। एक मात्र पुत्र की मृत्यु के दुःसंवाद से नवकुमार की माँ तो एकबारगी मरणासन्न हो गई थी। इसलिए अब जब नवकुमार पत्नी साहित अपने घर वापस आया तब उससे भला यह कौन पूछता कि तुम्हारी पत्नी किस जाति या कुल की है, या किसकी लड़की है ? उसके वापस आने की खुशी में ही सब अंधे हो रहे थे। नवकुमार की माँ बड़े आदरपूर्वक स्वागत कर के बहू को घर में ले गई।

जब नवकुमार ने यह देखा कि कपालकुण्डला उसके घर में आदरपूर्वक स्वीकार कर ली गई तो उसके आनन्द का ठिकाना न रहा। अनादर के भय के कारण कपाल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुण्डला को पा कर भी किसी तरह का आह्लाद या प्रणय-लक्षण वह प्रकट न कर पा रहा था, यद्यपि उसके हृदय का आकाश कपालकुण्डला की मूर्ति से ही व्याप्त था। इसी आशंका से वह पहले कपालकुण्डला से विवाह करने के प्रस्ताव पर हाँ नहीं कह सका था। इसी आशंका से कपालकुण्डला को पत्नी बना कर घर लाने के बाद भी वह उसके साथ प्रेम-सम्भाषण नहीं कर सका था। उमड़ते हुए अनुराग के सागर में एक भी तरंग विक्षिप्त नहीं होने दी थी। अब जब आशंका दूर हुई तब, पानी के बहाव में गतिरोध उत्पन्न करने वाले पत्थरों को दूर करने के बाद जैसी तरंगों में अदम्य गति पैदा होती है, वैसी ही अवाध-गति से नवकुमार का प्रेम सागर भी तरंगें लेने लगा।

प्रेम का यह अविर्भाव मात्र बातों से ही व्यक्त नहीं होता था, बल्कि कपालकुण्डला को देखते ही नवकुमार सजल नेत्रों से उसकी ओर एकटक देखता रहता जैसे वह उसी से प्रकाश पाता हो और बिना जरूरत ही कपालकुण्डला को निकट रखने का प्रयास करता और बिना कारण व प्रसंग ही कपालकुण्डला के पास जाता, और बिना प्रसंग ही जिस तरह वह कपालकुण्डला की चर्चा करता और उसके हर समय अनमना रहने से उसके मनोभाव का पता लगता था। धीरे-धीरे जैसे उसका स्वभाव ही बदलने लगा। जहाँ चंचलता थी वहाँ अब गंभीरता आ गई, जहाँ अवसाद था वहाँ प्रसन्नता आ गई, और नवकुमार का चेहरा हर समय खिला रहने लगा। अपने हृदय के स्नेह को एक आधार मिल जाने के कारण दूसरों के लिए भी स्नेह की अधिकता उत्पन्न हुई। पहले जिनसे उसे नफरत थी, उनसे भी स्नेह हो गया। अब उसके लिए हर आदमी प्रेम का पात्र बन गया। अब उसे लगने लगा कि दुनिया मात्र सत्कर्म के लिए ही बनी है। सारा संसार उसे सौंदर्यमय दिखने लगा। प्रणय का असर ऐसा ही होता है। प्रणय कर्कश को मधुर और असत् को सत् करता है और पापी को पुण्यात्मा बनाता तथा अंधेरे को उजाले में बदल देता है।

और कपालकुण्डला ? उसके क्या भाव हैं ?

| ६ |

अवरोध

'किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते॥' —कुमारसम्भव

यह तो सर्वविदित है कि सप्तग्राम पहले बड़ा समृद्धशाली नगर था। एक समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवद्वीप से रोम तक सभी देशों के व्यापारी वाणिज्य के लिए इसी महानगर में आ कर मिलते थे। लेकिन सोलहवीं-सत्रहवीं सदी से सप्तग्राम का प्राचीन गौरव घटने लगा। इसका मुख्य कारण था कि उस नगर के प्रान्त-भाग को धोती हुई जो नदी बहती थी, वह धीरे-धीरे संकीर्ण-देह और क्षीण-धारा होने लगी। इसलिए बड़े-बड़े जहाजों को उस नगर तक जाने में रुकावट आने लगी। इसीलिए व्यापार का विस्तार क्रमशः लुप्त होने लगा। व्यापारी गौरव वाले नगरों का जब व्यापार नष्ट होने लगता है तो सब कुछ नष्ट हो जाता है। सप्तग्राम का भी सब कुछ नष्ट हो गया। सत्रहवीं सदी में हुगली नये शृंगार करके सप्तग्राम की प्रतियोगिनी बनी। पुर्तगालवासियों ने नए व्यापार का सूत्रपात करके सप्तग्राम की धनलक्ष्मी को आकर्षित कर लिया। लेकिन तब भी सप्तग्राम बिल्कुल ही श्री-हीन नहीं हो गया। वहाँ अब भी फौजदार आदि प्रमुख राज-पुरुषों का वास था। हाँ, नगर का अधिकांश भाग श्री-हीन और वीरान हो कर गाँव का रूप धारण कर चुका था।

सप्तग्राम के एक निर्जन उपनगर वाले भाग में नवकुमार रहता था। सप्तग्राम की उजड़ी दशा के कारण इस समय वहाँ प्रायः मनुष्यों का अधिक आना-जाना न था। बड़े-बड़े रास्ते भी झाड़ियों-काँटों से भर गये थे। नवकुमार के घर के पीछे ही एक चौड़ा घना जंगल था। मकान के सामने लगभग एक मील दूर पर एक नहर बहती थी। वह नहर एक छोटे से भू-भाग को घेर कर घर के पीछे वाले जंगल में चली गई थी। घर ईंटों का बना था। देश-काल की दृष्टि से उसे बहुत छोटा घर नहीं कह सकते थे। घर दुमंजिला था, पर बहुत ऊँचा नहीं। आजकल तो वैसी ऊँचाई एकमंजिले घरों की होती है।

इस समय, इसी मकान की खुली छत पर दो कम-उम्र स्त्रियाँ खड़ी हुई चारों ओर देख रही थीं। संध्या उतर आयी थी। इस समय चारों ओर जो कुछ भी दिखाई पड़ता था वह आँखों को अच्छा ही लग रहा था। पास ही एक ओर घना जंगल था। उस जंगल में असंख्य चिड़ियाँ कलरव कर रही थीं। दूसरी ओर छोटी व पतली सी नहर चाँदी के तार की तरह पड़ी थी। दूर महासागर नये वासन्ती पवन के स्पर्श से परिपूर्ण हो रहा था। दूसरी ओर बहुत दूर पर भागीरथी के विशाल वक्ष पर संध्या का अंधकार धीरे-धीरे गहरा होता जा रहा था।

छत पर खड़ी दोनों स्त्रियों में एक चन्द्रमा की ज्योत्सना जैसी थी, खुले केशों से करीब-करीब आधी ढँकी हुई। दूसरी भी कृशांगी, सुमुखी षोड़शी थी। उसका छोटा सा चेहरा उसकी घुँघराली लटों से आधा घिरा था। जैसे नीलकमल के दल कमल के बीच वाले भाग को घेरे रहते हैं। दोनों आँखें खूब बड़ी, कोमल, श्वेतवर्ण मछलियाँ जैसी। छोटी-छोटी उँगलियाँ संगिनी के बालों में उलझ कर खेल रही थीं। चन्द्र-ज्योत्सना की शोभा वाली तरुणी कपालकुण्डला थी और कृशांगी उसकी ननद श्यामासुन्दरी थी।

श्यामासुन्दरी अपनी भौजाई कपालकुण्डला को कभी 'बहू', कभी 'बहन' और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कभी आदर व स्नेह से 'मृणी' कह कर पुकारती। कापालिकों का व्यवहार विकट था, इसलिए घरवालों ने उसका नाम 'मृण्मयी' रख लिया था, उसी का यह लघु-संबोधन था—मृणी।

श्यामासुन्दरी बचपन में याद की गई एक कविता गा रही थी—

'बले—पद्मरानी, बदनखानि, रेते राखे ढेके।
फुटाय कलि छुटाव अलि, प्राणपति के देखे॥
आबार—बनेक लता छड़िये पाता गाछेर दिके धाय।
नदीर जल नामले ढल, सागरेते जाय॥
छि छि—सरम टुटे कुमुद फुटे चाँदेर आलो पेले।
बियेर कने राखते नारि फूलशय्या गेले॥
मारि-ए कि ज्वाला बिधिर खेला, हरिषे विषाद।
परपरशे सबाइ रसे भाङ्गे लाजेर बाँध॥'[1]

गाना रोक कर एकाएक श्यामासुन्दरी ने पूछा, 'क्योंरी, क्या तू सदा तपस्विनी ही रहेगी?'

मृण्मयी ने जवाब दिया, 'क्यों, कौन सी तपस्या कर रही हूँ?'

श्यामासुन्दरी ने दोनों हाथों से मृण्मयी की केशराशि को उठा कर कहा, 'अपनी यह केशराशि, यह घटा, कभी बाँधेगी नहीं क्या?'

मृण्मयी कोई उत्तर न दे कर मात्र हँसी और श्यामासुन्दरी के हाथों से अपने बालों को खींच कर मुक्त किया।

श्यामासुन्दरी ने फिर कहा, 'अच्छा, तो मेरी यह साध भी पूरी कर दो। एक बार हमारी, गृहस्थ की बहू की तरह सजो तो। कितने दिनों इस तरह योगिनी बनी रहोगी?'

'जब तक तुम्हारे भाई से भेंट नहीं हुई थी तब तक तो मैं योगिनी ही थी।'

'लेकिन अब और नहीं रह सकोगी।'

---

१. कहा है, पद्मरानी रात को अपना मुँह ढँक कर रखती है। कली खिलती है, अलि दौड़ता है, प्राणपति को देखती है (कली)। फिर वन की लता-पत्रादि छोड़ कर पेड़ की ओर दौड़ती है। नदी का जल उतरने पर ढालू समुद्र में चला जाता है। छिः छिः, लाज तोड़ कर कुमुदिनी खिलती है चाँद का आलोक मिलने पर। ब्याही हुई लड़की को नहीं रखा जा सकता, जब वह फूलशय्या पर जा चुकती है। मरती हूँ—यह कैसी जलन है, विधाता का खेल है, हर्ष में भी विषाद है। दूसरे के स्पर्ष से सभी रस्में लज्जा का बन्धन तोड़ देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्यों नहीं रह सकूँगी ?'

'क्यों ? देखोगी ? तुम्हारा योग मैं तोड़ दूँ ? जानती हो, पारस पत्थर किसे कहते हैं ?'

'नहीं, नहीं जानती ।'

'पारस एक ऐसा पत्थर है जिसके छू जाने से लोहा भी सोना हो जाता है ।'

'तो उससे क्या हुआ ?'

'स्त्री के लिए भी एक पारस पत्थर है ।'

'वह क्या है ?'

'वह पारस है पुरुष । पुरुष का स्पर्श मिलने से योगिनी भी गृहस्थ बन जाती है । तू ने भी वही पारस पत्थर छू लिया है, अब देखना···

बाँधिब चुलेर राश, पराब चिकन बास,
खोंपाय दोलाब तोर फूल ।
कपाले सींथिर धार, कांकलेते चन्द्रहार,
काने तोर दिब जोड़ा दूल ।
कुंकुम चन्दन चुआ, बाटा भरे पान गुआ,
रांगा मुख रांगा हबे रागे ।
सोनार पुत्तलि छेले, कोले तोर दिब फेले,
देखि भाल लागे कि न लागे ।।'[1]

मृण्मयी बोली, 'ठीक, अच्छी बात है, समझी । पारस पत्थर भी छू लिया, सोना भी हो गई, बाल बाँधे, अच्छी साड़ी पहनी, जूड़े में फूल लगा लिया, कमर में करधनी पहनी, कानों में झुमके पहने, कुँकुम, चोआ-चन्दन, पान-सुपारी भी और सोने का पुतला तक मिला । सोचो कि सब कुछ हुआ । पर यह सब होने पर भी क्या सुख है ?'

'अच्छा, तुम्हीं बताओ कि फूल खिलने का क्या सुख है ?'

'देखने वाले आदमियों को सुख है । फूल को क्या ?'

श्यामासुन्दरी का चेहरा एकबारगी गंभीर हो गया । नीले कमल जैसी बड़ी-बड़ी आँखें जैसे सुबह में डोलीं । उसने कहा, 'फूल को क्या है, यह तो सचमुच नहीं कह सकती । कभी फूल बन कर खिली भी नहीं, लेकिन अगर तुम्हारी जैसे दशा की कली होती मैं, तो खिल कर मुझे सुख ही होता ।'

---

१. तेरे बालों की राशि बाँधूँगी, चिकनी साड़ी पहनाऊँगी, तेरे जूड़े में फूल झुला दूँगी । ललाट पर माँग की रेखा, कमर में करधनी, तेरे कानों में एक जोड़ी झूमके पहनाऊँगी । कूंकुम, चोआ-चन्दन और डब्बे भरे पान-सुपारी, लाल मुँह रंग से और लाल हो जायगा । सोने का पुतला, लड़का तेरी गोद में डाल दूँगी, देखूँ, तुझे तब अच्छा लगता है या नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामासुन्दरी कुलीन-कन्या है।

मृण्मयी वन में रह कर यह सब कभी ठीक से जान न सकी, अतः उसने श्यामासुन्दरी की बात का कोई उत्तर न दिया। वह नहीं जानती कि कली के खिलने में ही सुख है। पुष्पगंध और रस बाँटने में ही उसकी सार्थकता है। आदान प्रदान ही पृथ्वी के सुख का मूल है, कोई अन्य मूल नहीं।

मृण्मयी को चुप देख कर श्यामासुन्दरी ने कहा, 'अच्छा, अगर ऐसा नहीं है तो जरा मैं भी तो सुनूँ कि तुम्हारा सुख किसमें है ?'

थोड़ी देर तक सोच कर मृण्मयी ने कहा, 'मैं नहीं जानती, न कह ही सकती हूँ। लेकिन जान पड़ता है कि यदि समुद्र के किनारे उन्हीं जंगलों में भटकूँ तो मुझे सुख हो।'

सुनकर श्यामासुन्दरी को विस्मय हुआ। उन लोगों की खातिर से मृण्मयी को उपकार नहीं पहुँचा, इससे वह कुछ क्षुब्ध हुई। कुछ नाराज भी हुई। पूछा, 'अब लौट जाने का उपाय ?'

मृण्मयी बोली, 'उपाय नहीं ?'

'तो क्या करोगी ?'

'अधिकारी कहते थे, 'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।'

श्यामासुन्दरी ओठों पर साड़ी लगा कर हँसती हुई बोली, 'जी हाँ, पंडित जी, क्या हुआ ?'

मृण्मयी ने लम्बी सांस छोड़ कर कहा, 'जो कुछ ईश्वर करायें, वही करूँगी। जो कुछ भाग्य में है, वही होगा।'

'क्यों, भाग्य में भला और क्या हो सकता है ? भाग्य में सुख है। तुम लम्बी-लम्बी साँस क्यों छोड़ती हो ?'

मृण्मयी बोली, 'सुनो ! मैं जिस दिन स्वामी के साथ चली, चलने के समय मैं भवानी के चरणों में त्रिपत्र रखने गई। माँ के चरणों पर त्रिपत्र रखे बिना मैं कोई काम नहीं करती थी। यदि काम में सुख सफलता मिलने को होता था तो माँ विल्वपत्र ग्रहण कर लेती थीं और यदि अशुभ, अमंगल होने की संभावना होती थी, तब विल्पपत्र गिर पड़ता था। अनजाने व्यक्ति के साथ अनजाने देश में आने की शंका होने लगी। अतः अपना अविष्य और भला-बुरा जानने के लिए माँ के पास गई। लेकिन माँ ने विल्पवत्र ग्रहण नहीं किया। अतएव भाग्य में क्या लिखा है, नहीं जानती।'

मृण्मयी चुप हो गई।

श्यामासुन्दरी सिहर उठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा भाग

|१|

पूर्वकथा

'कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः ।'

—रत्नावली

जब नवकुमार चट्टी से कपालकुण्डला के साथ सप्तग्राम के लिए खाना हुए तब मोती बीबी दूसरे रास्ते से बर्दवान गई ।

मोती का चरित्र महादोष से कलुषित है । लेकिन उसमें महत् गुण भी हैं । जब उसके पिता ने मुसलमान धर्म स्वीकार किया था तभी उसका हिन्दू नाम बदल कर नया नाम रखा गया था—लुत्फ-उन्निसा । मोती बीबी उसका असली नाम किसी समय भी न था । सिर्फ गुप्त-वेश में कभी-कभी देश-विदेश विचरन के समय वह यही नाम चलाती थी । उसके पिता ढाका आये और वहीं राजकार्य में नियुक्त हुए । लेकिन वहाँ भी उनके अपने देश के बहुत से जन थे । देश के समाज में गिर कर रहना सभी लोग स्वीकार नहीं करते । अतः कुछ दिनों बाद सूबेदार से तरक्की पा कर उसके दोस्त, कितने ही उमरा के नाम पत्र व परिचय लेकर आगरा सपरिवार चले गये । शाह अकबर से किसी का गुण छिपा न रहता था । वे जल्दी ही उनके गुणों से परिचित हो गये । लुत्फ-उन्निसा के पिता जल्दी ही उच्चपद प्राप्त करके आगरे के बड़े उमाराओं में गिने जाने लगे । इधर धीरे-धीरे लुत्फ-उन्निसा की उम्र भी बढ़ने लगी । आगरा आने पर वह फारसी, संस्कृत के ज्ञान तथा नृत्य-गान आदि में शिक्षित हुई । राजधानी की अनगिनत रूपवती और गुणवती स्त्रियों में उनका ऊँचा स्थान बन गया । मात्र दुर्भाग्य यह था कि विद्या की दिशा में उनकी जैसे शिक्षा हुई, नीति की दिशा में उस अनुपात से कुछ भी न हो सका । लुत्फ-उन्निसा की उम्र बढ़ते-बढ़ते यह स्पष्ट होने लगा कि उसकी मनोवृत्तियाँ बड़ी वेगवती हैं । इंद्रिय-संयम की उसमें तनिक भी शक्ति नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
संभवतः इच्छा भी नहीं। भले व बुरे पर एक जैसी ही प्रवृत्ति। कोई काम ठीक है या नहीं, इसका विचार कर के वह कोई काम नहीं करती। जो कुछ मन को अच्छा लगता, करती। जब अच्छे काम से जी प्रसन्न होता तब वह अच्छा काम करती और जब बुरे काम के लिये जी करता तो बुरे काम करती। अतः लुत्फ-उन्निसा में वे सभी दोष अपने आप पैदा हो गए जो जवानी में मनोवृत्तियों के दुर्दम होने पर होते हैं। उसकी पहले शादी हो गई है और पहला पति भी जीवित है, इसलिए कोई भी उमरा उससे ब्याह करने को राजी न हुआ। लुत्फ-उन्निसा भी विवाह के लिए उतनी लालायित नहीं हुई। मन ही मन निश्चय किया कि फूल-फूल पर बैठने वाली मक्खी के पर क्यों नोचूँ! फलस्वरूप पहले तो कानोंकान विभिन्न प्रकार की खबरें उड़ती रहीं, फिर कलंक का टीका लगा। उसके पिता ने बदनामी से डर कर उसे घर से निकाल दिया।

लुत्फ-उन्निसा एकांत के अन्तरंग क्षणों में जिन भाग्यशालियों पर कृपा करती थी, उनमें शाहजादा सलीम भी एक था। एक अमीर से कुल को कलंक लगने पर पक्षपात-रहित पिता के क्रोध का शिकार होना पड़ता इसी आशंका से सलीम अब तक लुत्फ-उन्निसा को अपनी हरम की बेगम न बना सका। अब सुयोग मिला। श्रेष्ठ-राजपूत मानसिंह की बहन शाहजादा की बेगम थीं। अवसर का लाभ उठा कर शाहजादे ने लुत्फ-उन्निसा को उनकी प्रधान सहचरी बना दिया। लुत्फ-उन्निसा बेगम की सखी बनी और आँख-ओट शाहजादे की कृपापात्री।

लुत्फ-उन्निसा जैसी होशियार, विदुषी, सुन्दरी थोड़े ही दिनों में शाहजादे के हृदय पर अधिकार कर लेगी, यह बात सहज ही स्वीकार की जा सकती है। शाहजादा सलीम के चित्त पर लुत्फ-उन्निसा का प्रभुत्व ऐसा हो गया कि उसे किसी प्रतिद्वंद्वी का डर न रह गया। यही नहीं, बल्कि लुत्फ-उन्निसा ने मन ही मन यह प्रतिज्ञा की कि समय आने पर वह शाहजादे को पटरानी बन कर रहेगी। और ऐसी बात भी नहीं कि यह प्रतिज्ञा मात्र लुत्फ-उन्निसा की ही हो, बल्कि सभी आगरावासियों को भी यह होना संभव दिखाई पड़ने लगा। ऐसे ही आशा भरे सपने देखती हुई लुत्फ-उन्निसा अपने जीवन के दिन बिता रही थी, ठीक ऐसे ही अवसर पर उसकी नींद टूट गई।

शाह अकबर के खजांची ख्वाजा गयास एतमादउद्दौला की बेटी मेहरुन्निसा तब मुसलमान-कुल की सबसे सुन्दरी थी। एक दिन ख्वाजा गयास ने शाहजादा सलीम और नगर के दूसरे बड़े-बड़े अमीर उमराओं को दावत देकर अपने घर बुलाया। उसी दिन पहली बार सलीम और मेहरुन्निसा में भेंट हुई और उसी दिन पहली बार देख कर सलीम मेहरुन्निसा पर निछावर हो गया और अपना दिल दे बैठा। लेकिन शेर अफगन नाम के एक बहुत बड़े सैन्य अधिकारी के साथ खजाञ्ची गयास ख्वाजा की बेटी का सम्बन्ध पहले ही निश्चित हो चुका था। सलीम ने प्रेम की शक्ति से अंधे होकर पिता से यह सम्बन्ध तोड़ देने की प्रार्थना की। लेकिन निष्पक्ष पिता उत्तर में सिर्फ तिरस्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर दे सके। फलस्वरूप सलीम को उस समय निरस्त होना पड़ा। वह निरस्त तो जरूर हुआ, लेकिन उसने न तो हिम्मत छोड़ी, न ही आशा छोड़ी। शेर अफगन से मेहरुन्निसा की शादी भी हो गई। इतने पर भी सलीम निराश न हुआ। मेहरुन्निसा सारी स्थिति को समझती और जानती थी कि शेर अफगन चाहे जितना भी शक्तिशाली हो लेकिन शाह अकबर की मृत्यु के बाद उसकी भी जान नहीं बचेगी। तब मेहरुन्निसा अवश्य ही सलीम की पटरानी बनेगी। मेहरुन्निसा ने सिंहासन की आशा भी छोड़ दी।

फिर सम्राट शाह अकबर की आयु समाप्त हो गई। तुरकिस्तान से लेकर ब्रह्मपुत्र तक जिस प्रचण्ड सूर्य की प्रभा का प्रकाश सदैव फैला रहता था, वही सूर्य अस्ताचल में चला गया। इसी समय लुत्फ-उन्निसा ने अपने बड़प्पन की रक्षा के लिए एक अत्यन्त दुस्साहसिक संकल्प किया।

राजपूत-श्रेष्ठ राजा मानसिंह की बहन सलीम की बड़ी बेगम थी। खुशरू उनका लड़का। एक दिन उसके साथ शाह अकबर के पीड़ित शरीर के बारे में लुत्फउन्निसा से बातचीत हुई। राजपूत कन्या अब बादशाह की बेगम होगी। इसलिए इस शुभ-अवसर पर लुत्फुन्निसा उनका अभिनन्दन कर रही थी। उत्तर में बेगम ने कहा, 'यह सही है कि बादशाह की बेगम बनने से मनुष्य जन्म सार्थक होता है, लेकिन जो बादशाह की माता हैं, वे सबसे ऊपर हैं।'

उत्तर सुनते ही पहले से बिना सोचे ही लुत्फ-उन्निसा के मन में एक बात उठी। उसने कहा, 'वैसा ही क्यों न हो। वह भी तो आपकी इच्छा पर ही है।'

'वह क्या ?

'चुपचाप पुत्र खुसरू को गद्दी पर बैठाइए तब।'

बेगम ने कोई जवाब न दिया। न ही उस दिन के बाद से कभी वह प्रसंग ही उठा। लेकिन दोनों में कोई भी यह बात न भूल सकीं। बाप की जगह बेटा गद्दी पर बैठे यह बेगम की नियत कभी न थी। मेहरुन्निसा की ओर सलीम का अनुराग लुत्फ-उन्निसा के लिए जैसा हृदय का शूल था, बेगम के लिए भी ठीक वैसा ही था। मानसिंह की बहन एक नई तुर्क-लड़की की हीन दासी बन कर रहे, यह उन्हें क्यों कर अच्छा लगता ? उनके इस संकल्प में सहचरी बनने का गहरा अभिप्राय ही तो था, लुत्फ-उन्निसा का।

दूसरे दिन फिर यह प्रसंग उठा। दोनों का मत भी निश्चित हुआ।

सलीम को छोड़ कर अकबर का खुसरू को सिंहासन पर बैठाना किसी प्रकार असंभव हो, ऐसा कोई कारण समझ में नहीं आता। यह बात लुत्फ-उन्निसा ने बेगम के दिल में अच्छी तरह जमा दी। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा, 'मुगलों का साम्राज्य राजपूतों की शक्ति के कारण ही टिका है। उस राजपूत जाति के श्रेष्ठ-पुरुष हैं राजा मानसिंह। वे खुसरू के मामा हैं। और मुसलमानों में सबसे ऊँचे हैं खाँ आज़िम जो प्रधान मंत्री हैं, जो खुसरू के ससुर हैं। यही दोनों जन यदि प्रयास करेंगे तो फिर कौन इनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पथगामी न होगा ? और शाहजादा भी गद्दी किसके बल-बूते पर प्राप्त करेंगे ? राजा मानसिंह को इस काम में तत्पर करने का काम आपका है । खाँ आज़िम और दूसरे प्रमुख मुसलमान उमराओं को इधर लाने का काम मेरा । आपकी मेहरबानी से मैं जरूर कामयाब होऊँगी, बस, एक ही शंका है कि कहीं गद्दी पर बैठ कर, खुसरू इस बदनाम औरत को शहर से बाहर न निकाल दें ।'

बेगम अपनी सखी का मतलब समझ गईं । हँस कर बोलीं, 'तुम इस आगरा शहर में जिस भी अमीर का गृहिणी होना चाहोगी, वही तुमसे विवाह करेगा । यही नहीं, तुम्हारा शौहर पाँच हजारी मनएबदार होगा ।'

लुत्फ-उन्निसा खुश हो गई । वह इतना ही तो चाहती थी । यदि राजधानी में इज्ज़तदार गृहस्थ स्त्री की तरह रहना पड़ा तो हर फूल पर विचरनेवाले भँवरे के पंख काटने से भला क्या सुख हुआ ? यदि आजादी ही गंवानी पड़ी तो लड़कपन की सखी मेहरुन्निसा की चाकरी में क्या सुख हुआ ? इसके बदले में किसी राजपुरुष की स्वामिनी या गृहिणी होना ही गौरव और शान की बात होगी ।

मात्र इसी लोभ के लिए लुत्फ-उन्निसा इस काम में नहीं जुटी है । सलीम उसकी उपेक्षा करके मेहरुन्निसा के लिए इतने अधिक लालायित हैं, इसका बदला चुकाना भी उसका एक उद्देश्य था ।

खाँ आजिम वगैरह दिल्ली के अमीर-उमरा लुत्फ़-उन्निसा से बहुत दबते थे । खाँ आजिम अपने दामाद की भलाई के लिए प्रयत्नशील होंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? वे और अन्य दूसरे उमरा भी एकमत हुए । खाँ आजिम ने लुत्फ-उन्निसा से कहा, 'सोचो, कि यदि किसी दुर्भाग्य के कारण हमलोग अपने उद्देश्य में असफल रहे तो फिर हमारी-तुम्हारी खैर नहीं । इसलिए जान बचाने के लिए भी एक रास्ता खुला रखना अच्छा होगा ।'

लुत्फ-उन्निसा ने पूछा, 'तो आप की क्या राय है ?'

खाँ आजिम ने कहा, 'उड़ीसा के सिवा और दूसरा आश्रय कहीं नहीं । सिर्फ वही ऐसी जगह है जहाँ मुगलों का शासन उतना शक्तिशाली नहीं है । उड़ीसा की सेना हमारे हाथ में रहे, यह बहुत जरूरी है । तुम्हारे भाई ही उड़ीसा के मनसबदार हैं । मैं कल ही प्रचारित करूँगा कि वे लड़ाई में बहुत जख्मी हो गये हैं । तुम उन्हें देखने के बहाने कल ही उड़ीसा चली जाओ । फिर वहाँ जो कुछ करना है, करके जल्दी से वापस आ जाओ ।'

लुत्फ-उन्निसा ने इस परामर्श पर सहमति दी ।

जब वे उड़ीसा आ कर वहाँ से लौट रही थीं तभी रास्ते में डाकुओं वाली दुर्घटना हुई और नवकुमार से भेंट हुई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

|२|

रास्ते में

'जे माटीते पड़े लोके उठे ताइ धरे ।
बारेक निराश होये केबा कोथा भरे ।।
तूभाने पतित किन्तु छाड़िब ना हाल ।
अजिके बिफल हलो, ह' ते पारे काल ।।'

—नवीन तपस्विनी

जिस दिन चट्टी से नवकुमार को बिदा करके मोती बीबी उर्फ लुत्फ-उन्निसा वर्दवान के लिए चली, उस दिन वह वर्दवान तक पहुँच नहीं सकी । आगे बढ़ कर वह एक दूसरी चट्टी में ठहरी । शाम को एक जगह एकान्त में बैठी वह पेशमन से बातें कर रही थी । बातचीत के बीच एक जगह एकाएक मोती बीबी ने पेशमन से पूछा, 'पेशमन ! मेरे शौहर को तुमने देखा, कैसा लगा ?'

पेशमन को आश्चर्य हुआ । बोली, 'देखा तो पर क्या देखती ?'

'आदमी खूबसूरत है या नहीं ?'

नवकुमार की ओर से पेशमन को स्वाभाविक रूप से विराग सा हो गया। कपालकुण्डला को मोती बीबी ने जो गहने दे दिये थे, उनके प्रति पेशमन को विशेष मोह था । मन में वह आशा पाले थी कि एक न एक दिन मैं ही माँग लूँगी । वही आशा सदा के लिए सूख गई थी, इसीलिये उसके मन में कपालकुण्डला और नवकुमार के प्रति वितृष्णा हो गई थी । अतः कुढ़ कर अपनी मालकिन के प्रश्न का उत्तर दिया, 'दरिद्र ब्राह्मण, भला उसके लिए खूबसूरती या बदसूरती क्या ?'

पेशमन के मन का भाव अच्छी तरह समझ कर हँसते हुए मोती बीबी ने कहा, 'दरिद्र ब्राह्मण यदि अमीर हो जाय तब तो खूबसूरत लगेगा न ?'

'इससे क्या होता है ?'

'क्यों, क्या तुझे मालूम नहीं कि बेगम ने जान लिया है कि अगर खुसरू बादशाह हो गये तो मेरे पहले शौहर भी अमीर होंगे ।'

'यह तो जानती हूँ लेकिन आपके पहले शौहर अमीर क्यों कर होंगे ?'

'फिर मेरा और कौन शौहर है ?'

'जो नये होंगे ।'

मोती बीबी फिर हँसी । बोली, 'मेरी जैसी सती के अगर दो शौहर हुए तो यह बड़ी अन्याय की बात हो जायगी ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
क्षण भर सन्नाटा रहा। फिर एक-एक मोती बीबी बोली, 'इसे पता कौन जा रहा है ?'

पेशमन ने उसे पहचान लिया। वह आगरे के रहने वाले खाँ आज़िम का आदमी था। उसे देख कर दोनों ही परेशान व व्यस्त हो उठीं। पेशमन ने उसे पास बुलाया। उस आदमी ने आगे बढ़ कर लुत्फ-उन्निसा को सलाम किया और एक पत्र दिया। बोला, 'पत्र लेकर उड़ीसा जा रहा था। बहुत जरूरी पत्र है।'

पत्र पढ़ते ही मोती बीबी की सभी आशाओं और भरोसे पर पानी फिर गया। पत्र में लिखा था—

'हमारी कोशिशें बेकार हो गईं। मृत्यु के समय भी शाह अकबर ने अपने बुद्धि-बल से हमें परास्त कर दिया है। वे तो खुदा को प्यारे हुए। उन्हीं के हुक्म से शाहजादे सलीम अब जहाँगीरशाह हुए हैं। अब तुम खुसरू के लिए ज्यादा उलझन में मत पड़ो। इस मामले में कोई तुमसे दुश्मनी न कर सके, इसकी कोशिश के लिए तुम जल्दी से जल्दी आगरा लौट आओ।'

इनाम देकर चिट्ठी लाने वाले को विदा करके मोती बीबी ने पूरा पत्र पढ़ कर पेशमन को सुनाया।

सुन कर पेशमन ने पूछा, 'अब और उपाय ही क्या है ?

'हाँ, अब कोई उपाय नहीं है।'

'अच्छा तो है, क्या मुजायका, जैसी अब तक थीं, वैसी तो रहेंगी ही। मुगल बादशाह की बाँदी भी दूसरे राज्य की पटरानी से बड़ी है।'

मोती बीबी हँस पड़ी। बोली, 'वैसा अब नहीं हो सकता। अब मैं आगरे में और नहीं रह सकूँगी। जल्दी ही जहाँगीर का मेहरून्निसा से निकाह होगा। मेहरून्निसा को मैं उसके बचपने से अच्छी तरह जानती हूँ। वह अगर एक बार बेगम हुई तो वही बादशाहत भी करेगी। जहाँगीर तो सिर्फ नाम के बादशाह होंगे। मैंने उनका गद्दी पर बैठने का रास्ता रोका था, यह बात क्या उससे छिपी रहेगी ? सोच न, तब मेरी क्या दशा होगी ?'

पेशमन प्राय: रोने-रोने को हो गई। बोली, 'तो फिर अब क्या होगा ?'

मोती बीबी बोली, 'हाँ एक भरोसा है। मेहरून्निसा का मन जहाँगीर की ओर कैसा रहता है ? जैसा उसका स्वभाव है, जिद्दी, उससे अगर वह जहाँगीर की ओर आसक्त न हो कर अपने शौहर के प्रति मोहब्बत में बँधी रही तब तो जहाँगीर की हार-ही हार है। शैर अफगान को कत्ल करके वह मेहरून्निसा को नहीं पा सकेंगे। और अगर मेहरून्निसा सचमुच जहाँगीर की ओर ज्यादा झुकाव रखेगी तो फिर कोई भरोसा नहीं है।'

'तो मेहरून्निसा का मन कैसे समझोगी आप ?'

मोती बीबी ने हँस कर कहा, 'लुत्फ-उन्निसा के लिये कुछ भी मुश्किल नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। मेहरून्निसा मेरी बचपन की सहेली है, कल ही बर्दवान जाकर उसके पास दो दिन ठहरूँगी।'

'लेकिन अगर मेहरून्निसा का झुकाव बादशाह की ओर न हुआ तब क्या करोगी ?'

'मेरे पिता कहा करते हैं—क्षेत्रे कर्म विधीयते।'

फिर काफी देर तक दोनों चुप रहीं। मन ही मन हँसने के कारण मोती बीबी के ओंठ सिकुड़ने लगे। पेशमन ने पूछा, 'हँस क्यों रही हैं ?'

'मन में एक नई बात पैदा हुई है।'

'कौन सी नई बात ?'

लेकिन मोती बीबी ने वह बात पेशमन से नहीं बताई।

| ३ |

प्रतियोगिनी के घर में

'श्यामादन्यो नहि नहि प्राणनाथो ममास्ति।'

—उद्धवदूत

इस समय शेर अफगान बंगाल के सूबेदार के मातहत बर्दवान में एक महकमे के अधिकारी की हैसियत से रहते थे। मोती बीबी बर्दवान आ कर सीधे शेर अफगान के यहाँ पहुँची। शेर अफगान ने सपरिवार बड़े आदर व समारोहपूर्वक उन्हें टिकाया। जब शेर अफगान और बीबी मेहरून्निसा आगरे में रहते थे तब मोती बीबी उनकी विशेष परिचित थीं। मेहरूनिसा से उसका विशेष स्नेह था। बाद में घटना-चक्र के कारण वे दोनों ही दिल्ली की गद्दी के लिए प्रतियोगिनी बनी थीं। अब फिर एक जगह मिलने पर मेहरून्निसा ने मन ही मन सोचा, 'हिन्दुस्तान का राजमुकुट ईश्वर ने किसके सिर पर लिखा है, यह तो ईश्वर ही जानते हैं, या सलीम जानते हैं। और अगर कोई और जानती है तो वह हैं सिर्फ लुत्फ-उन्निसा। देखूं, क्या लुत्फ-उन्निसा कुछ भी जाहिर नहीं करेगी ?'

उन दिनों मेहरून्निसा की ऐसी ही ख्याति थी कि सारे हिन्दुस्तान में वही सब से अधिक रूपवती और गुणवती है। ठीक भी है, ऐसी सुन्दरी स्त्रियाँ इस धरती पर कम ही पैदा हुई हैं। ऐतिहासिकों ने मात्र खूबसूरती में इतिहास-प्रसिद्ध सुन्दरियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। लेकिन सच यह है कि किसी प्रकार की भी विद्या में उस समय के पुरुषों में थोड़े भी उनसे ज्यादा जानकार शायद ही हुए हों। रूप और विद्या के अलावा नृत्य और गायन में भी मेहरून्निसा अद्वितीय थी। उसका बात करने का सरस ढंग, उसकी खूबसूरती से भी बढ़ कर था। यों मोती बीबी भी इन गुणों में किसी प्रकार भी घट कर न थी। आज संयोग ऐसा जुटा कि दोनों चमत्कारी स्त्रियाँ एक दूसरे का मन जानने को व्यग्र हो उठीं।

अपने खास कमरे में बैठी मेहरून्निसा तस्वीर बना रही थी। मोती बीबी भी मेहरून्निसा की पीठ के पास बैठी तस्वीर बनती देख रही थी और पान चबा रही थी। तभी मेहरून्निसा ने पूछा, 'तस्वीर कैसी बन रही है ?'

'तुम्हारी तस्वीर जैसी आती है, वैसी ही, इस दुनिया में तुम्हारी जोड़ का कोई दूसरा कलाकार नहीं है, यही अफसोस है।'

'यह बात अगर सच भी है तो इसमें अफसोस करने लायक क्या है ?'

'तुम्हारे जोड़ का कोई दूसरा कलाकार होता तो तुम्हारे इस चेहरे का नमूना रख सकता था।'

'कब्र की मिट्टी में इस चेहरे का नमूना रहेगा।'

'बहन, आज तुम्हारे मन में ऐसी कल्पना क्यों ?'

'कल्पना नहीं। तुम कल मुझे छोड़ कर चली जाओगी, यह बात मैं कैसे भूलूँ ? दो दिन और रुक कर तुम मुझे सेवा का अवसर क्या नहीं दे सकतीं ?'

'किसे सुख अच्छा नहीं लगता, बहन ? अपने वश में अगर होता तो मैं जरूर रुक जाती। लेकिन मैं तो दूसरे पर आश्रित हूँ न ! कैसे रह सकती हूँ ?'

'मेरे लिए अब तुम्हारे मन में पहले जैसा प्यार नहीं रहा। रहता तो जरूर रुक जातीं। आई हो तब रुकने में भला क्या आपत्ति हो सकती है ?'

मैंने तो बहन सब बातें कह दी हैं। तुम्हें मालूम ही है कि मेरे भाई मुगलों की फौज में मनसबदार हैं। उड़ीसा में पठानों से लड़ाई करते हुए वे बुरी तरह घायल हो कर संकटावस्था में पड़े थे। उन्हीं की विपत्ति की खबर सुन कर बेगम से छुट्टी ले कर मैं देखने आई थी। उड़ीसा में ही बहुत ज्यादा समय रह गई। अब और देर करना ठीक नहीं। तुमसे भी बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई थी, इसी से तुम्हें भी देखने को दो दिनों के लिए चली आई।'

'बेगम से कितने दिनों में लौटने को कह आई थीं ?'

मोती बीबी को लगा कि मेहरून्निसा व्यंग्य कर रही है। गहरे अर्थ से भरपूर व्यंग्य करने में मेहरून्निसा जितनी निपुण है उतनी मोती बीबी नहीं। लेकिन वह इतने से ही मात खाने वाली भी नहीं। उसने भी जवाब दिया, 'दिन निश्चित करके तीन महीने का रास्ता पार करना क्या सम्भव है ? लेकिन इतना जरूर जानती हूँ कि काफी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देर कर दी है और और अधिक देर करने से असन्तोष के लिए कारण बन सकता है।'

अपनी अत्यन्त मोहक हँसी हँस कर मेहरून्निसा ने कहा, 'किसके असन्तोष की आशंका कर रही हो ? शाहजादे के या उनकी बेगम के ?'

'मुझ बेशर्म को क्यों और बेहया बना रही हो ? असन्तोष तो दोनों को ही हो सकता है।'

'अच्छा, एक बात पूछती हूँ, बताओ ? तुम खुद ही यह 'बेगम' नाम अपने लिए धारण कर सकती हो ? सुना था कि शाहजादा सलीम तुमसे निकाह करके तुम्हें खास बेगम बनाने वाले थे। इस बारे में कहाँ तक क्या हुआ ?'

'देखो, मैं तो गुलाम हूँ। फिर भी जितनी भी आजादी है, उसे ही क्यों बरबाद करूँ ? बेगम की मेहरबानी है, इसीलिए जब चाहा उड़ीसा आ सकी। शाहजादा सलीम की बेगम होती तो क्या इस तरह जब चाहती आ सकती थी ?'

'जो दिल्ली के बादशाह की खास बेगम होगी उसे उड़ीसा तक आने की जरूरत ?'

'बादशाह की खास बेगम बनूँगी ऐसा सपना कभी नहीं देखा। क्या मैं जानती नहीं कि इस देश हिन्दुस्तान में अकेली मेहरून्निसा ही दिल्ली के बादशाह की खास बेगम होने लायक है।'

इस बार मेहरून्निसा ने मुँह नीचे कर लिया। फिर बहुत देर तक चुप रह कर बोली, 'मैं यह तो नहीं सोच सकती, बहन, कि तुमने यह बात मेरा मन दुखाने के लिए कहा है या मेरा मन समझने के लिए, लेकिन मैं शेर अफगान की बीवी हूँ और तन-मन से उनकी ही गुलाम हूँ, यह भूल कर तुम इस बारे में बातचीत मत करना, यह मैं तुमसे भीख माँगती हूँ।'

बेशर्म मोती बीबी ने इस तिरस्कार से भी हार नहीं मानी। बल्कि कहा जाय तो उसे और भी अवसर मिल गया। बोली 'हाँ, शौहर के साथ ही तुम्हारी जान है यह मैं खूब अच्छी तरह से जानती हूँ। इसीलिए जरा धोखा दे कर यह चर्चा तुम्हारे सामने उठाने की हिम्मत की है। सलीम शहजादे अभी तक तुम्हारे हुस्न का मोह नहीं भूल सके हैं। बस यही बताना मेरा उद्देश्य था। बस अब तुम सावधान रहना।'

'अब समझी ! लेकिन किस बात की सावधानी ? तुम्हें किस बात का डर है ?'

'तुम्हारे बेवा हो जाने का डर।'

यह कह कर मोती बीबी बहुत तेज निगाहों से मेहरून्निसा की ओर देखने लगी। लेकिन मेहरून्निसा के चेहरे पर कहीं भी डर या खुशी का आभास न मिला।

मेहरून्निसा ने अपमान अनुभव करते हुए कहा, 'बेवा होने का डर ! लेकिन शेर-अफगान आत्मरक्षा में पूरी तरह सक्षम हैं। खास कर अकबर बादशाह की सल्तनत में उनका बेटा भी बिना कुसूर दूसरे की जान ले कर बच न सकेगा।'

'यह तो सही है, लेकिन आगरे से आने वाली ताजी खबर यह है कि बादशाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अकबर अब इस दुनिया में नहीं हैं। शाहजादा सलीम को गद्दी मिल गई है। अब दिल्ली के बादशाह को कौन सजा देगा ?'

मेहरुन्निसा जैसे आगे और कुछ भी न सुन सकी। बस उसके शरीर के सारे अंग थरथराने लगे। उसने आँखें झुका लीं। आँखों से आँसुओं की धारा बहती रही। मोती ने पूछा, 'तुम रोने क्यों लगीं ?

मेहरुन्निसा ने लम्बी साँस छोड़कर कहा, 'सोचती हूँ कि आज सलीम हिन्दोस्तान के सिंहासन पर है और मैं कहाँ हूँ !'

मोती की चाल सफल हुई, उसकी कामना सिद्ध हुई। बोली, 'हाय, तुम आज भी शाहजादे को बिल्कुल नहीं भूल सकी हो।'

मेहरुन्निसा ने गीले पर गदगद स्वर में कहा, 'कैसे भूल सकती हूँ। अपनी जिन्दगी भूल सकती हूँ पर शाहजादे को नहीं भूल सकती। लेकिन बहन, सुनो, एकाएक मेरे मन के दरवाजे जैसे खुल गये। इसलिए यह पोशीदा बात तुमने सुन ली। लेकिन तुम्हें मेरी जान की कसम है कि यह बात किसी और के कानों में न जाने पावे।'

'यकीन रखो बहन, ऐसा ही होगा। लेकिन जब सलीम सुनेंगे कि मैं बर्दवान आई थी, तब वे जरूर पूछेंगे कि मैं मेहरुन्निसा से मिली या नहीं, या क्या बातचीत हुई, तब भला मैं क्या जवाब दूँगी ?'

थोड़ी देर सोच कर मेहरुन्निसा ने कहा, 'यही कहना कि···मेहरुन्निसा मन में हमेशा उनके ही नाम की माला जपती है और कभी मौका पड़ने पर उनके लिए अपनी जान भी जरूर दे सकेगी ! लेकिन अपने खानदान की इज्जत कभी न देगी ! गुलाम का शौहर तब तक जिन्दा है, वह कभी बादशाह को अपना मुँह नहीं दिखावेगी। और अगर बादशाह उसके शौहर की जान लेंगे तो शौहर को कत्ल कराने वाले से इस जिन्दगी में उसके लिए मिलना नामुमकिन है।'

कहते-कहते मेहरुन्निसा वहाँ से उठ कर चली गई। मोती बीबी विस्मित हुई। लेकिन जीत भी मोती बीबी की ही हुई। मेहरुन्निसा के मन के भीतर की बात को मोती बीबी ने समझ लिया था। लेकिन मोती बीबी के मन की बात मेहरुन्निसा नहीं जान सकी। यद्यपि बाद में वही मेहरुन्निसा अपनी योग्यता के कारण दिल्ली के बादशाह की भी मालकिन बनी, लेकिन इस समय तो मोती बीबी से वह हार ही गई।

आदमी के मन की विचित्र चाल को मोती बीबी अच्छी तरह समझती है ! मेहरुन्निसा की बातों पर मनन कर के उसने मन में जो नतीजे निकाले, समय आने पर वही सच निकले। वह समझ गई कि मेहरुन्निसा जहाँगीर को सचमुच दिल में बैठाए हुए है। इस समय जरूर ही नारी-दर्प के कारण चाहे जो कहे पर समय आने पर और रास्ता साफ होने पर ये बातें मन की करवट को न रोक सकेंगी। बादशाह की इच्छा से अवश्य ही अपने मन का सपना पूरा करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस नतीजे पर पहुँचते ही मोती बीबी की तमाम आशाएँ बैकार हो गईं। लेकिन इससे क्या मोती बीबी बहुत दुखी हुई ? नहीं। बल्कि उसे थोड़ी प्रसन्नता ही हुई। उसके मन में ऐसी उलटी प्रतिक्रिया क्यों हुई, यह पहले तो मोती बीबी समझ न सकी। फिर वह आगरा के लिए चल पड़ी। रास्ते में कुछ दिन लगे। उन्हीं कुछ दिनों में वह अपने मन के भाव का कारण समझ सकी।

|४|

राजमहल में

'पत्नीभावे आर तुमि भेबे ना आमारे।'

—वीरांगना काव्य

मोती बीबी आगरा पहुँची।

अब मोती बीबी को इस नाम से नहीं जाना जा सकेगा। अब वह फिर लुत्फु उन्निसा हो गई है। इधर कुछ दिनों से उसके सोचने-विचारने की गति एकबारगी ही बदल गई है।

जहाँगीर से उसकी भेंट हुई। जहाँगीर ने उसे पहले जैसा ही सम्मान व आदर देकर उसके भाई का हालचाल और रास्ते का हालचाल पूछा। लुत्फ-उन्निसा ने जो बात मेहरुन्निसा से कही थी, सामने आयी। दूसरी-दूसरी तमाम बातों के बाद बर्दवान का नाम सुनते ही जहाँगीर ने पूछा, 'क्या कहा ? कह रही हो न कि मेहरुन्निसा के पास दो दिनों रही हो, तो मेहरुन्निसा ने मेरे बारे में क्या बातचीत की ?'

लुत्फु-उन्निसा ने मन में बिना कोई कपट रखे जहाँगीर के प्रति मेहरुन्निसा के अनुराग की बात साफ-साफ कह दी। सुन कर बादशाह एकदम चुप लगा गये। पल भर बाद उनकी बड़ी-बड़ी आँखों से दो बूँद आँसू चू पड़े।

लुत्फ-उन्निसा ने कहा, 'जहाँगीर ! इस गुलाम ने अच्छी खबर सुनाई है। बाँदी के लिए अभी तक किसी इनाम का हुक्म नहीं हुआ।'

हँसने की कोशिश करते हुए बादशाह ने कहा, 'तुम्हारी लालच की कोई सीमा नहीं है।'

'जहाँपनाह ! इसमें बाँदी का क्या कुसूर है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दिल्ली का बादशाह ही तुम्हारा गुलाम है, और क्या इनाम चाहती हो ?'

लुत्फ-उन्निसा ने हँस कर कहा, 'जहाँपनाह ! औरतों की बड़ी ख्वाहिशें होती हैं।'

'अब फिर कौन सी ख्वाहिश जागी है ?'

'पहले बादशाह का हुक्म हो कि बाँदी की अर्ज सुनी जायगी तब बताऊँगी।'

'अगर राजकाज में बाधा न होती हो।'

'ऐसी बाँदी की ऐसी साध से दिल्ली के बादशाह के राजकाज में बाधा नहीं पड़ सकती।'

'तो मंजूर है, बोलो कौन सी साध है, जरा सुनूँ।'

'साध हुई है, एक विवाह करने की।'

बादशाह खुल कर हँसे। बोले, 'यह तुम्हारी ख्वाहिश नये ढंग की जरूर है। कहीं सगाई पक्की हुई है ?'

'सो तो हो चुकी है, बस जहाँपनाह के हुक्म की देर है। बादशाह सलामत की मंजूरी मिले बगैर कोई भी सगाई पक्की नहीं है।'

'मेरी मंजूरी की क्या जरुरत है ? लेकिन यह तो बताओ कि किस खुशनसीब को इस सुख के समन्दर में डुबाने की सोची है ?'

'बाँदी ने हुजूर की बहुत खिदमत की है, इसलिए कोई गलत काम न करेगी। बाँदी अपने शौहर से ही विवाह करने का हुक्म चाहती है।'

'अच्छा, तो इस पुराने आशिक की क्या हालत होगी ?'

'दिल्ली सलतनत की बेगम मेहरुन्निसा को दे जाऊँगी।'

'बेगम मेहरुन्निसा कौन ?'

'जो हैं।'

जहाँगीर ने मन ही मन में तय कर लिया कि मेहरुन्निसा दिल्ली के बादशाह की बेगम होगी, यह बात लुत्फ-उन्निसा ने अच्छी तरह समझ लिया। इसीलिए, अपनी हार स्वीकार करते हुए दूसरे ढंग से बदला लेना चाहा।

सब सोच कर जहाँगीर दुखी हो कर चुप हो गये। तब लुत्फ-उन्निसा ने कहा, 'बादशाह सलामत की इस बारे में सहमति नहीं ?'

'मुझे एतराज नहीं। लेकिन अपने शौहर से ही फिर से विवाह करने की क्या जरूरत आन पड़ी ?'

'भाग्य ही ऐसा खोटा था कि पहले ब्याह के बाद शौहर ने बीवी के रूप में स्वीकार ही नहीं किया। अब जहाँपनाह की बाँदी को ठुकरा न सकेंगे।'

रहस्यमयी हँसी हँस कर बादशाह चुप हो गये। बोले, 'माशूका, तुझे न देने लायक मेरे पास कुछ भी नहीं। तुम्हारी अगर ऐसी ही मरजी है तो वही करो। लेकिन मुझे क्यों छोड़ जाओगी ? एक ही आसमान में क्या सूरज और चाँद दोनों नहीं रहते ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या एक ही डाली पर क्या दो फूल नही खिलते ?'

आँखें फाड़ कर बादशाह की ओर देखते हुए लुत्फ-उन्निसा ने कहा, 'छोटे-छोटे फूल खिल सकते हैं लेकिन एक मृणाल[1] पर दो कमल नहीं खिलते। आपके रत्न-सिंहासन के नीचे काँटा बन कर क्यों रहूँगी ?'

लुत्फ-उन्निसा अपने कमरे में चली गई। उसकी यह इच्छा क्यों कर हुई यह बात उसने जहाँगीर के सामने जाहिर न की। साधारण रूप से अनुभव से जैसा समझ में आता है, जहाँगीर वैसा ही समझ कर चुप रह गये। गहरे में जो बात थी उसे नहीं समझ सके। लुत्फ-उन्निसा का दिल पत्थर का है। नारी-हृदय को जीतने वाली सलीम की राजकान्ति भी कभी उसका मन मोह सकने में असमर्थ रही।

लेकिन इस बार पत्थर में भी कीड़ा घुस गया था।

६

आत्म-मन्दिर में

'जनम अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल।
से हो मधुर बोल स्त्रवनहि सूनल, स्तुतिपथ परस न भेल॥
कत मधु जामिनि रभस गमोआ, न बूझल कैसन केल।
लाख-लाख जुग हिय-हिय राखल, तइओ हिय जुड़ल न गेल॥
कत बिदगध जन रस अनुमोदइ, अनुभव काहू न पेख।
'विद्यापति' कहे प्रान जुड़ायेत लाखे न मिलल एक।''

—विद्यापति

अपने कमरे में आकर प्रसन्न मन से लुत्फ-उन्निसा ने पेशमन को बुलाया और कपड़े व गहने उतारे। सोना-मोती-हीरा के जड़ाऊ कपड़े उतार कर पेशमन से कहा, 'यह पोशाक तुम ले लो।'

सुन कर पेशमन ताजुब से ठगी रह गई। पोशाक बहुत कीमती है। अभी-अभी तैयार की गई है। भेद लेने को पूछा, 'पोशाक मुझे क्यों ? आज क्या कोई खास खबर है ?'

---

१. कमलनाल—कमल जड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाँ एक अच्छी खबर है।'

'यह तो समझ रही हूँ। मेहरुन्निसा का डर क्या खतम हो गया ?'

'हाँ, खतम हो गया। अब उस बारे में कोई फिक्र नहीं रही।'

पेशमन ने अत्यधिक प्रसन्नता दिखाते हुए कहा, 'तो अब मैं बेगम की बाँदी हुई न !'

'हाँ, यदि तुम बेगम की बाँदी बनना चाहो तो मैं मेहरुन्निसा से कह दूँगी।'

'क्या मतलब ? ऐसा क्या ? अभी तो आप ने फरमाया कि मेहरुन्निसा के लिए बादशाह की बेगम होने की कोई बात नहीं है।'

'ऐसी बात तो मैंने कभी नहीं कही। मैंने इतना ही कहा है कि अब उस बारे में कोई फिक्र नहीं रही।'

'फिक्र क्यों नहीं ? आप अगर आगरे की अकेली मालकिन न हुईं तो सब बेकार हुआ।'

'अब आगरे से कोई रिश्ता न रखूँगी।'

'यह सब क्या कहती हैं ? मैं तो कुछ भी नहीं समझ रही हूँ। फिर आज की वह अच्छी खबर क्या है, जरा समझा कर तो कहिए ?'

'ले सुन ! अच्छी खबर यह है कि जिन्दगी के बाकी दिनों के लिए अब मैं आगरा छोड़ कर चली।'

'तो कहाँ जाइएगा ?'

'जा कर बंगाल में रहूँगी। हो सका तो किसी भले आदमी की बीवी हो जाऊँगी।'

'हाँ, यह मजाक नया है जरूर, लेकिन सुनने से मन काँप उठता है।'

'मैं मजाक नहीं कर रही। सचमुच ही मैं आगरा छोड़ कर जा रही हूँ। बादशाह सलामत से विदा भी ले आई हूँ।'

'ऐसा पागलपन आप को क्यों हुआ ?'

'पागलपन बिल्कुल नहीं। बहुत दिन आगरा में रही, इतना घूमी, लेकिन नतीजा क्या निकला ! बचपन में सुख की प्यास बहुत तेज थी। उसी प्यास को बुझाने के लिए बंगाल छोड़ कर यहाँ तक आई। इस रत्न को खरीदने के लिए मैंने कौन सा धन नहीं दे डाला ? कौन सा ना करने वाला काम नहीं किया ? और जिस-जिस उद्देश्य से यहाँ तक किया, उसमें कौन-कौन सा हाथ में नहीं आया। शान-शौकत, दौलत, धन, शोहरत, इज्जत, सब कुछ तो हद से ज्यादा ही भोगा। लेकिन इतना कर के भी क्या हुआ ? क्या मिला ? आज यहाँ बैठ कर सब दिनों का मन ही मन हिसाब लगा कर कह सकती हूँ कि एक दिन के लिए भी मैं सुखी नहीं हुई। एक पल के लिए भी कभी सुख भोग नहीं किया। कभी पूरी तरह प्यास नहीं बुझी, बल्कि बढ़ती ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई। थोड़ी और कोशिश करने पर और भी दौलत, और भी शान-शौकत जुटा सकती थी पर किस लिए ? इन सबों में अगर थोड़ा भी सुख होता तो इतने दिनों में एक दिन के लिए भी तो सुखी हुई होती ! सुख की यह प्यास पहाड़ी झरने की तरह पहले बहुत निर्मल होती है, पतली सी धारा वन-प्रदेश से निकलती है, बहुत दूर तक अपने ही गर्भ में छिपी रहती है, जिसे कोई नहीं जानता। अपने आप कल-कल करती है, कोई नहीं सुनता। फिर क्रमशः जितना ही चलती है, देह उतनी ही फैलती जाती है, उतना ही कीचड़ बढ़ता है। यही नहीं, कभी हवा बहती है तो तरंगें उठती हैं, मगर-घड़ियाल भी आ बसते हैं। फिर देह और भी बढ़ती हैं, पानी और भी गंदला होता है, खारा होता है, जाने कितने रेगिस्तान नदी-हृदय में बन जाते हैं, फिर गति मन्द होने लगती है, तब वह गंदी व दूषित नदी-देह अथाह समुद्र में कहाँ छिप जाती है, कौन कह सकता है ?'

'मैं तो इसका कुछ भी मतलब नहीं समझ सकी। इन चीजों से आपको सुख क्यों नहीं होता ?'

'क्यों नहीं होता ? इतने दिनों बाद यही तो समझी हूँ। तीन साल तक राजमहल की छाँह में बैठे रह कर जो सुख नहीं पाया, वही सुख, उड़ीसा से लौटते समय रास्ते में एक रात के लिए मिल गया था। इसी से यह समझ सकी।'

'क्या समझ सकीं ?'

'मैं इतने दिनों तक हिन्दुओं के देवता की मूर्ति की तरह थी। बाहर से सोना व रत्न से चमकदार और भीतर से कठोर पत्थर। इन्द्रिय-सुख की खोज में आग के भीतर भी चली हूँ, पर कभी आग छू भी नहीं गई। अब एक बार जरा देखूँ, अगर पत्थर के भीतर खोज कर खून से तर एक हृदय पा सकूँ ?'

'यह भी मेरी समझ में कुछ नहीं आया।'

'इस आगरे में मैंने कभी किसी को प्यार किया है ?'

'नहीं, किसी को नहीं।'

'तो मैं पत्थर-दिल नहीं तो और क्या हूँ ?'

'सो अगर प्यार ही करने की तबियत हो तो प्यार क्यों नहीं करतीं ?'

'यही तो इच्छा जगी है अब। इसीलिये तो अब आगरा छोड़ कर दूर जा रही हूँ।'

'जाने की क्या जरूरत है ? आगरे में क्या शरीफ आदमी नहीं जो गँवार मूर्खों के देश जाओगी ? इस समय जो लोग आपको प्यार करते हैं, उन्हें ही क्यों नहीं प्यार करतीं ? रंगरूप में कहो, धन-दौलत में कहो, शान-शौकत में कहो, जिस तरह भी कहो दिल्ली के बादशाह से बड़ा इस धरती पर और कौन है ?'

'आकाश में चाँद-सूरज के रहते पानी नीचे की ओर ही क्यों गिरता है ?'

'क्यों गिरता है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'किस्मत की बात है !'
इसके आगे लुत्फ-उन्निसा ने सब बातें खोल कर नहीं कहीं।
पत्थर के भीतर आग घुस चुकी थी।
पत्थर पिघल चला था !

६

चरण के नीचे

'कायमनः प्राण आमि सँपिब तोमारे।
भुञ्ज आसि राजभोग दासीर आलये ॥'

—वीरांगना काव्य

खेत में बीज पड़ने से अंकुर अपने आप निकलता है। जब अंकुर निकलता है तब कोई जान नहीं पाता, देख नहीं पाता। लेकिन एक दिन बीज रोपित होने पर, रोपणकारी चाहे जहाँ भी रहे, क्रमशः अंकुर से पेड़ तक सर उठाता रहता है। आज पौधे की ऊँचाई सिर्फ अंगुल भर है, कोई देख कर भी नहीं देख पाता। फिर पौधा बालिश्त भर का, हाथ भर का, दो हाथ भर का होता है। फिर भी अगर किसी की स्वार्थ-सिद्धि की संभावना न रही तो फिर कोई नहीं देखता, देख कर भी नहीं देख पाता। फिर दिन बीतते हैं, महीने बीतते हैं, साल बीतते हैं, तब क्रमशः उसकी ओर आँखें उठती हैं। फिर देख कर न देखने वाली बात नहीं रहती—क्रमशः पेड़ बड़ा होता है। उसकी छाँह में दूसरे पेड़ कमजोर होने लगते हैं—यहाँ तक कि खेत में दूसरा पौधा नहीं रह जाता।

लुत्फ-उन्निसा का प्रेम भी इसी तरह बढ़ा था। कभी बहुत पहले, एक दिन प्रणय भाजन से भेंट हुई थी। तब प्रणय-महत्व को वह ठीक से नहीं समझती थी। लेकिन बीज तो था ही। फिर उससे भेंट नहीं हुई। लेकिन आँख-और वही चेहरा बारम्बार याद आता रहा। स्मृति में उसी चेहरे को चित्रित्र करके देखना कुछ-कुछ सुखकर मालूम होता था। बीज से अंकुर फूटा। उस चेहरे के प्रति अनुराग पैदा हुआ। मन का ऐसा ही धर्म है कि जो मानसिक कर्म बार-बार किया जाए, उस कर्म के प्रति उतनी ही तीव्र प्रवृत्ति होती है, क्रमशः वही कर्म स्वाभाविक बन जाता है। लुत्फ-उन्निसा बराबर उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चेहरे का ध्यान करती। स्वाभाविक था उसके मन में उसी चेहरे को देखने की उग्र इच्छा पैदा हुई। दिल्ली के सलतनत की लालसा भी उसके सामने हीन लगी। दिल्ली का सिंहासन जैसे काम के बाणों से तैयार हुआ और आग की लपटों से घिरा मालूम होने लगा। राज्य, राजधानी और राजसिंहासन सब का मोह छोड़ कर वह प्रिय के दर्शन के लिए लपकी। उसका वह प्रिय नवकुमार था।

इसलिए मेहरून्निसा की आशा को समाप्त करने वाली बात सुन कर भी लुत्फ-उन्निसा तनिक भी दुखी नहीं हुई। इसीलिए आगरा आकर भी उसने सम्पति की रक्षा के लिए कोई उपाय नहीं किया, इसीलिए जन्म भर के लिए उसने कृपालु बादशाह सलामत से बिदा ले ली।

लुत्फ-उन्निसा सीधे सप्तग्राम आई। राजपथ से कुछ दूरी पर नगर की एक अट्टालिका में डेरा डाला। एक दिन राजपथ के पथिकों ने आश्चर्य से देखा कि एकाएक वह अट्टालिका वैभव से सज्जित और दास-दासियों से पूर्ण हो गई है। प्रत्येक कमरे में मनोहर सजावट सुगन्ध और व्यवस्था का स्पष्ट रूप था। सोने, चाँदी और हाथी दाँत से निर्मित चित्रित, यह घर चतुर्दिक शोभामय था। सर्वत्र प्रकाश भी था।

इसी तरह से पूरी तरह सजे एक कमरे में लुत्फ उन्निसा सिर झुकाकर बैठी है। पास ही एक दूसरे आसान पर नवकुमार भीं बैठे हैं। सप्तग्राम में लुत्फ-उन्निसा से और भी दो बार भेंट हो चुकी है।

कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद नवकुमार बोले, 'तो अब मैं चला। तुम मुझे अब और मत बुलाना।'

'अभी मत जाओ। कुछ देर और ठहरो। मुझे बहुत कुछ कहना है। मेरी बात अभी खतम नहीं हुई है।'

नवकुमार ने और थोड़ी देर तक प्रतीक्षा की लेकिन लुत्फउन्निसा ने कोई बात न कही। थोड़ी देर बाद नवकुमार ने ही पूछा, 'और क्या कहना है ?'

लुत्फ-उन्निसा ने फिर कोई जवाब न दिया। बस चुपचाप बनी रह कर रोती रही।

यह देख कर नवकुमार उठने लगा। लुत्फ-उन्निसा ने उसके कपड़े के छोर को पकड़ लिया। तब नवकुमार ने विरक्ति से कहा, 'कुछ कहो भी तो !'

अब लुत्फ-उन्निसा बोली, 'तुम क्या चाहते हो ? संसार में क्या कुछ भी माँगने को नहीं है ? धन, सम्पत्ति, मान, प्रणय, रूप, रहस्य इस धरती पर जिसे भी सुख कहते हैं, वह सब मैं दूँगी और अपने किसी किए का भी बदला नहीं चाहती। केवल तुम्हारी दासी होना चाहती हूँ। तुम्हारी पत्नी बनूँ, वह गौरव भी नहीं चाहती, सिर्फ दासी रहूँगी !'

नवकुमार बोला, 'मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ। इस जन्म में सदा ही दरिद्र रहूँगा। तुम्हारा धन सम्पति नहीं लूँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवकुमार अभी तक नहीं समझ सका कि यह रमणी ही उसकी पत्नी है । नवकुमार ने लुत्फ-उन्निसा से कपड़े का छोर छुड़ा लिया और जाने को तैयार हुआ तो लुत्फ-उन्निसा ने फिर कहा, 'मैं और कुछ नहीं चाहती । जब भी कभी तुम इस रास्ते से जाना तो दासी सोच कर ही कभी-कभी दर्शन दे देना, बस अपनी आँखों की प्यास बुझा लूँगी ।'

नवकुमार ने कहा, 'देखो तुम मुसलमान हो । दूसरे की स्त्री हो । तुमसे इस प्रकार एकांत में बातें करने में भी दोष लगता है । तुमसे अब मेरी कभी भेंट न होगी ।'

थोड़ी देर खामोशी ! लुत्फ-उन्निसा के हृदय में भयानक तूफान चल रहा था । वह भी अब पत्थर की मूर्ति की तरह स्पंदनहीन थी । उसने नवकुमार का कपड़ा छोड़ दिया । फिर दृढ़ हो कर बोली, 'जाओ !'

नवकुमार चल पड़ा । सिर्फ दो-चार कदम ही चला था कि आँधी में उखड़े पेड़ की तरह एकाएक लुत्फ-उन्निसा उसके पैरों पर आ गिरी । पूरी शक्ति से अपनी बाहों में उसके दोनों पाँव बाँध कर अत्यन्त निरीह व कातर स्वर में बोली, 'निर्दयी ! मैं तेरे ही लिए आगरे का सिंहासन त्याग कर आई हूँ । तुम मुझे मत छोड़ो ।'

'तो फिर आगरा ही लौट जाओ और मेरी आशा छोड़ दो ।'

'इस जीवन में तो नहीं ही ।' तीर की तरह खड़ी होकर लुत्फ-उन्निसा अभिमान से बोली, 'इस जन्म में तो तुम्हारी आशा कभी न छोड़ेंगे ।' फिर सिर उठा कर, गर्दन थोड़ी टेढ़ी कर, नवकुमार के मुँह की ओर एकटक देखती वह खड़ी रही । हृदय की धधकती आग में जो गर्व भुन गया था, फिर उसकी चमक पैदा हुई, प्रणय की दुर्बल देह में वही शक्ति फिर पैदा हुई जो भारत के मुगल सलतनत के सामने नहीं झुकी थी । माथे की नसें फूल कर दिखने लगीं, चमकदार आँखें झुलसने लगीं, नथुने काँपने लगे । फण-कुचली नागिन जिस तरह फुँफकार कर फण काढ़ कर खड़ी होती है, वैसी ही उन्मादिनी बन कर वह सिर उठा कर खड़ी हुई और बोली, 'इस जन्म में नहीं पर मेरे होकर ही रहोगे ।'

क्रोध से उन्मादिनी बनी उस नागिन मूर्ति की तरफ देखने में नवकुमार को डर लगा । लुत्फ-उन्निसा का जो तेजमय रूप और महिमापूर्ण शरीर इस समय देखा, वैसा और कभी नहीं देखा था । उसे देख कर वह डरा । नवकुमार फिर चलने को उद्धत हुए तभी सहसा एक दूसरी तेजमय मूर्ति उसके मानस पट पर चमक उठी । एक दिन नवकुमार अपनी पहली पत्नी पद्मावती से नाराज हो कर उसे अपने कमरे से निकालने के लिए तत्पर हो उठे थे । बारह वर्ष बाद वह कन्या अभिमान से उसकी ओर घूम कर खड़ी हुई थी, तब इसी तरह उसकी आँखें आग फेंक रही थी, इसी तरह उसका भी सिर हिला था । बहुत दिनों तक वह शक्ल याद ही नहीं आई थी, अब आई है । दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्तियों में उसे आत्मधिक समानता का भास हुआ। संशय में डूबा नवकुमार संकुचित स्वर में पूछ बैठा, 'तुम कौन हो ?'

लुत्फ-उन्निसा की आँखों में चमक आई। कहा, 'मैं ही पद्मावती हूँ।'

उत्तर की प्रतिक्षा किए बिना ही लुत्फ-उन्निसा दूसरे कमरे में चली गई। नवकुमार भी शंका के समुद्र में गोते लगाता, शंकित मन से अपने घर वापस गया।

दूसरे कमरे में जाकर लुत्फ-उन्निसा ने भीतर से किवाड़ बन्द कर लिए। फिर दो दिनों तक उस कमरे से बाहर नहीं आई। इन दो दिनों में ही हृदयमंथन कर के उसने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया। निश्चय कर के दृढ़प्रतिज्ञा हुई। तब सूरज डूब रहा था। तब पेशमन की मदद से लुत्फ-उन्निसा अपना शृंगार कर रही थी। आश्चर्य में डालनेवाले कपड़े पहने। न पेशवान, न पाजामा, न ओढ़नी। नारी-भेष का कोई चिह्न नहीं। पूरी तरह पहन-ओढ़ कर उसने शीशे में देख कर पेशमन से पूछा, 'क्यों पेशमन, क्या मुझे पहचाना जा सकता है ?'

पेशमन बोली, 'किसकी मजाल है कि पहचान ले !'

'ठीक है। तब मैं चली अब। हाँ, मेरे साथ कोई दास-दासी न जाये।'

'अगर बाँदी का अपराध क्षमा करें तो एक बात पूछना चाहती हूँ ?'

'क्या ?'

'आप का आखिर मतलब क्या है ?'

'फिलहाल कपालकुण्डला से उसके पति का हमेशा के लिए अलगाव। बाद में वे मेरे हो जायेंगे।

'बीबी, अच्छी तरह सोच लो। बड़ा घना जंगल है। रात भी हो गई, है आप अकेली ही जा रही हैं।'

इस बात का कोई जवाब न देकर लुत्फ-उन्निसा घर से बाहर निकल गई। सप्तग्राम के एक छोर पर जहाँ नवकुमार का घर है, उधर ही चली। उस जगह पहुँचते पहुँचते सचमुच रात हो गई। नवकुमार के घर के पास से ही घना जंगल शुरू होता है। उसी ओर जा कर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गई। कुछ देर तक बैठी रह कर जिस बड़े उद्देश्य को लेकर आई है उसी के विषय में विचार करने लगी।

लुत्फ-उन्निसा जहाँ बैठी थी, वहाँ उसे मनुष्य-कण्ठ की आवाज सुन पड़ी। उठ कर खड़ी हो उसने चारो ओर नजरें दौड़ा कर देखा तो जंगल के भीतर उसे रोशनी दिखाई पड़ी। हिम्मत में लुत्फ-उन्निसा पुरुषों से भी बढ़ कर है। वह बिना डरे, उधर ही गई, जहाँ आग जल रही थी। पहले तो पेड़ की ओट में छिप कर देखती रही कि मामला क्या है ! उसने स्पष्ट देखा कि जो आग जल रही थी वह होम की आग है। और उसे जो आवाज सुन पड़ी थी वह मंत्र-पाठ का शब्द था। मन्त्र के बीच एक शब्द उसकी समझ में आया। वह शब्द था एक व्यक्ति का नाम। वह नाम सुनते ही लुत्फ-उन्निसा होम करने वाले के पास आ कर बैठ गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथा भाग

| १ |

जंगल में

"...Tender is the night
And happy the queen moon is on her throne
elustered around by all her Stary fays,
But here there is no light.

—Keats

आगरा जाने और वहाँ से सप्तग्राम वापस आने में लुत्फ-उन्निसा को लगभग एक साल लग गया। यहाँ कपालकुण्डला भी साल भर से अधिक हुए, नवकुमार की योग्य गृहिणी बन गई है। जिस समय पुरुष वेश में लुत्फ-उन्निसा जंगल में गई थी, उस समय कपालकुण्डला अपने शयनकक्ष में बैठी थी। अब कपालकुण्डला पहले वाली तपस्विनी नहीं है। श्यामासुन्दरी की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य निकली है। पारस पत्थर छू कर तपस्विनी कपालकुण्डला अब सफल गृहिणी बन गई है। अब उसकी केशराशि पहले की तरह खुली-बिखरी नहीं रहती बल्कि अब गुँथी हुई मोटी वेणी झूलती है। उसके बनाव-शृंगार में श्यामासुन्दरी का पूरा हाथ स्पष्ट दिखता है। फूलों की माला भी वेणी से लिपटी है। बालों का वह हिस्सा जो वेणी में नहीं गुँथ सका है वह छोटी-छोटी घुँघराली लट बन कर हिल रही है। चेहरा भी बालों से नहीं ढँका है। दोनों कानों में सोने के कर्णफूल झूल रहे हैं। गले में सोने का हार। सफेद साड़ी पहने है। रंग भी चाँद सा उज्ज्वल है। कपालकुण्डला के पास उसकी ननद श्यामासुन्दरी भी बैठी है।

कपालकुण्डला ने पूछा, 'ननदोई जी कब तक रहेंगे ?'

श्यामासुन्दरी बोली, 'कल तीसरे पहर चले जाएँगे। कहा, आज रात को यदि दवा ले रखती तो उन्हें वश में करके स्त्री-जन्म सार्थक कर लेती। पर क्या कहूँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल रात ही बाहर निकली थी, इसीलिए झाड़ू और लातों की मार खाई, अब आज भला कैसे निकल सकती हूँ ?'

'तो दिन को ही ले आतीं ?'

'दिन में लाने से उसका फल नहीं होता। ठीक आधी रात को स्त्री को ही खुले बालों से लाना होता है। पर भाई, अब क्या हो सकता है ! मन की साध मन में ही रह गई।'

'अच्छा, तो एक काम करें। मैं तो दिन में वह पेड़ पहचान ही आई हूँ। जिस जंगल में जहाँ है वह भी देख आई हूँ। अब आज तुम मत जाओ। मैं ही अकेली जाकर दवा ले आऊँगी।'

'एक दिन जाने का परिणाम तो भोग लिया। अब इतनी रात को तुम भी बाहर मत जाना।'

'इसकी तुम चिन्ता मत करो। जानती तो हो कि रात में अकेले घूमने की मेरी लड़कपन से आदत है। सोच कर देखो न अगर मेरी वह आदत न होती तो ...'

'इस बात के लिए नहीं कह रही हूँ मैं। लेकिन रात में अकेले घने जंगल में घूमना क्या गृहस्थ की बहु-बेटी के लिए अच्छा है ? दो जनें साथ गईं। तब तो इतना बड़ा काण्ड हो गया, अब तुम अकेली जाओगी तो जाने क्या हो ?'

'कोई चिन्ता नहीं है। तुमने क्या सोचा है कि मैं रात को घर से बाहर पैर बढ़ाऊँगी तो पथभ्रष्ट हो जाऊँगी, क्यों ?'

'मैं यह सब नहीं सोचती, लेकिन बुरे लोग तो बुरी बातें ही कहते हैं न !'

'कहें, इसकी भी मैं परवाह नहीं करती।'

'लेकिन तुम्हें कोई कुछ कहेगा तो मुझे तो कष्ट होगा न ?'

'ऐसा कष्ट बेमतलब है।'

'लेकिन इससे दादा का भी दिल दुखेगा।'

'अब इससे भी उनका दिल दुखे तो भला मैं क्या कर सकती हूँ। अगर मैं जानती कि औरत के लिए ब्याह करना दासता स्वीकार करना है तो मैं कदापि विवाह न करती।'

थोड़ी देर बाद श्यामा उठ गई। कपालकुण्डला भी व्यस्त हो गई। फिर वह दवा की खोज में घर से बाहर निकली। रात काफी हो चुकी थी। लेकिन चाँदनी थी। नवकुमार बाहर बैठके में बैठे थे। कपालकुण्डला बाहर निकली तो नवकुमार ने खिड़की से झाँक कर देखा। वे भी पीछे-पीछे बाहर आये और आकर कपालकुण्डला का हाथ पकड़ लिया। कपालकुण्डला ने पूछा, 'क्या है ?'

नवकुमार ने पूछा, 'कहाँ जा रही हो ?'

'श्यामासुन्दरी अपने पति को वशीभूत करने को दवा चाहती है। मैं उसी दवा की खोज में जा रही हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दवा ही लेने तो कल गई थी, आज अब फिर क्यों ?'

'कल नहीं मिली । आज फिर खोजूँगी ।'

'लेकिन दिन में खोजने से भी तो हो सकता है ।'

'नहीं, दिन में लाने से दवा का फल नहीं होता ।'

'तो मुझे पेड़ का नाम बता दो, मैं ला दूँगा ।'

'मैं पेड़ देख कर पहचान सकती हूँ । पर नाम नहीं जानती । लेकिन तुम्हारे लाने से कोई फल भी न होगा । बाल खोल कर स्त्री ही ला सकती है । तुम मुझे लाने दो । दूसरे के उपकार में बाधा मत बनो ।'

नवकुमार चुप हो गया । थोड़ी देर बाद बोला, 'अच्छा चलो । मैं तुम्हारे साथ ही चलता हूँ ।'

कपालकुण्डला ने अभिमान से कहा, 'जरूर आओ । अपनी आँखों देख लो कि मैं कोई विश्वासघात तो नहीं करती ।'

अब नवकुमार और कुछ न कह सका । चुपचाप कपालकुण्डला का हाथ छोड़ कर घर लौट आया । फिर कपालकुण्डला अकेली ही जंगल में घुसी ।

सप्तग्राम का यह भाग बहुत ही घना है । कपालकुण्डला अकेली ही एक संकरी जंगली राह से दवा की खोज में बढ़ गई । रात खूब खामोश है, कहीं से भी किसी तरह की आवाज नहीं आ रही । बसन्त की सुहावनी व ठंडी रात में चाँद चुपचाप सफेद बादलों को पार करता आगे बढ़ता जा रहा है । जमीन पर जंगली पेड़ व लताएँ भी चुपचाप चन्द्रकिरणों के साये में विश्राम कर रहे हैं । पेड़ के पत्ते उन किरणों से प्रतिघात कर रहे हैं । चुपचाप लता-गुल्मों में सफेद फूल विकसित हो रहे हैं । रह-रह कर कहीं-कहीं एक-आध बार के लिए आराम में बाधा पड़ने से पक्षी-गणों के पंख फड़फड़ाने की आवाज होती है, कहीं सूखे पत्तों के टूट कर गिरने का शब्द, कहीं-कहीं बहुत दूर कुत्तों के भूँकने की आवाज है । हलकी-हलकी हवा भी चल रही है । शरीर को आराम देने वाली बसन्ती हवा, मन्द और खामोश हवा, जिसके स्पर्श से पेड़ों के सब से ऊपर वाले फुनगी के पत्ते ही हिल रहे हैं । आकाश में विचरण करने वाले छोटे-छोटे सफेद बादलों के टुकड़े धीरे-धीरे एक ओर चले जा रहे हैं ।

कपालकुण्डला की भी पुरानी स्मृतियाँ एक-एक कर के जाग रहीं हैं । बालू की शिखरों को छू कर, समुद्र से आती हवा उसकी लम्बी अलकों को उड़ाती थी, उसे वह सब याद आया । नीले रंग के अनन्त दूरी तक फैले आकाश की ओर देख कर उसे आकाश रूपी समुद्र याद आया । वह सब याद करके कपालकुण्डला जैसे अन्यमनस्क हो उठी ।

अनमनी सी वह चुपचाप आगे बढ़ती गई और कहाँ किस काम से वह जा रही है, यह उसे याद न रहा । जिस रास्ते में वह बढ़ती जा रही थी, वह मानो समाप्त होने का नाम ही न लेता था । जंगल भी खूब अंधेरा व खामोश हो गया । पेड़ों की डाली के घनेपन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
से सिर के ऊपर की चाँदनी भी जैसे छिप गई। अब और आगे रास्ता दिखाई नहीं देता। रास्ता जब न दिखा तो कपालकुण्डला चिन्ता से सचेत हुई। इधर-उधर निगाह दौड़ाई। एक ओर थोड़ी दूर पर प्रकाश दिखाई पड़ा। लुत्फ-उन्निसा ने भी वही प्रकाश देखा था। अपने पूर्व अभ्यास के कारण प्रकाश देख कर कपालकुण्डला डरी नहीं, बल्कि उसे कुतूहल ही हुआ। धीरे-धीरे वह उस प्रकाश की ओर ही बढ़ी। देखा, जहाँ प्रकाश हो रहा था, वहाँ कोई न था। परन्तु उसके पास ही थोड़ी दूर पर एक टूटा-फूटा घर है जो जंगल के अंधकार के कारण दूर से दिखाई नहीं पड़ता। बहुत छोटा, ईंटों का बना घर, बहुत ही साधारण है। उसमें मात्र एक ही कमरा है। उसी घर के पास जाने पर उसने सुना, भीतर से दो आदमियों की बातचीत करने की आवाज आ रही थी। कपाल-कुण्डला का कुतूहल प्रतिपल बढ़ता ही जा रहा था—वह चुपचाप घर की दीवाल के पास गई। सचमुच दो आदमियों की बहुत सतर्कता से बातें करने की आवाज आ रही थी। पहले तो प्रयत्न करने पर भी बातचीत का सारांश उसकी समझ में न आया। बाद में बहुत कोशिश करने पर सुनाई पड़ा—

एक आदमी कह रहा था, 'मेरी इच्छा है, मृत्यु हो, इसमें तुम कुछ न कर सको तो मैं भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकूँगा। और तुम भी मेरी सहायता मत करना।'

दूसरा बोला, 'उसका हित मैं भी नहीं चाहता। लेकिन जिन्दगी भर के लिए देशनिकाला हो, मैं इससे सहमत हूँ। लेकिन हत्या का कोई उद्योग मुझसे न होगा, 'बल्कि मैं उस सम्बन्ध में किए गए प्रयास का विरोध ही करूँगा।'

पहले ने कहा, 'तुम निरे अबोध और नादान हो। तुम्हें मैं कुछ ज्ञान दे रहा हूँ, जिसे ध्यान से सुनो। बड़ी गूढ़ बात है। चारो ओर जरा एक बार देख आओ। मुझे तो जैसे किसी आदमी के साँस की आहट मिल रही है।'

कपालकुण्डला बातों को अच्छी तरह सुन सकने के लिए दीवाल के बहुत पास खिसक कर खड़ी हो गई थी। शायद उसकी तेज साँस का ही भीतर वालों को आभास मिला था।

तभी एक व्यक्ति घर से बाहर आया। आते ही उसकी निगाह कपालकुण्डला पर पड़ी। चाँदनी के प्रकाश में कपालकुण्डला ने भी आने वाले व्यक्ति का आकार साफ-साफ देखा। देख कर न तो वह डरी न खुश हुई। आने वाला व्यक्ति एक ब्राह्मण-वेशी था। मामूली धोती पहने, सारा बदन चादर से अच्छी तरह ढँका। देख कर लगा ब्राह्मण-कुमार कोमल-वयस्क है। चेहरे पर आयु का अन्दाज देने वाला कोई चिन्ह नहीं है। चेहरा खूब सुन्दर, सुन्दर स्त्री की चेहरे जैसा सुन्दर, लेकिन स्त्री के चेहरे पर ऐसा तेज व गर्व नहीं होता। बाल भी लम्बे, पुरुषों के बालों की तरह कटे न थे। माथा चौड़ा। दोनों आँखें खूब चमकदार। हाथ में एक खुली हुई लम्बी तलवार। परन्तु इस मोहक रूपराशि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भीतर एक भीषण भाव व्यक्त हो रहा था। उस पर जैसे कामना की कोई कराल छाया पड़ी थी। उसके कटाक्ष—अन्तस्थल को भेद कर सब कुछ जान लेने वाला कटाक्ष देखकर कपालकुण्डला डर गई।

दोनों काफी देर तक एक दूसरे को एकटक देखते रहे। फिर कपालकुण्डला ने ही पलकें गिराईं। तत्काल ही आगन्तुक ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

यदि एक साल पहले केवड़े के वन में कपालकुण्डला से यह प्रश्न किया जाता तो वह उसी समय उसका उचित उत्तर देती। लेकिन अब तो कपालकुण्डला गृह-रमणी के स्वभाव वाली बन चुकी थी, इसीलिए शायद एकाएक जवाब न दे सकी। ब्राह्मण-वेशी ने कपालकुण्डला को चुप देख कर जरा जोर से कहा, 'कपालकुण्डला ! तुम इस अंधेरी रात में, इस जंगल में किसलिए आई हो ?'

जंगल में, रात को, अचानक मिलने वाले एक अपरिचित पुरुष के मुँह से अपना नाम सुन कर कपालकुण्डला अत्यधिक चकित व विस्मित हुई। कुछ डर भी लगा। एकाएक कुछ उत्तर देने की सामर्थ उसमें न थी।

थोड़ा हिम्मत करने पर सहसा कपालकुण्डला की वाक-शक्ति फिर से लौट आई। उसने उत्तर न देकर प्रश्न किया, 'मैं भी यही पूछती हूँ, इस अंधेरे जंगल में, इतनी रात बीते, तुम दोनों आदमी कौन सा षड़यंत्र कर रहे हो ?'

ब्राह्मण-वेशी चिन्तामग्न हो कुछ देर तक नितांत चुप रहा। फिर जैसे किसी उद्देश्य की पूर्ति की आशा मन में जागी और आगे बढ़ कर उसने एकाएक कपालकुण्डला का हाथ पकड़ा और टूटे घर से कुछ दूर खींच कर ले जाने लगा। कपालकुण्डला ने क्रोध प्रदर्शित करते हुए झटके से हाथ छुड़ा लिया। तब उस ब्राह्मण-वेशी ने बड़े कोमल स्वर में कपालकुण्डला के कान में कहा, 'तुम्हें चिन्ता क्या है ? मैं पुरुष नहीं हूँ।'

कपालकुण्डला अब और चौंकी। इस बात पर उसे थोड़ा-थोड़ा विश्वास हुआ पर पूरा नहीं। वह चुपचाप ब्राह्मणवेशी के साथ-साथ एक ओर बढ़ गई। टूटे घर से दूर एक एकांत जगह पर जा कर ब्राह्मणवेशी ने कपालकुण्डला से कान में कहा, 'हमलोग जो षड़यन्त्र कर रहे थे वह सुनोगी ? वह तुम्हारे ही सम्बन्ध में है।'

कपालकुण्डला का भय और आग्रह एकाएक बहुत बढ़ गया। वह बोली, 'सुनूँगी।'

'तो जब तक मैं लौट कर न आऊँ, तुम यहीं प्रतीक्षा करो।' कह कर ब्राह्मण-वेशी टूटे घर की ओर चला गया। कपालकुण्डला काफी देर तक वहाँ बैठी रही। अब तक उसने जो कुछ देखा था और सुना था उससे उसके मन में बड़ा भय पैदा हो गया था। इस समय नितांत अकेली, अंधेरे जंगल में बैठने से और भी डर बढ़ने लगा। खासकर वह यह न समझ सकी कि यह रहस्यमय ब्राह्मणवेशी व्यक्ति इस प्रकार क्यों बैठा गया है, किस अभिप्राय से, यह सोच कर वह और डरी। हो सकता है कि सुयोग समझ कर अपना बुरा अभिप्राय सिद्ध करने के लिए ही उसे वहाँ बैठ गया हो ! इस प्रकार नाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार की शंकाएं मन में उठने के कारण कपालकुण्डला भय से बहुत परेशान हो उठी। इधर ब्राह्मणवेशी को गए भी काफी देर हो गई और उसके लौटने का चिन्ह भी कहीं न दिखा। अब कपालकुण्डला और बैठी न रह सकी। उठ कर तेजी से कदम बढ़ाती वह घर की ओर चल पड़ी।

एकाएक आकाश में घनघोर घटा छा गई। सारा आकाश काला हो उठा। जंगल में नीचे जो थोड़ा सा हल्का प्रकाश था वह भी क्रमशः गायब होने लगा। कपालकुण्डला अब क्षण भर भी की देरी नहीं करना चाहती थी। जल्दी जल्दी पाँव बढ़ाती हुई वह जंगल के बाहर की ओर चली। आगे बढ़ते हुए, गहरे हो रहे अंधेरे में उसे जैसे पीछे से आते किसी दूसरे व्यक्ति की आहट मिली। पर वह मुँह फेर कर अंधेरे में देखने का साहस न कर सकी। कपालकुण्डला ने सोचा कि अवश्य ही वही ब्राह्मणवेशी उसका पीछा कर रहा है। तीर की भाँति चलती हुई जंगल से निकल कर वह वन-पथ पर चलने लगी। वहाँ उतना अंधेरा नहीं, दृष्टि की पहुँच में आदमी को देखा जा सकता है। तनिक घूम कर उसने देखा—कोई भी दिखाई न पड़ा। थोड़ा निश्चिन्त हो, उसने अपने चाल की गति धीमी की। तभी उसे पीछे से आती पदचाप की स्पष्ट ध्वनि फिर सुन पड़ी। आकाश का अंधेरा पहले से अधिक हो गया। कपालकुण्डला के कदम और तेज उठने लगे। घर पास ही था। लेकिन घर पहुँचते-पहुँचते भयानक शोर के साथ प्रचण्ड वेग से आँधी व पानी का ताण्डव शुरू हो गया। कपालकुण्डला दौड़ पड़ी। पीछे-पीछे जिस आदमी के आने की आहट मिल रही थी, लगा वह भी दौड़ा। ऐसी आवाज का आभास मिला। घर दिखाई पड़ने के पहले ही आँधी और पानी का प्रचंड वेग जैसे कपालकुण्डला के सिर पर टूट पड़ा। बारम्बार गम्भीर मेघ-गर्जन और बिजली कड़कने की आवाज होने लगी। पानी भी मूसलाधार बरसने लगा। किसी तरह अपने को सम्हालती हुई कपालकुण्डला घर तक पहुँची। सहन पार कर कमरे की ओर बढ़ी। उसके लिए कमरे का दरवाजा खुला था। दरवाजा बन्द करने के लिए घूम कर सहन की ओर मुँह किया अचानक लगा कि जैसे सहन में एक लम्बा सा आदमी खड़ा है। ठीक उसी क्षण एक बार बिजली चमकी। बस, क्षण भर की उस बिजली की चमक में ही कपालकुण्डला ने उसे पहचान लिया। वह समुद्र के किनारे वाला वही कापालिक था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न में

"I had a dream, which was not all a dream."

—Byron

भयातुर कपालकुण्डला ने धीरे-धीरे दरवाजा बन्द कर लिया। फिर धीरे-धीरे शयन-कक्ष में गई, धीरे-धीरे ही पलंग पर लेटी। आदमी का मन अनन्त सागर है, उस पर जब पागल हवाएँ लड़ने लगती हैं, तब कौन उसकी तरंगों को गिन सकता है? कपालकुण्डला के हृदय-समुद्र में जो तंरगें उठ रही थीं उन्हें भी भला कौन गिनेगा?

नवकुमार भी मन के क्षोभ व वेदना के कारण उस रात अन्तःपुर में नहीं आये। शयन-कक्ष में अकेली कपालकुण्डला ही लेटी। लेकिन उसकी आँख किसी तरह भी न लगी। तेज हवा के झोंकों से चोट खाया, तेज वर्षा के वेग से धुला और जटाजूट से घिरा उसका चेहरा अंधेरे में ही इधर-उधर दिखता रहा। फिर कपालकुण्डला मन ही मन अभी देखे सभी दृश्यों की विवेचना करने लगी। फिर वह शीघ्र ही अतीत की स्मृतियों में खो गई। कापालिक के प्रति जैसा व्यवहार करके वह भाग आई थी, वह सब याद आने लगा। उसे याद आया—कापालिक घने वन में जो पैशाचिक कार्य करता था। उसकी भैरवी-पूजा, नवकुमार का बन्धन, सब कुछ याद आने लगा। सब कुछ सोच कर एक बार कपालकुण्डला काँप उठी। आज की रात की भी सभी घटनाएँ एक-एक करके याद आने लगीं। श्यामा की दवा की इच्छा, नवकुमार द्वारा रोका जाना, उसके प्रति कपालकुण्डला की उपेक्षा व तिरस्कार, फिर जंगल की यात्रा, घोर अंधकार, जंगल में मिला ब्राह्मणवेशी—सब याद आने लगा।

पूरब दिशा में जब ऊषा की लालिमा छाने लगी तब कपालकुण्डला को कुछ झपकी आई। उसी हल्की नींद में कपालकुण्डला स्वप्न देखने लगी। देखा—वह जैसे समुद्र के वक्ष पर नाव पर बैठी चली जा रही है। नाव खूब सजी है। उस पर बसंती रंग की पताका उड़ रही है। नाविक भी गले में फूलों की माला पहने नाव खे रहे हैं। वे राधा और कृष्ण के अनन्त प्रणय-सम्बन्धी रसमय गीत गा रहे हैं। पश्चिम के आकाश से सूर्य सोने की धारा बहा रहा है। और वह धारा पाकर समुद्र हँस रहा है। आकाश-मण्डल के बादल उस सोने की वर्षा में दौड़-दौड़ कर नहा रहे हैं। अचानक रात आ गई। सूर्य न जाने कहाँ चला गया। सोने के मेघ न जाने कहाँ चले गये! निविड़ अंधकार में सारा आकाश डूब गया। इस अंधकार में, समुद्र में, दिशा का आभास नहीं मिलता। नाविकों ने नौका वापस लौटाई। अब कैसे नाव खेयें, यह तय नहीं कर पा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे। नाविकों ने गाना बन्द कर दिया, गले की मालायें तोड़ डालीं। बासंती रंग की पताका अपने आप खुल कर पानी में गिर पड़ी। तेज तूफान उठा, पेड़ की ऊँचाई तक ऊँची तरंगें उठने लगीं। उन तरंगों के भीतर से जटाजूटधारी, बड़े आकार का एक पुरुष आकर कपालकुण्डला की नाव बायें हाथ में उठा कर समुद्र के बीचोबीच फेंकने को तत्पर हुआ। ठीक ऐसे ही समय वह सुदर्शन ब्राह्मणवेशी आकर नाव को पकड़ लेता है। वह कपालकुण्डला से पूछता है, 'तुम्हें रक्खूँ या डुबो दूँ ?' अचानक कपालकुण्डला के मुँह से निकला, 'डुबो दो।' तब ब्राह्मणवेशी ने नाव छोड़ दी। तब नाम भी बोल उठी—'मैं यह भार अब और नहीं ढो सकती। मैं पाताल में प्रवेश कर रही हूँ।' इतना कह कर नाव उसे पानी में फेंक कर जल्दी से पाताल में प्रवेश कर गई।

इसी क्षण हड़बड़ा कर कपालकुण्डला की नींद टूटी। उसका सारा शरीर पसीने से तर हो रहा था। आँखें खोल कर चारो ओर देखा, सबेरा हो गया है। कमरे की खिड़कियाँ खुली हुई हैं। उनसे बासंती हवा की लहरें आ रही हैं। पेड़ों की डालें धीरे-धीरे हिल रही हैं और उन पर बैठी चिड़ियाँ चहक रही हैं। उन खिड़कियों पर कुछ जंगली लताएँ, फूलों से लदीं, हिल रही हैं। नारी-सुलभ स्वभाव से प्रेरित हो कपाल-कुण्डला उठी और उन लताओं को करीने से बाँधने-समेटने लगी। तभी उसे लताओं के बीच खोंसी हुई एक चिट्ठी मिली। कपालकुण्डला पढ़ना जानती थी। पत्र में लिखा था—

'आज शाम के बाद कल रात वाले ब्राह्मणकुमार से भेंट करना। अपने सम्बन्ध में हुए षड़यंत्र की बात सुनना।

—ब्राह्मणवेशी।'

| ३ |

निर्णय के क्षण

"I will have grounds
More relative than this."

—Hamlet

उस दिन शाम तक कपालकुण्डला चिन्तित रही। ब्राह्मणवेशी से उसका मिलना उचित होगा या नहीं, बस यही एक विचार उसके मन को मथता रहा। यह वह जानती थी कि एक प्रतिव्रता स्त्री का रात में, एकान्त में किसी अपरिचित पुरुष से मिलना अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित है, लेकिन इस विचार से उसके मन में तनिक भी संकोच न हुआ क्योंकि इस सम्बन्ध में उसकी दृढ़ व निश्चित धारणा थी कि किसी से भी मिलने का उद्देश्य यदि बुरा नहीं है तो मिलना भी किसी प्रकार का दोष नहीं हो सकता। पुरुष-पुरुष या नारी-नारी को जिस तरह निःसंकोच आपस में मिलने का अधिकार है, उसी तरह पुरुष-स्त्री व स्त्री-पुरुष को भी मिलने का अधिकार है। उसका विचार है, इस समय उपस्थित समस्या तो और भी आसान है क्योंकि मिलने वाला ब्राह्मणवेशी पुरुष है या नहीं, इसमें भी संदेह है। फिर यह संकोच निरर्थक है, लेकिन इस मुलाकात से भला होगा या बुरा यह निश्चय बिना मिले नहीं किया जा सकता—मात्र इसीलिए कपालकुण्डला के मन में थोड़ा सा संकोच है। पहले ब्राह्मणवेशी से हुई बातचीत, उसे जंगल में अकेली बैठ कर उसका गायब हो जाना फिर कापालिक को अपने घर में देखना, फिर वह अजीब सा स्वप्न देखना, इन सब बातों को ले कर कपालकुण्डला के मन में अपने लिए एक अजीब-सा डर वा संशय पैदा हो रहा था। रह-रह कर उसके मन का यह संदेह सबल होता जा रहा था कि उसका अमंगल निकट ही है। कापालिक के अचानक प्रकट होने के साथ यह संशय और अमंगल मिला हुआ है ऐसा संदेह बिनामतलब नहीं कहा जा सकता। वह ब्राह्मणवेशी भी उसी कापालिक का ही संगी-साथी मालूम होता है, अतः उससे मिलने से वह आशंकित अमंगल में अपने आप गिर सकती है। उसने तो बड़े दर्प से स्पष्ट शब्दों में कहा था कि कपालकुण्डला के ही सम्बन्ध में वे दोनों षडयंत्र कर रहे थे। फिर ऐसा भी हो सकता है कि मिलने से उसके निराकरण की भी सूचना होगी। ब्राह्मणवेशी भीतर एक दूसरे व्यक्ति के साथ मिल कर षड़यंत्र-रचना कर रहा था, तो हो सकता है कि भीतर वाला वह व्यक्ति कापालिक भी हो। उनकी बातचीत में किसी की हत्या या मृत्यु की बात हो रही थी, कम से कम सदा के लिए देश-निर्वासन की बात। लेकिन यह सब किसके लिए ? ब्राह्मणवेशी ने तो स्पष्ट ही बता दिया है कि कपाल-कुण्डला के सम्बन्ध में ही षड़यंत्र हो रहा था। तो क्या उसी की हत्या-मृत्यु या निर्वासन का संकल्प हो रहा था ? तो जब इस भयानक षड़यंत्र में ब्राह्मणवेशी ही सहयोगी है तब उससे मिलने रात में अकेले जंगल में जाना अवश्य ही विपत्ति का कारण हो सकता है। परन्तु कल रात को जो सपना देखा था ? उस सपने का क्या अर्थ हो सकता है ? सपने में तो महाविपत्ति के क्षण में ब्राह्मणवेशी ने ही आकर तो उसकी रक्षा करनी चाही थी। शायद मिल कर वह उसकी रक्षा का ही उपाय कहना चाहता हो या मिल कर इस सम्बन्ध में सब बातें ही बताना चाहता हो। कपालकुण्डला ने सपने में कहा था—'डूबो दो', अब भी क्या वैसा ही कहेगी ? क्या फिर ब्राह्मणवेशी की सहायता को ठुकरा कर विपत्ति के समुद्र में डूबेगी ? नहीं—नहीं—भक्त की रक्षा के लिए भवानी ने स्वप्न द्वारा उसकी रक्षा का ही संकेत किया है। ब्राह्मणवेशी आकर उसका उद्धार करना चाहता है। उसकी सहायता छोड़ने पर वह अवश्य डूबेगी। अतः खूब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोच-विचार के उपरान्त कपालकुण्डला ने उससे मिलने का ही निचश्य किया। अन्य कोई बुद्धिमान व्यक्ति ऐसी स्थिति में क्या निर्णय लेता, यह कहना कठिन है। कपाल-कुण्डला किसी भी प्रकार बहुत बुद्धिमान नहीं है इसीलिए अपनी बुद्धि के अनुसार उसने निश्चय कर लिया। उस सुदर्शन, सुन्दर युवक से मिलने का उसने निश्चय कर लिया।

संध्या के पश्चात घर का कामकाज पूरा कर लेने के बाद कपालकुण्डला अपने निश्चय के अनुसार जंगल के लिए चल पड़ी। चलते समय शयनकक्ष का दिया भी तेज करती गई। लेकिन वह जैसे ही कमरे से बाहर निकली कि कमरे का दिया बुझ गया।

चलते समय जल्दी में कपालकुण्डाला एक बात भूल गई। ब्राह्मणवेशी के पत्र में यह देखना भूल गई कि उसने किस स्थान पर मिलने के लिए लिखा था। अत: एक बार फिर पत्र पढ़ना आवश्यक हो गया। वह तत्काल घर वापस आई। कमरे में जिस जगह पर उसने चिट्ठी रखी थी, वहाँ देखा कि वह चिट्ठी नहीं है। याद आया कि बाल बाँधते समय उस चिट्ठी को अपने पास ही रखने के इरादे से कबरी में खोंस ली थी। कबरी में उँगलियाँ गड़ा-गड़ा कर खोजा। लेकिन वहाँ भी चिट्ठी न मिली। तब उसने वेणी खोल दी, फिर भी चिट्ठी न मिली। तब कमरे में दूसरी जगहों में भी खोजा। कहीं भी चिट्ठी न मिली। तब मन में आया कि कहीं और रख दी होगी और इस समय याद नहीं आ रहा, अत: यही निश्चय करके चल पड़ी कि कल वाली जगह पर ही मुलाकात होगी। जल्दी में वह सिर के फैले बालों को फिर से बाँधना भी भूल गई। अत: आज कपालकुण्डला शादी के पूर्व वाली बालिका की तरह ही सिर के बालों को उड़ाती हुई चल पड़ी।

४

घर के दरवाजे पर

"Stand you awhile apart,
Confine yourself but in a patient list."
—Othello.

शाम के पूर्व जब कपालकुण्डला घर के कामकाज में व्यस्त थी तब चिट्ठी जूड़े से खुल कर नीचे जमीन पर आ गिरी थी। कपालकुण्डला को इसका आभास मिल न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाया था। नवकुमार ने चिट्ठी गिरते देखी थी। जूड़े से चिट्ठी खुलकर गिरती देख कर नवकुमार का विस्मित होना स्वाभाविक ही था। कपालकुण्डला जब दूसरी ओर चली गई तब चिट्ठी उठा कर बाहर ले जाकर नवकुमार ने पढ़ी थी। उस पत्र में सिर्फ एक ही बात लिखी थी—'अपने संबंध में हुए षड़यंत्र की बात सुनना।'

यह षड़यंत्र क्या है ? क्या प्रणय संबंधी कोई षड़यंत्र ? तो क्या यह ब्राह्मणवेशी व्यक्ति कपालकुण्डला का उपपति है ? जो भी आदमी कल की घटनाओं को नहीं जानता उसका यह पत्र पढ़ कर यही सब सोचना स्वाभाविक है।

पति के साथ सहगमन के समय अथवा दूसरे किसी अन्य कारण से जब कोई पतिव्रता स्त्री जीते जी चिता पर चढ़ कर चिता में आग लगाती है तो पहले धुआँ उठ कर उसे चारो ओर से घेरता है। उसको फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता, सर्वत्र अन्धेरा छा जाता है, फिर क्रमशः लकड़ियाँ जलना शुरू होती हैं तो पहले नीचे से साँप की लपलपाती जीभ की तरह दो अग्नि शिखाएँ आकर अङ्गों में जगह-जगह काटती हैं, बाद में चिटकने का शब्द करती हुई आग की लपटें चारों ओर से आकर घेर लेती हैं और अङ्ग-प्रत्यंग को व्याप्त करती रहती हैं। अन्त में प्रचण्ड आवाज के साथ अग्नि की ऊँची-ऊँची लपटें उठने लगती हैं, आकाशमंडल को आलोकित करने लगती हैं।

चिट्ठी पढ़ कर नवकुमार को भी ऐसा ही, चिता में जलने जैसा अनुभव हुआ। पहले तो कुछ अधिक वह समझ न सका। बाद में संशय, फिर निश्चय और अन्त में जलन का अनुभव हुआ। आदमी का मन एक साथ ही क्लेश और सुख का अतिरेक ग्रहण नहीं कर सकता, धीरे-धीरे करता है। नवकुमार को भी पहले धुएँ ने घेरा, फिर आग की लपटें हृदय को जलाने लगीं। अन्त में अग्नि-ताप से हृदय भस्म होने लगा। इधर कुछ दिनों से नवकुमार अनुभव कर रहा था कि कपालकुण्डला किसी-किसी विषय में उसका अधिकार स्वीकार नहीं करती। विशेषकर उसके मना करने पर भी वह जब जहाँ इच्छा होती थी अकेली चली जाती थी। हर एक के साथ अपनी ही इच्छानुसार आचरण करती थी। अभी कल की ही बात है, उसकी बात की परवाह न कर के आधी रात में अकेली सूने व अन्धेरे जंगल में चली गई। और कोई होता तो संदेह की आग में जलने लगता, लेकिन नवकुमार के हृदय में कपालकुण्डला के लिए सन्देह उठने पर बिच्छू के डंक मारने जैसी जलन होती इसलिए उसने एक क्षण के लिए भी अपने मन में कभी सन्देह को टिकने न दिया। आज भी सन्देह की महत्व न देता, लेकिन आज सन्देह नहीं, वास्तविकता आकर सामने खड़ी हो गई है।

सन्देह की जलन की पहली लहर घटने पर नवकुमार चुतचाप बैठ कर बड़ी देर तक पश्चाताप के आँसू बहाता रहा। रोकर अपना जी कुछ हल्का किया। निश्चय किया कि आज वह कपालकुण्डला से कुछ कहे गा नहीं, शाम को जब कपालकुण्डला जंगल में जाएगी तब वह छिप कर उसके पीछे-पीछे जायेगा। कपालकुण्डला का महापाप अपनी आँखों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही देखेगा। उसके बाद अपने प्राणों का अन्त कर लेगा। बस, कपालकुण्डला से कुछ न बोलेगा, सिर्फ अपनी जान दे देगा। और जान न दे कर करे गा भी क्या ? इन व्यथित प्राणों का भारी बोझ ढोने की उसमें शक्ति कहाँ है ?

मन में यही निश्चय करके नवकुमार कपालकुण्डला के बाहर निकलने की प्रतीक्षा में खिड़की के पास बैठ कर दरवाजे की तरफ देखता रहा।

कपालकुण्डला के बाहर निकल कर थोड़ी दूर बढ़ जाने के बाद वह भी निकला। इसी समय कपालकुण्डला चिट्ठी के लिए वापस आई। देख कर नवकुमार एक ओर हट गया। अन्त में कपालकुण्डला के दुबारा बाहर निकलने पर और कुछ दूर चले जाने पर नवकुमार फिर उसके पीछे-पीछे चले, तभी उन्होंने देखा कि दरवाजे को घेर कर एक विशालकाय पुरुष खड़ा है।

लेकिन, वह कौन है और वहाँ क्यों खड़ा है, यह जानने की नवकुमार की इस समय तनिक भी इच्छा नहीं हुई। उसने उसकी ओर ठीक से देखना भी न चाहा। केवल वह उतावले मन से कपालकुण्डला को ओर ही नजर रखने में व्यस्त था। इसीलिए अपने लिए रास्ता बनाने के लिए उसने आगन्तुक की छाती पर हाथ रख कर उसे एक बगल टालना चाहा, परन्तु उसे वह हटा न सका। तब नवकुमार ने पूछा, 'तुम कौन हो ? दूर हटो, मेरा रास्ता छोड़ो।'

आगन्तुक बोला, 'मैं कौन हूँ ? क्या तुम मुझे नहीं पहचानते ?'

समुद्र-गर्जन की भाँति शब्द गूँज उठे। नवकुमार ने आँखें उठा कर गौर से देखा। वह वही पूर्व परिचित जटाजूटधारी कापालिक ही था।

कापालिक को यों अप्रत्याशित रूप में देख कर नवकुमार चौंका जरूर पर डरा नहीं। एकाएक उसके चेहरे पर प्रफुल्लता छा गई और वह पूछ बैठा, 'कपालकुण्डला क्या तुम्हीं से मिलने जा रही है ?'

कापालिक गरजा, 'नहीं।'

अभी-अभी नवकुमार के मन में आशा का जो दीपक जला था अचानक ही बुझ गया। नवकुमार के चेहरे पर एकाएक काले बादल सा अन्धेरा छा गया। बोला, 'तब तुम मेरा रास्ता छोड़ दो।'

'रास्ता तो छोड़ दे रहा हूँ। पर तुमसे मुझे कुछ बातें करनी हैं। पहले उसे सुन लो।'

'तुम्हारे साथ मेरी भला कौन सी बात हो सकती है ? क्या तुम फिर मेरे प्राण-नाश के लिए ही आ गए हो ? अब तुम मेरे प्राण ले सकते हो, अब मैं कोई रुकावट नहीं डालूँगा। अभी तुम थोड़ी प्रतीक्षा कर लो, मैं अभी वापस आता हूँ। मैंने तब देव-तुष्टि के लिए अपना शरीर नहीं दिया, अब उसका फल भोग लिया है। जिसने मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बचाया था, उसी ने मुझे मारा भी है। कापालिक अब तुम मुझ पर पूरा भरोसा करो। मैं अभी आ कर अपने को तुम्हारे हाथों में सौंप दूँगा।'

'लेकिन मैं तुम्हारी जान लेने नहीं आया हूँ। भवानी की ऐसी इच्छा नहीं है। मैं जो कुछ करने के लिए यहाँ आया हूँ, वही तुमसे बताना है। तुम घर के भीतर चलो, मैं जो कुछ कहता हूँ, ध्यान से सुनो।'

'लेकिन अभी नहीं। फिर दूसरे समय वह सब सुनूँगा। तुम अभी प्रतीक्षा करो। मैं विशेष रूप से अभी व्यस्त हूँ। फुरसत पाकर लौटता हूँ।'

'बेटा! मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम उस पापिनी के पीछे-पीछे जाओगे। लेकिन वह कहाँ जाएगी, मैं जानता हूँ। मैं तुझे अपने साथ उसी जगह ले चलूँगा। जो कुछ तुम देखना चाहते हो, वह सब दिखाऊँगा। पर अभी तुम्हें मेरी बात सुननी होगी। तुम डरो मत।'

'नहीं, अब मुझे तुमसे कोई डर नहीं है। आओ भीतर।' कह कर नवकुमार कापालिक को घर के भीतर लिवा ले गया। बैठाया और खुद भी बैठ कर बोला, 'अब कहो।'

६

बातचीत

'तद्गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यम।'

—कुमारसम्भव

जम कर बैठते हुए कापालिक ने अपनी दोनों बाँहें नवकुमार को दिखाईं। नवकुमार ने चकित हो कर देखा, दोनों बाँहें टूटी हुई थीं।

जिस रात कपालकुण्डला के साथ नवकुमार समुद्र-तट से भागा था, उस रात में उसकी खोज करते हुए कापालिक वालू के ऊँचे शिखर पर से गिर पड़ा था। गिरते समय दोनों हाथों से जमीन पकड़ कर उसने अपने को बचाने की कोशिश की थी। इससे शरीर तो उसका बच गया था पर दोनों बाँहें टूट गई थीं। यह सब हाल कापालिक ने संक्षेप में नवकुमार को बताया। बोला, 'इन बाँहों के न रहने से नित्यक्रिया के निर्वाह में कोई विशेष विघ्न नहीं पड़ता। लेकिन इनमें शक्ति तनिक भी नहीं रह गई है। यहाँ तक कि इनसे लकड़ियाँ बटोरने में भी तकलीफ होती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर थोड़ी देर रुक कर उसने आगे कहा, 'उस समय गिरते ही मैं समझ गया था कि मेरे दोनों हाथ टूट गये हैं। दूसरे अङ्ग ठीक हैं, ऐसा भी नहीं, गिरने के साथ ही मैं मूर्छित हो गया था। पहले तो बिल्कुल ही बेहोश था। फिर होश आया, फिर बेहोश हो गया। कितने दिनों तक मेरी यही दशा बनी रही, मैं कह नहीं सकता। लगता है कि शायद दो रात और एक दिन इसी स्थिति में रहा। फिर मुझे सुबह पूरी तरह होश आया था। होश आने के थोड़ा पहले मैं एक सपना देखने लगा। जैसे भवानी···।' कहते-कहते कापालिक का सारा शरीर रोमांचित हो उठा।··· 'लगा कि जैसे प्रत्यक्ष भवानी आकर मेरे सामने प्रकट हुई हैं। भौंहें चढ़ा कर मुझे फटकार रही हैं। कह रही हैं, अरे दुराचारी ! तेरे चित्त की अशुद्धि के कारण ही मेरी पूजा में यह विघ्न पड़ा है। इन्द्रिय की लालसा में बँध कर तूने इस कुमारी के रक्त से अब तक मेरी पूजा नहीं की। अतएव इस कुमारी से ही तेरे पहले के किए सब फल नष्ट हुए हैं। अब मैं कभी तुझसे पूजा ग्रहण नहीं करूँगी। तब रोता हुआ मैं माता के पैरों पर लोटने लगा। काफी देर बाद प्रसन्न हो कर वे बोलीं, भद्र ! अब तुझे प्रायश्चित करना होगा। और इसका एकमात्र प्रायश्चित यही है कि उस कपालकुण्डला की मुझ पर बलि चढ़ा। जब तक उसकी बलि न दे सके, मेरी पूजा मत करना। फिर कब और कितने दिनों में मैं अच्छा हुआ हूँ, इसके वर्णन की अभी कोई आवश्यकता नहीं है। फिर समय से अच्छा होकर मैंने देवी का आदेश पालन करने की कोशिश शुरू की। लेकिन देखा कि इन बाँहों में तो एक शिशु की भी शक्ति नहीं बची। और बाहुबल के बिना आदेश का पालन भी नहीं हो सकता था, अतः एक सहचर की मुझे आवश्यकता हुई। परन्तु आजकल मनुष्यों में धर्म की मति कम है, विशेष कर कलि के प्राबल्य में यवन राजा है। पापात्मक राज-शासन के भय से कोई भी ऐसे कार्य में सहचर नहीं बनता। बड़ी खोज व बड़े प्रयत्न से मैंने इस पापिनी के वासस्थान का पता लगाया। लेकिन बाँहों में शक्ति न रहने के कारण मैं अभी तक भवानी के आदेश का पालन न कर सका। मात्र मानस सिद्धि के लिए तान्त्रिक विधान के अनुसार क्रिया-कलाप करता रहता हूँ। कल रात को पास ही के जंगल में होम कर रहा था, तभी अपनी आँखों से देखा कि कपालकुण्डला के साथ एक ब्राह्मण कुमार का मेल हुआ। आज भी वह उसी से मिलने के लिए जा रही है। यदि देखना चाहते हो तो मेरे साथ आओ, मैं सब दिखा दूँगा। कपालकुण्डला वास्तव में वध के ही योग्य है। मैं भवानी की आज्ञा के अनुसार उसका वध करूँगा। वह तुम्हारे सम्मुख भी विश्वासघातिनी ही है, तुम्हारे लिए भी वह वध के योग्य है। इसलिए तुम मुझे सहायता दो। इस पापिनी को पकड़ कर मेरे साथ यज्ञस्थान में ले चलो। वहीं अपने हाथ से इसकी बलि चढ़ाना। इससे ईश्वर के सम्मुख तुमने जो भी अपराध किए हैं, उससे माफी मिलेगी। इस पवित्र-कार्य से अतुलनीय पुण्य-संचय होगा। पापिनी को दंड मिलेगा।'

कह कर कापालिक चुप हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवकुमार सोच में डूब गया। कोई उत्तर न दे सका। उसे चुप देख कर कापालिक फिर बोला, 'वत्स ! इस समय मैंने जो कुछ दिखाने को कहा है, वह देखना चाहते हों तो चलो !'

पसीने से तर-बतर नवकुमार चुपचाप कापालिक के पीछे-पीछे चल पड़े।

| ६ |

सौत से सम्भाषण

"Be at peace, it is your sister that addresses
yow, Requite Lucretia's Love."

—Lucretia

घर से निकल कर कपालकुण्डला सीधे जंगल में गई। पहले उसी कल वाले टूटे घर में गई। वहाँ ब्राह्मणकुमार को देखा। यदि दिन का समय होता तो वह स्पष्ट देख पाती कि उसके चेहरे की कान्ति अत्यधिक मलिन हो गई है। ब्राह्मणवेशी ने कपालकुण्डला से कहा, 'यहाँ कापालिक आ सकता है, यहाँ किसी तरह भी बातचीत करना उचित व सुरक्षित नहीं है। चलो, कहीं दूसरी जगह चलें।'

जंगल में एक कम चौड़ी जगह थी। उसके चारों ओर घने पेड़ थे। बीच में साफ स्थान था। वहाँ से एक रास्ता बाहर की ओर चला गया। कपालकुण्डला को साथ ले कर ब्राह्मणवेशी वहीं गया। दोनों वहीं बैठे। तब ब्राह्मण ने कहा, 'उचित होगा कि पहले मैं अपना परिचय दे दूँ। मेरी बातें कहाँ तक विश्वास करने के योग्य हैं यह तुम खुद ही समझ लो गी। जब तुम अपने पति के साथ समुद्र-तट से वापस आ रही थीं तब तुम्हें याद होगा कि रास्ते में एक सराय में रात को तुम्हारी एक यवन-कन्या से भेंट हुई थी। क्या तुम्हें वह सब याद है ?'

'क्या जिन्होंने मुझे गहने दिये थे ?'

'हाँ, मैं वही हूँ।'

सुन कर कपालकुण्डला को खूब ही आश्चर्य हुआ। उसका विस्मय देख कर लुत्फ-उन्निसा ने कहा, 'विस्मय का एक और भी महान कारण होगा—मैं तुम्हारी सौत हूँ !'

सचमुच आश्चर्य से विचलित होती हुई कपालकुण्डला ने कहा, 'सो कैसे ?'

लुत्फ-उन्निसा ने तब बिल्कुल शुरू से अपना परिचय देना शुरू किया। विवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातिनाश, पति-त्याग, ढाका, आगरा, जहाँगीर, मेहरउन्निसा, आगरा-त्याग, ससग्राम-वास, नवकुमार से भेंट, नवकुमार का व्यवहार, पिछले दिन वेश बदल कर जंगल में आना, होम करने वाले से भेंट आदि सब बता दिया। तब कपालकुण्डला ने पूछा, 'किस मतलब से भेष बदल कर तुमने मेरे मकान में आने की इच्छा की थी ?'

लुत्फ-उन्निसा बोली, 'तुम्हारे और तुम्हारे पति में सदा के लिए विच्छेद उत्पन्न करने की इच्छा से।'

कपालकुण्डला कुछ सोचने लगी, फिर पूछा, 'अच्छा, बताओ, वह किस तरह करतीं ?'

'फिलहाल अभी तो,···पहले तो तुम्हारे पति के मन में तुम्हारे सतीत्व के प्रति शंका उत्पन्न करती। लेकिन अब उसकी आवश्यकता नहीं है। वह विचार मैंने बदल दिया और वह रास्ता भी छोड़ दिया। इस समय अगर तुम मेरी सलाह के अनुसार काम करो तो तुम्हारे माध्यम से ही मेरी कामना-सिद्ध हो जायगी। और साथ-साथ ही तुम्हारा भी अमंगल न होगा।'

'होम करने वाले के मुँह से तुमने किसका नाम सुना था ?'

'तुम्हारा ही नाम। वह तुम्हारे मंगल या अमंगल की कामना से ही होम कर रहा है, यही जानने के लिए मैं प्रणाम करके उसके पास जा बैठी। जब तक उसकी क्रिया पूरी नहीं हुई, मैं वहीं बैठी रही। होम हो जाने पर, छल से मैंने तुम्हारे नाम के साथ होम करने का अभिप्राय पूछा। काफी देर तक उससे बातें कर के मैंने मालूम किया कि तुम्हारा अमंगल ही उसके होम का प्रयोजन है। तब मैंने उससे बता दिया कि मेरा भी यही प्रयोजन है। तब हम दोनों ही एक दूसरे की सहायता करने को वचन-बद्ध हुए। क्योंकि हम दोनों का उद्देश्य एक ही था। फिर विशेष सलाह करने के लिए वह मुझे उस टूटे घर के भीतर लिवा ले गया। वहाँ अपने मन की बात खोल कर बताई। तुम्हारी मृत्यु भी उसे स्वीकार है। परन्तु मैं यह कदापि नहीं चाहती। मैंने तो इस जन्म में पाप ही पाप किए हैं। लेकिन पाप के रास्ते पर चल कर भी मेरा इतना पतन नहीं हुआ कि मैं अकारण ही एक निरपराध बालिका की मृत्यु की कामना करूँ ! मैंने उसे सहयोग देने की सम्मति नहीं दी। ठीक इसी समय तुम वहाँ पहुँच गईं। शायद है कि तुमने भी हमारी बातें सुनी हों ?'

'हाँ, मैंने ऐसी ही बातचीत सुनी थी।'

'उस आदमी ने मुझे नासमझ और नादान समझ कर कुछ उपदेश देना चाहा। बातचीत का अन्त क्या होता है, यह ठीक से मालूम करके मैं तुम्हें खबर देना चाहती थी। इसीलिए तुम्हें जंगल में छिपा कर बैठा गई थी।

'फिर लौटीं क्यों नहीं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'वह बहुत देर तक बातें करता रहा। बहुत-सी बातें कहीं। उन्हें ही सुनने में बहुत देर हो गई। तुम उस आदमी को अच्छी तरह जानती हो। वह कौन है, क्या तुम्हारी समझ में आ रहा है ?'

'मुझे पहले पालनेवाला कापालिक ?'

'हाँ, वही है। पहले समुद्र के किनारे तुम्हें पाना, फिर तुम्हारा पालन-पोषण करना, वहाँ नवकुमार का पहुँचना, उसके साथ तुम्हारा भागना, यह सब हाल विस्तार से कापालिक ने बताया। तुम लोगों के भागने के बाद वहाँ जो-जो कुछ भी हुआ, वह सब भी बताया। वे सब बातें शायद तुम्हें नहीं मालूम, इसलिए तुम्हारी जानकारी के लिए मैं सब विस्तारपूर्वक बताती हूँ।'

यह कह कर लुत्फ-उन्निसा ने कापालिक का बालू के शिखर से गिरना, हाथों का टूटना, स्वप्न की बात, सब बताया। स्वप्न की बात सुनते ही कपालकुण्डला चौंककर काँप उठी। मन में बिजली को चंचलता पैदा हुई। तब लुत्फ-उन्निसा कहने लगी, 'कापालिक की दृढ़ प्रतिज्ञा है कि वह भवानी के आदेश का पालन अवश्य करेगा। उसकी बाँहें शक्तिहीन हैं, इसीलिए उसे दूसरे की मदद की आवश्यकता है। मुझे ब्रह्मणकुमार समझ कर मदद पाने की आशा से उसने समस्त वृतान्त कहा। लेकिन मैंने उसे इस पाप-कार्य में सहायक होने की सहमति नहीं दी। अपने चित्त के कभी भी खराब हो जाने की सम्भावना की मैं बात नहीं करती पर विश्वास है कि कभी भी मैं सहमति न दूँगी, बल्कि जहाँ तक सम्भव है, उसके इस संकल्प का विरोध ही करूँगी, अभी तक मेरा यही निश्चय है। इसी अभिप्राय से मैंने तुमसे भेंट की है। लेकिन यह भी सत्य है कि इस काम में मैंने बिल्कुल नि:स्वार्थ भाव से हाथ नहीं लगाया। मैंने स्वार्थवश ही यह करने का निश्चय किया है। मैं तुम्हें प्राणों का दान दे रही हूँ। अब तुम भी मेरे लिए कुछ करो।'

'क्या करूँ, बताओ ?'

'मुझे भी प्राणदान दो, मेरे लिए अपने पति का त्याग करो।'

सुन कर थोड़ी देर तक तो कापालकुण्डला कुछ न बोली। फिर कहा, 'पति का त्याग करके मैं कहाँ जाऊँगी ?'

'तुम विदेश चली जाओ। यहाँ से बहुत दूर, वहाँ मैं तुम्हें कोठी दूँगी, धन दूँगी, दास-दासियाँ दूँगी, वहाँ तुम रानी की तरह रहोगी।'

कपालकुण्डला फिर विचार में डूब कर चिन्ता करने लगी। संसार में चतुर्दिक उसने आँखें खोल कर देखा, पर कहीं किसी को भी नहीं देखा। अन्त:करण में झाँक कर देखा, लेकिन वहाँ नवकुमार न था। उसने सोचा कि फिर वह क्यों लुत्फ-उन्निसा का रास्ता रोके ? उसने लुत्फ-उन्निसा से कहा, 'तुमने मेरा उपकार किया है या नहीं, यह बात अभी तक मेरी समझ में नहीं आई। मुझे कोठी, धन, दासियों की भी जरूरत नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। लेकिन मैं तुम्हारे सुख का रास्ता भी क्यों रोकूँगी ? मैं चाहूँगी कि तुम्हारी ही अभिलाषा पूरी हो। कल से इस विघ्नकारिणी की कोई खबर तुम्हें नहीं मिलेगी। मैं जंगल की रही हूँ। फिर जंगल की शरण में चली जाऊँगी।'

लुत्फ-उन्निसा विस्मित हुई। कपालकुण्डला इतनी जल्द व इतनी आसानी से मान जाएगी। ऐसी आशा भी उसने नहीं की थी। अतः बहुत ममतालु हो कर बोली, 'बहन, तुम्हें लंबी आयु मिले। तुमने मुझे प्राणदान दिए हैं, लेकिन मैं भी तुम्हें अनाथ व बेसहारा बन कर नहीं जाने दूँगी। कल सुबह मैं तुम्हारे पास एक विश्वास करने योग्य चतुर दासी भेजूँगी, उसी के साथ तुम जाना। बर्दवान में एक बहुत धनी स्त्री मेरी सहेली है। वह तुम्हारी कुल जरूरतें पूरी कर देगी ?'

कपालकुण्डला और लुत्फ-उन्निसा बातों में इस तरह डूबी हुई थीं कि सामने खड़े विघ्न की ओर उनकी आँखें ही नहीं उठीं। जो जंगली रास्ता उस स्थल से बाहर की ओर जाता था, उसी रास्ते के किनारे खड़े होकर कापालिक और नवकुमार उन दोनों की ओर जिस प्रकार जहरीले साँप की आँखों से देख रहे थे, उन्हें इन दोनों ने एक बार भी न देखा।

दूर खड़े नवकुमार और कापालिक कपालकुण्डला और ब्राह्मणवेशी को देख तो रहे थे पर दूरी के कारण उनकी बातों का एक शब्द भी वे सुन न सके।

नवकुमार ने देखा कि कपालकुण्डला के बाल खुले हुए हैं। फिर देखा कि बालों की राशि ब्राह्मणकुमार की पीठ पर पड़ी हुई उसके कंधों को चूमते बालों से मिल रही थी। कपालकुण्डला के बाल इतने लम्बे थे, और बातचीत के कारण दोनों एक दूसरे से इतने निकट बैठी थीं कि लुत्फ-उन्निसा की पीठ तक कपालकुण्डला के बाल फैल रहे थे। देख कर नवकुमार धीरे से जमीन पर बैठ गये।

नवकुमार की दशा देख कर कापालिक के कमर से बँधा एक नारियल निकाल कर कहा, 'बत्स ! शक्ति खो रहे हो ? यह लो महा-औषधि पी लो। यह भवानी का प्रसाद है। पी कर शक्ति पाओगे।'

कापालिक ने वह नारियल-पात्र नवकुमार के मुँह के पास कर दिया। बे-मन से पीकर भी नवकुमार ने प्यास बुझाई। नवकुमार नहीं जानते थे कि वह स्वादिस्ट पेय, कापालिक द्वारा अपने ही हाथों तैयार की गई प्रचण्ड तेजस्विनी सुरा थी। पीने के साथ ही साथ उसमें उत्तेजना और शक्ति का संचार हुआ।

उधर लुत्फ-उन्निसा भी पूर्ववत मधुर स्वर में कपालकुण्डला से कह रही थी—'बहन ! तुमने जो काम किया है, उसका बदला चुका सकने की मुझमें शक्ति नहीं है। फिर भी, अगर तुम मुझे हमेशा याद रख सके तो वही मेरे लिए महान सुख होगा। जो गहने मैंने तुम्हें दिए थे, सुना है वह सब तुमने किसी भिखारी को दे दिये। अब पास में कुछ भी नहीं है। कल की अन्य आवश्यकता के लिए सोच कर एक अँगूठी ले आई थी। ईश्वर की कृपा से उस पाप-कृत्य की जरूरत नहीं पड़ी। अब यह अँगूठी लो, तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रख लो। कभी-कभी यह अँगूठी देख कर अपनी मुसलमान बहन को याद करना। आज अगर तुम्हारे पति पूछें कि यह अँगूठी कहाँ मिली तो कहना कि लुत्फ़-उन्निसा ने दी है।' कह कर लुत्फ-उन्निसा ने बड़ी कीमत वाली अँगूठी अपनी उँगली से उतार कर कपालकुण्डला की उँगली में डाल दी। नवकुमार ने यह सब भी देखा। कापालिक उसे पकड़े था। उसे फिर काँपते देख कर उसने फिर एक बार उसे मदिरा पिलाई। नवकुमार के मस्तिष्क में पहुँच कर मदिरा उसकी प्रकृति का नाश करने लगी, स्नेह का अंकुर तक जड़ से खोदने लगी।

थोड़ी देर बाद लुत्फ-उन्निसा से विदा ले कर कपालकुण्डला अपने घर की ओर चली। तब लुत्फ-उन्निसा की नजरें बचा-बचा कर नवकुमार और कापालिक कपाल-कुण्डला का ही अनुसरण करते रहे।

७

घर की ओर

"No spectre greets me—no vain shadow this"

—Wordsworth

कपालकुण्डला धीरे-धीरे सधे कदमों घर की ओर बढ़ी। वह बहुत धीरे-धीरे, बहुत मृदु-मृदु चल रही थी। क्योंकि वह इस क्षण बहुत ही गहरी चिन्ता में डूबी हुई थी। लुत्फ-उन्निसा से बातचीत करके कपालकुण्डला के चित्त का एक साथ ही भाव बदल गया था। वह मन ही मन पूरी तरह आत्म-विसर्जन के लिए तैयार हो गई थी। आत्म-विसर्जन के लिए? लुत्फ-उन्निसा के लिए? अपनी सौत के लिए? नहीं, ऐसी बात नहीं।

जहाँ तक हृदय और अन्तःकरण का संबंध है, कपालकुण्डला तान्त्रिक-कन्या है। जिस तरह तान्त्रिक काली माई के प्रसाद के प्रयोजन हेतु दूसरे की जान लेने में तनिक भी संकोच नहीं करते—उसी प्रयोजन हेतु कपालकुण्डला भी अपने जीवन की बलि देने में वैसी ही समर्थ है। कपालकुण्डला भी कापालिक की तरह ही अनन्यचित्त होकर शक्ति के प्रसाद की इच्छुक हुई थी, ऐसी बात तो नहीं, लेकिन दिन-रात शक्ति की भक्ति सुनने, देखने और साधने से उसके मन में काल के प्रति विशेष रूप से अनुराग पैदा हो गया था। भैरवी ही संसार व सृष्टि का शासन करने वाली तथा मुक्ति देने वाली हैं, यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विश्वास विशेष रूप से उसके अन्तर्मन में जड़ जमा चुका था। कालिका की पूजा-भूमि मनुष्य-रक्त से प्लावित होती है, यह बात दूसरे के दुख से कातर हुए उसके मन को ग्राह्य नहीं थी, अन्यथा दूसरे किसी काम में भक्ति-प्रदर्शन में कोई त्रुटि नहीं रहती है। अब संसार का शासन करने वाली, सुख और दुख का विधान करने वाली, कैवल्य देने वाली उन्हीं भैरवी ने उसे जीवन-समर्पण करने की स्वप्न में आज्ञा दी है। फिर भला कपालकुण्डला भैरवी के उस आदेश का पालन क्यों नहीं करेगी ?

कोई भी अकारण जान नहीं देना चाहता। अनुराग में सभी कहते हैं कि यह संसार सुखमय है। सुख की आशा में ही सभी लट्टू की तरह संसार भर में नाचते रहते हैं—दुःख की आशा से नहीं। संभव है कि यदि मनुष्य के कर्मों के दोष से वह आशा पूरी नहीं होती तो उसे ही दुख का नाम दे कर मनुष्य ऊँचे स्वर में कलरव करने लगता है। इस प्रकार दुःख नियम नहीं, सिद्धान्त हुआ, नियम का मात्र व्यतिक्रम। मनुष्य सभी जगह, सभी क्षेत्र में सुख ही चाहता है। उसी सुख के संसार में उसकी जड़ गड़ी हुई है। मनुष्य किसी प्रकार भी उसे छोड़ना नहीं चाहता। लेकिन इस संसार के बन्धन की प्रणय प्रधान रस्सी है। कपालकुण्डला के लिए वह बन्धन तथा, कोई भी ऐसा बन्धन न था। फिर भला कपालकुण्डला को कौन बाँध कर रख सकता है ?

जिसके लिए कोई बन्धन नहीं है, उसी का वेग अप्रतिहत है। पहाड़ की चोटी से जब झरना नीचे उतर आता है तब भला उसकी गति और वेग को कौन रोक सकता है ? एक बार हवा चलने पर कौन उसके बहाव को रोक सकता है ? कपालकुण्डला का चित्त चंचल होने पर फिर कौन उसे शान्त कर सकेगा ? नया हाथी जब मतवाला हो जाय तो उसे कौन स्थिर कर सकेगा ?

कपालकुण्डला ने अपने ही मन से पूछा, 'इस शरीर को क्यों न ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दूँ ? पंचभूत से लिपटे रह कर क्या होगा ?' वह मन ही मन प्रश्न कर रही थी पर कोई निश्चित उत्तर नहीं पा रही थी। सच तो यह है कि संसार में कोई दूसरा बन्धन न रहने पर भी पंचभूतों का एक बन्धन तो रहता ही है।

कपालकुण्डला सिर झुकाए ध्यानमग्न चलती जा रही थी। जब आदमी का मन किसी उत्कट भाव से घिर जाता है तब चिन्ता की एकाग्रता के कारण बाह्य सृष्टि की ओर निगाह नहीं जाती, तब अनैसर्गिक पदार्थ भी प्रत्यक्ष हुआ सा दिखाई पड़ने लगता हैं। कपालकुण्डला की भी इस समय यही स्थिति थी।

तभी अचानक उसके कानों में ये शब्द पड़े—'वत्से ! मैं रास्ता दिखा रही हूँ।' कपालकुण्डला चौंकी। आँखें ऊपर उठाईं। देखा, जैसे आकाश-मण्डल में नये बादलों को निन्दित करने वाली मूर्ति हो। गले में पड़ी नर-कपाल-माला से रक्त की बूँदें चू रही थीं, कटिमण्डल को घेर कर नर-कर हिल रहे हैं, बायें हाथ में एक नर-मुण्ड है, अंगों में रक्त की धारा, ललाट में, विष से जलती ज्वालामयी आँखों में बालचन्द्र चमक रहा है। भैरवी अपना दाहिना हाथ उठा कर कपालकुण्डला को बुला रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपालकुण्डला अब ऊर्ध्वमुखी होकर चली। और वह नई कादंबिनी जैसी मूर्ति आकाश मार्ग में उसके आगे-आगे चली। कभी-कभी उसका स्वरूप बादलों में छिप जाता था, कभी स्पष्ट हो जाता था। कपालकुण्डला उसे ही देखती हुई चली।

नवकुमार व कापालिक को वह सब कुछ भी न दिखा। सुरा के गरल की जलन से नवकुमार का हृदय फुँका जा रहा था। कपालकुण्डला की मन्द पड़ती चाल से ऊब कर नवकुमार ने अपने साथी से कहा, 'कापालिक.....।'

'क्या ?'

'पानीयं देहि मे।'

कापालिक ने नवकुमार को फिर मदिरा पिलाई।

नवकुमार ने पूछा, 'अब देरी क्या है ?'

कापालिक का उत्तर था, 'अब देरी क्या है ?'

तब नवकुमार ने अत्यन्त तीव्र ध्वनि में पुकारा, 'कपालकुण्डले !'

कपालकुण्डला सुन कर चौंक उठी। इधर उसे कोई कपालकुण्डला कह कर नहीं पुकारता था। वह मुँह फेर कर खड़ी हो गई। तब नवकुमार और कापालिक बढ़ कर उसके सामने आये। पहले तो जैसे कपालकुण्डला उन्हें पहचान ही न सकी। बोली, 'तुम लोग कौन हो ? क्या तुम्हीं लोग यमदूत हो ?'

दूसरे ही क्षण जैसे पहचान गई और सम्हल कर बोली, 'नहीं, नहीं पिता, तुम क्या मुझे बलि देने के लिये आये हो ?'

आगे बढ़ कर दृढ़ मुट्ठी से नवकुमार ने कपालकुण्डला का हाथ पकड़ा। करुणा से भर कर आर्द्र और मधुर स्वर से कापालिक ने कहा, 'वत्से ! हमारे साथ आओ।' यह कह कर कापालिक रास्ता दिखाता हुआ श्मशान की ओर चला।

कपालकुण्डला ने आकाश की ओर आँखें उठाईं। उसने जहाँ गगन विहारिणी भयंकरी को देखा था, उसी तरह देखा कि वह रणरंगिणी खिल-खिल करके हँस रही है और हाथ में एक दीर्घ त्रिशूल लेकर कापालिका द्वारा दिखाए गए रास्ते की ओर संकेत कर रही है। अदृष्ट से जैसे विमूढ़ हो गई हो, इस तरह बिना कुछ भी बोले कपाल-कुण्डला कापालिक के पीछे-पीछे चलती गई। नवकुमार पूर्ववत कसी मुट्ठी से उसका हाथ पकड़े चलता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेत-भूमि में

'वपुषा करुणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिसेकबिन्दुना सह दीप्तार्च्चिरुपैति मेदिनीम् ॥'

—रघुवंश ।

चन्द्रमा भी अस्त हुआ । सारा विश्व ही अंधकार से भर गया । जहाँ अपनी पूजा बनाई थी, वहीं कापालिक कपालकुण्डला को ले गया । वह स्थान गंगा के किनारे एक वृहत् सैकत भूमि है । उसी के ठीक सामने एक और बड़ा दूसरा सिकतामय स्थान है । वहीं पर है श्मशान-भूमि । दोनों ही सैकतों में ज्वार के समय थोड़ा-थोड़ा पानी रहता है, भाटा के समय वह भी नहीं । इस समय भी पानी वहाँ न था । श्मशान भूमि का वह भाग जो गंगा की ओर है, बहुत ऊँचा है । कोई पानी में उतरना चाहे तो एक बार ही में ऊँचे से अगाध जल में गिरना पड़ता है । फिर इस पर लगातार चलती हवा से उठी तरंगों के थपेड़ों से रेती का तट-भाग कट गया है । कभी-कभी कगार से मिट्टी के खण्ड के खण्ड टूट कर गहरे पानी में छपाक-छपाक गिरते थे । पूजा-स्थल पर लकड़ी का एक कुन्दा जल रहा था । उसकी अत्यन्त मद्धिम रोशनी में श्मशान भूमि और भी भीषण और डरावनी दीख रही थी । पूजा, होम, बलि आदि का समस्त आयोजन था । तरंगित नदी का विशाल हृदय अंधेरे में विस्तार के साथ फैला हुआ था । चैत की हवा अत्यधिक वेग से गंगा के हृदय पर बह रही थी । इस प्रकार तरंगों के थपेड़ों के वेग से उठा कल-कल शब्द आकाश में भी व्याप्त हो रहा था । श्मशान-भूमि में निडर होकर घूमने वाले मुर्दा भक्षक जानवर बीच-बीच में कर्कश स्वर में चीख उठते थे ।

कपालकुण्डला और नवकुमार को यथास्थान कुशासन पर बैठा कर कापालिक तान्त्रिक विधान के अनुसार पूजा के समारम्भ का आयोजन करने लगा । बीच में अचानक उसने नवकुमार को आदेश दिया, 'जाओ, कपालकुण्डला को नहला लाओ ।'

नवकुमार कपालकुण्डला का हाथ पकड़ कर उसे नहला लाने के लिए श्मशान भूमि के ऊपर से ले चला । वहीं फैले हड्डी के टुकड़े उसके पावों में गड़ने लगे । नवकुमार के पाँव झटकने से श्मशान का एक जल भरा कलश लुढ़क कर टूट गया । उसके पास ही एक लाश पड़ी थी । अभागे की किसी ने क्रिया भी नहीं की थी । उसी लाश से दोनों के, नवकुमार व कपालकुण्डला के पाँव छू गए । कपालकुण्डला उससे घूम कर गई और नवकुमार उसे पैरों में दलमस कर गए । लाश खानेवाले जानवर चारो ओर घेरा बना कर घूम रहे थे । दो मनुष्यों को आया जान वे कर्कश स्वर में चीखने लगे । कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काटने लपका, कोई पाँव झटक कर भागा। कपालकुण्डला ने अनुभव किया कि नवकुमार का हाथ काँप रहा है। लेकिन कपालकुण्डला खुद निर्भीख व बेधड़क रही।

कपालकुण्डला ने पूछा, 'स्वामी, डर लग रहा है क्या ?'

नवकुमार पर छाया मदिरा का प्रभाव क्रमशः कम होता जा रहा था। बहुत गंभीर स्वर में नवकुमार ने उत्तर दिया, 'डर से, नहीं मृण्मयी ! डर से नहीं, ऐसा नहीं।'

'तो काँप क्यों रहे हो ?'

कपालकुण्डला ने यह प्रश्न जिस स्वर से किया था वह केवल स्त्री-कण्ठ से ही सम्भव था। जब कभी स्त्री दूसरे के दुख से पिघल जाती है तभी यह स्वर स्त्री-कण्ठ के लिए सम्भव होता है। कौन जानता था कि इस चरम-मुहूर्त में श्मशान-भूमि में आ कर कपालकुण्डला के कण्ठ से यह स्वर निकलेगा ?

नवकुमार ने कहा, 'नहीं, भय से नहीं, मृण्मयी ! रो नहीं पा रहा हूँ, इसी क्रोध से काँप रहा हूँ।'

'रोओ गे क्यों भला ?

फिर वही नारी-सुलभ पिघला कण्ठ-स्वर।

नवकुमार बोला, 'रोऊँगा क्यों ? यह भला तुम कैसे समझ सकोगी, मृण्मयी ? तुम तो कभी रूप देख कर पागल नहीं हुईं।' कहते-कहते नवकुमार का गला भी दर्द से, करुणा से भर आने लगा। बोला, 'तुम तो कभी अपना हृतपिण्ड अपने से काट कर श्मशान में फेंकने नहीं आईं !' कहते-कहते एकाएक नवकुमार फूट-फूट कर रो पड़ा और दूसरे ही क्षण बिलखता हुआ कपालकुण्डला के पैरों पर पछाड़ खा कर गिर गया। बोला, 'मृण्मयी ! कपालकुण्डले ! मेरी रक्षा करो, मुझे बचा लो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ रहा हूँ। बस, एक बार कह दो कि तुम विश्वासघातिनी नहीं हो। बस, एक बार कह दो। मैं तुम्हें हृदय पर बैठा कर घर ले जाऊँगा।'

कपालकुण्डला ने शांत भाव से हाथ पकड़ कर नवकुमार को उठाया, फिर मृदु स्वर में कहा, 'तुमने तो कभी पूछा ही नहीं !'

जब यह बातें हुईं तब वे दोनों पानी के किनारे आ कर खड़े हुए थे। कपाल-कुण्डला नदी की ओर पीठ किए आगे थी, उसके पीछे बस एक कदम बाद ही पानी था। अब ज्वार शुरू हो गया था। कपालकुण्डला एक टीले पर खड़ी थी। तभी उसने फिर कहा, 'तुमने तो कभी पूछा ही नहीं।'

नवकुमार ने उत्तेजना में आ पागल की तरह कहा, 'होश खो चुका हूँ। क्यों पूछूँ ? कहो तो ? मृण्मयी कहो-कहो-कहो-मेरी रक्षा करो। मुझे बचालो बस, घर वापस चलो।'

कपालकुण्डला अत्यन्त सहज भाव से बोली, 'जो कुछ चाहो पूछो, कहूँगी ! आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे देखा है, वह पद्मावती है। में विश्वासघातिनी कदापि नहीं हूँ। भवानी के चरणों में अपना शरीर अर्पित करने आई हूँ। मेरी यह साध पूरी होने दो। स्वामी! तुम घर लौट जाओ। मैं अब मरूँगी। मेरे लिए रोओ मत।'

'नहीं, मण्मयी! नहीं.....' इस प्रकार उच्च-स्वर में कहते हुए नवकुमार ने कपालकुण्डला को हृदय से लगाने के लिए अपनी बाँहें फैला दीं, लेकिन वह कपाल-कुण्डला को पा न सका। चैत्र की तेज हवा का एक झोंका आ कर वहीं नीचे टकराया, जहाँ कपालकुण्डला खड़ी थी। साथ ही वह भूखण्ड कपालकुण्डला को साथ लिए प्रचण्ड हाहाकार के साथ टूट कर नदी-प्रवाह में विलीन हो गया।

नवकुमार ने तट के कट कर टूटने की आवाज सुनी। कपालकुण्डला देखते ही देखते गायब हो गई। नवकुमार भी उसी के पीछे पानी में कूदा। कुछ देर तक तैरते हुए कपालकुण्डला को खोजता रहा। लेकिन कपालकुण्डला फिर नहीं मिली। नवकुमार भी फिर किनारे पर नहीं चढ़ा।

उस अनन्त गंगाप्रवाह के मध्य, वसन्तवायुविक्षिप्त वीचिमाला में आन्दोलित होते-होते कपालकुण्डला और नवकुमार कहाँ चले गये ?

• • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृणालिनी

□

[रचनाकाल : सन् १८६९]

□

'मृणालिनी' से ही बंकिमचन्द्र की स्वदेशिकता सर्वप्रथम सूचित हुई। बख्तियार खिलजी मात्र सोलह सवारों को साथ लेकर बंग-विजय करने में सफल हुआ, यह इतिहास-उल्लिखित तथ्य, बंकिमचन्द्र का मन कभी मानने को तैयार न हो सका। उन्हें बंगाली जाति के शौर्य के प्रति गहरी आस्था थी। उक्त जातीय कलंक पर विश्वास न कर बंकिमचन्द्र ने 'मृणालिनी' की रचना करके इस दिशा में हस्तक्षेप किया।

'मृणालिनी' का प्रथम प्रकाशन सन् १८६९ में हुआ।

इसके लेखन में बंकिमचन्द्र को दस महीने लगे। पुस्तक की रचना पूरी करके, इसे मुद्रण में देकर बंकिमचन्द्र काशी चले गये। काशी से लौट कर जब वे आए तब तक मुद्रण कार्य समाप्त न हुआ था। जब बंकिमचन्द्र बरहमपुर गए तब 'मृणालिनी' प्रकाशित हुई। इस उपन्यास को बंकिमचन्द्र ने अभिन्न बन्धु दीनबन्धु मित्र को समर्पित किया था।

'मृणालिनी' के पूर्व प्रकाशित दोनों उपन्यासों की भाँति इसके प्रकाशन के पश्चात भी बंगाल के समसामयिक शिक्षित समाज ने बंकिमचन्द्र का अभिनन्दन किया। प्रसिद्ध समालोचक, सुपण्डित राजेन्द्रलाल मित्र ने 'रहस्य-संदर्भ' में पुस्तक की विस्तृत समालोचना करते हुए प्रशंसा में लिखा :

'....आज तक 'मृणालिनी' जैसी रोचक कृति नहीं छपी, यह मैं स्वीकार करता हूँ। ऐसी रम्य रचना के लिए ग्रंथकार विशेष प्रशंसा के अधिकारी हैं। साधारण रूप में यह एक संस्कार बन गया है कि अंग्रेजी के अनुराग से प्रेरित नव्य समुदाय स्वदेश-भाषा की रचनाओं की उपेक्षा करता है, इसलिए देश-भाषा की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। लेकिन श्रीमान बंकिमबाबू की रचना इस कुसंस्कार का एकबारगी ही उन्मूलन करने में समर्थ हुई है। बंकिमबाबू बाल्यकाल से अंग्रेजी भाषा के अनुरागी होते हुए भी, बंग-भाषा में ऐसी सशक्त रचना कर सके, यह बंग-भाषा के उन्नतिशील भविष्य का परिचायक है। बंकिमबाबू की गल्प-रचना की क्षमता पर जितना आश्चर्य होता है उससे अधिक गौरव का अनुभव होता है।....'

'मृणालिनी' के प्रथम दो बंगला संस्करणों में 'ऐतिहासिक उपन्यास' के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। लेकिन बाद में बंकिमचन्द्र की इच्छानुसार यह उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल दिया गया। क्योंकि बंकिमबाबू के मतानुसार बख्तियार खिलजी द्वारा वंग-विजय की कथा असत्य है, उसे ऐतिहासिक तथ्य वे नहीं मानते थे।

मृणालिनी उत्कृष्ट काव्यमय कथाकृति है। गिरिजाया और मृणालिनी के मुँह से पदावली संगीत ने भी अमरता पायी है।

'मृणालिनी' की कथा में बंगाल का लोकजीवन और लोकसंगीत एक बार फिर से जी उठा है।

'मृणालिनी' का हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है, और नेशनल थियेटर ने इसका नाटक-रूप भी प्रस्तुत किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला भाग

| १ |

आचार्य

एक दिन तीर्थराज प्रयाग में, गंगा-यमुना के संगम पर, संध्या समय, वर्षा ऋतु की अपूर्व शोभा प्रकट हो रही थी। वर्षा ऋतु है लेकिन मेघ नहीं। जो मेघ हैं भी, वे सुनहरे रंग की तरंगों की तरह पश्चिम में ही सिमटे हुए हैं। सूरज डूब चुका है। बरसाती पानी की बाढ़ से गंगा-यमुना दोनों ही नदियाँ पूर्ण-शरीरा हो रही हैं। यौवन की परिपूर्णता से उन्मादिनी, दोनों सरिता बहनें खेल-खेल में ही एक दूसरे का आलिंगन कर रही हैं। चंचल आँचल की तरह तरंगें हवा के धक्के से किनारे से टकरा रही हैं।

एक छोटी नाव पर दो जन हैं। बहुत ही साहस से नौका बढ़ी हुई यमुना की तरंगों पर उछलती हुई प्रयाग के घाट पर आ लगी। एक आदमी नाव पर ही रहा और दूसरा नीचे उतरा। जो नीचे उतरा वह बलिष्ठ देह वाला, नई उम्र का, योद्धा जैसा लगता है। उसके माथे पर साफा, शरीर पर कवच, हाथ में धनुष-बाण, पीठ पर तूणीर और पैरों में जूते हैं। वीरों जैसा दिखने वाला वह पुरुष अत्यन्त सुन्दर दिखता है। घाट के ऊपर संसार के माया-मोह से विरक्त पुण्य-वासियों के लिए बहुत सी झोपड़ियाँ हैं। इन्हीं में से एक कुटी में वह युवक घुस गया।

उस कुटी के भीतर कुशासन पर बैठे एक ब्राह्मण जप कर रहे हैं। ब्राह्मण बहुत ऊँचे कद का दीर्घाकार पुरुष है, शरीर सूखा है और चौड़े चेहरे पर सफेद बाल विराजित हैं। प्रशस्त ललाट, खुले बाल तथा गरदन में हल्की विभूति का लेप खूब शोभा दे रहे हैं। ब्राह्मण की मुद्रा गंभीर है और उनके कटाक्ष कठिन हैं। देखने में वे निर्दयी अथवा दयाविहीन तो नहीं लगते, फिर भी शंका होती है। आगन्तुक को देखते ही उनके चेहरे का कठोर भाव गायब हो गया, चेहरे की गंभीरता की जगह प्रसन्नता दिखाई पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण को प्रणाम कर आगन्तुक युवक सामने ही खड़ा हो गया। ब्राह्मण ने आशीर्वाद देते हुए कहा, 'बेटा हेमचन्द्र, मैं कई दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

हेमचन्द्र ने विनीत भाव से कहा, 'क्षमा कीजिए, दिल्ली में तो काम सिद्ध नहीं हुआ। बल्कि यवनों ने मेरा पीछा किया, इसीलिए बहुत सावधानी से आना पड़ा। इसी-लिए देरी हुई।'

ब्राह्मण बोले, 'दिल्ली का हाल तो मैंने सुन लिया है। बख्तियार खिलजी को हाथी कुचल ही देता, तभी अच्छा होता। देवता का शत्रु पशु द्वारा ही मारा जाता। तुम क्यों उसके प्राण बचाने गये ?'

'ताकि युद्ध में उसे अपने हाथों मार सकूँ। वह मेरे पिता का घोर शत्रु है, मेरे पिता का राजचोर है। वह मेरा ही वध्य है।'

'तब जिस हाथी ने क्रोधित हो उस पर चोट किया, उस समय बख्तियार को न मार कर तुमने उस हाथी को क्यों मारा था ?'

'तो क्या मैं चोर की तरह बिना युद्ध किए ही शत्रु को मारता ? मैं मगधविजेता को जीत कर पिता के राज्य का उद्धार करूँगा। अन्यथा मेरा 'मगधराज-पुत्र' कहाना कलंक है।'

कुछ चिढ़ कर ब्राह्मण ने कहा, 'ये सब बातें बहुत पुरानी हो गईं। इससे बहुत पहले तुम्हारे यहाँ आने की सम्भावना थी। तुमने इतनी देर क्यों की ? क्या तुम मथुरा गये थे ?'

हेमचन्द्र ने उत्तर में सिर झुका लिया।

तब ब्राह्मण ने कहा, 'समझ गया, तुम मथुरा गये थे। मेरे मना करने की तुमने अवज्ञा की। खैर, जिसे देखने मथुरा गये थे, क्या उससे भेंट हुई ?'

अब हेमचन्द्र का भाव थोड़ा रूखा हो गया, 'भेंट जो नहीं हुई, सो आप की ही दया से। मृणालिनी को आप ने कहाँ भेज दिया है ?'

'तुम यह निश्चित रूप से कैसे कह सकते हो कि उसे मैंने ही कहीं भेजा है ?'

'माधवाचार्य के सिवा यह और कौन सोच सकता है ? मुझे मृणालिनी की दासी से पता लगा कि मेरी अंगूठी देख कर मृणालिनी कहीं गई, फिर उसका पता न लगा। आपने तो मेरी अंगूठी रास्ते के लिए माँगी थी। मैं अंगूठी की जगह दूसरा कोई रत्न देना चाहता था लेकिन आप ने नहीं लिया। तभी मुझे शक हुआ था। मेरे पास मेरी ऐसी कोई चीज नहीं जो मैं आप को न दे सकूँ। इसीलिए बिना कुछ कहे मैंने अंगूठी दे दी थी। लेकिन मेरे इस विश्वास का आपने अच्छा फल दिया !'

'अगर ऐसा ही है तो तुम मुझ पर नाराज मत हो। देवता का काम यदि तुम न साधोगे तो फिर और कौन साधेगा ? अगर तुम ही यवन को नहीं भगाओगे तो और कौन भगाएगा ? इस समय तो यवन-विनाश की ओर ही तुम्हारा ध्यान होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी परिस्थिति में मृणालिनी तुम्हारे दिमाग पर क्यों छाये ? एक बार तुम मृणालिनी की आशा में मथुरा गये थे, तब तुम्हारे पिता का राज्य चला गया, यवनों के आगमन के समय यदि तुम मथुरा में न हो कर मगध में होते तो मगध कैसे जीता जाता ? अब भी क्या उसी मृणालिनी के मोहपाश में बँध कर चुपचाप बैठे रहोगे ? मेरे जीते जी ऐसा अनर्थ नहीं हो सकता। यहाँ रहने से तुम मृणालिनी को नहीं पा सकते। ऐसे ही स्थान में मैंने उसे रखा है।'

'अपने देवता के काम को आप ही पूरा करें। मुझसे न होगा।'

'यह तुम्हारी कुबुद्धि है। क्या यही तुम्हारी देवभक्ति है ? लेकिन जब तुम ऐसा कहते हो तो ठीक है, अपने काम के साधन के लिए देवता तुम जैसे आदमी से कुछ भी आशा नहीं करते। लेकिन यदि तुम का पुरुष नहीं हो तो शत्रु के शासन से कैसे अवसर पा सकते हो ? क्या यही तुम्हारी वीरता है, यही तुम्हारा धर्म है ? क्या यही तुम्हारी शिक्षा है ? एक राजवंश में जन्म ले कर तुम कैसे अपने को राज्योद्धार से विमुख रखना चाहते हो ?

'लेकिन अब तो धर्म, राज्य, शिक्षा सब पानी में डूब गया।'

'नराधम ! तुम्हारी माता ने तुम्हें दस महीने दस दिनों तक गर्भ में धारण करके क्यों यन्त्रणा भोगी ? क्यों मैंने ही पूरे बारह वर्षों तक देव-सेवा छोड़ कर तुम जैसे पाखण्डी को सारी विद्या सिखाई ?'

क्रोध में इतना कह कर माधवाचार्य बड़ी देर तक हथेली पर सिर टेके चुपचाप बैठे रहे। क्रमशः हेमचन्द्र के चेहरे का रंग दोपहर के सूर्य की तरह लाल होता जा रहा था। लेकिन ज्वालामुखी के शिखर की तरह वह स्थिर खड़ा रहा। फिर माधवाचार्य ने कहा, 'हेमचन्द्र ! तुम धैर्य रखो। मैं बताऊँगा कि मृणालिनी कहाँ है—मृणालिनी से तुम्हारा ब्याह भी करा दूँगा। लेकिन इस समय तुम्हें मेरे कहेनुसार चलना पड़ेगा।'

'यदि आप यह नहीं बताते कि मृणालिनी कहाँ है तो मैं यवनों के विरुद्ध अस्त्र ही नहीं छुऊँगा।'

'और अगर मृणालिनी मर गई हो तो ?'

सुन कर हेमचन्द्र की आँखों से अंगारे बरसने लगे। उसने कहा, 'तब यह काम भी आप का ही होगा।'

'मैं मानता हूँ कि मैंने देवकार्य के लिए वह बाधा दूर की है।'

हेमचन्द्र के चेहरे पर बरसने के लिए तत्पर मेघ जैसा भाव आया। काँपते हाथों से धनुष पर बाण चढ़ा कर बोला, 'जिसने मृणालिनी का बध किया है उसका बध भी मेरे हाथों होगा। मैं गुरू-हत्या और ब्रह्म-हत्या, दोनों पापों को अपनाऊँगा।'

'ब्रह्म-हत्या और गुरू-हत्या तथा नारी-हत्या में अन्तर है। खैर तुम्हें अभी ब्रह्म-हत्या व गुरु-हत्या का भागी बनना न होगा। क्योंकि मृणालिनी अभी जीवित है। हो सके तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे खोज कर उससे मिलो। लेकिन इस समय तुम मेरे आश्रम से कहीं चले जाओ। अपनी उपस्थिति से मेरा आश्रम कलुषित मत करो। अपात्र पर मैं अभी भार नहीं देना चाहता।' कह कर माधवाचार्य फिर पहले की तरह जप करने लगे।

हेमचन्द्र आश्रम से बाहर आये। घाट पर आ कर अपनी छोटी सी नाव पर सवार हो गये। नाव पर पहले से बैठे दूसरे आदमी से कहा, 'दिग्विजय, नाव खोल दो।'

दिग्विजय ने पूछा, 'कहाँ चलूँ ?'

हेमचन्द्र ने कहा, 'जहाँ मन हो चलो। न हो नरक में चलो।'

दिग्विजय अपने स्वामी के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित था। उसने अस्फुट स्वर में कहा, 'वहाँ जाना तो बहुत आसान है। वह स्थान बहुत निकट है।' कह कर उसने नाव छोड़ दी। नाव भी धारा के साथ बहने लगी।

हेमचन्द्र कुछ देर चुप रहा फिर बोला, 'बहुत दूर हो तो लौट चलो।'

दिग्विजय ने नाव लौटा ली और थोड़ी देर बाद नाव फिर प्रयाग के घाट पर आ लगी। कूद कर हेमचन्द्र किनारे पर आए और फिर माधवाचार्य के आश्रम की ओर चले।

उसे फिर वापस आया देख माधवाचार्य ने पूछा, 'फिर क्यों आये हो ?'

'आप जो कहेंगे, मैं वही मानूँगा। अब तो बता दीजिए, मृणालिनी कहाँ है ?'

'तुम सत्यवादी हो। तुमने मेरी बात मानना स्वीकार किया है, इसी से मैं पूर्ण संतुष्ट हो गया। गौड़ नगर में अपने एक शिष्य के घर में मैंने मृणालिनी को रखा है। तुम्हें भी उसी ओर जाना पड़ेगा लेकिन तुम उससे मिल न सकोगे। अपने शिष्य को मैंने कठोर आज्ञा दे रखी है कि जब तक मृणालिनी उसके घर में रहेगी, तब तक वह किसी पुरुष से मिलने न पाएगी।'

'भेंट न हो, न सही। आप ने जो कहा, मैं उससे ही सन्तुष्ट हूँ। अब आप आज्ञा दीजिए। मुझे क्या काम करना है ?'

'तुम दिल्ली जा कर मुसलमानों का कुछ इरादा जान सके हो ?'

'यवन बंगाल जीतने का प्रयत्न कर रहे हैं। बहुत जल्दी ही बख्तियार खिलजी सेना ले कर गौड़ की ओर आएगा।'

सुन कर माधवाचार्य का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। बोले, 'अब इतने दिनों बाद शायद विधाता इस देश के प्रति दयालु हुए हैं।'

हेमचन्द्र गौर से माधवाचार्य की ओर ताक कर उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। माधवाचार्य बोले, 'कई महीनों से मैं लगातार गणना में लगा हुआ हूँ। गणना में जो भविष्य निकला है, उसी के फलदायी होने की अब तैयारी है।'

'सो कैसे ?'

'गणना से मैंने देखा है कि यवन राज्य का विनाश बंगाल से प्रारंभ होगा।'

'यह हो सकता है, पर यह कितने दिनों में और किसके हाथों हो सकेगा ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह भी मैं गणना से जान गया हूँ। जब पश्चिम देश के वणिक् आकर बंगाल में हथियार उठाऐंगे तब यवन राज का समूल विनाश होगा।'

'तो फिर मेरे जयलाभ की संभावना कहाँ हैं ? मैं तो वणिक् नहीं हूँ !'

'तुम्हीं वणिक हो ! मथुरा में जब तुम मृणालिनी के लोभ में बहुत दिनों तक ठहरे रहे तब वहाँ तुम क्या रूप धर कर रहते थे ?'

'हाँ, उस समय मैं मथुरा में एक वणिक ही समझा जाता था।'

'तब तुम पश्चिम देशीय वणिक हुए या नहीं ? अब गौड़ राज्य में जा कर तुम्हारे हथियार उठाने से ही यवनों का विनाश होगा। मेरे सामने तुम प्रतिज्ञा करो कि कल सबेरे ही तुम गौड़ के लिए प्रस्थान करोगे। जब तक वहाँ तुम यवनों से युद्ध न कर लो तब तक तुम मृणालिनी से भेंट न करोगे।'

'आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन मैं अकेला युद्ध कैसे करूँगा ?'

'गौड़ेश्वर के पास काफी सेना है।'

'हो सकती है, यद्यपि इस विषय में भी काफी संदेह है, फिर भी वे सब मेरे अधीन क्यों होंगे ?'

'नहीं, तुम पहले वहाँ जाओ। फिर मुझसे वहीं भेंट होगी। वहाँ पहुँच कर ही इसका समुचित प्रयत्न किया जायगा। गौड़ेश्वर से मेरा अच्छा परिचय हैं।'

'ठीक है, जो आज्ञा,' कह कर हेमचन्द्र ने प्रणाम किया और विदा हुए। जब तक वह वीर मूर्ति पीछे से जाती दिखाई पड़ती रही, माधवाचार्य उसी ओर एकटक देखते रहे। और जब हेमचन्द्र अदृश्य हो गया माधवाचार्य ने अपने मन में कहा, 'जाओ वत्स, कदम-कदम पर तुम्हें विजय प्राप्त हो। यदि ब्राह्मणकुल में तुम जन्मते तो तुम्हारे पैरों में कुशा भी न गड़ती। मृणालिनी ! उस आकर्षक चिड़िया को मैंने तुम्हारे लिए ही पिंजड़े में बन्द कर रखा है। कौन जाने, कहीं उसके कलरव से मुग्ध होकर तुम इस बड़े काम के प्रति लापरवाह न हो जाओ, इसीलिए तुम्हारा परम शुभचिन्तक और मंगलाकांक्षी यह ब्राह्मण तुम्हें थोड़े दिनों के लिए जानबूझ कर मानसिक कष्ट दे रहा है।'

|२|

पिंजड़े की चिड़िया

लक्षणावती निवासी ऋषिकेश दरिद्र ब्राह्मण न था, वह सम्पन्न था। उसके घर की बनावट सुन्दर और सुदृढ़ थी। अन्तःपुर में दो तरुणी स्त्रियाँ मकान की दीवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर चित्र बना रही हैं। दोनों ही अपने कार्यों में इतनी तन्मय हैं कि उनका मन किसी ओर नहीं जाता। हाँ, वे दोनों आपस में बातें अवश्य करती जा रही हैं, लेकिन इससे उनके कार्यों में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती।

एक तरुणी ने दूसरी से कहा, 'क्यों मृणालिनी, तुम मेरी बातों का उत्तर क्यों नहीं दे रही हो ? मुझे उस राज-पुत्र के संबंध में सुनने में अच्छा लगा रहा है।'

'सखी मणिमालिनी, तुम ही अपने सुख की बातें कहो, मैं बड़े आनन्द से सुनूँगी।'

'अपने सुख की बात कहते-कहते तो मैं आप ही जल मरी हूँ। अब भला तुम्हें क्या सुनाऊँ ? अच्छा, छोड़ो यह सब ! बताओ कि यह कमल कैसा बना ?'

'अच्छा बना है, पर ठीक नहीं है। पानी से कमल बहुत दूर है, सरोवर में ऐसा नहीं होता। कमल की डोंड़ी पानी में लगी रहती है, चित्र में भी ऐसा ही दिखना चाहिए। बल्कि कमल के पत्ते और बनाओ, नहीं तो कमल की शोभा नहीं बढ़ेगी। हो सके तो पास ही एक राजहंस भी बना दो।'

'राजहंस का क्या काम है ?'

'तुम्हारे पति की तरह कमल के साथ बैठ कर बातें करेगा।

'दोनों ही सुकण्ठ हैं। किन्तु मैं वहाँ राजहंस नहीं बनाऊँगी। मैं तो सुख की बातें सुनते-सुनते ही जल मरी हूँ।'

'अच्छा, तो एक खंजन बना दो।'

'खंजन भी नहीं बनाऊँगी। खंजन तो कभी भी पंख फैला कर उड़ जाय गा। यह कोई मृणालिनी तो है नहीं, कि जिसे मैं स्नेह के बंधन में बाँध रखूँगी।'

'यदि खंजन सचमुच इतना दुष्ट है तो उसे भी मृणालिनी की तरह पिंजड़े में बंद कर दो।'

'हमने तो मृणालिनी को पिंजरे में बंद नहीं किया है। वह तो अपने आप ही आकर पिंजरे में घुस गई है।'

'सो तो माधवाचार्य के कारण।'

'हाँ सखी, अच्छी याद दिलाई ! तुमने कई बार कहा है कि माधवाचार्य के उस निष्ठुर काम का हाल तुम बताओगी, कि तुम माधवाचार्य के कारण ही किस तरह घर छोड़ कर आई हो ?'

'नहीं, मैं माधवाचार्य की बातों पर नहीं आई। माधवाचार्य को मैं ठीक से पहचानती थी न थी। मैं अपनी इच्छा से भी यहाँ नहीं आई। एक दिन शाम को मेरी दासी ने मुझे यह अँगूठी दी और कहा, 'जिन्होंने अँगूठी दी है, वे बाग में हैं।' मैंने पहचान लिया, वह अंगूठी हेमचन्द्र की थी। उन्हें जब मिलने की इच्छा होती थी तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वे यही अंगूठी भेज दिया करते थे। मेरे घर के पीछे ही बाग था। यमुना की ठण्डी हवा उस बाग में हमेशा रहती थी। वहीं उनसे भेंट होती थी।'

'इस बात को याद कर के मुझे बड़ा दुख होता है। तुम कुमारी हो कर भला कैसे एक पुरुष से छिप कर प्रणय करती थीं ?'

'दुख किस लिए सखी ! वे तो मेरे पति हैं। सिवा उनके और कोई अन्य मेरा पति न होगा।'

'लेकिन अब तक तो वे पति नहीं बन सके ! सखी बुरा मत मानना। तुम मेरी बहिन जैसी हो, इसीसे यह बात कह रही हूँ।'

मृणालिनी का सिर झुक गया। उसने अपनी आँखों के आँसू पोंछे। बोली, 'बहन मणिमालिनी ! इस विदेश में मेरा अपना कोई नहीं है। ऐसा कोई नहीं जो मुझे कोई अच्छी बात सिखाये। कोई भरोसा नहीं कि जो लोग मुझसे स्नेह करते हैं, उनसे कभी फिर भेंट होगी। मात्र तुम्हीं मेरी सखी हो। यदि तुम भी मुझसे प्रेम न करो गी तो फिर कौन करेगा ?'

'मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, और सदा करूँगी। लेकिन जब यह सब बातें याद आती हैं तो मन में होता है कि.....'

मृणालिनी फिर रोने लगी। बोली, 'सखी, तुम्हारे मुँह से यह बात सुन कर मुझसे सही नहीं जाती। यदि तुम मेरे सामने कसम खाओ कि मैं जो कुछ कहूँगी उसे तुम इस संसार में किसी से नहीं कहोगी तो मैं तुमसे सब बात खोल कर कह दूँगी। तब तुम मुझसे प्रेम करने लगोगी।'

'मैं कसम खाती हूँ।'

'तुम्हारी चोटी में देवता का फूल है। उसे छू कर कसम खाओ ?'

मणिमालिनी ने वैसा ही किया।

तब मृणालिनी सखी मणिमालिनी के कानों में बहुत देर तक कुछ कहती रही। सुन कर मणिमालिनी का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा।

मणिमालिनी ने स्पष्ट-स्वर में पूछा, 'इसके बाद माधवाचार्य के साथ तुम कैसे आईं ? जो बता रही हो वही बताओ।'

'मैं हेमचन्द्र की अंगूठी देख कर उनसे मिलने की ललक ले कर बाग में गई। वहाँ पहुँचने के बाद दासी ने कहा, 'वे राजपुत्र नाव पर हैं, नाव किनारे पर लगी है।' मैंने बहुत दिनों से हेमचन्द्र को देखा न था। मन बड़ा बेचैन था, इसी से विचार-शून्य हो गई। किनारे पर जा कर देखा कि सचमुच एक नाव लगी थी। उसके पास ही एक पुरुष खड़ा था। मैंने समझा कि हेमचन्द्र खड़े हैं। मैं नाव के पास गई। पास खड़े व्यक्ति ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे नाव पर चढ़ाया। ठीक उसी क्षण मल्लाहों ने नाव खोल दी। तब उस हाथ के स्पर्श से ही मैं निश्चित समझ सकी कि वह व्यक्ति हेमचन्द्र नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तो तुम चिल्लाई ?'

'नहीं, चिल्ला नहीं सकी। चिल्लाना चाहा पर गले से आवाज ही नहीं निकली।'

'मैं होती तो पानी में कूद पड़ती।'

'लेकिन हेमचन्द्र से बिना मिले मैं क्यों मरती ?'

'फिर क्या हुआ ?'

पहले ही उस व्यक्ति ने मुझे माँ कहा। बोला, 'मैं तुम्हें माँ कहता हूँ—मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। मुझ पर किसी प्रकार का शक मत करना। मेरी ही नाम माधवाचार्य है। मैं हेमचन्द्र का गुरू हूँ। भारत के अनेक राजाओं के साथ मेरा यही सम्बन्ध है। मैं इस समय किसी देवकार्य में संलग्न हूँ। उसमें हेमचन्द्र मेरा प्रधान सहायक है और तुम प्रधान बाधा हो।' मैंने कहा, 'मैं बाधा हूँ ?' माधवाचार्य ने कहा, 'हाँ। तुम ही बाधा हो, एकमात्र विघ्न ! यवनों को पराजित करके फिर से हिन्दू राज्य की स्थापना कोई आसान काम नहीं है। सिवा हेमचन्द्र के यह और किसी के लिए सम्भव भी नहीं है। यदि हेमचन्द्र का मन बँटा रहेगा तो उससे भी यह कार्य सिद्ध न होगा। जब तक वह तुमसे मिलता रहेगा, उसके मन पर तुम ही छायी रहोगी, फिर यवनों को कौन मारेगा ?' मैंने कहा, 'समझ गई, यवनों को मारने से पहले मुझे ही मारना जरूरी है। क्या आपके शिष्य ने आपके द्वारा अपनी अँगूठी भेज कर मुझे मारने की व्यवस्था की है ?'

मणिमालिनी ने पूछा, 'तुम इतनी कठोर बातें उस बूढ़े से कैसे कर सकीं ?'

'मैं बड़ी क्रोधित हो गई थी। बूढ़े की बातें सुन कर मेरी हड्डी-हड्डी जल उठी थी। फिर विपत्ति के समय लज्जा कैसी ? माधवाचार्य ने मुझे बहुत बाचाल समझ कर मुस्करा कर कहा, 'हेमचन्द्र को मालूम नहीं कि मैं तुम्हें इस तरह बुला लूँगा।' तभी मैंने मन ही मन निश्चय किया कि जिसे मैं अपना यह जीवन समर्पित कर चुकी हूँ, उसकी आज्ञा के बिना जीवन का त्याग नहीं करूँगी। माधवाचार्य कहने लगे, 'तुम्हें प्राण-त्याग नहीं करना है। मात्र कुछ, थोड़े दिनों के लिए हेमचन्द्र का त्याग करना पड़ेगा। इसमें ही उनका परम कल्याण है। क्या तुम्हारा भी यह कर्तव्य नहीं कि वह राजराजेश्वर हो और तुम्हें राजमहिषी बना सके ? तुम्हारे प्रणय-ताप से वह कापुरुष हो गया है, उसका यही भाव दूर करना परम आवश्यक है।' तब मैंने कहा, 'यदि मुझसे मिलना वे अनुचित समझेंगे तो मुझसे खुद ही कभी भेंट न करेंगे।' तब माधवाचार्य बोले, 'बच्चा यही सोचता है कि बालक और वृद्ध की, दोनों की विचारशक्ति एक जैसी है, लेकिन यह बात सत्य नहीं है। हेमचन्द्र की अपेक्षा हमारी विचार-शक्ति अधिक प्रौढ़ है। इसमें तुम्हें भी शक नहीं होना चाहिए। तुम राजी हो या न हो, पर मैंने जो निश्चय किया है वहीं करूँगा। तुम्हें मैं कहीं दूर देश ले जाऊँगा। गौड़ देश में एक बहुत ही शांत स्वभाव के भले ब्राह्मण के घर तुम्हें छोड़ आऊँगा। वह अपनी बेटी की तरह तुम्हें स्नेह से रखेंगे। फिर एक वर्ष के बाद मैं तुम्हें तुम्हारे पिता के पास पहुँचा दूँगा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तब हेमचन्द्र से तुम्हारा विवाह करा दूँगा। इस पर तुम विश्वास करना।' सारी बातें सुन कर एक लाचारी समझ मैं चुप रह गई। फिर यहाँ आई हूँ।'

३

भिखारिणी

जब दोनों सखियाँ इसी प्रकार बातें कर रही थीं, ठीक उसी समय किसी कोमल कण्ठ से निकली संगीत-ध्वनि उनके कानों में पहुँची—

'मथुरावासिनि मधुरहासिनि
श्यामविलासिनि रे !'

मृणालिनी बोली, 'यह कौन कहाँ गा रही है ?'
मणिमालिनी ने बताया, 'बाहर गा रही है।'
तभी गाने वाली की संगीत लहरी गूँज उठी—

'कहें लो नागरी गेह परिहरि
काहे विलासिनी रे !'

मृणालिनी ने पूछा, 'सखी, यह कौन गा रही है ? क्या तुम जानती हो ?'
मणि बोली, 'कोई भिखारिणी होगी।'
फिर गीत सुन पड़ा—

'वृन्दावन घन गोपिनी मोहन
काहे तू त्यागी रे !
देश-देश पर सो श्याम सुन्दर
फिरे तू या लागी रे !'

मृणालिनी एकाएक आवेश में बोली, 'सखी, सखी ! उसे भीतर बुलाओ न !'
मणि गाने वाली को बुलाने गई। तब तक वह फिर गाने लगी—

'विकच नलिने यमुना कुलिने
बहुत पियारी रे !
चन्द्रमाशालिनी या मधुमालिनी
ना मिटिलो आशा रे
सा निशा समरि·····'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक तभी मणि उसे साथ ले कर भीतर आई। वह भीतर आ कर पहले की तरह ही गाने लगी—

'सा निशा समरि कहो लो सुन्दरि,
कहाँ मिले देखा रे।
सुनियाउ ये चलि, बाजथि मुरली,
बने बने एका रे।'

मृणालिनी ने गाने वाली से कहा, 'तुम्हारा गला बहुत अच्छा है। जरा फिर तो गाओ।'

गाने वाली की उम्र होगी, यही सोलह साल। पोड़सी, कृष्णांगी। बल्कि उसे काली ही कहें। अगर उसके शरीर पर भौंरा बैठे तो दिखाई न पड़े। या उसके किसी अंग पर रोशनाई लगाई जाय तो लगेगा कि पानी लगा है। अपने घर के कृष्ण-वर्ण प्राणी को लोग श्यामवर्ण कहेंगे, पराये घरवाले को काला या कृष्णवर्ण। फिर वर्ण चेहरा जैसा भी हो पर भिखारिनी स्वरूपा है, कुरूपा नहीं। उसके अंग साफ, सुडौल, सुमार्जित और चमकदार हैं। 'चेहरा प्रसन्न, बड़ी-बड़ी चंचल आँखें, हास्यमयी हैं। आँख के तारे खूब काले, पास ही एक तिल। छोटे-छोटे लाल ओंठ, बहुत ही सफेद दाँत की पाँतें। सिर के बालों को लपेट कर उस पर जूही की माला बँधी है। यौवन-संचार के समय शरीर का गठन सुन्दर हो गया था, जैसे किसी शिल्पी ने काले-चिकने पत्थर की मूर्ति गढ़ी हो। कपड़े अति-साधारण पर साफ-सुथरे। उन पर धूल या कीचड़ का निशान नहीं। अंग भी बिल्कुल आभूषणहीन नहीं, भिखारिणी के योग्य ही गहने थे। हाथ में पीतल का कड़ा, गले में लकड़ी की माला, नाक पर एक महीन तिलक की रेखा, भौंहों के बीच एक छोटी सी चंदन की बिंदी। वह अनजान की तरह, पहले की तरह ही गाने लगी—

'मथुरावासिनि मधुरहासिनि,
श्याम विलासिनी रे!
कहें लो नागरि, गेह परिहरि,
काहे विलासिनी रे!
वृन्दावनधन, गोपिनी मोहन,
काहे तू त्यागो रे!
देश-देश पर, सो श्यामसुन्दर,
फिरे तू या लागी रे!
विकच नलिने, यमुना कुलिने,
बहुत पियारी रे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमाशालिनी, या मधुमालिनी,
ना मिटिलो आशा रे !
सा निशा समरि, कहो लो सुन्दरि,
का हाँ मिले देखा रे !
सुनियाउ ये चलि, बाजथि मुरली,
बने बने एका रे !'

गीत समाप्त हो गया। तब मृणालिनी बोली, 'तुम बहुत अच्छा गाती हो। सखी, मणि, इसे कुछ देना चाहिए। कुछ दो न !'

मणि उसके लिए कुछ लाने भीतर चली गई। इस अवसर का लाभ उठाकर मृणालिनी ने गाने वाली को पास बुला कर पूछा, 'सुनो, तुम्हारा नाम क्या है ?'

उसने कहा, 'मेरा नाम है गिरिजाया।'

'कहाँ रहती हो ?'

'इसी नगर में।'

'क्या तुम गीत गा कर ही दिन बिताती हो ?'

'इनके अलावा और कुछ नहीं जानती।'

'यह सब गीत कहाँ सीखती हो ?'

'जहाँ जो सुन लिया, सीख लिया।'

'यह गाना तुमने कहाँ सीखा ?'

'एक बनिये ने सिखाया है।'

'बनिया ! कहाँ रहता है ?

'यहीं, इसी नगर में।'

सुन कर प्रसन्नता से मृणालिनी का चेहरा चमक उठा। जैसे सबेरे की सूर्य-किरणों में कमल खिले। उसने कहा, 'वह बनिया क्या करता है ?'

'जो सब का व्यवसाय है, वही उसका भी धंधा है।'

'कैसा धंधा ?'

'बातों का।'

'यह तो नया धंधा है। इसमें नफा-नुकसान कैसा ?'

'इसमें लाभ है प्रेम और नुकसान है रोना।'

'तू भी व्यवसायी है ! इसका महाजन कौन है ?'

'जो महाजन है।'

'तुम इसमें क्या हो ?'

'नगद मुट्ठी।'

'अच्छा, अपना बोझ उतारो तो, देखूँ क्या-क्या चीजें हैं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेरा सामान देखने का नहीं, सुनने का है।'

'अच्छा, तो सुनाओ।'

गिरिजाया फिर गाने लगी—

'यमुनार जले मोरकि निधि मिलिलो,
झाँप दिया पशिजले, यतने तुलिया गले,
परे छिन्न कुतूहले जे रतन.....
निद्रार आवेरो भोर, गृहेते पशिले चोर,
कठठेर काटिलो मोर, मणि हरे निलो।'

मृणालिनी ने डबडबाई आँखों और गद्‌गद् कण्ठ से फिर भी हँस कर कहा, 'यह किस चोर की बात है ?'

'बनिया कहता है कि चोरी का धन लेना ही उसका धंधा है।'

'उससे कहना कि चोरी के धंधे से साधुओं की जान नहीं बचती।'

'शायद व्यापारी की भी नहीं।'

'क्यों, व्यापारी की क्या ?'

गिरिजाया ने गाया—

'घाट बाट तट माठ फिरि फिरिन्न बहु देश।
कहाँ मेरे कान्तवरण, कहाँ राजवेश॥
हिया पर रोचन्द्र पंकज, केतु यतन आदि।
एपि पंकज कहाँ भोर, कहाँ मृणाल हामारि॥'

सुन कर मृणालिनी ने कोमल स्वर में बड़े स्नेह से कहा, 'मृणाल कहाँ है, उसका पता मैं बताती हूँ। तुम याद रख सकोगी ?'

'हाँ, कहाँ है ? बताओ !'

मृणालिनी ने कहा, गा कर—

'कण्टके गढ़िलो विधि, मृणाल अन्धमे।
जल तारे डुबाइलो पड़िया मरमे॥
राजहंस देखि एक नयनरंजन।
चरण बेड़िया तारे करिलो बंधन॥
बोले हंसराज कोथा करिबे गमन।
हृदय कमले दिबो तोमार आसन॥
आसिया बसिलो हँस हृदय कमले।
कांपिलो कण्टक सह मृणालिनी जले॥
हेनो काले कालोमेघ उठिलो आकाशे।
उड़िलो मरालराज, मानस-बिलासे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँगिलो हृदयपद्म तार बेग भरे।
डूबिया अतल जले मृणालिनी मरे ॥.....

क्यों गिरिजाया गीत सीख सकोगी ?'

'हाँ, पर क्या आँखों के आँसू भी सीखूँ ?'

'नहीं, इस व्यवसाय में मेरा वही लाभ है।'

मृणालिनी गिरिजाया को इस गीत का अभ्यास कराने लगी, इसी समय मणि के पैरों की आहट मिली। मणि उसकी स्नेहशालिनी सखी थी। फिर भी उसे ऐसा विश्वास न था कि मणि पितृ-प्रतिज्ञा के भंग में उसकी सहायता करेगी; अतः उसने इस बात को छिपाने की चेष्टा में गिरिजाया से कहा, 'अब आज और कोई जरूरत नहीं है, बस बनिया से मुलाकात करना। अपना बोझ कल फिर ले आना। अगर मेरे लेने लायक कोई चीज होगी तो जरूर लूँगी।'

गिरिजाया चली गई। मृणालिनी ने उसे जो पुरस्कार देना चाहा था वह भूल ही गई।

गिरिजाया के थोड़ा आगे बढ़ जाने पर मणि ने कुछ चावल, दस केले, एक पुराना वस्त्र और कुछ कौड़ियाँ लाकर गिरिजाया को दीं। मृणालिनी भी एक पुराना वस्त्र देना चाहती थी। देते समय उसके कान में कहा, 'मुझमें इतना धैर्य नहीं है, कल तक आसरा न देख सकूँगी। तुम आज ही रात को एक पहर बीते आना और इस घर की उत्तरी दीवाल के पास ठहरना, वहाँ मुझसे भेंट होगी। अगर तुम्हारे बनिया भी साथ आवें तो लेती आना।'

'मैं समझ गई। मैं जरूर आऊँगी।' गिरिजाया ने कहा।

मृणालिनी के पास आ कर बैठने के बाद मणि ने कहा, 'सखी, उस भिखारिन के कानों में क्या कह रही थीं ?

उत्तर में मृणलिनी गा उठी :—

'कि बोलिबो सखि—

सखि मनेर कथा सखि, मनेर कथा सखि—
काने-काने कि कथाटि बोले दिलि ओई।
सखी फिरे कोना सखी, सखी फिरे कोना सखी।
सखी कथा कोस कथा कबो, नहले करो नई।'

मणि ने हँस कर कहा, 'तुझे क्या हो गया है रे सखि ?'

मृणालिनी बोली, 'तुम्हारी सखी ही तो है !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

| ४ |

दूती

लक्ष्मणावती नगरी के एक भाग में सर्वधन नामक वणिक के घर में हेमचन्द्र रहते थे। वणिक के घर के द्वार पर अशोक का पेड़ था। दिन के तीसरे पहर उसी अशोक के पेड़ के नीचे बैठ कर हेमचन्द्र अशोक की शाखा को बिना किसी उद्देश्य ही टुकड़े टुकड़े कर रहे थे और बार-बार रास्ते की ओर देखते जाते थे। जैसे किसी की व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहे हों। शायद वे जिसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, वह तो नहीं आया। आया नौकर दिग्विजय। हेमचन्द्र ने दिग्विजय से कहा, 'दिग्विजय, भिखारिणी तो आज अभी तक नहीं आई। मेरा जी घबरा रहा है। तुम जरा उसकी खोज-खबर तो लो।'

'अब देखो!' कह कर तनिक कुढ़न के साथ दिग्विजय भिखारिणी गिरिजाया की खोज में चला। शहर की एक बड़ी सड़क पर गिरिजाया से उसकी भेंट हुई।

गिरिजाया ने ही पहले देख कर पुकारा, । 'कौन है? दिग्विजय?'

दिग्विजय ने चिढ़ कर कहा, 'हाँ कहो, मेरा नाम ही दिग्विजय है।'

'अच्छा, तो अब भला कौन सा दिक्‌जय करने निकले हो?'

'तुम्हारा दिक्!'

'मैं क्या एक दिक् हूँ? तुम्हें दिग्विदिक् का भी ज्ञान नहीं?'

'कैसे हो? तुम अन्धकार हो, अब चलो, मालिक ने तुम्हें बुलाया है।'

'क्यों?'

'शायद आज तेरे साथ मेरा ब्याह करेंगे।'

'क्यों, क्या तुम्हारे बुँह में आग लगाने को कोई और नहीं मिली?'

'नहीं यह काम तुम्हें ही करना होगा। अब जल्दी चलो।'

'ठीक है, मुझे तो दूसरों के लिए ही मरना है। अच्छा चलो।'

गिरिजाया दिग्विजय के साथ चली। दूर से उसे अशोक के नीचे बैठे हेमचन्द्र की ओर दिखा कर दिग्विजय कहीं और चला गया। उस समय न जाने किस सोच में डूबे हेमचन्द्र धीरे-धीरे गा रहे थे।

'विकच नलिने, यमुना-पुलिने, बहुत पिपासा रे!'

गिरिजाया ने भी पीछे से गा कर कहा—

'चन्द्रमाशालिनी, या मधुयामिनी।
केमिटिलो आशा रे।'

गिरिजाया के देखते ही हेमचन्द्र प्रसन्न हो उठे, बोले, 'कौन गिरिजाया! आ गई? क्या आशा मिटी?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'किसकी आशा ? आप की या मेरी ?'

'मेरी। मेरी आशा मिटेगी तो तुम्हारी भी मिटेगी।

'आप की आशा क्यों मिटेगी ? लोग कहते है कि राजे-रजवाड़ों की आशा किसी भी तरह नहीं मिटती।'

'मेरी आशा तो बहुत साधारण है।'

'यदि कभी मृणालिनी से भेंट होंगी तो यह बात उन्हीं से कहूँगी।'

एकाएक हेमचन्द्र उदास हो गये। बोले, 'तो क्या आज भी मृणालिनी से भेंट नहीं हुई ? आज किस मुहल्ले में गाने गई थी ?'

'बहुत से मुहल्लों में गई। अब सबके नाम रोज-रोज आप को क्या बताऊँ ? और कुछ पूछिए।'

'समझ गया कि विधाता ही टेढ़े हैं। अच्छा, कल फिर खोज में जाना।'

गिरिजाया ने कपट करके, जाने का उपक्रम किया। प्रणाम किया और जाने को घूमी। तब अचानक हेमचन्द्र बोल उठे, 'गिरजाया, तुम तो नहीं हँस रही हो, लेकिन तुम्हारी आँखें जरूर हँस रही हैं। तुम्हारा गाना सुन कर क्या आज किसी ने कुछ कहा ?'

'किसकी-किसकी बताऊँ ? एक औरत तो निकल कर मरने आई थी। बोली कि मथुरा वासिनी के लिए श्यामसुन्दर का सिर दुख रहा है।'

हेमचन्द्र ने लम्बी साँस छोड़ी और अपने आप ही बड़बड़ाते हुए बोले, 'जब इतनी खोज के बाद भी पता नहीं चला, तब अब आशा बेकार हैं। क्यों नाहक दिन नष्ट कर के अपना काम भी बिगाड़ूँ ? गिरिजाया, अब मैं कल तुम्हारे नगर से चला जाऊँ गा।'

'अच्छा।' कह कर गिरिजाया धीरे-धीरे गाने लगी—

'शुनि जाउये चलि, बजथि मुरली,
बने-बने एका रे ?'

हेमचन्द्र ने उतावलेपन से कहा, 'यह गाना बन्द करो। दूसरा गाओ।'

तब गिरिजाया ने फिर गाया,

'जे फूल फूटिलो सखी, गृहतरु शाखे,
केनों रे पवना उड़ालि ताके।'

हेमचन्द्र ने कहा, 'हवा जो फूल उड़ा ले गई, अब उसके लिए क्या दुख ? कोई अच्छा गाना गाओ।'

गिरिजाया ने फिर गाया,

'कण्टके गढ़िलो विधि, मृणाल अधमे,
जल तारे डुबाइलो चिड़िया मरमे।'

हेमचन्द्र चौंक उठे। बोले, 'क्या ? मृणाल क्या ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिजाया ने फिरगा या,

'कण्टके गढ़िलो विधि, मृणाल अधमें,
जले तारे डुबाइलो पिड़िया मरमे।
राजहंस देखे एक नयन रंजन,
चरण बेड़िया तारे करिलो बन्धन ॥'

फिर बोली, 'नहीं। यह नहीं। दूसरा गाना गाऊँ।'

हेमचन्द्र बेचैन हो कर बोले, 'नहीं, नहीं, यहीं। यही गाना गाओ, तुम पूरी राक्षसी हो।'

गिरिजाया गाने लगी—

'बोले हंसराज कोथा करिबे गमन।
हृदय कमले दिबो तोमार आसन ॥
आसिया बसिलो हंस हृदय कमले।
काँपिलो कंटक सह मृणालिनी जले ॥'

हेमचन्द्र चीख पड़े, 'गिरिजाया, गिरिजाया, यह गाना तुम्हें किसने सिखाया ?'

हँस कर गिरिजाया ने फिर गाया,

'हेनोकाले कालो मेघ उठिलो आकाशे।
उड़िलो मरालराज मानस-तिला से ॥
भांगिलो हृदयपद्म तार वेग भरे।
डूबिया अतल जले मृणालिनी मरे ॥'

हेमचन्द्र की आँखों में आँसू भर आए। गद्‌गद् कंठ से गिरिजाया से बोले, 'यह तो मेरी मृणालिनी है ! बताओ, तुमने उसे कहाँ देखा।'

'देखा सरोवर में। पवन के झकोरे से काँप रही है, मृणाल के ऊपर मृणालिनी।'

'अब यह मजाक छोड़ो। मेरी बात का ठीक-ठीक उत्तर दो। कहाँ है मृणालिनी ?

'इसी नगरी में है।'

हेमचन्द्र उतावली के कारण चिढ़ गये। बोले, 'यह तो मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। लेकिन बताओ कि इस नगर में कहाँ है ?'

'हृषीकेश शर्मा के घर।'

'कैसा संकट है ? यह बात तो मैंने ही तुम्हें बता दिया था। लेकिन इतने दिनों में तो तुम उसका पता लग नहीं सकीं। अब तुमने क्या पता लगाया ?'

'पता तो लगाया है।'

हेमचन्द्र ने आँखों के आँसू पोंछे, बोले, 'यहाँ से कितनी दूर ?'

'काफी दूर है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यहाँ से किधर जाना होता है ?'

'यहाँ से पहले दक्षिण, फिर पूरब, उसके बाद उत्तर, फिर पश्चिम—'

हेमचन्द्र ने व्यग्र हो कर कहा, 'इस समय मजाक छोड़ो। नहीं तो मैं अपना सिर फोड़ लूँगा।'

'शान्त होइए। क्या रास्ता भर बता देने से ही पहचान लेंगे ? फिर इतना पता ठिकाना पूछने से लाभ ? आदेश हो तो मैं अपने साथ ही ले चलूँ।'

जैसे बादल छँटे और सूरज निकले, हेमचन्द्र का चेहरा खिल उठा। बोले, 'तुम्हारा कल्याण हो, मृणालिनी ने क्या कहा ?'

'बता तो दिया—डूबिया अतल जले मृणालिनी मरे।'

'कैसी है मृणालिनी ?'

'देखने से शरीर में तो कोई बीमारी नहीं दिखी।'

'लेकिन क्या समझा ! सुख में है या दुख में ?'

'शरीर पर गहने हैं। पहनने को अच्छे कपड़े हैं। हृषीकेश ब्राह्मण की कन्या की वह सखी है।'

'तेरा सत्यानाश हो ! उसके मन की कुछ बात समझीं ?'

'बरसात के कमल की तरह केवल मुँह पानी पर तैर रहा है।'

'उस घर में किस प्रकार है ?'

'इसी अशोक के फूल के गुच्छे की तरह। अपने गौरव से आप ही नम्र है।'

'गिरिजाया ? तुम उम्र में बालिका हो, लेकिन तुम जैसी दूसरों बालिका नहीं देखी।'

'अपना सिर फोड़ने वाला दूसरा पात्र भी न देखा होगा।'

'मेरी बेचैनी के काम पर ध्यान मत दो। बताओ, मृणालिनी ने और क्या कहा ?'

'जिस दिन जानकी—'

'फिर वही !'

'जिस दिन जानकी ने रघुवीर को देखा—'

हेमचन्द्र ने आगे बढ़ कर गिरिजाया के बाल पकड़े।

गिरिजाया चीख उठी, 'छोड़ो-छोड़ो, बताती हूँ।'

'कहो।' कह कर हेमचन्द्र ने बाल छोड़ दिया।

तब गिरिजाया ने विस्तार से मृणालिनी से हुई बातें बताई। फिर कहा, 'श्रीमान, यदि आप मृणालिनी को देखना चाहते हैं तो आज रात एक पहर बीते मेरे साथ चलिएगा।'

गिरिजाया की बात पूरी होने पर हेमचन्द्र बहुत देर तक अशोक के नीचे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
टहलते रहे। बहुत देर बाद घर के भीतर चले गये और वापस आकर गिरिजाया को एक पत्र देते हुए कहा, 'मुझे मृणालिनी से मिलने का अभी अधिकार नहीं है। तुम निश्चय के अनुसार रात को उससे जरूर मिलना और मेरा यह पत्र उसे देना। कहना-देवता के प्रसन्न होने पर शीघ्र ही, इसी वर्ष भेंट होगी। और उत्तर में मृणालिनी जो कुछ कहे, वह तुम आज रात में ही मुझसे कह जाना।'

गिरिजाया के चले जाने के बाद बहुत देर तक हेमचन्द्र अशोक के नीचे एक चटाई पर लेटे रहे। वे इस समय बहुत चिन्तित थे। वह बाँहों पर सिर रख कर जमीन की ओर मुँह करके सो गये। थोड़ी देर के बाद अचानक पीठ पर किसी कठोर हाथ के स्पर्श से जागे। मुँह घुमा कर देखा—वहाँ सामने माधवाचार्य खड़े थे।

माधवाचार्य ने कहा, 'बेटा, उठो। मैं तुमसे असंतुष्ट भी हूँ, संतुष्ट भी हूँ। तुम मेरी ओर इतने विस्मय से क्या देख रहे हो ?'

'आप यहाँ कहाँ से आये ?'

माधवाचार्य ने इस बात का कोई उत्तर न दे कर कहा, 'तुमने अभी तक नवद्वीप न जा कर राह में इतनी देर लगाई। इससे मै तुम पर असंतुष्ट हुआ हूँ। और तुमने मृणालिनी का पता पा कर भी अपनी प्रतिक्षा निभाई और उसके साथ मिलने का सुअवसर पा कर भी तुमने उपेक्षा की, इससे मैं संतुष्ठ हुआ हूँ। मैं तुम्हारा तिरस्कार न करूँगा। लेकिन अब तुम्हें यहाँ समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। मृणालिनी के पत्र के उत्तर के लिए भी प्रतीक्षा मत करो। इस वेगवान हृदय का कोई विश्वास नहीं। मैं आज ही नवद्वीप जाऊँ गा। तुम्हें भी मेरे साथ ही चलना पड़ेगा। चलो, नाव तैयार है। जाओ, घर में से अस्त्र-शस्त्र उठा लाओ। मेरे साथ ही चलो।'

हेमचन्द्र ने लंबी सांस छोड़ कर कहा—'कोई हानि नहीं, मैंने तो सब आशा भरोसा छोड़ ही दिया हैं, चलिए। किन्तु क्या आप अन्तर्यामी हैं ?'

यह कह कर हेमचन्द्र घर के भीतर गए। वणिक से विदा ली। और अपना सामान एक आदमी को लाने को देकर आचार्य के साथ चल पड़े।

६

लुब्ध

मृणालिनी या गिरिजाया कोई भी अपने वचन न भूलीं। दोनों ही पूर्ण निश्चय के अनुसार एक पहर रात गए हृषीकेश ब्राह्मण के घर के पास मिलीं। मृणालिनी ने गिरिजाया को देख कर पूछा, 'हेमचन्द्र कहाँ हैं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वे तो नहीं आये।'

क्षण भर को मृणालिनी स्तब्ध रह गई फिर पूछा, 'क्यों नहीं आये ?'

'यह तो मैं नहीं जानती। हाँ, यह पत्र दिया है।'

कह कर गिरिजाया ने पत्र उसके हाथों में थमा दिया। फिर मृणालिनी ने कहा,' कैसे पढ़ूँ ? घर में दिया जला कर पढ़ने से मणि जान जाएगी।'

'अधीर मत हो ! दिया, तेल, चकमक पत्थर, सब कुछ तो ले आई हूँ। अभी रोशनी कर देती हूँ।'

गिरिजाया ने जल्दी से आग जला कर दिया जला दिया। लेकिन आग जलाने की आवाज एक पड़ोसी ने सुन ली, उसने दिए की रोशनी भी देखी।

रोशनी जलने पर मन ही मन मृणालिनी ने यह पत्र पढ़ा—

'मृणालिनी ! क्या कह कर मैं तुम्हें पत्र लिखूँ ? मेरे कारण ही तुम्हारा घर छूटा। तुम दूसरे के घर में कष्ट के दिन बिता रही हो। देवता की कृपा से तुम्हारा पता पा कर भी तुमसे भेंट नहीं हुई। इसके लिए तुम मुझे बुरा भी समझ सकती हो, दूसरी कोई होती, तो अवश्य समझती। पर शायद तुम ऐसा न सोचोगी। मैं किसी विशेष संकल्प के लिए बँधा हूँ। यदि उधर से लापरवाही करूँ तो मैं अधम समझा जाऊँगा। इसके लिए मैंने गुरू के सामने शपथ ली है। इसलिए यहाँ तुमसे भेंट न करूँगा। मुझे विश्वास है कि तुम भी कदापि न चाहोगी कि मैं तुम्हारे कारण अपना सत्य नष्ट करूँ। अतः अब किसी तरह एक साल का दिन बिता लो। बाद में ईश्वर की कृपा रही तो जल्दी ही तुम्हें राज-पुत्रवधू बना कर अपने सुख को अमर करूँगा। इस कम उम्र की भिखारिन बालिका द्वारा उत्तर भेजना।'

पत्र पढ़ कर मृणालिनी ने गिरिजाया से कहा, 'गिरिजाया। मेरे पास कागज-कलम कुछ भी वहीं है, कैसे जवाब लिखूँ ? तुम मेरा जवानी संदेश ही कह देना। तुम पर पूरा विश्वास है, मैं तुम्हें पुरस्कार के रूप में अपने शरीर का यह आभूषण देती हूँ।'

गिरिजाया बोली, 'जवाब किसके लिए लिखोगी ? उन्होंने मुझे पत्र लेकर भेजते समय ही कहा था कि जवाब भी आज रात को ही ले आना। मैंने भी मान लिया था। आते समय यह ध्यान था कि संभवतः तुम्हारे पास लिखने का सामान न होगा, अतः सब जुटा कर साथ में लाने के विचार से आने के पहले उनके पास गई पर उनसे भेंट नहीं हुई, सुना कि वे शाम को ही नवद्वीप चले गये।'

'नवद्वीप ?'

'हाँ, नवद्वीप !'

'शाम को ही ?'

'हाँ, शाम को ही। सुना है कि उनके गुरू आकर उन्हें लिवा ले गये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'माधवाचार्य ! माधवाचार्य ही मेरे लिए काल बन गया है।' कह कर मृणालिनी काफी देर तक चुप रही। कुछ सोचती रही, फिर बोली, 'गिरिजाया, अब तुम जाओ। अब मैं अधिक देर तक घर के बाहर नहीं रह सकती।'

'ठीक है, मैं जाती हूँ।' कह कर गिरिजाया वापस हुई। उसके मधुर-मधुर गीत को सुनती मृणालिनी घर के भीतर चली गई।

घर के भीतर जा कर जैसे ही मृणालिनी दरवाजा बन्द करने चली, वैसे ही किसी ने पीछे से आ कर इसका हाथ पकड़ा। वह चौंक उठी। हाथ पकड़ने वाला बोला, 'भला सती साध्वी ! फँस गई न जाल में ? क्या मैं भी जान सकता हूँ कि वह भाग्यशाली पुरुष कौन है ?'

क्रोध से काँपती हुई मृणालिनी बोली, 'व्योमकेश, तुम ब्राह्मण हो, कुल में ही पाखण्ड ? छोड़ो मेरा हाथ।'

यह व्योमकेश, हृषीकेश ब्राह्मण का पुत्र है। वह व्यक्ति बड़ा ही मूर्ख और दुश्चरित्र भी है। वह मृणालिनी पर मोहित था और अपनी इच्छा को पूरी करने के लिए और कोई रास्ता न देख वह अब जबरदस्ती करने को तैयार था। लेकिन अधिकतर मृणालिनी सदा ही मणि के साथ रहती थी, इसीलिए व्योमकेश को अभी तक अवसर नहीं मिला था।

मृणालिनी की फटकार सुन कर व्योमकेश बोला, 'हाथ क्यों छोड़ूँ ? हाथ छोड़ने से होगा भी क्या ? हाथ छोड़ने छुड़ाने की जरूरत नहीं है भाई, जरा मेरे मन का दुख तो सुनो, क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ ? जब एक पर कृपा की है तब दूसरे का क्यों नहीं करोगी ?'

'कुलांगार। यदि नहीं छोड़ोगे तब अभी मैं शोर करके घर के सभी लोगों को जगा दूँगी।'

'जरूर जगाओ। मैं कहूँगा न कि मैंने अभिसारिका को पकड़ा है।'

'तेरा सत्यानाश हो।' कहते हुए जोर लगा कर मृणालिनी ने हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया। लेकिन उसे सफलता न मिली। तब व्योमकेश ने कहा, 'अधीर न हो, मेरा मनोरथ पूरा होने दो, तब मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। इस समय तुम्हारी सखी-बहन मणिमालिनी कहाँ है ?'

'मैं भी तुम्हारी बहन हूँ।'

'नहीं, तुम मेरी प्राणों से बढ़ कर राधिका हो।' कहते हुए व्योमकेश ने मृणालिनी का हाथ पकड़ कर खींचना शुरू किया। जब माधवाचार्य ने मृणालिनी का हरण किया था तब मृणालिनी ने स्त्री-स्वभाव-सुलभ चीखने का बल नहीं दिखाया, इस समय भी वह कुछ न बोली।

किन्तु आज मृणालिनी के लिए यह असह्य हो उठा। उसने मन ही मन लाखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ब्राह्मणों को प्रणाम करके जबरदस्ती व्योमकेश को शक्ति भर जोर लगा कर लात मारी। लात खाकर भी लज्जाहीन व्योमकेश ने कहा, 'वाह, वाह ! मैं धन्य हुआ। इन पावों के आघात से मैं मोक्ष पाऊँगा। सुन्दरी ! तुम हो मेरी द्रौपदी, और मैं हूँ तुम्हारा अर्जुन।'

एकाएक भयानक कातर स्वर में विकट चीख के रूप में व्योमकेश चिल्ला उठा, 'राक्षसी ! तेरे दाँत में जहर है !' कह कर व्योमकेश ने मृणालिनी का हाथ छोड़ दिया और अपनी पीठ हाथ से सहलाने लगा। छूते ही पता लग गया कि उसकी पीठ से खूब खून बह रहा है।

हाथ छूट जाने पर भी मृणालिनी वहाँ से भागी नहीं। यद्यपि वह भी उस समय व्योमकेश की तरह ही घबरा उठी थी, क्योंकि व्योमकेश की पीठ पर उसने तो काटा न था। यों भालू की तरह वह काट भी कैसे सकती है ? लेकिन ठीक उसी समय उसे तारों की धुँधली रोशनी में वही नारी-बालिका-भिखारिन सामने से जाती दिखाई दी। उसके कपड़ों का खींच कर, 'भाग जाओ,' कह कर वह खुद भागी थी।

लेकिन इस प्रकार भागना मृणालिनी के स्वभाव की बात नहीं है। वह भागी नहीं। आँगन में खड़ा ही व्योमकेश चीख रहा था, यह देख कर अति मंथर गति से चल कर धीरे-धीरे वह अपनी कोठरी में चली गई। लेकिन तब तक व्योमकेश की चीख पुकार से घर के सब लोग जग गये थे। हृषीकेश ने सामने पुत्र को छटपटाते देख कर पूछा, 'क्या हुआ है ? इस तरह साँड़ की तरह क्यों हँकड़ रहा है रे ?'

आर्तनाद के साथ व्योमकेश ने कहा, 'मृणालिनी अभिसार करने गयी थी, मैंने उसे पकड़ा, इसीलिए उसने इतनी जोर से मेरी पीठ पर काट लिया कि···'

हृषीकेश के अपने पुत्र के कुचरित्र के बारे में मालूम न था। मृणालिनी को आँगन से जाते देख कर उन्हें पुत्र की बात का विश्वास हो गया। उस समय उन्होंने मृणालिनी से कुछ नहीं कहा। चुपचाप मृणालिनी के पीछे-पीछे चल कर उसकी कोठरी में आये।

| ६ |

हृषीकेश

मृणालिनी के पीछे-पीछे उसकी कोठरी में जाकर हृषीकेश बोले, 'मृणालिनी ! तुम्हारा क्या ऐसा ही चरित्र है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कैसा चरित्र, मेरा ?'

'तुम किसकी कन्या हो, कैसा चरित्र है, मैं कुछ नहीं जानता। मात्र गुरु के आदेश से तुम्हें मैंने अपने घर में रहने का स्थान दिया है। तुम मेरी बेटी मणिमालिनी के साथ एक ही बिछावन पर सोती हो। पर तुममें यह कुलटा-वृत्ति क्यों है ?'

'मुझे जो कुलटा कहे वह परम झूठा है।'

'क्रोध से हृषीकेश के ओंठ फड़फड़ाने लगे। बोले, 'पापिनि ! मेरा अन्न खाये गी और मुझे ही गन्दी बातें कहेगी ? तू अभी मेरे घर से निकल जा, चली जा। बहुत होगा, माधवाचार्य नाराज हो जायँगे। लेकिन उनके डर से मैं अपने घर में काली नागिन नहीं पालूँगा।'

'ठीक है, कल सबेरे आप मुझे यहाँ नहीं देखेंगे।'

हृषीकेश सोचते थे कि उनके घर में स्थान न पाने से मृणालिनी आश्रयहीन हो जायगी। तब ऐसा उत्तर वह कदापि न देती। लेकिन मृणालिनी के मन में आश्रय-हीनता की आशंका का तनिक भी डर न देख कर वे समझे कि मृणालिनी ने अपने प्रेमी के घर में आश्रय पाने के हौसले पर ऐसा उत्तर दिया है। यह सुन कर और ऐसा सोच कर हृषीकेश का कोप और क्रोध और बढ़ गया। बड़ी तेजी से उन्होंने कहा, 'कल सबेरे क्यों, अभी ही निकल जा !'

'जैसी आज्ञा ! मैं सखी मणिमालिनी से विदा ले कर इसी समय चली जाती हूँ।'

कह कर एक झटके से मृणालिनी उठ खड़ी हुई।

तब हृषीकेश बोले, 'माणिमालिनी से तुम जैसी कुलटा क्यों मिलेगी ?'

अब मृणालिनी की आँखों से आँसू झरने लगे। बोली, 'तो ऐसा ही सही। मैं कुछ ले कर नहीं आई थी, इसलिए कुछ ले कर भी नहीं जाऊँगी। यही जो पहने हूँ, उसे ही ले कर जा रही हूँ। आप को प्रणाम !'

कहती हुई मृणालिनी झटपट कोठरी से बाहर निकल गई।

व्योमकेश की चीख-पुकार और आर्त्तनाद से घर के सब लोगों की तरह मणि-मालिनी भी जाग गई थी। मृणालिनी के पीछे-पीछे अपने पिता को उसकी कोठरी में जाते देख कर वह रुक कर अपने भाई से बातें करने लगी थी और अपने भाई के कुचरित्र से परिचित होने के कारण उसे ही भला-बुरा कह कर धिक्कार रही थी। अब वह भाई को तिरस्कृत कर के लौटी तब आँगन से हो कर तेजी से बाहर जाती हुई मृणालिनी से उसकी भेंट हुई। उसने पूछा, 'सखी, इतनी रात को इस तरह कहाँ चली जा रही हो ?'

'खसी मणि ! तुम चिरायु हो, लेकिन तुम मुझसे बातें मत करो। तुम्हारे पिता ने मना किया है।'

'सखी ! यह सब क्या कह रही हो ? तुम रो क्यों रही हो ? सर्वनाश ! पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, पिता जी ने क्या कहने की जगह क्या कह दिया ! सखी, लौट आओ, क्रोध मत करो।'

लेकिन मणिमालिनी को नहीं लौटा सकी। पर्वत शिखर से गिरे शिलाखण्ड की तरह दनदनाती अभिमानिनी साध्वी मृणालिनी चली गई। तब बहुत चिन्तित हो कर मणिमालिनी भाग कर पिता के पास आई।

मृणालिनी घर से बाहर आ चुकी थी। बाहर आ कर उसने देखा कि पहले के बताए स्थान पर गिरिजाया खड़ी है। उसे देख कर मृणालिनी ने कहा, 'तुम अभी तक क्यों खड़ी हो ?'

'मैंने तुमसे भागने को कहा था। तुम्हारे लिए ही खड़ी हूँ।'

'क्या तुमने उस दुष्ट ब्राह्मण की पीठ पर काटा था ?'

'तो इसमें हानि क्या है ? एक लंपट ब्राह्मण ही तो है, गाय तो नहीं है ?'

'लेकिन मैंने तो सुना था, तुम गाते हुए चली गई थीं।'

'नहीं, जाते-जाते तुम लोगों की बातचीत सुन कर लौट आई थी। देखते ही पहचान गई कि एक दिन इसी दुष्ट ने मुझे भी 'काली चींटी' कह कर छेड़-छाड़ की थी। उस दिन मैं डंक नहीं मार सकी थी। आज अवसर पा कर ब्राह्मण का ऋण चुका दिया। बोलो, अब तुम कहाँ जाओगी ?'

'क्या तुम्हारे घर-द्वार है ?'

'है, पत्तों की एक झोपड़ी।'

'वहाँ और कौन रहता है ?'

'सिर्फ एक बुढ़िया। मैं उसे, आई कहती हूँ।'

'तो चलो, तुम्हारे ही घर चली चलूँगी।'

गिरिजाया के पीछे-पीछे मृणालिनी चल पड़ी। चलते-चलते गिरिजाया ने कहा, 'किन्तु वह तो झोपड़ी है, उसमें तुम कितने दिनों रह सकोगी ?'

'कल सबेरे कहीं और चली जाऊँगी।'

'कहाँ, मथुरा ?'

'मथुरा में भी मेरे लिए जगह नहीं है।'

'तब फिर कहाँ ?'

'यमराज के यहाँ।'

इसके बाद थोड़ी देर तक दोनों ही चुप रहीं। तब मृणालिनी बोली, 'क्या तुम्हें भी इस बात पर विश्वास होता है ?'

'विश्वास क्यों न होगा ? वह स्थान तो है ही। जब इच्छा हो तभी जाया जा सकता है। लेकिन इस समय एक जगह क्यों नहीं जातीं ?'

'कहाँ ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नवद्वीप ।'

'गिरीजाया ! क्या तुम भिखारिन के रूप में आई मायाविनी हो ? तुमसे मैं कोई बात न छिपाऊँगी । क्योंकि तुम मेरी हितैषिणी हो । मैंने नवद्वीप जाने का ही निश्चय किया है ।'

'क्या अकेली जाओगी ?'

'नहीं तो साथी कहाँ पाऊँगी ?'

उत्तर में गिरिजाया गाने लगी—

'मेघ दरगानें हाय, चातकिनी धाय रे ।
संग जानी के के तोरा आय आय रे ।।
मेघे ते बिजली हाँसी आमि बड़ो भालोवासी ।
जे जाबी से जाबी तोरा, गिरिजाया जाय रे ।।'

मृणालिनी ने समझ कर पूछा, 'यह कैसा रहस्य है गिरिजाया ।'

'मैं चलूँगी ।'

'सचमुच ।'

'हाँ, सचमुच मैं चलूँगी ।

'लेकिन क्यों ?'

'मेरे लिए सब जगह एक जैसी है । राजधानी में भिक्षा अधिक मिलेगी ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा भाग

१

गौड़ेश्वर

खूब विस्तृत सभा-मण्डप में नवद्वीपोज्ज्वलकारी राजाधिराज श्रीमान गौड़ेश्वर विराज रहे हैं। सफेद पत्थर की ऊँची वेदी पर रत्न-जड़ित सिंहासन पर रत्न-जड़ित छत्र के नीचे बूढ़े राजा बैठे हैं। सिर पर सोने के कुमकुमे तथा विचित्र बेल-बूटे से कढ़ा सफेद चँदवा शोभा बढ़ा रहा है। एक ओर कुशासन पर होम की विभूति से विभूषित कई ब्राह्मण सभापण्डित को घेर कर बैठे हैं। जिस आसन पर एक दिन हलायुध बैठे थे, उस आसन पर इस समय एक चालाक का अधिकार है। दूसरी ओर महामत्य धर्माधिकार को आगे कर मुख्य-मुख्य राजपुरुष बैठे हैं। अन्य सामन्त आदि भी सभी यथास्थान बैठे हैं। प्रतिहार आवाज देकर सभा को असावधान होने से बचाए हुए है। सब से अलग एक आसन पर कुशासन मात्र बिछा कर पण्डित माधवाचार्य बैठे हैं।

राजसभा का नियमित कामकाज समाप्त होने पर सभाभंग की तैयारी हुई। तब माधवचार्य ने राजा को सम्बोधित करके कहा, 'महाराज ! ब्राह्मण की वाचालता के लिए क्षमा कीजिएगा। आप राजनीति-प्रवीण है। इस समय भू-मंडल में जितने भी राजा हैं। उनमें आप ही सबसे अधिक बहुदर्शी, प्रजापालक और आजन्म राजा हैं। आप जानते ही हैं कि शत्रुहनन राजा का प्रथम और प्रधान कार्य है। आप ने प्रबल शत्रु के दमन का क्या उपाय किया है ?'

वृद्ध राजा सब बातें सुन न सके। अतः पूछा, 'आप क्या आज्ञा करते हैं ?'

माधवाचार्य अपनी बात दुहराते इसके पहले ही धर्माधिकार पशुपति ने कहना शुरू किया, 'महाराजाधिराज ! ये माधवाचार्य पूछना चाहते हैं कि राज-शत्रु के दमन के लिए क्या उपाय किया गया है ? बंगेश्वर का कोई भी शत्रु अब तक नहीं बचा है, फिर भी अपना आशय आचार्य ने प्रकट नहीं किया, वह अच्छी तरह खोल कर कहें।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब माधवाचार्य ने बहुत ऊँचे स्वर में कहा, 'महाराज, तुर्कों ने आर्यावर्त को लगभग पूरा ही अपने अधिकार में कर लिया है। इस समय उन सबने मगध जीत कर गौड़ राज्य पर आक्रमण करने की तेयारी की है।'

इस बार राजा पूरी बात सुन सके। बोले, 'तुर्कों की बात कह रहे हैं! क्या तुर्क लोग आये हैं?'

'ईश्वर ही रक्षा कर रहे हैं। अभी तक वे यहाँ नहीं पहुँचे हैं। लेकिन उनके आने पर किस तरह आप उन्हें दूर करेंगे?'

'मैं क्या करूँ? मैं क्या करूँ? मेरा यह वृद्ध शरीर—मैं अब युद्ध नहीं कर सकता। अब तो बस गंगालाभ होना ही बाकी है। अगर तुर्क आते हैं तो आवें! मैं क्या करूँ?'

राजा की बात सुन कर सभी चुप रह गये। केवल महासामन्त के म्यान की तलवार बिना कारण ही झंकार कर उठी। सुनने वाले लोगों में से अधिकांश पर किसी प्रकार का कोई भाव प्रकट नहीं हुआ। माधवाचार्य की आँखों से एक बूँद आँसू टपक पड़ा।

इस चुपी के बाद सभा-पण्डित दामोदर ही सबसे पहले बोले, 'आचार्य! आप क्या दुखी हो गये? जैसी राजाज्ञा हुई, वह शास्त्र-संगत है। शास्त्र में यह ऋषिवाक्य लिखा है कि तुर्कों का इस देश पर अधिकार होगा। शास्त्र का लिखा अवश्य ही होकर रहेगा। किसमें इतनी शक्ति व सामर्थ्य है कि इसे टाल सके। फिर जो होना निश्चित है, इसके लिए युद्ध की तैयारी व्यर्थ है।'

माधवाचार्य बोले, 'अच्छा सभा-पण्डित महोदय, एक बात पूछता हूँ, आपने ऐसी उक्ति किस शास्त्र में देखी है?'

दामोदर ने कहा, 'विष्णु पुराण में है...'

'तो विष्णु पुराण लाने की आज्ञा दीजिए और दिखाइए कि यह कहाँ लिखा है?'

'मुझे क्या इतना भुलक्कड़ समझते हैं? अच्छा, याद कीजिए, मनु में यही बात है या नहीं?'

'गौड़ेश्वर के सभा-पंडित क्या मानव—धर्म-शास्त्र में भी प्रवीण नहीं है?'

'कैसी आफत है! आप ने मुझे परेशान कर दिया। आप के सामने तो सरस्वती भी भूलती हैं, मैं भला क्या हूँ? आप को ग्रन्थ का नाम ही न याद आएगा, लेकिन कवितांओं को तो याद कीजिए।'

'गौड़ेश्वर के सभा-पंडित ने संभव है अनुष्टुप छंद में किसी कविता की रचना की होगी। लेकिन मैं मुक्त-कंठ से कहता हूँ—तुर्कों द्वारा जाति पर विजय की बातें कहीं भी किसी शास्त्र में नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्या आप सर्वशास्त्रविद हैं ?'

'यदि आप से इसके विरुद्ध हो सके तो प्रणाम दीजिए।'

तभी सभा-पंडित के एक पार्षद ने कहा, 'मैं देता हूँ। शास्त्र में आत्मश्लाघा वर्जित है। जो आत्मश्लाघा करता है वह यदि पंडित है तो फिर मूर्ख कौन है ?'

'तीन प्रकार के जन मूर्ख होते हैं।—एक जो आत्मरक्षा न कर सके, दूसरा वह जो यत्नहीनता की दुहाई दे, तीसरा वह जो आत्मबुद्धि के अतीत विषय में कुछ कहे—बस वही मूर्ख है। आप तो तीनों प्रकार के हैं।'

सभा-पंडित के अन्य पार्षद-गण सिर झुका कर बैठ गये।

तब पशुपति बोले, 'यवनों के आने पर हम लोग युद्ध करेंगे।'

माधवाचार्य ने कहा, 'साधुवाद ! आप ने अपने यश के अनुकूल ही बात कही है। ईश्वर आप का कल्याण करें। मुझे सिर्फ यही पूछना है कि यदि युद्ध ही अन्तिम अभिप्राय है, तब फिर उसके लिए क्या प्रबन्ध किया गया ?'

'इस प्रकार की मंत्रणा एकान्त में होनी चाहिए, इस सभास्थल में इस प्रकार प्रकट रूप में नहीं। लेकिन जो घोड़े, पैदल और नाविक लोग संग्रह किये जा रहे हैं, उसे आप कुछ दिनों इस नगरी में घूम-फिर कर समझ लेंगे।'

'बहुत कुछ तो जान गया हूँ।'

'तब ऐसा प्रस्ताव क्यों कर रहे हैं ?'

'प्रस्ताव का विशेष तात्पर्य यह है कि इस समय यहाँ एक वीर पुरुष आये हुए हैं। आप लोग मगध के युवराज हेमचन्द्र की वीरता की ख्याति सुन ही चुके होंगे।'

'खूब सुना है। यह भी सुना है कि वे आप के प्रिय शिष्य हैं। क्या आप बता सकते हैं कि इतने वीर पुरुष के रहते मगधराज्य शत्रु के हाथों में कैसे चला गया ?'

'इसलिए कि यवन-आक्रमण के समय युवराज विदेश में थे।'

'क्या वे इस समय नवद्वीप में आये हैं ?'

'हाँ आये हैं। उनका राज्य-हरण करने वाले यवन इस देश में आ रहे हैं, अतः यहीं उनके साथ युद्ध कर के उन्हें दण्ड देने के लिए आये हैं। गौड़राज उनके साथ संधि स्थापना कर के शत्रु-हनन का प्रबन्ध करेंगे तो दोनों का ही भला होगा।'

'तो राजदूत आज ही से उनसे चर्चा प्रारंभ करेंगे, उनके निवास के लिए यथायोग्य प्रबंध होगा, संधि के विषय में चर्चा यथासमय होगी।'

तब राजाज्ञा से सभा भंग हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

|२|

कुसुम-निर्मिता

गंगातट पर राजपुरुषों के निमित्त बनी एक अट्टालिका में हेमचन्द्र का निवास निश्चित हुआ। माधवाचार्य के परामर्श से हेमचन्द्र ने उसी भव्य अट्टालिका में डेरा डाला।

नवद्वीप में जनार्दन नामक एक वृद्ध ब्राह्मण निवास करते थे। बुढ़ापे तथा कान से न सुनाई देने के कारण वे सब तरह से असमर्थ और निःसहाय थे। उनकी पत्नी भी वृद्धा और शक्तिहीना थीं। कुछ दिन हुए, उनकी पर्णकुटी आँधी के प्रबल झोंके में विनष्ट हो गई। तब से ही ये लोग आश्रय के अभाव में उसी भव्य अट्टालिका के एक छोटे से अंश में राजपुरुषों की अनुमति लेकर रहते थे।

अब यह सुन कर कि कोई राजपुत्र उस अट्टालिका में आकर निवास करेंगे, वे लोग अपने आश्रय के लिए दूसरे स्थान की खोज करने लगे। यह सुन कर हेमचन्द्र क्षुब्ध हुए। सोचा कि इतने बड़े भवन में एक ओर उनके रहने में कोई हानि नहीं है। ब्राह्मण भला क्यों निराश्रय हों? हेमचन्द्र ने दिग्विजय से कहा कि ब्राह्मण को वहीं रहने के लिए वह कहे। तब दिग्विजय ने मुस्करा कर कहा, 'मेरे जैसे नौकर से यह काम न होगा। ब्राह्मण देवता मेरी बात कान से नहीं सुनेंगे।'

सचमुच ब्राह्मण बहरे हैं और बहुतों की बातें नहीं सुन पाते। हेमचन्द्र ने समझा कि दिग्विजय के कहने का आशय है कि अभिमान के कारण ब्राह्मण नौकर की बात नहीं सुनेंगे। अतः वे स्वयं ही उनसे बातें करने गये। जाते ही उन्होंने ब्राह्मण को प्रणाम किया।

जनार्दन ने आशीर्वाद दे कर पूछा, 'तुम कौन हो?'

'मैं आप का सेवक हूँ।'

'क्या कहा? तुम्हारा नाम रामकृष्ण है?'

हेमचन्द्र समझ गये कि ब्राह्मण बहरा है। अतः संभव ऊँचे स्वर में बोले, 'मेरा नाम हेमचन्द्र है। मैं ब्राह्मणों का दास हूँ।'

'अच्छा, अच्छा, पहले अच्छी तरह सुन नहीं सका था। तुम्हारा नाम हनुमान-दास है!'

हेमचन्द्र ने सोचा कि नाम की बात बेकार है, काम की बात ही हो जाय। बोले, 'यह महल नवद्वीप के राजा का है, उन्होंने यह स्थान मुझे रहने को दिया है। सुना है कि मेरे यहाँ आने के कारण आप यह स्थान त्याग रहे हैं?'

'नहीं, अभी गंगास्नान के लिए नहीं गया। अब नहाने ही जा रहा हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'स्नान जब मन आये कीरएगा। मैं आप से यह अनुरोध करने आया हूँ कि आप यह घर न छोड़ें।'

'क्या, घर में भोजन न करूँ ? तुम्हारे घर में आज क्या है ? आज श्राद्ध है ?'

'अच्छा, खाने की व्यवस्था भी हो जायगी। अभी आप इस मकान में जैसे हैं वैसे ही बने रहें।'

'अच्छा, अच्छा, ब्राह्मण भोजन के साथ दक्षिणा तो होगी ही। इसके कहने की क्या जरुरत है ? तुम्हारा मकान कहाँ है ?'

हेमचन्द्र हार कर लौट रहे थे, तभी पीछे से किसी ने उनका दुपट्टा खींचा। हेमचन्द्र ने घूम कर देखा। देखते ही लगा कि उनके सामने कोई कुसुम-निर्मिता देवी प्रतिमा खड़ी है। फिर लगा कि प्रतिमा सजीव है। फिर लगा कि वह प्रतिमा नहीं, विधाता के निर्माण-कौशल की सीमा-स्वरुपिणी एक पूर्ण-यौवना तरुणी है।

पहले तो उसे देख कर हेमचन्द्र ठीक से समझ न सके कि वह बालिका है या तरुणी।

वीणा के झंकार जैसे शब्दों में सुन्दरी ने कहा, 'तुम मेरे दादा से क्या कह रहे थे ? तुम्हारी बातें भला उन्हें सुनाई क्यों पड़ने लगीं ?'

'हाँ, वे कुछ भी सुन नहीं सके। तुम कौन हो ?'

'मैं मनोरमा हूँ।'

'ये तुम्हारे दादा हैं ?'

'तुम दादा जी से क्या कह रहे थे ?'

'सुना कि वे इस घर को छोड़ कर और कहीं जाने की तैयारी कर रहे हैं। वही मैं मना करने आया था।'

'इस घर में कोई राजपुत्र आये हैं। हम लोगों को क्यों रहने देंगे ?'

'मैं ही वह राजपुत्र हूँ। मैं तुम लोगों से अनुरोध कर रहा हूँ कि तुम लोग यहीं रहो।'

'क्यों ?'

'मेरे पास इस 'क्यों' का कोई उत्तर नहीं है।'

वह तरुणी चुप हो गई।

तब हेमचन्द्र बोले, 'समझ लो कि यदि तुम्हारा भाई इस मकान में आकर रहता तो क्या तुम लोगों को हटा देता ?'

'तो क्या तुम मेरे भाई हो ?'

'अब समझो कि आज से ही तुम्हारा भाई हुआ।'

'समझी। लेकिन बहन समझ कर कभी मेरा तिरस्कार तो न करोगे ?'

मनोरमा की बातों से हेमचन्द्र थोड़ा विस्मित हुए। सोचा कि यह अलौकिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रूपराशि वाली बालिका कितनी सरल है ! या हो सकता है पागल हो ! बोले, 'मैं क्यों तिरस्कार करूँगा ?'

'यदि मुझसे कोई दोष हो जाय ?'

'दोष देख कर कौन तिरस्कार न करेगा ?'

मनोरमा उदास हो चुपचाप खड़ी रही। बोली, 'मैंने कभी भाई नहीं देखा। क्या भाई से भी लज्जा करनी चाहिए ?'

'नहीं।'

'तो मैं तुमसे लज्जा न करूँ ? तो क्या तुम मुझसे लज्जा करोगे ?'

हेमचन्द्र इस सरलता पर हँस पड़े। कहा, 'मैं अपनी बात तुम्हारे दादा को समझा तो न सका, इसका क्या उपाय है ?'

'मैं कहे देती हूँ।'

कह कर मनोरमा ने अत्यन्त मृदु व मीठे शब्दों में जनार्दन से हेमचन्द्र की बात कही। हेमचन्द्र यह देख कर चकित हुए कि मनोरमा की अति कोमल व धीरे से कही बात भी बहरे ब्राह्मण की समझ में पूरी आ गई।

अति प्रसन्न हो कर जनार्दन ने राजपुत्र को आशीर्वाद दिया और कहा, 'मनोरमा, ब्राह्मणी से कहो कि राजपुत्र तुम्हारे पौत्र हुए, आशीर्वाद दो।' कह कर जनार्दन स्वयं ही 'ब्राह्मणी ! ब्राह्मणी !' कह कर पुकारने लगे। उस समय ब्राह्मणी घर के दूसरी ओर कहीं काम में लगी थीं। ब्राह्मण की पुकार वह न सुन सकीं। तब ब्राह्मण ने असंतुष्ट हो कर कहा, 'ब्राह्मणी में यही तो बड़ा भारी दोष है कि कान से कम सुनती है ?'

३

नौका में

हेमचन्द्र उसी विशाल अट्टालिका में रहने लगे।

और मृणालिनी ?

सांध्य गगन की रक्तिम मेघमाला धीरे-धीरे कृष्णवर्णा हो गई। रात के गहरे अंधकार में गंगा का विशाल हृदय भी छिप गया। आकाश में तारे खिलने लगे। नदी के हृदय पर बहने वाली हवा ने तीव्रता ग्रहण की। बहुत से लोगों के सामूहिक कोलाहल की तरह लहरों का शोर बढ़ने लगा। मल्लाह नाव किनारे लगा कर रात्रि-विश्राम का उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम करने लगे। इसी समय अन्य नावों से अलग एक छोटी डोंगी एक ओर किनारे से लगी। उसके मल्लाह भोजनादि की व्यवस्था करने लगे।

छोटी डोंगी में सवारी के नाम पर सिर्फ दो जन हैं। दोनों ही स्त्रियाँ। एक मृणालिनी और एक गिरिजाया।

गिरिजाया ने मृणालिनी से कहा, 'चलो, आज का दिन तो बीता।'

मृणालिनी ने गहरी साँस खींची। कोई उत्तर न दिया।

गिरिजाया ने फिर कहा, 'कल का दिन भी बीतेगा, परसों का दिन भी बीते गा—क्यों बीते गा ?'

मृणालिनी ने तब भी कोई उत्तर न दिया। केवल एक ठण्डी साँस ली।

गिरिजाया ने कहा, 'यह क्या ? दिन-रात चिन्ता करने से भला क्या होगा ? यदि हम लोगों ने नवद्वीप आकर उचित नहीं किया, तो चलो, अब भी वापस लौट चलें।'

अब मृणालिनी बोली, 'फिर कहाँ, कहाँ जायँ ?'

'चलो, हृषीकेश के घर वापस चलें।'

'इससे अच्छा है कि गंगा में डूब मरूँ ?

'तब चलो, मथुरा चलें।'

'मैं तुम्हें बता चुकी हूँ कि वहाँ मेरे लिए जगह नहीं है। एक कुलटा की तरह जब रात में बाप के घर से चली आई हूँ, अब उसी घर में कौन सा मुँह ले कर जाऊँ गी ?'

'लेकिन तुम अपनी इच्छा से तो नहीं आईं, न किसी बुरे विचार से आई हो। तब फिर जाने में भला क्या आपत्ति है ?'

'इस बात पर अब कौन विश्वास करेगा ? जिस बाप के घर में मैं प्यार की पुतली थी, वहाँ अब तिरस्कृत होकर कैसे रहूँगी ?'

अंधकार के कारण गिरिजाया यह न देख सकी कि मृणालिनी की आँखें बरस रही हैं। गिरिजाया ने पूछा, 'तब कहाँ चलोगी ?'

'जहाँ के लिए निकली हूँ।'

'यह तो सुख की यात्रा है। फिर तुम इतनी अनमनी क्यों हो रही हो ? जिसे देख कर प्रेम बढ़ता है, उसे ही देखने जा रही हो, इससे बढ़ कर और क्या सुख हो सकता है ?'

'नदिया में मुझसे हेमचन्द्र से भेंट न हो सकेगी।'

'क्यों, क्या वे वहाँ नहीं हैं ?'

'वहीं हैं। लेकिन तुम तो जानती ही हो कि उन्होंने एक वर्ष मुझसे न मिलने का व्रत लिया है। मैं उनके संकल्प को क्यों तोड़ूँ ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिजाया चुप हो रही। मृणालिनी ने फिर कहा, 'और फिर क्या कह कर उनके सामने खड़ी हो सकूँगी ! क्या कहूँगी कि हृषीकेश पर नाराज होकर आई हूँ या कहूँगी कि हृषीकेश ने मुझे कुलटा कह कर अपने घर से निकाल दिया है ?'

गिरिजाया कुछ देर चुपचाप सोचती रही। फिर पूछा, 'तब क्या नदिया में तुमसे और हेमचन्द्र से भेंट न हो सकेगी ?'

'नहीं।'

'तब फिर क्यों जाती हो ?'

'वे मुझे न देख सकेंगे पर मैं तो उन्हें देख सकूँगी। उन्हीं को देखने तो जा रही हूँ न !'

गिरिजाया प्रयत्न कर के भी हँसी न रोक सकी। उसने अपने को सम्हालने के लिए कहा, 'तब मैं गीत गाऊँ—

चरण तले दिनु हे श्याम पराण-रतन।
दिबोना तुम्हारे नाथ मिछार यौवन॥
ए रतन समतुल, इहा तुमी दिबे मूल।
दिवानिशि मोरे नाथ दिबे दरशन॥

—तुम तो उन्हें देख कर जी उठो गी। मैं तुम्हारी दासी बनी हूँ, इससे मेरा पेट तो भरेगा नहीं, मैं क्या खाकर जिऊँगी ?'

मृणालिनी ने कहा, 'मैं थोड़ा बहुत शिल्प-कर्म जानती हूँ। माला गूँथना जानती हूँ, चित्र बनाना जानती हूँ, कपड़े पर फूल काढ़ना जानती हूँ, यही सब करूँगी और तुम वह सब बाजार में बेच आना।'

'और मैं घर-घर घूम-घूम कर गाना भी गाऊँगी ? 'मृणाल अधमे' गाऊँ ?'

मृणालिनी ने आधी हँसी और आधे क्रोध के भाव से गिरिजाया की ओर ताका।

गिरिजाया बोली, 'इस तरह ताकोगी तो मैं गीत गाने लगूँगी।' कह कर उसने गाना शुरू किया—

'साधेर तरणी आमार के दिलो तरंगे।
के आछे काण्डारी हेन के जाइबे संगे।'

मृणालिनी ने पूछा, "इतना डर था तो अकेली क्यों आई ?'

गिरिजाया 'आगे न जाना' कह कर गाने लगी—

'भासल तरी सकाल बेला, भाविलाम ए जलखेला,
मधुर बहिबो वायु भेसे धाव रंगे।
एखन-गगने गरजे घन, बहे खर समीरण,
कूल त्यजि एलाम केनो मरिते अतंके ?'

मृणालिनी बोली, 'तो किनारे लौट क्यों नहीं जाती ?'

गिरिजाया फिर गाने लगी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मने करि कूले फिरि, वाहि तरी धीरि, धीरि,
कुलेते कण्टक तरु वेष्टित भुजंगे ।'

मृणालिनी ने कहा, 'तब डूब क्यों नहीं मरती ?'

'मर भी जाऊँ तो कोई हानि नहीं है, किन्तु—'कह कर वह फिर गाने लगी—

'याहारे काण्डारी करि, साजाइया दिनु तरी,
से कभूना दिल पद, तरणीर अंगे ।'

मृणालिनी बोली, 'गिरिजाया, यह किस अप्रेमी का गाना है ?'

'क्यों ?'

'मैं होती तो नाव डुबा देती ।'

'शोक से ?'

'हाँ, शोक से ।'

'तब तुमने जरूर पानी के भीतर रत्न देखा है ।'

| ४ |

खिड़की पर

हेमचन्द्र ने कुछ दिन उस अट्टालिका में निवास किया । जनार्दन से लगभग रोज ही भेंट होती थी । लेकिन ब्राह्मण के बहिरेपन के कारण सिर्फ इशारे से बातें होती । मनोरमा से भी बराबर भेंट होती, मनोरमा कभी दीनयाचिका की तरह उससे बातें करती, कभी बिना कुछ बोले दूसरी तरफ चली जाती । वास्तव में वह अभी तक मनोरमा की प्रकृति समझ ही नहीं पाया, बल्कि वह क्रमशः अधिक विस्मयजनक जान पड़ने लगी । पहले तो उसकी उम्र का ठीक अंदाज लगाना ही कठिन है, यों वह अभी बालिका ही जान पड़ती थी, पर कभी-कभी बहुत गंभीर भी दिखाई देती । क्या मनोरमा कुमारी है ?

एक दिन बातचीत के बीच बहाने से हेमचन्द्र ने पूछा, 'क्यों मनोरमा, तुम्हारी ससुराल कहाँ है ?'

मनोरमा बोली, 'मैं कह नहीं सकती ।'

फिर एक दिन पूछा, 'मनोरमा, तुम कितने वर्षों की हुई ?'

मनोरमा ने फिर वही जवाब दिया, 'मैं कह नहीं सकती ।'

माधवाचार्य हेमचन्द्र को उस अट्टालिका में बसा कर देश-भ्रमण के लिए चले गये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उनका तात्पर्य था कि समय पर गौड़ देश के अधीन सभी राजे, अपनी-अपनी सेना के साथ इकट्ठे हो कर गौड़ेश्वर की सहायता करें। इसके लिए उनमें प्रेरणा भरी जाय। हेमचन्द्र नवद्वीप में उनकी प्रतीक्षा करते रहे। लेकिन बिना किसी काम-काज के दिन बिताना उनके लिए कठिन हो रहा था। हेमचन्द्र व्याकुल हो उठे। बार-बार मन में यही इच्छा होती कि दिग्विजय को घर में रख कर स्वयं घोड़े पर एक बार गौड़ चले जायँ। लेकिन वहाँ मृणालिनी से भेंट होने पर उनकी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी। फिर मृणालिनी से मिले बिना गौड़ जाने का कोई प्रयोजन नहीं। यही सब सोच-विचार कर हेमचन्द्र ने गौड़ की यात्रा तो न की लेकिन दिन-रात मृणालिनी की ही चिन्ता में दिल बेचैन रहता। एक दिन तीसरे पहर वे अपने कमरे में पलँग पर लेटे मृणालिनी की ही चिन्ता में व्यस्त थे। एक प्रकार से चिन्ता से भी हृदय को सुख मिल रहा था। खुली खिड़की की राह हेमचन्द्र प्रकृति की शोभा भी देख रहे थे। नवीन शरत् का उदय था। चाँदनी रात, निर्मल आसमान, खूब ढेर से तारे, कहीं-कहीं सफेद मेघों की थोड़ी सी झलक। खिड़की से ही, पास ही भागीरथी दीख पड़ती थी। भागीरथी का विस्तृत वक्ष, बहुत दूर तक सर्पिणी की भाँति टेढ़ी-मेढ़ी धारा, चाँदनी की छाया में तेज तरंगें, नए जल के आगमन से आल्हादिनी। नए जल का नव-कल्लोल भी सुनाई पड़ता था। खिड़की की राह से हवा आ रही थी। गंगा की तरंगों से उड़ते छींटों के स्पर्श से शीतल, रात के आगमन से खिले फूलों के स्पर्श से सुगंधित, चाँदनी की चमक से वृक्षों के पत्तों को धोती हुई, नदी के किनारे खड़े कास के फूलों को झकझोरती हुई हवा खिड़की की राह से घुस रही थी। यह सब देख कर हेमचन्द्र बड़े प्रसन्न थे।

अचानक खिड़की पर एक अंधेरा धब्बा आया। चाँदनी की राह में रूकावट पड़ी हेमचन्द्र ने खिड़की के पास किसी आदमी का सिर देखा। खिड़की जमीन से कुछ ऊँची थी। किसी के हाथ-पैर दिखाई न दिए। सिर्फ एक चेहरा दिखाई दिया। चेहरा भी मूँछ दाढ़ी से खूब भरा हुआ। सिर पर पगड़ी। उस समय खुली खिड़की पर दाढ़ीदार पगड़ी वाला आदमी का सिर देख कर हेमचन्द्र ने पलँग से झटपट उछल कर अपनी तेज तलवार हाथ में उठा ली।

तलवार उठा कर जब हेमचन्द्र ने फिर उधर देखा तो पाया कि अब खिड़की पर वह सिर न था।

हेमचन्द्र तलवार हाथ में लिये; दरवाजा खोल कर कमरे से बाहर आए। खिड़की के नीचे गए, पर वहाँ कोई न था।

घर में चारो ओर, गंगा किनारे, सब ओर हेमचन्द्र ने देखा पर कहीं कोई दिखाई न पड़ा।

हेमचन्द्र वापस आये। कमरे में आकर शरीर पर पिता के दिए योद्धा-वेश को सिर से पाँव तक पहन लिया। कुसमय में उठे बादलों की तरह उनके चेहरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पर अंधकार छा गया। फिर वह अकेले ही उस गम्भीर रात में, शस्त्रों से सुसज्जित होकर बाहर निकले।

खिड़की पर आदमी का सिर देख कर वह समझ गये कि बंगाल में तुर्क आ गये।

| ५ |

अंधेरे में

वीर राजपुत्र हेमचन्द्र मुसलमानों की खोज में निकले। बाघ जैसे शिकार की छाया देखते ही तेजी से दौड़ता है, वैसे ही हेमचन्द्र भी तुर्क की छाया देख कर वेग से दौड़े। लेकिन तुर्क से भेंट कहाँ हो, इसका कोई ठिकाना नहीं।

हेमचन्द्र ने एक ही तुर्क देखा था, या तुर्क की छाया देखी थी? उनके मन में हुआ कि शायद तुर्क-सेना नगर के पास पहुँच कर कहीं छिपी है और यह आदमी तुर्क सेना का गुप्तचर या पूर्वचर है। अगर तुर्क सेना ही आई है तो अकेले ही उससे युद्ध करना संभव नहीं। लेकिन जो भी हो, असली बात का पता लगाए बिना हेमचन्द्र चैन से बैठन वाले न थे। जिस महान् उद्देश्य के लिए उन्होंने मृणालिनी को छोड़ रखा है, आज की रात सो कर, उस काम की उपेक्षा करना उनके लिए संभव नहीं। विशेषकर यवन वध में हेमचन्द्र को आंतरिक सुख मिलेगा। पगड़ी वाला सिर देख कर ही यह इच्छा प्रबल रूप से जाग उठी, तब उनके शांत बैठने की संभावना कहाँ? इस लिए जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हेमचन्द्र राजपथ पर चले।

अट्टालिका से राजपथ कुछ दूर है। जिस रास्ते से अट्टालिका से राजपथ जाना पड़ता है, वह थोडे से आदमियों के पैदल चलने का ग्रामपथ-मात्र है। तब हेमचन्द्र उसी राह से चले। उसी रास्ते के किनारे सीढ़ियों से सुशोभित एक खूब चौड़ी बावली थी। उस बावली के किनारे पर मौलश्री, शाल, अशोक, चम्पा, कदम्ब, पीपल, बट, आम, जामुन आदि के पेड़ थे। पेड़ योजना बद्ध, एक कतार में न थे। कई वृक्षों ने आपस में एक दूसरे की शाखाओं को उलझा कर बावली के किनारे घोर अंधकार कर रखा था। दिन में भी वहाँ अंधेरा ही रहता था। इसी लिए यह कहा जाता था कि यहाँ पर भूत निवास करते हैं। यह शक लोगों के मन में इतना दृढ़ हो चुका था कि उधर कोई कभी जाता ही न था। अगर कभी कोई कार्यवश उधर जाता भी तो कभी अकेले न जाता। रात में तो कोई हरगिज न जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौराणिक धर्म के एकाधिपत्य के समय हेमचन्द्र भूतयोनि के संबंध में विश्वासी रहे होंगे, इसमें संदेह नहीं। किन्तु प्रेत के संबंध में विश्वासी होने पर भी वे अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उस रास्ते जाने में हिचकें, वे ऐसे डरपोक नहीं थे। इसलिए वे निःसंकोच तालाब के रास्ते चले गए। निःसंकोच थे पर कौतूहल-शून्य नहीं। अतः तालाब के चारो और उसके किनारे की ओर वे अच्छी तरह देखते हुए चले। वे सीढ़ी वाले रास्ते के पास पहुँचे। एकाएक चौंक पड़े। लोगों के विश्वास पर उनका भी मन दृढ़ हुआ। उन्हों ने देखा कि सबसे नीचे की सीढ़ी पर, पानी में पेर लटकाए, सफेद कपड़े पहने कोई बैठा है। दूर से वह स्त्री-मूर्ति जान पड़ी। सफेद कपड़े, बिना चोटी बँधे खुले बाल, कंधों व पीठ पर बालों की लट। दोनों बाँहों और मुखमण्डल को भी बालों से ढँके वह बैठी थी। उसे भी प्रेत समझ कर हेमचन्द्र चुप-चाप आगे बढ़ते जा रहे थे। लेकिन बार-बार मन में आता—शायद कोई मनुष्य ही है! लेकिन इतनी रात को यहाँ कौन आयेगा। शायद वह कोई तुर्क ही हो? इसी संदेह के कारण हेमचन्द्र वापस लौटे। निर्भय हो वे तालाब के किनारे उतरे, फिर सीढ़ियों से धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे। वह मूर्ति हेमचन्द्र की ओर घूमी। उसने अपने हाथों से चेहरे पर छाये बालों को हटाया। हेमचन्द्र ने उसका मुँह देखा। लेकिन वह प्रेतिनी नहीं, प्रेतिनी होती तो शायद हेमचन्द्र को इतना विस्मय न होता। पूछा, 'कौन मनोरमा? तुम इस समय यहाँ कहाँ?'

मनोरमा बोली, 'मैं तो यहाँ कई बार आती हूँ। पर तुम यहाँ कैसे आए?'

'आवश्यक काम है।'

'इतनी रात को कैसा काम?'

'सो फिर बताऊँगा गा, पर तुम इतनी रात को यहाँ कहाँ?'

'तुम्हारा यह वेष कैसा? हाथ में भाला, कमर में तलवार, तलवार में यह क्या चमक रहा है? क्या हीरा है? और माथे पर यह क्या है? इसमें भी चमक है? यह क्या है? क्या यही हीरा है? तुमने यह हीरा कहाँ पाया?'

'मेरे पास था।'

'फिर इतनी रात को इतने हीरे पहन कर तुम कहाँ जा रहे हो? चोर छीन लेंगे।'

'मुझसे चोर नहीं छीन सकते।'

'फिर भी, इतनी रात को इतने जेवरों की क्या जरूरत? क्या तुम विवाह करने जा रहे हो?

'तुम्हें क्या लग रहा है, मनोरमा?'

'लेकिन आदमी को मारने का हथियार ले कर भी कोई क्या विवाह करने जाता है? या क्या तुम युद्ध में जा रहे हो?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'किसके साथ युद्ध करूगा ? तुम यहाँ क्या कर रही हो ?'

'स्नान किया और हवा में बाल सुखा रही थी। यह देखो, बाल अभी भी गीले हैं।' कह कर मनोरमा ने गीले बालों को हेमचन्द्र के हाथ से छुलाया।

'इतनी रात को स्नान कैसा ?'

'मेरे शरीर में ज्वाला होती है।'

'तो गंगा-स्नान न करके यहाँ क्यों ?'

'यहाँ का पानी ज्यादा ठण्डा है।'

'तुम बराबर यहाँ आती हो ?'

'हाँ।'

'मैं तुम्हारा सम्बन्ध ठहरा रहा हूँ। तुम्हारा विवाह हो गा। विवाह हो जाय गा तो इस तरह कैसे आओगी ?'

'पहले विवाह तो हो।'

हेमचन्द्र हँस पड़े, 'तुझे लज्जा नहीं, मुँहजली ?'

'तिरस्कार क्यों करते हो ? तुमने तो कहा था कि कभी तिरस्कार न करोगे !'

'इसके लिए क्षमा करना। हाँ, क्या तुमने इधर से किसी को जाते देखा है ?'

'हाँ देखा है।'

'वह किस वेश में था।'

तुर्क के वेश में।'

हेमचन्द्र चकित हुए। बोले, 'यह क्या ? तुमने तुर्क को कैसे पहचाना ?'

'मैंने पहले भी तुर्क देखा है।'

'कहाँ, कैसे ?'

'कहीं देखा है। तुम क्या उसी तुर्क की खोज में जा रहे हो।'

'हाँ, वह किधर गया ?'

'क्यों ?'

'मैं उसे मारूँगा।'

'आदमी को मारने से क्या होगा ?'

'तुर्क हमारे शत्रु हैं।'

'तब एक के मारने से क्या तृप्ति होगी ?'

'मुझे जितने तुर्क दिखाई देंगे, सब को मारूँगा।'

'मार सकोगे ?'

'हाँ, मार सकूँगा।'

'तब सावधान, मेरे साथ आओ।'

हेमचन्द्र इधर-उधर करने लगा। यवन के युद्ध में वह बालिका पथ-प्रदर्शक !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा उसके मन का भाव समझ गई। बोली, 'मुझे बालिका समझ कर विश्वास नहीं करते न ?'

हेमचन्द्र ने गौर से मनोरमा की ओर देखा।

उसने विस्मय से सोचा—'क्या मनोरमा मानुषी है ?'

६

पशुपति

गौड़ देश के धर्माधिकारी पशुपति एक असाधारण व्यक्ति थे। वे दूसरे गौड़ेश्वर थे। राजा अविक बूढ़े हैं। बुढ़ापा की अधिकता की विवशता के कारण दूसरों पर आश्रित रहना उनके लिए आवश्यक था। अतः प्रधान अमात्य और धर्माधिकारी के हाथ में ही गौड़ राज्य का सारा भार अर्पित था। और अब तो धीरे-धीरे करके वैभव और ऐश्वर्य में पशुपति गौड़ेश्वर की बराबरी के आदमी हो चले थे।

पशुपति की उम्र होगी, यही पैंतिस साल। अति सुन्दर, दर्शनीय व्यक्तित्व। लम्बी देह, चौड़ी छाती, सभी अंग अनुपात से सुन्दर और सुगढ़। वर्ण तपे सोने जैसा, ललाट बहुत विस्तृत। नासिका लम्बी और ऊँची, आँख छोटी-छोटी पर असाधारण रूप से चमकदार। चेहरे पर ज्ञान की गंभीरता विराजती और गुण के उत्तम भाव की दीप्ति रहती। राजसभा में उनके जैसा सर्वाङ्ग-सुन्दर पुरुष और कोई न था। लोगों का कहना था कि गौड़ देश में वैसा प्रखाण्ड पंडित दूसरा नहीं।

पशुपति ब्राह्मण हैं, लेकिन कोई ठीक से नहीं जानता कि उनका जन्म-स्थान कहाँ है ! बस इतना भर लोगों को मालूम है कि उनके पिता शास्त्र-व्यवसायी गरीब ब्राह्मण थे। पशुपति अपनी ही विद्या-बुद्धि के प्रभाव से गौड़ राज के इतने उच्च पद पर प्रतिष्ठित हुए थे।

अपनी युवावस्था में काशी में पिता के पास रह कर पशुपति शास्त्र का अध्ययन करते थे। वहीं केशर नाम के एक बंगाली ब्राह्मण भी रहते थे। केशर की एक आठ वर्ष की कन्या थी, नाम था हेमवती। उसी से पशुपति का ब्याह हुआ था। पर किसी दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव के कारण विवाह की रात ही केशर अपनी कन्या को लेकर कहीं गायब हो गये। फिर उनका पता न चला। इस प्रकार पशुपति पत्नी सहवास से वंचित ही रहे। उन्होंने दूसरा विवाह भी नहीं किया। इस समय वे राजप्रसाद जैसी ऊँची अट्टा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लिका में रहते थे, पर स्त्री की आँखों की ज्योति के अभाव में वह ऊँची अट्टालिका आज तक अंधकारमय ही रही है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी अपने ऊँचे महल के एकान्त कमरे में रात को चिराग की रोशनी में पशुपति अकेली ही बैठे थे। उस कमरे के पिछवाड़े ही अमराई की ओर निकलने का एक गुप्त द्वार है। रात के सन्नाटे में किसी ने आ कर उसी दरवाजे पर खटखटाया। घर के भीतर से पशुपति ने द्वार खोला। एक व्यक्ति भीतर आया। वह मुसलमान है। हेमचन्द्र ने उसे ही अपनी खिड़की पर देखा था। पशुपति ने आगन्तुक को अलग आसन पर बैठा कर विश्वस्त परिचय-पत्र देखना चाहा। मुसलमान ने वही परिचय पत्र दिखाया भी।

पशुपति ने संस्कृत में कहा, 'समझा। आप तुर्क सेनापति के विश्वासपात्र हैं। क्या आप का नाम मुहम्मदअली है? अब आप सेनापति का संदेश कहिए।'

यवन ने भी संस्कृत में ही उत्तर दिया, लेकिन उसकी संस्कृत में भी तीन हिस्सा फारसी थी और एक हिस्सा संस्कृत। ऐसी संस्कृत भारत के किसी भाग के निवासी भी नहीं प्रयोग करते। वास्तव में यह मुहम्मद अली की अपने लिए ही बनाई संस्कृत भाषा थी। पशुपति को बहुत परिश्रम के बाद उसकी बात का अर्थ समझ में आया।

तुर्क ने कहा, 'खिलजी साहब का उद्देश्य आप को मालूम है। उनकी इच्छा है कि आप बिना लड़ाई लड़े ही गौड़ देश पर अधिकार करें। आप यह राज्य उन्हें किस प्रकार समर्पित करेंगे?'

पशुपति ने कहा, 'यह निश्चय रूप से मैं नहीं कह सकता कि यह राज्य मैं उन्हें समर्पित करूँगा या नहीं। देश-द्रोह महापाप है। मैं ऐसा क्यों करूँ?'

'अच्छी बात है। तब मैं चलता हूँ। लेकिन तब आपने खिलजी के पास दूत क्यों भेजा था?'

'यही जानने के लिए कि उनमें लड़ाई का कितना हौसला है।'

'वह तो मैं ही आपको बताए जाता हूँ। उन्हें लड़ाई में ही आनन्द आता है।'

'मनुष्ययुद्धे पशुयुद्धे च? हाथी की लड़ाई में भी कितना आनन्द है?'

तब मुहम्मदअली ने तनिक क्रोध के साथ कहा, 'गौड़ युद्ध के उद्देश्य से आना पशुयुद्ध में आने के समान ही है। मैं समझ गया, मजाक करने के लिए ही आपने सेनापति को दूत भेजने को कहा था। लेकिन हम लोग युद्ध करना जानते हैं, मजाक नहीं करते।'

यह कह कर मुहम्मदअली जाने को तैयार हुआ। तब पशुपति बोले 'जरा सा ठहरिये। और भी कुछ सुनते जाइये। मैं यवनों के हाथों यह राज्य सौंपने का पूर्ण विरोधी नहीं हूँ। इसके लिए पर्याप्त समर्थ भी हूँ। एक प्रकार से मैं ही गौड़ देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
राजा हूँ। वह बूढ़ा तो नाम मात्र का राजा है। लेकिन समुचित मूल्य न मिलने से मैं अपना राज्य आप लोगों को क्यों दूँगा ?'

'आप क्या मूल्य चाहते हैं ?'

'खिलजी क्या दे सकते हैं ?

'जो कुछ आप का है, सब आप का ही रहे गा। आप का जीवन, वैभव, ऐश्वर्य, पद सभी रहेगा।'

'तब मैंने पाया क्या ? यह सब तो अभी ही है। फिर किस लालच से मैं यह महापाप करूँ ?'

'हमसे मिल कर न रहने से यह सब कुछ न रहेगा। शायद लड़ाई करने से आप का जीवन, पद, ऐश्वर्य, कुछ न रह पायेगा।'

'यह तो लड़ाई लड़े बिना नहीं कहा जा सकता। हम लोगों को युद्ध के लिए बिल्कुल ही अनिच्छुक मत समझिए। खास कर मगध में विद्रोह की जो तैयारी हो रही हैं। गौड़ विजय की चेष्टा उन्हें अब कुछ दिनों के लिए छोड़ देनी पड़ेगी। यह सब मैं जानता हूँ। मेरी माँगी कीमत मुझे मिले या न मिले, लेकिन युद्ध करना यदि निश्चित होता है तो हम लोगों की तैयारी के लिए यही ठीक समय है। जब बिहार में विद्रोही सेना सज्जित होगी तब गौड़ेश्वर की सेना भी सज्जित होगी।'

'नुकसान क्या है ! चींटी के काटने के बाद मच्छर के काटे हाथी नहीं मरता। लेकिन मैं कह जाना चाहता हूँ कि आप बतावें, आप क्या कीमत चाहते हैं ?'

'सुनिए ! मैं ही इस समय वास्तविक गौड़ेश्वर हूँ। लेकिन अभी लोग मुझे गौड़ेश्वर नहीं कहते। मैं अपने को राजा कहवाना चाहता हूँ। चाहता हूँ कि सेनवंश का लोप हो और पशुपति गौड़ेश्वर हों।'

'तब आप हमारा क्या उपकार करेंगे ? हम लोगों को क्या देंगे ?'

'राज-कर ! तुर्कों के अधीन मैं करदाता राजा होऊँगा।'

'अच्छा, अगर आप ही असली गौड़ेश्वर हैं, अगर राजा आप की मुट्ठी में ही है, तब हमसे बातचीत करने की आप को भला क्या जरूरत है ? हम लोगों की मदद की भी आपको क्या जरूरत है ? आप हमें कर भी क्यों देंगे ?'

'यह बात मैं बहुत साफ-साफ बता दूँगा। इसमें कोई कपट न करूँगा। पहले तो सेनराज हमारे प्रभू हैं, उम्र में बहुत बूढ़े हैं। मुझ पर विश्वास व स्नेह रखते हैं। अगर मैं अपनी शक्ति से उन्हें पदच्युत करूँ तो लोकनिन्दा बहुत होगी। आप लोग आ कर युद्ध किए बिना ही, मेरी मदद से राजधानी में प्रवेश कर के उन्हें गद्दी से उतार कर मुझे बिठा देंगे, तो निन्दा का अवसर न आयेगा। दूसरे, अनिधकारी के हाथ में राज्य आने पर विद्रोह की पूरी संभावना रहती है। तब आप लोगों की मदद से मैं विद्रोह को बड़ी आसानी से दबा सकूँगा। तीसरे, मेरे खुद राजा बनने से, इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सेनराज के साथ आप लोगों का जो संबंध है, वही मेरे साथ भी रहेगा। आप लोगों के साथ युद्ध की जो संभावना है, उसके लिए मैं तैयार हूँ। लेकिन लड़ाई में हार और जीत दोनों की ही सम्भावना रहती है। जीतने से भी मुझे कोई नया लाभ न होगा, लेकिन हार से तो हानि ही हानि है। फिर आप लोगों से मेल कर के राज्य पाने से वह भी आशंका नहीं रहेगी। खासकर, हर समय लड़ाई की तैयारी में ही व्यस्त रहने से नया राज्य ठीक से नहीं चलता।'

'आप ने यह सब एक राजनीतिक की तरह सोचा है। आपकी बात से मुझे पूरा विश्वास हुआ है। मैं भी इसी तरह साफ-साफ ढंग से खिलजी साहब का उद्देश्य आपको बताऊँगा। यह बात अपनी जगह पर सच है कि इस समय वे बहुत सी झंझटों में फँसे हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में एकमात्र यवन राजा ही एकेश्वर होंगे, दूसरे राजाओं का नाम भी हम रहने न देंगे। लेकिन हम आपको गौड़राज्य का शासनकर्ता बना देंगे। जैसे दिल्ली में मुहम्मद गोरी की ओर से शासनकर्ता और प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन है, जैसे पूर्व देश में कुतुबुद्दीन के प्रतिनिधि बख्तियार खिलजी हैं, वैसे ही आप भी गौड़ में बख्तियार के प्रतिनिधि होंगे। आप सोच देखिए, आप इस पर राजी हैं या नहीं ?'

'मैं इस पर राजी हूँ।'

'अच्छा, लेकिन मुझे एक बात और पूछनी है। आप जो कुछ स्वीकार कर रहे हैं, उसके साधन की क्षमता भी आप में है ?'

'मेरी आज्ञा के बिना एक भी पैदल सैनिक युद्ध में शामिल न होगा। राजकोष भी मेरे अनुचरों के ही हाथों में हैं। मेरी आज्ञा बिना युद्ध की तैयारी के लिए एक पैसा भी खर्च न होगा। सिर्फ पाँच आदमियों को साथ ले कर खिजली को राजपुर में प्रवेश करने को कहो। कोई पूछेगा भी नहीं कि तुम लोग कौन हो ?'

'अब एक बात और रही। इसी राज्य में आज कल तुर्कों का परम-शत्रु हेमचन्द्र रहता है। आज रात को ही उसका सिर यवन-छावनी में भेजना होगा।'

'तो आप लोग ही आ कर उसका सिर काटिएगा। मैं एक शरणागत की हत्या का पाप अपने ऊपर कैसे ले लूँ ?'

'हम लोगों से यह न हो सकेगा। तुर्कों के आने की बात सुनते ही वह नगर छोड़ कर भाग जायेगा, यह लगभग निश्चित है। और आज वह भी निश्चित है, अतः आज ही आदमी भेज कर उसका सिर कटवा लीजिए।'

'अच्छा यह भी स्वीकार किया।'

'अब हम संतुष्ट हुए। अब मैं आप का जवाब लेकर जाता हूँ।'

'जैसी इच्छा। लेकिन मुझे भी एक बात पूछनी है।'

'सो क्या ? कहिए !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'मैं तो यह राज्य आप लोगों को सौंप ही दूंगा। लेकिन बाद में अगर आप लोग मुझे निकाल बाहर करें ?'

'हमलोग आप की ही बात के सहारे और भरोसे पर थोड़ी सी सेना ले कर दूत का परिचय देते हुए नगर में प्रवेश करेंगे। इस पर भी यदि मैं अपने दिए गए वचन के अनुसार काम न करूँ, तो आप बड़ी आसानी से हम लोगों को निकाल दे सकते हैं।'

'और अगर आप ज्यादा सेना ले कर आये तब ?'

'तब लड़ाई कीजिएगा।'

इतना कह कर मुहम्मदअली विदा हुआ।

७

गुप्तचर

मुहम्मदअली के बाहर जाते तथा उसके आँखों की ओट होते ही एक और आदमी ने गुप्त द्वार के पास पहुँच कर धीरे से पूछा, 'भीतर आऊँ ?'

पशुपति बोले, 'हाँ आ जाओ।'

एक गुप्तचर भीतर आया। उसने प्रणाम किया। पशुपति ने आशीर्वाद दे कर पूछा, 'कहो शान्तशील, कैसे हो ? सब समाचार ठीक है न ?'

'आप एक-एक करके पूछिए। मैं सब समाचार बताता हूँ।'

'यवनों के रहने की जगह भी गये थे ?'

'वहाँ कोई जाने नहीं पाता।'

'क्यों ?'

'बहुत ही घना वन है, जाना कठिन है।'

'हाथ में कुल्हाड़ी ले कर जंगल काटते हुए क्यों नहीं गये ?'

'बाघ और भालू का डर है।'

'हथियार लेकर क्यों नहीं गये ?'

'जिन लकड़हारों ने बाघ व भालू को मार कर वन में प्रवेश किया, वे सब यवनों के हाथों मारे गये, कोई लौट कर नहीं आ सका।'

'बहुत होता तो तुम भी न आते ?'

'तब यहाँ आ कर आप को सब समाचार कौन बताता ?'

हँस कर पशुपति बोले, 'तुम्हीं आते।'

'मैं ही तो समाचार देने आया हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तो तुम वहाँ गये कैसे ?'

तब शान्तशील ने विस्तारपूर्वक बताना शुरू किया, 'सबसे पहले पगड़ी, तुर्की कपड़े और हथियार जुटाये। उन्हें बाँध कर पीठ पर लादा। फिर कई लकड़हारों के साथ वन में घुसा। रास्ते में जब मुसलमानों ने लकड़हारों को देखा तो मारने दौड़े। तब मैंने भाग कर, पेड़ की ओट में छिप कर अपना भेष बदला। और तब तुर्क बन कर तुर्कों की छावनी में सब ओर घूमता रहा।'

'अच्छा, बहादुरी का काम किया। यवन सेना कितनी दिखी ?'

'उस घने जंगल में जितने समा सकते हैं, शायद पचीस हजार के लगभग होंगे।'

पशुपति चिन्तित मुद्रा में कुछ देर सोचते रहे। थोड़ी देर बाद बोले, 'उनकी बातचीत क्या सुनी ?'

'सुना तो बहुत कुछ, पर आप से कुछ बता नहीं सकता।'

'क्यों ?'

'मैं मुसलमानी भाषा में प्रवीण नहीं हूँ। हाँ, मुहम्मदअली जो यहाँ आया था, उससे विपत्ति की आशंका होती है।'

'क्यों ?'

'वह छिप कर नहीं आ सका। बहुतेरों को उसके आने का हाल मालूम हो गया है !'

'तुमने यह कैसे जाना ?'

'मैं जब श्रीमान की सेवा में आ रहा था तब देखा कि एक आदमी एक पेड़ के पीछे छिपा हुआ है। वह युद्ध के कपड़े पहने हथियारों से लैस था। उससे बातचीत की तो पता लगा कि मुहम्मदअली को यहाँ आते उसने देखा है और उसी की प्रतीक्षा में वहाँ छिपा खड़ा है। मैं अंधेरे के कारण उसे पहचान न सका।'

'फिर ?'

'फिर इस सेवक ने उसे चित्रगृह में कैद कर दिया, तब यहाँ आया।'

प्रसन्न हो कर पशुपति ने कहा, 'बहुत अच्छा किया। अब कल सबेरे उठ कर उस आदमी का प्रबंध किया जायगा। आज की रात उसे कैद में ही पड़ा रहने दो। हाँ, तुम्हें अब एक बात और करनी पड़ेगी। यवन सेनापति की इच्छा है कि आज रात में ही वे मगध-राजपुत्र का कटा सिर देखें। उसे अभी काटने की व्यवस्था करो।'

'यह काम इतना आसान नहीं है। राजपुत्र कोई चींटी मच्छर तो नहीं कि—'

'मैं तुम्हें अकेले ही इसके लिए जाने को नहीं कह रहा हूँ। कुछ और आदमियों के साथ ले जा कर तुम उस पर आक्रमण करो।'

'लोग क्या कहेंगे ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लोगों में प्रसिद्ध कर दो कि डाकुओं ने उसे मारा है।'

'ठीक है, जैसी आज्ञा ! तो मैं जाता हूँ।'

तब पशुपति ने शान्तशील को खूब इनाम दे कर विदा किया। फिर विभिन्न नक्काशी वाले उस मंदिर में गये जहाँ अष्टभुजा की मूर्ति स्थापित थी। वहाँ जा कर मूर्ति को उन्होंने साष्टांग दण्डवत किया। फिर उठ कर प्रणाम कर के दोनों हाथ जोड़ कर भक्तिभाव से इष्ट देवी की स्तुति करते हुए कहा, 'माँ, विश्वपालिनी ! मैं अगाध सागर में कूद पड़ा हूँ। तुम्हीं देखना और मेरा उद्धार करना। मैं अपनी माँ-स्वरूपा जन्मभूमि को कभी भी देवद्वेषी यवनों के हाथ न बेचूँगा। यह मेरी मात्र अल्पकालीन संधि है ताकि मैं अक्षम और वृद्ध राजा की जगह पर राजा बन सकूँ। जैसे एक काँटे को दूसरे काँटे से निकालने के बाद दोनों काँटे दूर फेंक दिये जाते हैं, वैसे ही यवनों की मदद से राज्य पा कर, राज सहायता से मैं यवनों का नाश करूँगा। इसमें क्या पाप है माँ ? यदि इसमें भी पाप हो तो मैं सारा जीवन प्रायश्चित करूँगा। जगत-पालन-कत्री ! प्रसन्न हो कर मेरी कामना पूरी करो।'

इतना कह कर पशुपति ने फिर दण्डवत किया। फिर उठ कर अपने कमरे की ओर जाने लगे। तभी पलट कर देखा-अपूर्व सौंदर्य का शुभ दर्शन ! सामने ही दरवाजे को छेंक कर प्रतिमा रूपी, सौंदर्य की देवी, एक तरुणी खड़ी है।

चौंक कर पशुपति क्षण भर को काँप उठे फिर आनन्द से फूल गये। तभी तरुणी ने वीणा के झंकृत स्वर में कहा, 'पशुपति !'

पशुपति पहचान गया। मनोरमा थी।

८

मोहिनी

रत्न-प्रदीप की रोशनी से चमकते मंदिर के दरवाजे पर मनोरमा को देख कर पशुपति का मन समुद्र की लहरों की तरह उछलने लगा। मनोरमा अभी पूर्ण यौवना नारी नहीं है, बालिका सी दिखाई पड़ती है। शायद इसलिए कि उसके चेहरे की कांति अत्यन्त कोमल है, अत्यन्त मधुर, बिल्कुल बालिका वयस सी। इसी से उस दिन उसे पहली बार देख कर हेमचन्द्र ने उसकी आयु का अंदाज किया था—पन्द्रह वर्ष। शायद मनोरमा की आयु पन्द्रह की ही होगी, या सोलह या उन्नीस। ठीक से नहीं कहा जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा की उम्र चाहे जितनी हो पर उसकी अतुलित रूप-राशि है। उस पर आँखें नहीं ठहरतीं, फिसल पड़ती हैं। बाल्य, कैशोर, यौवनकाल, हर काल में वह रूप-राशि दुर्लभ है। चंपई सुनहला रंग, लाल नागिनों की तरह बालों की फैली लटकती लटें। सरोवर के जल से भींग कर इस समय वही बाल आपस में लिपट गए हैं। निर्मल उज्ज्वल ललाट, भंवरों से चंचल नयन, सुन्दर सुगठित नासिका, सबेरे के ओस से भींगे से ओंठ, प्रातः सूर्य की किरणों के स्पर्श से खिलने वाले कमल से स्तनयुगल, गालों पर गंगाजल के विस्तार सी हँसी, हंसिनी सी गर्दन—वेणी बाँधने के बाद भी गर्दन पर कुछ घुँघराले बाल हर समय खेल करते रहते। दोनों दंतपंक्तियाँ यदि फूलों सी कोमल होतीं, या चम्पा को गठन मिलता, या चन्द्रकिरण को शरीर मिलता तो सम्भवतः वह मूर्ति बनाई जा सकती थी।

मनोरमा की रूपराशि अतुल है। केवल उसके सर्वांगीय सुकुमारता के कारण उसका सब कुछ सुकुमार है, उसका चेहरा सुकुमार, अधर सुकुमार, ललाट सुकुमार, कपोल और केश भी सुकुमार हैं। गर्दन घूमने में भी एक सुकुमारता है। बाँहों की भंगिमा में सुकुमारता है, हृदय के उच्छ्वास में सुकुमारता, चरण चालन में सुकुमारता, बोली में सुकुमारता, कटाक्ष में भाव-भंगिमा में सुकुमारता। वही सुकुमारता की मूर्ति दरवाजे पर बेधड़क खड़ी है। पशुपति का चेहरा देखने के लिए अपना मुँह थोड़ा उठाए, आँखों के तारें स्पंदित और सरोवर जल से सिंचे हुए, बालों की कुछ लटों को एक हाथ से पकड़े और एक पैर को थोड़ा सा आगे बढ़ा कर मनोरमा जिस मनोरम भाव से खड़ी है, वह भाव भी सुकुमार है।

पशुपति उसकी ओर एकटक अतृप्त नयनों से देखने लगे।

|९|

मोहिता

पशुपति उसकी ओर एकटक अतृप्त नयनों से देखते रहे। बड़ी देर तक देखते-देखते उन्हें मनोरमा के अतुलित सौंदर्य में एक अपूर्व महिमा के दर्शन हुए। पशुपति के देखते-देखते मनोरमा का सुकुमार मुख-मण्डल धीरे-धीरे गम्भीर होता गया। अब उस बालिका में पहले जैसा सुकुमार भाव लुप्त हो गया। अजीब ज्योतिर्मय तेज के साथ अधेड़ उम्र में भी दुर्लभ, गम्भीरता उस पर छा गई। सरलता को दबा कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तेजोमय प्रतिभा जाग उठी। पशुपति बोले, 'मनोरमा, इतनी रात को अकेली क्यों आई हो ? यह क्या ? आज तुम्हारा ऐसा भाव कैसे ?'

मनोरमा ने उत्तेजना में भी सहज बनते हुए पूछा, 'तुमने मेरा कौन सा भाव देखा है ?'

'तुम्हारी दो मूर्तियाँ हैं—एक मूर्ति सरल बालिका की। आज तुम्हारी वह मूर्ति नहीं। उसी रूप को देख कर मेरा मन शीतल होता है। पर तुम्हारी आज की गम्भीर, तेजस्विनी, प्रतिभामयी, प्रखर मूर्ति है। इस मूर्ति से मुझे डर लगता है। समझ जाता हूँ कि तुम्हारे मन में कोई कठोर निश्चय है। आज तुम यह मूर्ति ले कर मुझे डर दिखाने क्यों आई हो ?'

'पशुपति ! तुम इतनी रात में जाग कर क्या कर रहे हो ?'

'मैं तो राज-काज में व्यस्त हूँ—लेकिन तुम—?'

'फिर वही बात, पशुपति ! राज-काज में या अपने काम में ?

'अपना काम ही समझो। राज-काज हो या अपना कार्य हो, मैं भला कब व्यस्त नहीं रहता ? लेकिन तुम आज यह सब क्यों पूछ रही हो ?'

'मैंने सब सुन लिया है।'

'क्या सुन लिया है ?'

'यवन के साथ पशुपति की संधि-वार्ता। शान्तशील के साथ चर्चा और उसे दिया गया आदेश। दरवाजे पर से मैंने सब सुना है।'

'पशुपति के चेहरे पर एकाएक अँधेरा छा गया। बहुत देर तक चिंतित मुद्रा में खड़े रहने के बाद बोले, 'अच्छा ही हुआ ! मैं यह सब बातें तो तुमसे कहता ही, बस इतना ही अंतर हुआ कि तुमने सब पहले ही सुन लिया। बोलो, तुम कौन बात नहीं जानती ?'

'पशुपति ! तुम मेरा त्याग कर रहे हो ?'

'ऐसा क्यों मनोरमा ! तुम्हारे लिए ही तो मैंने यह सब सलाह की है। अभी मैं राजा का नौकर हूँ, अधीन हूँ, सब कुछ अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकता। इस समय विधवा-विवाह करने से समाज से वहिष्कृत होना पड़ेगा। लेकिन जब मैं स्वयं राजा हो जाऊँगा, तब भला कौन मुझे वहिष्कृत कर सकेगा ? जैसे बल्लालसेन ने कौलीन्य के लिए नई पद्धति चलाई थी, वैसे ही मैं भी विधवा-विवाह करके एक नई पद्धति चलाऊँगा।'

'पशुपति ! यह सब मेरा मात्र-सपना है। तुम्हारे राजा बनने से मेरा वह सपना भी भंग हो जायगा। मैं कभी तुम्हारी रानी नहीं बन सकती।'

'ऐसा क्यों मनोरमा ?'

'क्यों क्या, जब तुम राज्यभार ग्रहण करोगे, तब भी मुझसे प्रेम करोगे ? तब तो राज्य ही तुम्हारे मन में प्रधान स्थान पायेगा। तब तो मेरे प्रति तुम्हारा अनादर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
होगा। जब तुम मुझसे प्रेम ही न करोगे, तब मैं क्यों तुम्हारी पत्नीत्व के बन्धन में बँधूँगी ?'

'ऐसी बात तुम्हारे मन में आई क्यों ? पहले तुम होगी। राज्य पीछे होगा।'

'राजा हो कर ऐसा न कर सकोगे। राज्य की अपेक्षा करके यदि रानी से ज्यादा प्रेम करोगे तो तुम राज्य ही न कर सकोगे। तब तुम्हें राज्यच्युत होना पड़ेगा। स्त्री-दास राजा का राज्य नहीं रहता।'

पशुपति प्रशंसा की दृष्टि से मनोरमा का चेहरा देखते रहे, फिर कहा, 'जिसके बाँये ऐसी सरस्वती रहे, उसे भला क्या आशंका ? न सही, ऐसा ही हो। मैं तुम्हारे लिए राज्य का भी त्याग कर दूँगा।'

'अब त्याग ही करना है तो राज्य ले ही क्यों रहे हो ? त्याग के लिए ग्रहण का क्या अर्थ है ?'

'तुमसे विवाह।'

'अब यह आशा छोड़ दो। तुम राज्य पाओगे तो कभी मुझे पत्नी रूप में नहीं पा सकते।'

'क्यों मनोरमा, ऐसा मैंने क्या अपराध किया है ?'

'तुम विश्वासघाती हो। एक विश्वासघाती की भक्ति मैं कैसे करूँ ? किस तरह विश्वासघाती से प्रेम करूँ ?'

'क्यों मैं विश्वासघाती कैसे हुआ ?'

'अपने प्रतिपालक को ही राज्य-च्युत करने की योजना बना रहे हो, शरणागत राजपुत्र का सिर काटने का आदेश दे रहे हो, क्या यह सब विश्वासघात के कार्य नहीं हैं ? जिसने अपने राजा के आगे अपना विश्वास भ्रष्ट किया, वह स्त्री के प्रति विश्वास-घाती क्यों न होगा ?'

पशुपति चुप हो गये। मनोरमा कहती रही, 'पशुपति ! मैं तुमसे बिनती करती हूँ, यह कुमति छोड़ दो।'

पशुपति पहले की तरह ही सिर झुकाए खड़े रहे। उनकी दोनों ही आकांक्षाएँ—राज्यप्राप्ति की और मनोरमा को पाने की—दोनों ही बड़ी थीं। राज्य पाने का यत्न करने से मनोरमा का प्रणय खोना पड़ेगा। उनका मन चंचल हो उठा। सोचा, यदि मनो-रमा को पाऊँ तो भिक्षा भी अच्छी है, राज्य से क्या मिलेगा ? इसी तरह बार-बार मन में अनेक विचार उठने लगे। फिर तत्काल ही विचार आया,—लेकिन इससे लोक-निन्दा होगी, समाज में कलंकित होना पड़ेगा, जाति-भ्रष्ट होगी, सब के सामने तिरस्कृत, घृणित होना पड़ेगा। यह सब कैसे सह सकूँगा ? पशुपति चुपचाप सब सोचते रहे।

पशुपति से कोई उत्तर न पा मनोरमा ने कहा, 'सुनो पशुपति ! तुमने मेरी बात का जवाब नहीं दिया। अब मैं चली। लेकिन यह प्रतिज्ञा करके जाती हूँ कि विश्वासघाती के साथ इस जन्म में मेरी भेंट न होगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कह कर मनोरमा जाने के लिए घूमी। पशुपति रो उठे। तब मनोरमा ने लौट कर पशुपति का हाथ पकड़ लिया। पशुपति ने उसके मुँह की ओर ताका। पशुपति ने देखा कि तेजस्विनी, सिकुड़ी भौहों से तिरछे देखने वाली वह कठोर मूर्ति अब वहाँ न थी। प्रतिभा से उत्तेजित वह मूर्ति अब बिदा हो चुकी है और उसके स्थान पर फूल सी सुकुमारी वही बालिका मूर्ति उनका हाथ पकड़े रोने में उनका साथ दे रही है।

अपने को सम्हाल कर मनोरमा ने पूछा, 'पशुपति ! रोते क्यों हो ?'

पशुपति ने आँसू पोंछे और कहा, 'तुम्हारी बातों पर।'

'क्यों मैंने ऐसा क्या कहा है ?'

'तुम मुझे त्याग कर, ठुकरा कर जा रही थीं।'

'अब मैं ऐसा न करूँगी।'

'तो क्या तुम मेरी राजरानी बनोगी ?'

'बनूँगी।'

पशुपति के मन में आनन्द-सागर उछलने लगा। दोनों की आँखें आँसुओं से भरी थीं। गीली आँखों से दोनों एक दूसरे को देर तक देखते रहे।

फिर एकाएक मनोरमा यक्षिणी की तरह घूम कर चली गई !

| १० |

फन्दे में

सरोवर के किनारे मिल कर हेमचन्द्र और मनोरमा जब तुर्क की खोज में चले थे तब धर्माधिकारी के घर से कुछ दूरी पर रुक कर मनोरमा ने हेमचन्द्र से कहा, 'सामने वह महल देख रहे हो ?'

'हाँ, देख रहा हूँ।'

'वहीं वह तुर्क गया है।'

'वहाँ क्यों गया है ?'

इस प्रश्न का कोई जवाब न दे कर मनोरमा ने कहा, 'तुम यहीं, इस पेड़ की आड़ में छिपे रहो। तुर्क को इसी राह से लौटना पड़ेगा।'

'तो तुम कहाँ जाओगी ?'

'मैं भी इसी महल में जाऊँगी।'

हेमचन्द्र ने सहमति प्रकट की। मनोरमा का आचरण देख कर उन्हें विस्मय हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रहा था। वे मनोरमा की सलाह के अनुसार ही एक बड़े पेड़ की आड़ में छिप कर खड़े हुए। मनोरमा ने गुप्त द्वार से चुपचाप महल में प्रवेश किया।

ठीक उसी समय शान्तशील पशुपति के पास उसके घर जा रहा था। उसने देखा कि कोई आदमी पेड़ की आड़ में छिपा खड़ा है। तब मात्र संदेहवश शान्तशील उस पेड़ के पास गया। वहाँ हेमचन्द्र को खड़ा देख, बिना पहचाने ही उसने चोर समझ कर कहा, 'कौन है ? तुम कौन हो ? यहाँ छिपे क्या कर रहे हो ?' तभी उसकी दृष्टि हेमचन्द्र के बहुमूल्य अलंकारों से सुशोभित योद्धा-वेश पर पड़ी और तत्काल ही उसने अपनी भाषा को संतुलित कर के पूछा, 'आप कौन हैं ?'

'मैं कोई भी होऊँ, आप क्यों परेशान हो रहे हैं ?'

'आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?'

'यहाँ खड़ा मैं यवन को खोज रहा हूँ।'

सुन कर शांतशील चौंक पड़ा। पूछा, 'यहाँ यवन कहाँ है ?'

'एक इसी घर में गया है।'

शांतशील ने भयातुर हो कर पूछा, 'इस घर में क्यों गया है ?'

'यह मैं नहीं जानता।'

'यह घर किसका है ?'

'यह भी मैं नहीं जानता।'

'तब आपने कैसे जाना कि इस घर में कोई यवन गया है ?'

'यह सब सुन कर तुम क्या करोगे ?'

'यह घर मेरा ही है। यदि यवन इसमें गया है तो निश्चय ही वह अनिष्ट करने ही गया है। आप योद्धा जान पड़ते हैं। यवन के शत्रु। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ चलिए। दोनों मिल कर उसे पकड़ें।'

हेमचन्द्र राजी हो गए। शान्तशील के साथ चल पड़े। तब हेमचन्द्र को साथ ले कर सिंहद्वार से शांतशील ने पशुपति के घर में प्रवेश किया। और एक कोठरी के भीतर जा कर कहा, 'इसी कोठरी में मेरा सर्वस्व है, सोना, इत्यादि सब कुछ। आप इसकी रक्षा कीजिए। मैं अभी पता लगाता हूँ कि यवन किधर गया है।'

कह कर, झटपट शांतशील कोठरी से बाहर आया और हेमचन्द्र के कुछ कहने के पहले ही कोठरी का दरवाजा बन्द कर लिया।

हेमचन्द्र समझ गये कि वे फंदे में फँस कर कैद हो गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्ति

पशुपति से बिदा होकर मनोरमा सीधे उसी चित्रगृह में गई जहाँ हेमचन्द्र कैद थे। पशुपति और शांतशील की बातों में ही उसने सुन लिया था कि हेमचन्द्र वहीं कैद हैं। आते ही उसने चित्रगृह का किवाड़ खोला और हेमचन्द्र से बोली, 'हेमचन्द्र, जल्दी से बाहर निकलो।'

हेमचन्द्र झपट कर आये। मनोरमा के साथ-साथ बाहर की ओर चले। तब हेमचन्द्र ने पूछा, 'मैं क्यों कैद किया गया था ?'

'यह सब बाद में बताऊँगी।'

'जिसने मुझे यहाँ बंद किया, वह कौन है ?'

'शांतशील।'

'शांतशील कौन ?'

'गुप्तचर।'

'यह क्या उसी का घर है ?'

'नहीं।'

'फिर यह किसका घर है ?'

'सब बाद में बताऊँगी।'

'वह यवन कहाँ गया ?'

'छावनी में।'

'छावनी ? कितने यवन आये हैं ?'

'यही पचीस हजार।'

'उनकी छावनी कहाँ है ?'

'जंगल में।'

'कौन सा जंगल ?'

'कुछ दूरी पर, नगर के उत्तर।'

हेमचन्द्र गंभीर हो कर कुछ सोचने लगे। तब मनोरमा बोली, 'क्या सोचने लगे ? क्या तुम उसके साथ युद्ध करोगे ?'

'पचीस हजार के साथ अकेले युद्ध कैसे सम्भव होगा ?'

'तब क्या करोगे ? घर लौट चलोगे ?'

'अभी घर नहीं जाऊँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'फिर कहाँ जाओगे ?'

'उसी जंगल में ।'

'जब लड़ना नहीं है, तब जंगल में क्यों जाओगे ?'

'यवनों को देखने ।'

'जब लड़ना ही नहीं है, तब देखोगे भी क्यों ?'

'देख कर समझूँगा कि उन्हें कैसे मारा जा सकता है ।'

मनोरमा चौंक पड़ी । बोली, 'पचीस हजार को कैसे मारोगे ?'

'मनोरमा तुम्हें यह सब बातें कहाँ पता लगीं ?'

'इतनी ही नहीं, और भी बातें हैं । आज तुम्हें मारने के लिए तुम्हारे घर में डाकू आवेंगे । आज घर मत जाना ।'

यह कह कर मनोरमा एक साँस में भाग गई ।

| १२ |

अतिथि-सत्कार

हेमचन्द्र घर लौटे । एक सुन्दर सा तेज घोड़ा कस कर उस पर सवार हुए और चाबुक मार कर घोड़े को तेज दौड़ाते हुए जंगल की ओर चले । आवादी पार किया, फिर मैदान । मैदान का भी थोड़ा सा भाग पार किया । ठीक इसी समय उन्हें अपने दाहिने कंधे पर थोड़ा सा दर्द मालूम पड़ा । देखा कि कंधे पर एक तीर चुभा है । पीछे से घोड़ों के टापों की आवाज भी सुनाई दी । घूम कर देखा कि तीन सवार उनका पीछा करते आ रहे हैं ।

हेमचन्द्र घोड़े का मुँह फेर उनकी प्रतीक्षा करने लगे । फिर देखा कि हर एक सवार ने उन्हें ही निशाना साध कर एक-एक तीर चलाया । हेमचन्द्र ने अपने अद्भुत कौशल से हाथ का भाला उठा कर तीन तीरों को एक बार में ही गिरा दिया ।

सवारों ने फिर एक साथ तीर चलाया और उनके भी नष्ट होते होते फिर चलाया । इस प्रकार हेमचन्द्र पर लतातार तीर चलने लगे । तब हेमचन्द्र ने एक विचित्र रत्न-जड़ित चमड़े के टुकड़े को हाथ में लिया और उसे घुमाते हुए देखते ही देखते उस वाण-वर्षा को बेकार कर दिया । शायद दो एक तीर घोड़े को लगे हों, पर वे अछूते रहे ।

हेमचन्द्र का यह कौशल देख कर तीनों सवार विस्मित हो चुप रह गये । वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आपस में कुछ सलाह करने लगे। यह अवसर देख कर हेमचन्द्र ने एक सवार पर तीर चलाया। निशाना अचूक था एक सवार के माथे पर तीर लगा। वह उसी क्षण घोड़े की पीठ पर से जमीन पर आ गिरा।

यह देख कर अन्य दोनों सवार घोड़ों को चाबुक लगा, अपने-अपने भाले तान कर हेमचन्द्र पर झपटे और भाला तान कर मारा। यदि दोनों सवार हेमचन्द्र को लक्ष्य कर भाला चलाते तो अपने रण-कौशल से हेमचन्द्र अवश्य बच जाते। लेकिन उन सवारों ने हेंमचन्द्र के घोड़े को निशाना बनाया। उतनी दूर नीचे की ओर हाथ चलाने में हेमचन्द्र को घोड़ा बिलम्ब हुआ। फिर भी एक का निशाना तो खाली गया और दूसरे का घोड़े की गरदन के नीचे लगा। उस चोट को न सह पा कर वह घोड़ा बेदम हो कर जमीन पर लोट गया। तभी हेमचन्द्र जल्दी से गिरते हुए घोड़े पर से उछल कर जमीन पर जा खड़े हुए। उन्हों ने पलक झपते अपने हाथ का कराल भाला तान कह कहा, 'मेरे पिता का दिया हुआ यह शूल शत्रु का रक्तपान किए बिना कभी नहीं लौटता।' उनकी यह बात समाप्त होते न होते उनके तेज भाले से छिद कर दूसरा सवार भी जमीन पर आ गिरा।

अब तीसरा सवार जल्दी से अपने घोड़े का मुँह फेर कर भागा। वह शान्त-शील था।

अब हेमचन्द्र ने अपने कंधे में चुभा तीर निकाला। तीर मांस में कुछ गहरे धँस गया था। निकलते ही खून की धारा फूट निकली। हेमचन्द्र अपने कपड़ों से उसे रोकने का प्रयत्न करने लगे। लेकिन उन्हें सफलता न मिली। काफी खून वह जाने के कारण हेमचन्द्र थोड़ी-थोड़ी कमजोरी का अनुभव करने लगे। वे समझ गए कि अब यवनों की छावनी में जाने की कोई भी संभावना न थी। घोड़ा भी मारा गया, अपने को भी चोट लगी। अतएव खिन्न मन से धीरे-धीरे लौटने लगे।

हेमचन्द्र ने मैदान पार किया। तब तक शरीर काफी शिथिल हो गया था। खून से सारा शरीर भींग गया। चलने की शक्ति भी घटने लगी। बड़े कष्ट से वे नगर में आए। अब चला नहीं जाता। एक कुटी के पास एक वटवृक्ष के नीचे बैठ गये। तब सबेरा होने लगा था। रात्रि जागरण, रात भर परिश्रम करने, खून बहने से कमजोर होने के कारण हेमचन्द्र को चक्कर सा आने लगा। उन्होंने पेड़ के तने से अपनी पीठ टिका ली। आँखें मुँद गई। नींद सी लगी, होश जाता रहा।

निद्रा या बेहोशी के आवेग में स्वप्न में हेमचन्द्र ने सुना-कोई गा रहा है—

'कण्टके गढ़िलो विधि, मृणाल अधमे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा भाग

| १ |

वे तुम्हारे कौन हैं ?

जिस कुटी के पास पेड़ के नीचे हेमचन्द्र बैठ कर बेहोश हो गये थे, उस कुटी में एक रंगरेज रहता था। कुटी में तीन कोठरियाँ हैं। एक कोठरी में उसका रसोई-पानी है, दूसरे में उसकी पत्नी, बाल-बच्चों के साथ सोई है, तीसरी कोठरी में रंगरेज की युवती कन्या रत्नमयी और दो अन्य स्त्रियाँ सोई हैं। ये दो स्त्रियाँ थीं—मृणालिनी और गिरिजाया, जिन्हें नगर में अन्य कहीं आश्रय न मिला था अतः यहीं थीं।

सबेरे तीनों स्त्रियाँ ही पहले जगीं। सबसे पहले रत्नमयी। उसने गिरिजाया को पुकारा, 'सखी ?'

'क्या है सखी ?'

'तुम कहाँ हो ?'

'बिछौने पर।'

'अब उठो न सखी।'

'अभी नहीं सखी।'

'तब पानी छिड़क दूँगी।'

'तुम मेरे प्राणों की सखी हो। तुम्हारे समान कोई दूसरा नहीं है।'

'मैं तुमसे बातों में नहीं जीत सकती। तुम्हारे आगे बेवकूफ ही बन जाती हूँ। तुम्हारी बातों से मेल नहीं मिला पाती।'

'क्या और भी मेल चाहिए ?'

'तुम्हारे मुँह में आग ! अब मेल का काम नहीं। मैं चली अपने काम पर।' कह कर रत्नमयी घर के कामों में लग गई। मृणालिनी अब तक कुछ न बोली थी। गिरिजाया ने उसे पुकार कर पूछा, 'जगी हो ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'जगी ही हूँ। मैं तो सदा जगी ही रहती हूँ।'

'क्या सोच रही हो ?'

'जो हमेशा सोचती रहती हूँ।'

तब गिरिजाया ने गम्भीरता पूर्वक कहा, 'क्या करूँ ? मेरा दोष नहीं है। सुना तो है कि वे इसी नगर में हैं, पर अभी तक उनका पता न लगा। अभी हमें भी आए दो-तीन दिन ही तो हुए हैं। जल्दी ही पता लग जायगा।'

'गिरिजाया, यदि यहाँ भी पता न चला, तो इस जीवन में अब इसी कुटिया में रहना होगा। मेरे लिए अब कोई जगह नहीं बची।' कह कर मृणालिनी ने अपना मुँह ढँक लिया। गिरिजाया के गालों पर भी आँसू लुढ़कने लगे।

इसी समय घबराई हुई रत्नमयी ने आ कर कहा, 'सखी, सखी ! जरा देखो तो। हमारे बरगद के नीचे कौन सोया पड़ा है। एक विचित्र पुरुष।'

गिरिजाया बाहर देखने गये। मृणालिनी ने भी कुटी के दरवाजे पर आ कर देखा। देखते ही दोनों पहचान गईं।

समुद्र में जैसे एक बारगी तूफान आ गया। मृणालिनी ने गिरिजाया को बाहों में कस लिया। इस समय भी गिरिजाया गा उठी—

'कण्टके गढ़िलो विधि मृणाल अधमे।

इसी कड़ी ने बेहोशी में भी हेमचन्द्र के कानों में प्रवेश किया था। गिरिजाया की इस बेमौके की तान पर खीझ कर मृणालिनी ने कहा, 'चुप राक्षसी ! मैं तेरा कभी मुँह न देखूँगी। देख देख, वे तो जाग गये। यहीं से देख कि वे अब क्या करते हैं ! जहाँ वे जायें, दूर रह कर उनके साथ ही जा। यह क्या ? उनके शरीर पर इतना खून कैसे ? चल मैं भी साथ ही चलती हूँ।'

हेमचन्द्र की बेहोशी दूर हो गई थी। सबेरा हुआ देख कर वे भाला टेक कर उठ खड़े हुए और धीरे-धीरे अपने घर की ओर बढ़े।

हेमचन्द्र के थोड़ा आगे बढ़ जाने पर मृणालिनी और गिरिजाया उनके पीछे घर से निकलीं। तब देख कर रत्नमयी ने पूछा, 'वे तुम्हारे कौन हैं ?'

मृणालिनी ने कहा, 'भगवान जाने।'

|२|

प्रतिज्ञा

इतनी देर विश्राम कर लेने से हेमचन्द्र कुछ स्वस्थ हुए। खून का बहना भी कम हो गया। भाला टेकते हुए हेमचन्द्र धीरे-धीरे घर लौटे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
घर आ कर उन्होंने देखा कि मनोरमा दरवाजे पर ही खड़ी है।

मृणालिनी और गिरिजाया ने भी ओट में रह कर मनोरमा को देखा।

मनोरमा चुपचाप मूर्ति सी खड़ी थी। उसे देख कर मृणालिनी ने मन में सोचा, 'राज-पुत्र यदि रूप पर रीझे हों तो मेरी सुख की रात का सवेरा हो गया।' गिरिजाया ने सोचा, 'राजपुत्र यदि रूप पर रीझे हों तो मेरी सखी का भाग्य ही फूट गया।'

हेमचन्द्र ने मनोरमा से पूछा, 'इस तरह क्यों खड़ी हो ?'

मनोरमा कुछ न बोली तो हेमचन्द्र ने ऊँचे स्वर में पुकारा, 'मनोरमा ?'

फिर भी कोई जवाब नहीं। तब मनोरमा की आँखें आकाश की ओर लगी थीं।

हेमचन्द्र ने पुकारा, 'मनोरमा, क्या हुआ ?'

तब मनोरमा ने धीरे-धीरे आकाश से आँखें हटा कर हेमचन्द्र के चेहरे की ओर देखा और देर तक एकटक देखती रही। फिर उसकी दृष्टि हेमचन्द्र के खून से सने कपड़ों पर पड़ी। व्याकुल हो उसने पूछा, 'यह क्या हुआ, यह खून कैसा ? तुम्हारा चेहरा क्यों उतरा हुआ है ? क्यों, तुम घायल हुए हो ?'

हेमचन्द्र ने उँगली से कंधे का घाव दिखा दिया।

तब हेमचन्द्र का हाथ पकड़ कर मनोरमा उन्हें भीतर ले गई। पलंग पर बैठाया। कपड़े उतरवाए। पानी ला कर खून धो डाला और फिर हरी-हरी दूब उखाड़ कर लाई। दूब को अपने दाँतों से खूब कूचा। फिर कुची हुई दूब को घावों पर रख कर कपड़े से बाँधा। फिर बोली, 'हेमचन्द्र ! और क्या करूँ ? तुम सारी रात जगे हो। अब सो जाओ।'

'हाँ, बहुत नींद आ रही है।'

मनोरमा का काम देख कर मृणालिनी ने चिन्तित हो कर गिरिजाया से कहा, 'यह सब क्या है, गिरिजाया ?'

'नाम तो सुना-मनोरमा।'

'यह क्या हेमचन्द्र की मनोरमा है ?'

'तुम क्या समझती हो ?'

'कुछ भी हो, मनोरमा ही भाग्यवान है। उसने उनकी सेवा की, मैं न कर सकी। जिस काम से लिए मैं तड़पती रही, वह मनोरमा ने किया। देवता उसे लम्बी उम्र दें। गिरिजाया, अब मैं घर चली। अब मेरा यहाँ रहेना ठीक नहीं। तुम्हीं समाचार ले आना कि वे कैसे हैं ? मनोरमा चाहे जो हो, पर हेमचन्द्र मेरे ही हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

| ३ |

हेतुः धूमात्

हेमचन्द्र और मनोरमा के घर के भीतर चले जाने के बाद मृणालिनी को विदा कर के गिरिजाया घर के पास ही टहलने लगी। उसे जहाँ-जहाँ भी खिड़की दिखी, वहाँ-वहाँ सावधानी से सिर ऊँचा कर के उसने भीतर झाँका। एक कमरे में उसे हेमचन्द्र गहरी नींद में सोते दिखे। मनोरमा भी उन्हीं की खाट पर बैठी थी। गिरिजाया वहीं, उसी खिड़की के नीचे बैठ गई। पहली रात को उसी खिड़की पर हेमचन्द्र ने तुर्क को देखा था।

हेमचन्द्र और मनोरमा में क्या बातचीत होती है, यही सुनने के लिए गिरिजाया वहाँ बैठी थी। लेकिन हेमचन्द्र सो रहे थे, इसलिए कोई बातचीत नहीं हुई। अकेली वहाँ बैठी गिरिजाया बड़ा कष्ट पाने लगी। कुछ बोल नहीं सकती, गा नहीं सकती, हँस नहीं सकती, व्यंग्य नहीं कर सकती, सब मिल कर भयानक कष्ट है। उसकी जीभ में खुजली होने लगी। वह मन ही मन सोचने लगी—वह पापी दिग्विजय भी नहीं दिखता। वही मिलता तो मुँह तो खोलती। उस समय दिग्विजय घर में काम में फँसा था। तब गिरिजाया अपने मन में ही प्रश्न करने और उत्तर देने लगी—

'अरी तू कौन है ?'

'मैं गिरिजाया हूँ।'

'यहाँ क्यों आई हो ?'

'मृणालिनी के लिए।'

'मृणालिनी तेरी कौन है ?'

'कोई नहीं।'

'तब उसके लिए तुझे इतना सिर-दर्द क्यों है ?'

'यहाँ एक और चिड़िया है।'

'क्या चिड़िया को पकड़ ले जाएगी ?'

'पकड़ूँ गी भी कैसे ?'

'तब क्यों बैठी है ?'

'चिड़िया के लिए मृणालिनी हर रात छिप-छिप कर रोती है। राधाकृष्ण नाम सुना हो, तो फिर जंगल से चिड़िया को घर ले आ। पढ़े हुए पक्षी की आशा छोड़ दे। पिंजड़ा खाली मत रख।'

'मर तू, भिखरिणी की लड़की ! तू ने अपने मन जैसी बात कही। यदि मृणालिनी चिढ़ कर पिंजरा तोड़ डाले ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ठीक है, ऐसा यह मर सकती है।'

'तब यहाँ बैठ कर क्यों मर रही है ?'

'सिर में बड़ी पीड़ा है। यह जो लड़की घर के भीतर बैठी है, यह मूर्खा है, नहीं तो अभी तक बोली क्यों नहीं ? औरतों का मुँह कभी इतनी देर तक बन्द रहा है भला !'

थोड़ी देर बाद गिरिजाया की मनोकामना पूरी हुई। हेमचन्द्र की नींद टूटी। तब मनोरमा ने पूछा, 'क्या नींद पूरी हो गई ?'

'नींद तो अच्छी आई।' हेमचन्द्र ने कहा।

'अब बताओ कि तुम्हें चोट कैसे लगी ?'

तब हेमचन्द्र ने संक्षेप में रात की घटना कह सुनाई। सुन कर मनोरमा पछताने लगी।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम्हारे प्रश्न चुक गये ? अब मेरी बातों का जवाब दो। कल रात को जब तुम मेरा साथ छोड़ कर गईं उसके बाद जो जो भी हुआ, सब बताओ।'

मनोरमा ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया। गिरिजाया कुछ सुन न सकी। समझी कि गुपचुप बातें हो रही हैं। उठ कर गिरिजाया फिर मन में ही प्रश्न और उत्तर देने लगी—

'क्यों समझी ?'

'सिर्फ कुछ लक्षण।'

'कैसे लक्षण ?'

गिरिजाया उँगली पर गिनने लगी—एक, लड़की अपूर्व सुन्दरी है। आग के सामने क्या घी पिघले गा नहीं ?—दो, मनोरमा हेमचन्द से प्रेम करती है, नहीं तो इतना आदर क्यों करती ?—तीन, एकान्त निवास। चार, रात में साथ-साथ घूमना। —पाँच, गुपचुप बातें करना।

'क्या मनोरामा हेमचन्द्र से प्रेम करती है ?'

'क्या बिना हवा ही कभी पानी में लहर उठी है ? यदि कोई मुझसे प्रेम करे, तो मैं भी उससे प्रेम करूँगी, इसमें सन्देह नहीं।'

'मृणालिनी भी तो हेमचन्द्र से प्रेम करती है। तब हेमचन्द्र भी मृणालिनी से प्रेम करेंगे ही।'

'ठीक है। लेकिन मृणालिनी अनुपस्थित और मनोरमा उपस्थित है।'

यही सोचती-बिचारती हुई गिरिजाया उस मकान के द्वार पर आ खड़ी हुई। उसने एक गीत गा कर कहा, 'भिक्षा दो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनयन

गिरिजाया ने गाया—

'काहे सखी जीयत मरत कि विधान ?
ब्रज कि किशोर सखी, कहा गैलो भागई,
ब्रजजन टुटायलो पराण ।'

संगीत की आवाज हेमचन्द्र ने सुनी । स्वप्न में सुने शब्द के समान उन्होंने सुना । गिरिजाया गा रही थी—

'ब्रज कि किशोर सखी, कहाँ गैलो भागई,
ब्रजबंधु टुटाइलो पाषाण ।'

हेमचन्द्र ध्यान से सुनने लगे—

मिलि गेई नागरी, भूलि गेई माधव,
रूपविहीन गोप कुमारी ।
को जाने प्रिय सोई, रसमय प्रेमिक,
हे न बंधु रूप कि भिखारी ।'

हेमचन्द्र व्याकुल हो कर बोले, 'यह क्या मनोरमा ? यह तो गिरिजाया की आवाज है । मैं चला ।'

हेमचन्द्र उछल कर पलंग से उतरे ।

'आगे नाहिं बूझनू, रूप देखि भूलनू,
हृदि बेनु चरण-युगल ।
यमुना सलिल सई, अब तनु डाड़व,
आनो सखि भरिबो गरल ।'

गिरिजाया के सामने आ कर हेमचन्द्र ने घबरा कर पूछा, 'गिरिजाया ! यह कौन है, गिरिजाया ? तुम यहाँ कहाँ ? तुम यहाँ कब आई ? क्यों आई ?'

'मैं यहाँ कई दिनों से आई हूँ ।' कह कर गिरिजाया फिर गाने लगी—

'किवा काननवल्लरी, गल बेड़ि बाँधई,
नबीन तमाले दिबो फाँस ।'

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम यहाँ क्यों आई ?'

'भिक्षा ही मेरी जीविका है । राजधानी में अधिक भिक्षा मिलेगी, इसी आशा से आई हूँ ।'

'मृणालिनी कैसी है ? देख कर आई हो ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहे—श्याम श्याम श्याम श्याम, श्याम नाम जपयि,
छार तनु करबो विनाश ।'

हेमचन्द्र खीझे, 'अपना गाना रहने दो । मेरी बातों का जवाब दो । मृणालिनी कैसी है ? देख कर आई हो ?'

'मृणालिनी को देख कर नहीं आई, यह गाना अच्छा नहीं लगता तो दूसरा गाती हूँ । सुनो—

'ए जनमेर संगे कि सई जनमेर साध फुराइबे ।
किवा जन्म-जन्मान्तरे, ए साध मोर पुराइबे ।'

हेमचन्द्र बोले, 'गिरिजाया, मैं विनती करता हूँ, इस समय गाना छोड़ो । मृणालिनी का हाल कहो ।'

'क्या कहूँ ?'

'मृणालिनी से मिल कर क्यों नहीं आई ?'

'वह गौड़ नगर में नहीं है ।'

'क्यों ? कहाँ गई ?'

'मथुरा ।'

'मथुरा ? किसके साथ गई ? क्यों गई ? कैसे गई ?'

'उसके पिता ने किसी प्रकार खबर पा कर आदमी भेज कर बुलवाया । शायद विवाह होने वाला है । विवाह करने के लिए ही ले गये हैं ।'

'क्या कहा ? क्या करने ?'

'मृणालिनी का ब्याह करने को उसके पिता ले गये हैं ।'

हेमचन्द्र ने मुँह फेर लिया । गिरिजाया इस समय के उनके भाव न देख सकी । हेमचन्द्र के कंधे के घाव से अभी भी खून बह रहा था, उसे भी वह न देख सकी । उसने पहले की तरह ही गाया—

'बिधि तोरे साधि शुनो, जन्म यदि दिबे पून,
आमारे आबार येन, रमणी-जनम दिबे ।
लाज भय तेयागिबो, ए साध मोर छुटाइबो,
सागर छेंचे रतन निबो, कण्ठे राखबो निशि-दिबे ।'

हेमचन्द्र बोले, 'गिरिजाया, तुम्हारा समाचार शुभ है । अच्छा ही हुआ ।'

यह कह कर हेमचन्द्र फिर भीतर चले गये । गिरिजाया के सिर पर तो आकाश ही टूट पड़ा । गिरिजाया ने झूठ ही मृणालिनी के विवाह की बात कह कर हेमचन्द्र की परीक्षा लेना चाहा था । सोचा था, हेमचन्द्र सुन कर चिढ़ेंगे, कातर होंगे । लेकिन यह सब तो कुछ भी न हुआ । तब गिरिजाया ने माथा पीट कर सोचा—'हाय, यह मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
क्या किया ? नाहक क्यों झूठ बोली ? हेमचन्द्र तो कह गए—समाचार शुभ है।' क्यों सुखी हुए ? अब सखी की क्या दशा होगी ?

हेमचन्द्र की बात गिरिजाया भला क्या समझे ! आखिर भिखारिन ही तो ठहरी। जिस क्रोध से यही हेमचन्द्र इसी मृणालिनी के लिए अपने गुरुदेव का सिर काटने को तत्पर हुए थे, आज भी वही दुर्जय क्रोध उनके हृदय में उभरा था। अभिमान की अधिकता और दुर्गम क्रोध के ढंग से ही प्रभावित हो कर हेमचन्द्र ने कहा था—'समाचार शुभ है।'

गिरिजाया इतना सब समझ नहीं सकी। उसने मन में सोचा कि यह छठा लक्षण है। किसी ने उसे भिक्षा नहीं दी, उसने भी आशा त्याग दी।

चुप होकर घर की ओर लौटी।

|६|

एक समाचार और

उसी दिन माधवाचार्य की यात्रा शेष हुई। वे नवद्वीप पहुँचे। पहुँचते ही अपने प्रिय शिष्य हेमचन्द्र को दर्शन दिया, आशीर्वाद दिया; गले लगाया, आलिंगन किया, और कुशल-क्षेम पूछने के बाद एकान्त में बैठ कर दोनों अपने उद्देश्य को पूरा करने के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे।

माधवाचार्य ने विस्तार से अपनी यात्रा का पूरा वृत्तांत सुना कर कहा, 'इतने परिश्रम के बाद कुछ काम बना। इस देश के अधीन राजाओं में अनेक ने रणक्षेत्र में सेना सहित सेन राजा की सहायता करने की बात स्वीकार की है। अब जल्दी ही सब आ कर नवद्वीप में एकत्र होंगे।'

हेमचन्द्र ने कहा, 'यदि वे लोग यहाँ आज ही नहीं पहुँचते तो सब प्रयत्न बेकार हो जाय गा। यवन-सेना आ गई है। जंगल में छावनी डाल कर ठहरी है। एक दो दिनों में ही नगर पर हमला करेगी।'

यह समाचार सुन कर माधवाचार्य काँप उठे। बोले, 'तब गौड़ेश्वर की ओर से क्या तैयारी हुई है ?'

'कुछ भी नहीं।। शायद राजा के कानों तक यह समाचार अभी तक नहीं पहुँचा है। मैंने तो अचानक कल यह समाचार पाया।'

'इस सम्बन्ध में तुमने राजा के सामने यह परामर्श क्यों नहीं रखा ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'समाचार पाने के तत्काल बाद ही राह में डाकुओं द्वारा घायल हो कर मैं सड़क पर पड़ा था, अभी-अभी घर लौट कर कुछ विश्राम करके थोड़ा स्वस्थ हुआ हूँ। कमजोरी के कारण राजा के पास जाने की शक्ति भी नहीं थी। अब जाता हूँ।'

'नहीं, अभी तुम विश्राम करो। मैं ही राजा के पास जाता हूँ। फिर जैसा होगा, पीछे तुम्हें समाचार दूँगा।'

यह कह कर माधवाचार्य उठ खड़े हुए।

तब हेमचन्द्र ने कहा, प्रभो ! आप तो गौड़ तक गये थे। सुना है कि—'

माधवाचार्य ने मतलब समझ कर कहा, 'हाँ, गया तो था। तुम सायद मृणालिनी के समाचार की आशा से पूछ रहे हो ? लेकिन अब मृणालिनी वहाँ नहीं है।'

'कहाँ गई ?'

'यह मैं नहीं जानता, कोई समाचार नहीं मिला।'

'क्यों चली गई ?'

'यह सब बातें अब युद्ध के बाद बताऊँगा।'

'समस्त बातें मुझसे कहने में यह शंका मत कीजिए कि मैं मर्मपीड़ा से कातर हो उठूँगा। मैंने भी कुछ सुना है। आप जो भी जानते हैं, मुझसे निःसंकोच कह सकते हैं।'

माधवाचार्य के गौड़ नगर जाने पर हृषीकेश ने उनसे अपनी शक्ति भर मृणालिनी के बारे में खूब बढ़ा-चढ़ा कर कहा था। उसी को माधवाचार्य ने भी सच्चा वृत्तांत समझा। माधवाचार्य कभी भी स्त्री-जाति के अनुरागी नहीं। इसीलिए वे अच्छी तरह-स्त्री-चरित्र को समझते भी न थे। इस समय हेमचन्द्र की बात सुन कर उन्होंने समझा कि हेमचन्द्र ने वही सब हाल सुन कर मृणालिनी के प्रति मोह त्याग दिया है, इसलिए किसी नई मर्मपीड़ा की सम्भावना न समझ, फिर बैठ कर उन्होंने हृषीकेश द्वारा सुना पूरा वृत्तांत विस्तार से हेमचन्द्र को सुनाया।

हेमचन्द्र ने सिर झुका कर, हथेली पर माथा रख कर चुपचाप सब कुछ ध्यान से सुना। माधवाचार्य की बात पूरी होने पर भी कुछ न बोले। उसी तरह चुपचाप बैठे रहे। तब माधवाचार्य ने पुकारा, 'हेमचन्द्र !'

कोई उत्तर न मिला।

फिर पुकारा, 'हेमचन्द्र !'

फिर भी जवाब न मिला।

तब माधवाचार्य ने खड़े हो कर हेमचन्द्र का हाथ पकड़ कर बहुत ही कोमल और स्नेह भरे स्वर से कहा, 'वत्स ! तात ! मुँह ऊपर उठाओ। मुझसे बातें तो करो।'

हेमचन्द्र ने मुँह उठाया। उस मुँह को देख कर माधवाचार्य डर गये। बोले, 'मुझसे बातें करो। अगर नाराज हुए हो तो उसे ही प्रकट करो।'

तब हेमचन्द ने कहा, 'किसकी बात का विश्वास करूँ ? आप कहते हैं कि हृषी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
केश का ऐसा कहना है और भिखारिणी तो और ही तरह की बातें कह रही थी।'

'कौन भिखारिणी ? उसने क्या कहा है ?'

हेमचन्द्र ने संक्षेप में गिरिजाया की बताई बातें बता दीं।

तब माधवाचार्य ने संकुचित स्वर में कहा, 'मुझे तो अब हृषीकेश की ही बात झूठ जान पड़ती है।'

'लेकिन हृषीकेश की बात तो प्रत्यक्ष है।' कह कर हेमचन्द्र उठ खड़े हुए। उन्होंने पिता का दिया भाला हाथ में ले लिया। फिर काँपते शरीर से चुपचाप टहलने लगे।

आचार्य ने पूछा, 'क्या सोच रहे हो ?'

हेमचन्द्र ने हाथ के भाले को आगे बढ़ा कर दिखा कर कहा, 'मृणालिनी को इसी भाले से छेद दूँगा।'

माधवाचार्य इस समय हेमचन्द्र के चेहरे के भाव-कांति को देख कर काँप उठे। चुपचाप वहाँ से चले गये।

सबेरे ही तो मृणालिनी ने कहा था—'हेमचन्द्र मेरे ही हैं।'

| ६ |

मैं तो पागल हूँ

दोपहर ढलते माधवाचार्य लौटे। यह समाचार ले आये कि धर्माधिकारी ने बताया है कि सेना आई है जरूर, लेकिन पूर्व विजित राज्य में विद्रोह की सम्भावना जान, अब यवन सेनापति संधि करने की इच्छा रखते हैं। कल वह अपना दूत भी भेजेंगे। दूत के आने की बात पर युद्ध की कोई तैयारी नहीं हो रही है। यही समाचार दे कर माधवाचार्य ने कहा, 'वह मूर्ख और कुलांगार राजा इसी धर्माधिकारी की बुद्धि के कारण ही नष्ट होगा।'

पता नहीं कितनी बातें हेमचन्द्र सुन सका। उसे अनमना देख माधवाचार्य वहाँ से चले गये।

शाम को मनोरमा हेमचन्द्र के घर पहुँची। हेमचन्द्र को देख कर मनोरमा ने कहा, 'भाई, आज तुम इतने अनमने क्यों हो ? तुम्हारे चेहरे पर सावन की घटाओं जैसे अंधेरा छाया है। भादों की गङ्गा की तरह क्रोध उमड़ रहा है। इतना भौंहें क्यों चढ़ाते हो ? और—और देख रहा हूँ, आँखें गीली हैं। क्या अभी तुम रोये थे ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेमचन्द्र मनोरमा के मुँह की ओर ताकने लगा। फिर आँखें झुका लीं। फिर ऊँची खिड़की की ओर देखा, फिर मनोरमा का चेहरा ताका। मनोरमा समझ गई कि यह दृष्टि बिना किसी अर्थ की है। मनोरमा ने कहा, 'हेमचन्द्र ! तुम क्यों इतने कातर हो रहे हो ? क्या बात है ?'

'कुछ नहीं।'

मनोरमा पहले तो कुछ नहीं बोली। फिर अपने आप बड़बड़ाने लगी। बोली, 'कुछ नहीं कहूँगी। छिः छिः ! मन के भीतर ही बिच्छू पालूँगो।' कहते कहते मनोरमा की आँखों से आँसू गिरने लगे। फिर एकाएक हेमचन्द्र की ओर मुँह करके कहा, 'मुझसे क्यों नहीं कहोगे, मैं तुम्हारी बहन हूँ न !'

मनोरमा के चेहरे के भाव, शान्त-दृष्टि और आदर, मधुरता से इतनी सहृदयता टपकी कि हेमचन्द्र का मन द्रवीभूत हो उठा। बोले, 'मुझे जो क्लेश इस समय हो रहा है, वह बहन के आगे बताने लायक नहीं है।'

'तब मैं बहन नहीं हूँ।'

इस पर हेमचन्द्र कुछ न बोले, फिर भी मनोरमा आशाभरी निगाहों से उनकी ओर ताकती रही। फिर कहा, 'तो मैं तुम्हारी कोई नहीं।'

'मैं क्या करूँ ? वह बात न तो बहन के सुनने लायक है न किसी और के ही।'

हेमचन्द्र का स्वर अत्यन्त करुण तथा दीनता से भरा है, यह बात मनोरमा को खटकी। उसी क्षण उसका स्वर बदला और उसकी आँखों से चिनगारियाँ छिटकने लगीं। अपने होंठ काटते हुए, उसने हेमचन्द्र से कहा, 'मुझे कोई दुख नहीं, मैंने मणि के भ्रम में एक काले सांप को गले में लपेट लिया था, अब फेंक दिया।'

कह कर मनोरमा फिर हेमचन्द्र की ओर ताकने लगी। धीरे-धीरे उसका कठोर हो गया चेहरा मधुर हो उठा, वह बोली, 'समझ गई। तुमने बिना परखे प्रेम किया है, उसी का परिणाम हुआ।'

'प्रेम किया था !' कहते-कहते हेमचन्द्र का चेहरा आँसुओं से गीला हो गया। यह देख कर मनोरमा चिढ़ गई। बोली, 'छिः छिः, प्रेम किया था ? तुम अब भी प्रेम करते हो। नहीं तो रोते क्यों ?' कहते-कहते मनोरमा के चेहरे पर एक प्रौढ़ता आई, उसकी आँखें चमकने लगीं, कण्ठ-स्वर और साफ हो गया, आग्रह भी काँपने लगा, बोली, 'यह केवल पुरुषों का दर्प है। अहंकार से आग नहीं बुझाई जा सकती। तुम बालू को बाँध कर गङ्गा का वेग रोकना चाहते हो ! तुम प्रणयिनी को पापिष्ठा समझ कर कभी प्रणय का वेग नहीं रोक सकते ! हे कृष्ण ! सभी पुरुष एक जैसे होते हैं !'

हेमचन्द्र ने मन ही मन सोचा, 'मैं तो इसे बालिका ही समझता रहा हूँ। लेकिन यह मात्र बालिका नहीं है।'

मनोरमा बोली, 'तुमने पुराण सुना है ? मैंने अर्थ सहित सुना है। उसमें लिखा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि भगीरथ गङ्गा ले आये थे। एक दम्भी हाथी उसका वेग रोकने जा कर बह गया था। इसके क्या मतलब हैं—गङ्गा प्रेम-प्रवाह की तरह है, ईश्वर के चरणों से निकली है। जगत में पवित्र मानी गई है—जो इसमें स्नान करे वह पुण्य का भागी होता है। वह मृत्युंजय की जटा में विहार करने वाली है। जो मृत्यु को जीत सकता है वही प्रणय को मस्तक पर धारण कर सकता है। मैंने जो कुछ सुना है, ठीक वही कह रही हूँ। हाथी दम्भ का प्रतीक है, वह प्रणय-वेग के सामने नहीं ठहर पाता, बह जाता है। पहले प्रणय अकेले पथ पर चलता हुआ समय आने पर शतमुखी होता है और अन्त में सागर-संगम में जा कर लुप्त होता है—संसार के सभी जीव एक दिन विलीन हो जाते हैं।'

'तो क्या प्रणय में पात्र का चुनाव नहीं है? क्या पापी से भी प्रेम करना पड़े गा।'

'प्रेम तो सभी से करना चाहिए। प्रेम के लिए पात्र-चुनाव नहीं होता। प्रेम उत्पन्न होते ही प्रेम का यत्न करना चाहिए। क्योंकि प्रणय अमूल्य है। अच्छे से तो सभी प्रेम करते हैं, जो बुरा है, जो अपने को भूल कर प्रेम करता है, मैं उससे ही अधिक प्रेम करती हूँ, लेकिन मैं तो पागल हूँ।'

हेमचन्द्र चकित हो मनोरमा को देखते-सुनते रहे। फिर बोले, 'मनोरमा! यह सब तुमने कहाँ सीखा? तुम्हारा ज्ञानदाता अलौकिक व्यक्ति होगा।'

'वह सर्वज्ञानी है किन्तु—'

'किन्तु क्यों?'

'वह अग्नि के रूप में प्रकाशित होते हैं पर जलाते भी हैं।'

'मनोरमा, तुम्हें देख कर और तुम्हारी बातें सुन कर मुझे लगता है कि तुमने भी प्रेम किया है।'

मनोरमा बोली नहीं। चुप रही। तब हेमचन्द्र ने कहा, 'अगर यह सच है तो मेरी एक बात सुनो। स्त्रियों के लिए सतीत्व से बड़ा कोई धर्म नहीं, जिस स्त्री में सतीत्व नहीं, वह सूकरी से भी बढ़ कर नीच है। ऐसा नहीं कि केवल कार्य से ही सतीत्व की हानि होती है, पति के अलावा अन्य पुरुष की चिन्ता भी सतीत्व में बाधा है। तुम विधवा हो, यदि पति के अलावा और किसी को मन में जगह दो गी तो तुम अधम होगी। इसलिए, सावधान हो। अगर किसी की ओर चित्त गया हो तो उसे भूल जाओ।'

मनोरमा एकाएक ठठा कर हँस पड़ी। मुँह पर आँचल रख कर हँसने लगी। हँसती ही जाती है। रुकती ही नहीं। तब ऊब कर हेमचन्द्र ने क्रोध दिखा कर कहा, 'इतना हँसती क्यों हो?'

तब मनोरमा बोली, 'भाई, जा कर गंगा से कहो कि तुम पर्वत पर लौट जाओ।'

'क्यों?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्मृति पर क्या अपना अधिकार है ? काले साँप को अपने मन में पालने में भला क्या सुख है ? फिर भी तुम उसे क्यों नहीं भूल पाते ?'

'उसके दंशन की ज्वाला के कारण ।'

'यदि वह न काटे तो क्या उसे भूल जाओ गे ?'

हेमचन्द्र चुप रहा, जवाब न दे सका । मनोरमा ने फिर कहा, 'तुम्हारी फूल की माला काला साँप हो रही है । तुम उसे कभी भूल नहीं सकते । मैं अपनी फूल की माला को क्यों तोड़ूँ ? मैं तो पागल हूँ ।'

'तुम ठीक कहती हो । स्मृति अपने अधीन नहीं । लोग अपने बड़प्पन से अंधे हो कर दूसरों को उपदेश देते हैं, लेकिन यह हास्यास्पद है । किसी से कोई अर्थ-यश-ज्ञान-भूख-प्यास-नींद छोड़ने को नहीं कहता, केवल प्रणय छोड़ने का उपदेश देता है ! क्या प्रेम इतना छोटा है ? धर्म के लिए प्रेम चाहिए । स्त्री का परमधर्म है सतीत्व ।'

'मैं अबला, मूर्खा, ज्ञान-हीना, मैं यह सब नहीं जानती ।'

'सावधान, मनोरमा ! वासना से भ्रान्ति उत्पन्न होती है, भ्रान्ति से अधर्म उपजता है । तुम्हें भ्रान्ति है । तुम विचार कर के देखो तो सही, तुम यदि धर्म के अनुसार एक की पत्नी हो चुकी हो. तब तुम मन से दूसरे की पत्नी बनो तो दुराचारिणी हो गी कि नहीं ?'

वहाँ एक ओर एक तलवार लटक रही थी । उस तलवार को हाथ में ले कर मनोरमा ने कहा, 'भाई हेमचन्द्र, तुम्हारी ढाल पर किसका चमड़ा है ?'

हेमचन्द्र हँस पड़े ।

हेमचन्द्र ने मनोरमा की ओर देखा—निरी बालिका है ।

७

गिरिजाया की खबर

गिरिजाया जब लौट कर आई, तब तक वह मन ही मन स्थिर कर चुकी थी कि चाहे जान भी जाय पर वह हेमचन्द्र के नए अनुराग की बात मृणालिनी से कभी नहीं बताए गी । उधर उसकी प्रतीक्षा में मृणालिनी पिंजड़े में बंद पक्षी की तरह तड़फड़ा रही थी । देखते ही उसने गिरिजाया से पूछा, 'कहो गिरिजाया, क्या देखा ? हेमचन्द्र कैसे हैं ?'

'अच्छे हैं ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इस तरह क्यों बोलती हो ? तुम्हारी बातों में उत्साह नहीं दिखता ।'

'सो कैसे ?'

'गिरिजाया, तू मुझे धोखा नहीं दे सकती। क्या हेमचन्द्र स्वस्थ नहीं हुए ? मुझसे साफ-साफ बता न !'

इस बार हँसने की कोशिश कर के गिरिजाया बोली, 'इस तरह तुम बिना मतलब क्यों व्याकुल हो रही हो । मैं साफ ही बता रही हूँ, उनके शरीर में कोई कष्ट नहीं है । उठ कर चलते फिरते भी हैं ।'

कुछ देर सोच कर मृणालिनी बोली, 'मनोरमा के साथ उनकी कोई बातचीत तू ने सुनी ?'

'हाँ सुनी ।'

'क्या सुना ?'

तब गिरिजाया ने हेमचन्द्र की कही बातें बता दीं । बस हेमचन्द्र और मनोरमा का रात में घूमना और गुपचुप बातें करने वाली बात छिपा ले गई । मृणालिनी ने पूछा, 'तुमने उनसे भेंट की ?'

पहले तो गिरिजाया ने इधर-उधर किया फिर बोली, 'हाँ की ।'

'उन्होंने क्या कहा ?'

'तुम्हारा हाल पूछा ।'

'तुमने क्या कहा ?'

'मैंने कहा कि तुम ठीक हो ।'

'क्या पूछा कि मैं आयी हूँ ?'

'नहीं ।'

'गिरिजाया, तुम ठीक से जवाब नहीं दे रही हो, टाल-टूल करती हो । तुम्हारा चेहरा भी उतरा है । तुम मेरी ओर देख भी नहीं रहीं । मैं समझ रही हूँ कि कोई अमंगल समाचार तुम मुझसे छिपा रही हो । मुझे भी तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है । अब मेरे भाग्य में चाहे जो हो, मैं खुद हेमचन्द्र को देखने जाऊँगी । चाहो तो मेरे साथ चलो, नहीं तो मैं अकेली ही जाऊँगी ।'

कह कर मृणालिनि घूँघट में मुँह छिपा कर तेजी से सड़क पर निकल गई । गिरिजाया उसके पीछे दौड़ी । थोड़ी दूर जा कर, उसका हाथ पकड़ कर कहा, 'सखी, लौट आओ । मैंने जो छिपाया था, बता देती हूँ ।'

तब मृणालिनी गिरिजाया के साथ वापस आ गई । तब गिरिजाया ने जो कुछ छिपाया था, सब सविस्तार कह सुनाया ।

गिरिजाया ने हेमचन्द्र को ठगा था, पर वह मृणालिनी को न ठग सकी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृणालिनी की लिपि

मृणालिनी बोली, 'गिरिजाया, उन्होंने क्रोध से ही कहा होगा कि अच्छा हुआ। जो कुछ तू ने कहा, उसे सुन कर क्रोध क्यों न करेंगे ?'

'हाँ संभव है।'

'लेकिन तू ने यह सब कह कर अच्छा नहीं किया। अब इसका कुछ उपाय करना हो गा। तू जा, खाना खा ले। तब तक मैं एक पत्र लिखती हूँ, खाने के बाद वह पत्र ले कर तू उनके पास जाना।'

गिरिजाया चली गई। तब मृणालिनी ने लिखा—

'गिरिजाया झूठी है। किसलिए उसने तुमसे मेरे सम्बन्ध में झूठ बात कही उससे पूछने पर वही तुम्हें कारण बतावेगी। मैं मथुरा नहीं गई। जिस रात तुम्हारी अँगूठी देख कर मैं यमुना तीर पर आई थी, उसी क्षण से मेरे लिए मथुरा का रास्ता बन्द हो गया। मैं मथुरा न जा कर तुम्हें देखने नवद्वीप आ गई। यहाँ आ कर भी अभी तक तुमसे भेंट नहीं की, क्योंकि इससे तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग होती। मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हें देखूँ। तुमसे भेंट करना आवश्यक है।'

गिरिजाया पत्र ले कर फिर हेमचन्द्र के घर की ओर गई। शाम को मनोरमा से बातचीत करने के बाद हेमचन्द्र गंगा-दर्शन के लिए निकले थे। रास्ते में ही गिरिजाया से भेंट हो गई। गिरिजाया ने उन्हें पत्र दिया।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम फिर क्यों आईं ?'

'यह पत्र ले कर।'

'किसका पत्र ?'

'मृणालिनी का।'

'यह पत्र तुम्हारे पास कैसे आया।'

'मृणालिनी नवद्वीप में ही हैं। मैंने उनके मथुरा जाने की बात आप से झूठ कही थी।'

'यह पत्र उन्हीं का है ?' पूछ कर हेमचन्द्र ने बिना पढ़े ही पत्र को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। फिर वहीं फेंक कर कहा' 'मैं पहले ही समझता था कि तू झूठी है। तू जिसका पत्र लाई है, वह विवाह करने नहीं गई, हृषिकेश ने उसे घर से निकाल दिया है, यह सब मैं सुन चुका हूँ। मैं कुलटा का पत्र नहीं पढ़ूँगा। तू भी मेरे सामने से चली जा !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चकित दृष्टि से गिरिजाया हेमचन्द्र की ओर देखने लगी। हटी नहीं। तब पेड़ से एक टहनी तोड़ कर हेमचन्द्र ने कहा, 'चली जा, नहीं तो पीटूँगा।'

अब गिरिजाया से सहा न गया। वह दर्प के साथ बोली, 'वीर पुरुष हो! शायद यही वीरता दिखाने नदिया में आये हो! इतनी दूर क्यों आये? यह वीरता तो मगध में भी दिखा सकते थे! क्या तुर्कों का जूता ढोने और गरीब लड़की को छड़ी मारने आए हो?'

लजा कर हेमचन्द्र ने छड़ी फेंक दी। लेकिन गिरिजाया शान्त न हो सकी। बोली, 'तुम मृणालिनी से विवाह करो गे? मृगालिनी की बात तो दूर रही, तुम तो मेरे योग्य भी नहीं हो!'

कह कर गिरिजाया दर्प के साथ घूमी और चली गई। हेमचन्द्र उसका अभिमान देख कर दंग रह गये।

लौट कर गिरिजाया ने हेमचन्द्र का आचरण मृणालिनी से कह सुनाया। इस बार उसने कुछ न छिपाया। मृणालिनी ने भी चुपचाप सुन लिया। कोई जवाब न दिया। रोई भी नहीं। जैसे बैठी थी, वैसी ही बैठी रही। यह देख कर गिरिजाया शंकित हुई। उस समय ठीक अवसर न समझ मृणालिनी से बात किए बिना ही वहाँ से टल गई।

घर से थोड़ी दूर पर जो छोटा सा सरोवर है, उसी की सीढ़ी पर गिरिजाया जा बैठी। शारदीया चाँदनी फैली थी। सरोवर में अधखिले कमल थे। चारों ओर पेड़ खड़े थे। वहीं गिरिजाया सीढ़ी पर बैठ गई।

गिरिजाया ने धीरे-धीरे गाना शुरू किया। धीरे-धीरे स्वर तेज हुआ। फिर इतने तेज स्वर में गाने लगी कि वहाँ बैठी मृणालिनी भी सुन सकी। उसने गाया—

'पराण ना गेलो।

जो दिन पेखुनु सई जमुना के तीरे,
गायत नाचत सुन्दर धीरे-धीरे,
ओंही पर पिय सइँ, काहे कालो नीरे,
जीवन ना गेलो?

फिरि घर आयनु, ना कहनु वोलि,
तितायनु आँखिनीरे आपना आँचलि,
रोई रोई पिय सई काहे लो पराणि,
तई खन ना गेलो?

शुनतू श्रवण पथे मधुर बाजे,
राधे राधे राधे राधे विपिन माझे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यव शुनन लागे सई, सो मधुर बोलि,
जीवन न गेलो ?

धायनु पिय सई सोहि उपकूले,
लुटायनु काँदि सई, श्याम पद मूले,
सोहि पदमूले रई, काहे लो हामारि,
मरण ना भेलो ?'

गिरिजाया को गाते-गाते लगा कि कोई छाया हिली। घूम कर देखा कि मृणालिनी खड़ी है। उसके चेहरे को देखा—वह रो रही थी।

देख कर गिरिजाया खुश हुई। वह समझ न सकी कि रोने से मृणालिनी का दुख कम हुआ है। यह बात सभी नहीं समझते—लोग समझते हैं कि आँसू नहीं आए तो दुख कैसा ? यदि संसार में सब लोग यह समझते कि आँसू से दुख घटता हैं तो कितनी ही मर्म पीड़ाओं का निवारण हो जाता।

थोड़ी देर दोनों ही चुप रहीं। मृणालिनी बोल नहीं पा रही थी। गिरिजाया भी कुछ न बोली। अन्त में मृणालिनी ने ही कहा, 'गिरिजाया, सखी, तुम्हें एक बार और जाना होगा।'

'फिर उस पाषाण के पास जाऊँ ?'

'पाषाण मत कहो। हेमचन्द्र को भ्रम हुआ है। इस धरती पर कौन अभ्रान्त है ? मैं अब खुद ही उनके पास जाऊँगी, तुम मेरे साथ चलो। तुम मेरे लिए बहन से भी बढ़ कर हो, मेरे लिए तुमने क्या कुछ नहीं किया ? मैं जानती हूँ कि तुम अकारण मुझे कष्ट न दो गी। ऐसी बातों में झूठ भी न बोलो गी। लेकिन मेरे किसी अपराध के बिना ही हेमचन्द्र मुझे त्याग दें गे, यह उनके मुँह से सुने बिना कैसे विश्वास करूँ ? अगर स्वयं अपने कानों से सुनूँ कि मृणालिनी को कुलटा समझ कर उन्होंने त्याग दिया है, तब मैं इस शरीर को ही नष्ट कर दूँगी।'

'प्राण त्याग दो गी ? ऐसा क्यों मृणालिनी ?'

मृणालिनी ने कोई जवाब नहीं दिया। गिरिजाया के कंधे पर बाँह रख कर फफक कर रो पड़ी। गिरिजाया भी रोने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरलामृत

माधवाचार्य की बातों पर विश्वास कर के हेमचन्द्र ने मृणालिनी को दुश्चरित्रा समझ लिया था। बिना पढ़े ही मृणालिनी का पत्र भी फाड़ डाला था, उसकी दूती को पीटने को तैयार हो गए थे। लेकिन इतने से भी यह सिद्ध नहीं होता कि वे मृणालिनी से प्रेम नहीं करते थे। मृणालिनी के लिए ही राज्य त्याग कर वे मथुरावासी हुए थे। गुरू पर तीर चलाने को तत्पर हुए थे, गौड़ में भिखारिणी की खुशामद की थी। और अब भाला दिखा कर आचार्य से कहा था—मृणालिनी को इसी भाले से छेद दूँगा। लेकिन क्या इतने से ही उनका स्नेह समाप्त हो गया ? क्या स्नेह कभी समाप्त होता है ? बहुत दिनों तक पहाड़ों में भटकने वाली जल-धारा क्या कभी सूर्य-ताप से सूख जाती है ? पानी अपने लिए जो राह बनाता है, उसी राह पर वह बहता भी है। उसकी राह रोकी जाने पर वह धरती पर फैल जाता है।

उस रात हेमचन्द्र अपने पलंग पर पड़े खुली खिड़की की राह बाहर देख रहे थे पर क्या रात की शोभा देख रहे थे ? यदि कोई उस समय उनसे पूछता कि रात अंधेरी हैं या चाँदनी, तो शायद वे बता न पाते। उस समय वे केवल हृदय में उदित रजनी को ही देख रहे थे। उस समय चाँदनी रात थी। नहीं तो उनका सिरहाना गीला क्यों होता ? केवल बादल छाये थे। जिसके हृदयाकाश में अंधकार छाया रहता है, वह रोता नहीं।

जो कभी रोया नहीं वह अधम है, उस पर कभी विश्वास न करना। समझ लेना कि उसने कभी पृथ्वी के सुख को नहीं भोगा। दूसरे का सुख कभी वह सह नहीं सकता।

हेमचन्द्र रो रहे थे। जिसे पापिष्ठा और मन में स्थान देने के अयोग्य समझ रहे थे, उसी के लिए रो रहे थे। वह केवल मृणालिनी के दोष को ही स्मरण नहीं कर रहे थे। बार-बार उन्हें मृणालिनी का चेहरा, प्रेमपूर्ण बातें याद आ रही थीं। क्या मृणालिनी सचमुच अविश्वासिनी है ? एक समय मथुरा में हेमचन्द्र मृणालिनी के पास एक पत्र भेजने के लिए व्याकुल थे, तब उन्हें कोई उचित वाहक नहीं मिला था। जब उन्होंने मृणालिनी को खिड़की पर देखा था, तब हेमचन्द्र ने एक आम के फल पर लिख कर उसे मृणालिनी के पास खिड़की की राह फेंका था। आम मृणालिनी के कान से जा लगा था, तभी आम के आघात से उसके कान का कुण्डल टूट कर गिर पड़ा था। तब मृणालिनी ने उस पर ध्यान भी न दिया था। उसने कान पर हाथ भी नहीं फेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
था। तत्काल आम पर ही जवाब लिख कर आम वापस फेंका था और जब तक हेमचन्द्र दिखाई पड़ते रहे थे, वह खिड़की से हटी न थी। हेमचन्द्र को यही सब याद आया। वही मृणालिनी क्या अविश्वासिनी हो सकती है? यह कदापि संभव नहीं। और एक दिन मृणालिनी को बिच्छू ने डंक मारा था। दर्द से मृणालिनी मृतप्राय की तरह कातर हो गई थी। उसकी दवा लगाते ही दर्द कुछ कम हो गया था। इसी समय दूती से हेमचन्द्र ने संवाद भेजा कि वे बाग में मृणालिनी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। दर्द को भूल कर उसी क्षण मृणालिनी बाग में भागी आई थीं। हेमचन्द्र को यह भी याद आया। वही मृणालिनी क्या ब्राह्मण-कुल-कलंक व्योमकेश के कारण हेमचन्द्र से विश्वास-घात करेगी? नहीं यह असम्भव है। और फिर एक दिन हेमचन्द्र गुरु दर्शन के लिए मथुरा से जा रहे थे। मथुरा से एक पहर चलने के बाद वे बीमार हुए। राह में पड़ी एक धर्मशाला में वे पड़े थे। किसी तरह यह खबर मृणालिनी को लगी। तब मृणालिनी उसी रात सिर्फ एक दासी को ले कर, इतना रास्ता चल कर हेमचन्द्र की सेवा करने आई थी। जब वह धर्मशाला पहुँची थी तब वह थकान से चूर थी, पाँवों में छाले पड़ गए थे, खून भी बह रहा था। उसी रात मृणालिनी को पिता के भय के कारण वापस आना पड़ा था। घर आ कर वह स्वयं बीमार हो गई थी। यह सब भी हेमचन्द्र को याद आया। वही मृणालिनी क्या नराधम व्योमकेश के लिए उसे त्यागेगी? जो ऐसी बात पर विश्वास करे वह निरा मूर्ख है, नराधम है। हेमचन्द्र बार-बार पछता रहे थे—मैंने मृणालिनी का पत्र क्यों नहीं पढ़ा? यह क्यों नहीं जानना चाहा कि वह नवद्वीप में क्यों आई है?—पत्र के जो टुकड़े फेंके थे, शायद वे मिल जायें, तो उन्हें जोड़-जाड़ कर पढ़ने का प्रयत्न करें—यही सोच कर एक बार वहाँ तक गए भी पर एक भी टुकड़ा वहाँ न मिला। टुकड़े हवा में उड़ गये थे। यदि उस समय अपनी बाँह काट देने से भी हेमचन्द्र पत्र के टुकड़े पा जाते तो काट देते।

हेमचन्द्र ने फिर सोचा, आचार्य झूठ क्यों बोलेंगे? वे मुझ पर पुत्रवत् स्नेह रखते हैं। इस समाचार से होने वाले कष्ट और यंत्रणा का उन्हें अंदाज है, फिर वे झूठ बोल कर व्यर्थ ही क्यों यंत्रणा देंगे? फिर उन्होंने कुछ अपने मन से तो कहा भी नहीं। मैंने ही जिद कर के उनसे बातें कहलवा लीं। जब मैंने ही कहा कि मैं सब जानता हूँ, तभी उन्होंने बताया था। हो सकता है कि हृषिकेश ने ही उनसे झूठी बातें कही हों। लेकिन हृषिकेश भी अकारण गुरु से झूठ क्यों बोलेंगे? फिर मृणालिनी भी उनका घर छोड़ कर नवद्वीप क्यों आई?

यह सब सोच कर हेमचन्द्र के चेहरे पर अंधकार छा गया, माथे पर पसीना हो आया। वे उठ कर बैठ गये। दम्भ से ओंठ काटने लगे, आँख लाल हो कर फैल गई। भाला उठाने के लिए मुट्ठी बँध गई। फिर जैसे ही मृणालिनी के प्रेममय चेहरे की याद आई, वैसे ही वे कटे वृक्ष की तरह शय्या पर गिर पड़े। तकिये में मुँह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाड़ कर बच्चों की तरह रोने लगे। हेमचन्द्र इसी तरह से विकल हो रहे थे। उसी समय उनके कमरे का दरवाजा खुला। गिरिजाया भीतर आई।

हेमचन्द्र ने पहले समझा कि मनोरमा है। पर जल्दी ही देखा कि वह कोमल मूर्ति नहीं है। गौर से देख कर पहचाना—गिरिजाया थी। पहले वे चकित-विस्मित हुए, फिर आल्हादित हुए। पूछा, 'तुम फिर क्यों आई ?'

'मैं मृणालिनी की दासी हूँ। आप ने मृणालिनी को त्याग दिया है पर अभी मृणालिनी ने तो आप को नहीं त्यागा। इस लिए मुझे फिर आना पड़ा हैं। मुझे छड़ी मारने का मन हो तो मारिए। मैंने निश्चय किया है कि इस बार उनके लिए मैं वह भी सह लूँगी।'

इस तिरस्कार से हेमचन्द्र लजाए। कहा, 'तुम शंका मत करो। स्त्री पर मैं हाथ नहीं उठाऊँ गा। पर तुम क्यों आई हो ? मृणालिनी कहाँ है ? तुमने तभी बताया था कि वह नवद्वीप में आई है, लेकिन नवद्वीप में वह क्यों आई है ? मैंने वह पत्र न पढ़ कर बड़ी भूल की है।'

'मृणालिनी आप को देखने ही नवद्वीप आई हैं।'

हेमचन्द्र के शरीर में काँटे चुभने लगे। इसी मृणालिनी को उन्होंने कुलटा समझ कर तिरस्कृत किया है ! उन्होंने फिर गिरिजाया से पूछा, 'मृणालिनी कहाँ है ?'

'वह आप से जीवन भर के लिए विदा लेने आई हैं। वहाँ सरोवर के किनारे खड़ी हैं। क्या आप चलिएगा ?'

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही गिरिजाया लौट चली। हेमचन्द्र उसके पीछे दौड़े। गिरिजाया सीधे सरोवर के किनारे वहाँ पहुँची, जहाँ मृणालिनी सीढ़ी पर बैठी थी। हेमचन्द्र भी वहाँ आये। गिरिजाया ने कहा, 'सखी उठो ! राज-पुत्र आये हैं।'

एक झटके से मृणालिनी उठ खड़ी हुई ! दोनों ने एक दूसरे के चेहरे की ओर देखा। मृणालिनी की दृष्टि लोप हुई, आँसुओं से आँखें भर आईं। जैसे सहारे की डाल टूट जाने से डाल से लिपटी लता जमीन पर गिर पड़ती है, वैसे ही मृणालिनी भी सहारा हीन लता की तरह हेमचन्द्र के पैरों पर गिर पड़ी।

गिरिजाया दूर हट गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने दिनों बाद

हेमचन्द्र ने मृणालिनी का हाथ पकड़ कर उठाया। तब दोनों एक दूसरे के सामने खड़े हुए।

इतने दिनों बाद दोनों में भेंट हुई थी। जिस दिन शाम को यमुना के किनारे मौलश्री के नीचे दोनों एक दूसरे से आँखों में आँसू भर कर विदा हुए थे, उसके बाद अब यह भेंट हुई थी। गरमी बीत गई, बरसात बीत गई, अब शरद ऋतु आई, लेकिन इन दोनों के हृदयों में कितने काल बीत गये, इसका हिसाब ऋतुओं के आने-जाने से नहीं लगाया जा सकता।

रात के समय, सरोवर के किनारे दोनों एक दूसरे के सामने खड़े हुए। चारों ओर से पेड़ों की सघनता अंधकार को और भी बढ़ा रही थी। सिर के ऊपर चाँद, तारे और बादल, तथा आकाश चाँदनी में हँस रहे थे। प्रकृति शांत थी, बिना हिले-डुले धैर्य से स्थित थी। उसी धैर्यमयी पृथ्वी के ऊपर मृणालिनी और हेमचन्द्र एक दूसरे के सामने खड़े थे।

दोनों चुपचाप। उनके पास क्या भाषा और शब्द नहीं हैं? उनके मन में क्या कहने-सुनने के लिए कोई बात नहीं है? यदि भाषा और शब्द हैं तो वे लोग बात चीत क्यों नहीं करते? उस समय से एक दूसरे को देखने से ही उनका मन उन्मत्त था। फिर बात चीत कैसे होती! इस क्षण मात्र प्रणयी के सामने खड़े होने में जिस अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा था कि हृदय में आज किसी सुख के लिए जगह ही न थी। जिसे यह सुख मिल जाये वह किसी अन्य सुख की कामना ही नहीं करता।

ऐसे समय में मन में इतनी बातें होती हैं कि कौन सी बात पहले कही जाये, यही निश्चय नहीं हो पाता। मनुष्य की भाषा में ऐसा कौन सा शब्द है जो उस समय कहा जाय, यही निश्चय नहीं हो पाता,।

दोनों खड़े-खड़े एक दूसरे का मुँह ताकते रहे। हेमचन्द्र ने मृणालिनी के प्रेममय चेहरे को फिर देखा। हृषीकेश की बात का प्रभाव धीरे-धीरे मिटने लगा। मृणालिनी के चेहरे की एक-एक रेखा में उन्हें पवित्रता ही दिखाई पड़ी। हेमचन्द्र, मृणालिनी की आँखों में देखने लगे। उनसे मात्र प्रेमाश्रु ही बह रहे थे। जिसकी इतनी स्वच्छ व पवित्र आँखें हैं, क्या वह विश्वासघातिनी हो सकती है?

पहले हेमचन्द्र ने ही बात शुरू की। पूछा, 'मृणालिनी, कैसी हो?'

मृणालिनी कोई उत्तर न दे सकी। अभी तक उसका मन शांत न हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसने जवाब देने की चेष्टा की, लेकिन फिर उसकी आँखें भर आईं, गला भी भर आया। फल हुआ कि मुँह से शब्द न निकले।

हेमचन्द्र ने फिर पूछा, 'तुम यहाँ कैसे आईं ?'

इस बार भी मृणलिनी उत्तर न दे सकी। तब हेमचन्द्र ने उसका हाथ पकड़ कर उसे सीढ़ियों पर बैठा लिया और स्वयं भी वहीं बैठ गये। अब तक मृणालिनी के मन में जो अस्थिरता थी वह अब धीरे-धीरे मिटने लगी। धीरे-धीरे उसका सिर अपने आप हेमचन्द्र के कन्धे पर झुक गया। मृणालिनी को इसका होश ही न था। उसकी आँखों से बहती आँसू की अविरल धारा से हेमचन्द्र का कन्धा व छाती भींग गई। इस धरती पर अब तक मृणालिनी ने जितने भी सुखों का अनुभव किया था, उसमें कोई भी सुख इस रुलाई के समान सुखदायी न था।

हेमचन्द्र ने फिर कहा, 'मृणालिनी ? मैंने तुम्हारे प्रति बड़ा अन्याय किया है। मेरे अपराध को क्षमा करना। मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में कलंक की बात सुन कर उस पर विश्वास कर लिया था। विश्वास करने के कितने ही कारण थे। मैं अब जो पूछता हूँ, उसका जवाब देना।'

हेमचन्द्र के कन्धे पर से सिर उठाए बिना ही मृणालिनी ने कहा 'बोलो !'

'तुमने हृषीकेश का घर क्यों छोड़ा ?'

यह प्रश्न सुनते ही क्रोधित नागिन की तरह मृणालिनी ने सिर उठाया। बोली, 'हृषीकेश ने ही मुझे घर से निकाल दिया।'

हेमचन्द्र व्यथित हुए, मन में थोड़ा संदेह और चिन्ता भी हुई। तभी मृणालिनी ने फिर हेमचन्द्र के कन्धे पर अपना सिर रख दिया। वहाँ सिर टिका कर मृणालिनी बड़ा सुख पा रही थी।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'हृषीकेश ने तुम्हें क्यों निकाला ?'

एकाएक मृणालिनी ने हेमचन्द्र की छाती में अपना मुँह छिपा लिया और बहुत ही धीरे स्वर में बोली, 'अब तुमसे क्या कहूँ ? उसने मुझे कुलटा कह कर निकाल दिया।'

सुनते ही तीर की तरह हेमचन्द्र उठ खड़े हुए। झटका लगने से मृणालिनी का सिर सीढ़ी से जा टकराया।

'पापिनी ! अपने ही मुँह से यह स्वीकार करती है ?' दम्भ के साथ कह कर हेमचन्द्र एकाएक वहाँ से चले गये। रास्ते में उन्हें गिरिजाया दिखी। गिरिजाया हेमचन्द्र का चेहरा देख कर चौंक उठी। उसने हेमचन्द्र को रोकना चाहा, पर क्रोध से पागल हो रहे हेमचन्द्र गिरिजाया को लात से मार कर आगे बढ़ गये। बोले, 'तुम जिसकी दूती हो उसे लात मारने से मेरा पाँव भी कलंकित होता, इसलिए तुझे ही मारा है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दनदनाते हुए हेमचन्द्र चले गये ।

जिसमें धैर्य नहीं, जो क्रोध के आते ही अन्धा हो जाय, उसे संसार में कोई सुख नहीं मिलता ।

किसी महान कवि ने कल्पना की है कि केवल अधैर्य के रोष के कारण ही योद्धा-श्रेष्ठ दोणाचार्य मारे गये थे । केवल एक शब्द—'अवश्त्थामा हत:' सुनते ही उन्होंने धनुष-बाण का त्याग कर दिया था । दूसरी बार पूछ कर मतलब समझने का धैर्य भी उनमें न था । हेमचन्द्र में केवल अधैर्य ही नहीं—अधैर्य, अभिमान और क्रोध तीनों थे ।

मृणालिनी चोट लगा सिर पकड़े सीढ़ी पर ही बैठी रही । गिरिजाया ने पूछा, 'सखी, क्या ज्यादा चोट लगी है ?'

'कैसी चोट ?'

'यह तुम्हारे माथे में ।'

'मेरे माथे में ? मुझे नहीं मालूम ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथा भाग

|१|

योजना

जिस क्षण मृणालिनी के सुख का तारा डूब रहा था, ठीक उसी समय गौड़ देश के सौभाग्य का चन्द्रमा भी अस्त हो रहा था। जिस व्यक्ति से गौड़ राज्य की रक्षा होती, वही अलग बैठ कर मकड़ी की तरह जन्मभूमि को जाल में फँसाने के लिए जाल बुन रहा था। रात के समय एकान्त में धर्माधिकारी पशुपति अपने सबसे विश्वासपात्र सहयोगी शांतशील पर रुष्ट हो रहे थे। कह रहे थे, 'शांतशील, सबेरे तुमने जो खबर दी है, उससे तुम्हारी ही क्षमता का परिचय मिलता है। अब तुम पर किसी काम के लिए भरोसा नहीं करूँगा।'

'यह असाध्य कार्य है। यही तो मैं नहीं कर सका। अन्य कामों से मेरी क्षमता का परिचय लीजिए।'

'सैनिकों को क्या आदेश दिया गया है ?'

'यही कि हम लोगों की आज्ञा के बिना कोई तैयारी न हो।'

'मान्तपाल और कोष्ठपालों को क्या कहा गया है ?'

'कि शीघ्र ही यवन-सम्राट के पास से कर ले कर कुछ यवन-दूत के रूप में आने वाले हैं, उन्हें न रोका जाय।'

'दामोदर शर्मा आदेशानुसार काम कर रहे हैं या नहीं ?'

'उन्होंने बड़ी चतुराई का काम किया है।'

'वह क्या ?'

'एक पुराने ग्रंथ के पृष्ठ बदल कर उन्होंने उसमें आप की रचित कविताओं को लगा दिया है। आज सबेरे उन्होंने राजा को वही ग्रन्थ पढ़ कर सुनाया था और माधवाचार्य की खूब निन्दा की थी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उसमें गौड़-विजेता का विस्तृत वर्णन दिया गया है। उस विषय में राजा ने कोई खोज की थी ?'

'हाँ, की थी। मदनसेन हाल में ही काशी से लौट कर आए हैं। कविता में भविष्य के गौड़ विजेता का वर्णन सुन कर राजा ने उन्हें बुला भेजा था। मदनसेन के आने पर राजा ने पूछा, 'क्यों, क्या तुमने मगध में यवन-सम्राट को देखा है ?' उसने कहा, 'हाँ।' तब महाराज ने पूछा, 'वह देखने में कैसा है ?' तब मदनसेन ने बख्तियार खिलजी का वही रूप वर्णित किया जो उसने देखा था। कविता में भी वही वर्णन था। अतः गौड़ राज्य तथा अपने राज्यपद के नाश को ही उन्होंने निश्चित समझा।

'फिर ?'

'फिर राजा रोने लगे ! बोले, 'अब इस बुढ़ापे में मैं क्या करूँ ? देखता हूँ कि अब तो सपरिवार तुर्कों के हाथों मारे जायेंगे।—तब दामोदर ने आप द्वारा समझाए अनुसार कहा, 'महाराज, इस संकट से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि अवसर रहते आप सपरिवार तीर्थ-यात्रा पर चले जायँ। और धर्माधिकारी को राज-काज का भार सौंप जाइए। तभी आप के परिवार की रक्षा सम्भव हो सकेगी। इतने पर भी यदि शास्त्र गलत निकले तो आप राज के राजा तो हैं ही।—तब इस सलाह को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करके राजा ने तत्काल ही नाव तैयार करने की आज्ञा दी। अब वे शीघ्र ही सपरिवार तीर्थ-यात्रा के लिए निकलेंगे।'

इतना बता कर शान्तशील चला गया।

|२|

सूतहीन हार

पशुपति यद्यपि बहुत से नौकरों के साथ ऊँची अट्टालिका में रहते थे फिर भी उनके घर में महाअंधकार छाया है। जिनसे घर में उजाला होता है—पत्नी, पुत्र और परिवार—यह सब उनके घर में कुछ नहीं है।

आज शांतशील से बातें करने के बाद पशुपति को इन सब की याद आई। मन में सोचा—इतने दिनों बाद शायद इस घर का अँधेरा मिटेगा ! यदि भगवती कृपालु होंगी तो इस अँधेरे को मनोरमा ही काटेगी।

यही सब सोचते हुए पशुपति सोने जाने के पहले अपने नियम के अनुसार अष्ट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुजा देवी को प्रणाम करने देव-मन्दिर में गये। जाते ही देखा कि वहाँ पहले से ही मनोरमा बैठी है।

पशुपति ने पूछा, 'मनोरमा, तुम कब आईं ?'

पूजा से बचे फूलों से मनोरमा बिना सूत के ही माला गूँथ रही थी। उसने सुन कर भी पशुपति के प्रश्न का कोई उत्तर न दिया। पशुपति ने कहा, 'तुम मुझसे बातें तो करो। तुम जब तक रहती हो, तब तक मैं सारी चिन्ताएँ भूला रहता हूँ।'

तब मनोरमा ने मुँह ऊपर उठा कर देखा। वह पशुपति के चेहरे की ओर ताकती रही। क्षण भर बाद वह बोली, 'मैं तुम्हीं से कुछ कहने आई थी, लेकिन अब याद नहीं रहा, सब भूल गई।'

'तो याद कर लो, मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

पशुपति बैठे रहे, मनोरमा फिर माला गूँथने लगी।

बहुत देर चुपचाप बैठे रह मर पशुपति ने कहा, 'मुझे भी कुछ कहना है। जरा ध्यान से सुनो। इस आयु तक मैंने केवल विद्या ही पढ़ी है। अर्थोपार्जन भी किया है, पर मैंने संसारी-धर्म नहीं किया। जिसमें अनुराग रहा, वही किया है। लेकिन जब से तुम्हें देखा है, तब से एकमात्र, तुम्हें पाने में ही ध्यान लगा रहता है। इसी उद्देश्य के लिए मैंने यह कठोर कार्यभार उठाया है। यदि ईश्वर कृपा करेंगे तो दो चार दिनों में ही राज्य-प्राप्त करके तुमसे विवाह करूँगा। अभी तक विधवा नाम पर विघ्न है पर शास्त्रीय प्रमाण द्वारा मैं इस विघ्न को समाप्त करूँगा। लेकिन एक और विघ्न है—तुम कुलीन-कन्या हो, जनार्दन शर्मा भी कुलीन-श्रेष्ठ हैं, मैं तो श्रोत्रिय हूँ।'

पता नहीं, मनोरमा यह सब ध्यान से सुन रही थी या नहीं। पशुपति ने देखा कि मनोरमा कुछ खोई-खोई सी है। पशुपति सरला बालिका मनोरमा को चाहते थे—प्रौढ़, गम्भीर, तीक्ष्ण-बुद्धि मनोरमा से उन्हें डर लगता था। आज वह उसका दूसरे प्रकार का ही भाव देख रहे थे। फिर भी हिम्मत करं के पशुपति ने कहा, 'लेकिन कुल-रीति तो श्रद्धामूलक है नहीं, इससे कुल-नाश, धर्म-नाश या जाति-भ्रष्ट नहीं हुआ जा सकता। उनके अनजाने ही यदि तुमसे विवाह कर लूँ तो क्या हानि है ? यदि तुम राजी हो तो ऐसा कर सकता हूँ। बाद में यदि तुम्हारे दादा जानें गे भी तो विवाह लौटा तो लेंगे नहीं।'

मनोरमा ने अब भी कोई जवाब न दिया। पता नहीं, उसने यह सब भी सुना या नहीं ? तभी एक काले रंग की बिल्ली आ कर उसके पास बैठ गई। मनोरमा वह गूँथा गया सूतहीन हार उसे ही पहनाने लगी। पहनाने में माला खुल गई। सूतहीन थी न ! सब फूल बिखर गये। तब अपने सिर से एक बाल तोड़ कर मनोरमा उसी से माला फिर गूँथने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पशुपति मनोरमा से कोई उत्तर न पा, चुपचाप माला के फूलों में व्यस्त मनोरमा की उँगलियों की भंगिमा देख-देख मुग्ध होते रहे।

३

पिंजड़े में

मनोरमा का ध्यान अपनी ओर खींचने और उसका बुद्धि-दीप जलाने के लिए पशुपति बार-बार प्रयत्न करते रहे। लेकिन उन्हें सफलता न मिली। अन्त में उन्होंने कहा, 'मनोरमा, रात अधिक हो गई है, अब मैं सोने जाता हूँ।'

मनोरमा ने अन्यमनस्क हो कर कहा, 'जाओ।'

लेकिन पशुपति सोने न जा सके। बैठ कर माला गूँथने लगे। फिर दूसरा उपाय सोच कर, भय दिखा कर काम बनाने की नियत से, मनोरमा को डराने के लिए पशुपति ने कहा, 'मनोरमा, यदि इसी समय यवन यहाँ आ जायँ तो तुम कहाँ जाओगी?'

मनोरमा ने चेहरा ऊपर उठा कर कहा, 'घर में रहूँगी।'

'घर में तुम्हारी रक्षा कौन करेगा?'

मनोरमा ने लापरवाही से कहा, 'सो नहीं जानती, निरुपाय हूँ।'

पशुपति ने पूछा, 'तुम मुझसे क्या कहने मन्दिर में आई थीं?'

'देवता को प्रणाम करने।'

सुन कर पशुपति चिढ़ गये। बोले, 'मनोरमा! मैं विनती करता हूँ। सुनो, मैं अब जो कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो। तुम मुझसे स्पष्ट बता दो कि तुम मुझसे विवाह करोगी या नहीं?'

अब तक मनोरमा का माला गूँथना पूरा हो गया था। उस माला को वह उसी काली बिल्ली को फिर पहना रही थी। पशुपति की बात शायद उसके कानों तक नहीं पहुँची। बिल्ली भी माला पहनने में बहुत नखरे कर रही थी, नहीं पहनना चाहती थी। जितनी बार मनोरमा उसे माला पहना देती, वह बार-बार सिर झटक कर माला गिरा देती। मनोरमा दाँतों से अपने ओंठ काट, हल्के से मुस्कारकर उसके गले में माला डाल रही थी। तब, जब असह्य हो उठा, पशुपति ने खूब चिढ़ कर बिल्ली को एक चपत मारा। बिल्ली दुम उठाकर एक ओर भाग गई। वैसे ही ओंठ काट कर मनोरमा ने हँसते-हँसते वही माला उठा कर पशुपति के गले में डाल दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्ली की जूठी माला का प्रसाद अपने गले में पाकर धर्माधिकारी पशुपति हतप्रभ रह गये। थोड़ा क्रुद्ध भी हुए लेकिन ओंठ काटती हुई, हास्यमयी षोड़सी की अनुपम व अलौकिक रूप-माधुरी को देख कर उनका सिर चक्कर खाने लगा। उन्होंने मनोरमा को अपने आलिंगन में भर लेने के लिए अपनी बाँहें फैलाईं। लेकिन मनोरमा छटक कर उछली और दूर जा खड़ी हुई। अपनी राह में फन फैलाए काले साँप को देख कर राह चलने वाले जिस तरह दूर जा खड़े होते हैं, उसी तरह मनोरमा भी दूर जा खड़ी हुई।

पशुपति कुछ समझ न पाये, अप्रतिभ हुए, क्षण भर को मनोरमा की ओर वे देख भी न सके। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा—मनोरमा प्रौढ़ आयु वाली हँसमुख, महिमामयी सुन्दरी है।

पशुपति ने कहा, 'मनोरमा, बुरा मत मानना। तुम्हीं मेरी पत्नी हो। तुम मुझसे विवाह करो।'

मनोरमा ने पशुपति की ओर तीव्र कटाक्ष कर के कहा, 'पशुपति! केशव की कन्या कहाँ है?'

'मैं नहीं जानता कि केशव की कन्या कहाँ है, जानना चाहता भी नहीं। तुम्हीं मेरी एकमात्र पत्नी हो।'

'लेकिन मैं जानती हूँ। बताऊँ केशव की कन्या कहाँ है?'

पशुपति आश्चर्य में डूबे मनोरमा के चेहरे की ओर देखते रह गये।

मनोरमा बोली, 'एक ज्योतिषी ने गणना करके बताया था कि केशव की कन्या छोटी आयु में विधवा हो कर पति के साथ सती हो जायगी। इस बात से कम आयु में ही कन्या-वियोग के भय से केशव बहुत दुखी हुए। धर्मनाश के भय से उन्होंने कन्या का विवाह तो किया लेकिन विधि का लिखा अखंड समझ कर विवाह की रात को ही लड़की को ले कर प्रयाग भाग गए। उनका अभिप्राय मात्र इतना ही था कि उनकी कोमल हृदय कन्या अपने स्वामी की मृत्यु का समाचार कभी जान ही न सके। लेकिन ईश्वर का लीला कि कुछ ही दिनों बाद प्रयाग में केशव की मृत्यु हो गई। लड़की की माँ तो बहुत पहले ही मर चुकी थी। तब मृत्यु के समय केशव ने अपनी कन्या हेमवती को आचार्य के हाथ सौंप दिया। मरते समय केशव ने आचार्य से कहा था—'इस अनाथ कन्या को अपने घर में रख कर इसका पालन करें। इसके पति का नाम पशुपति है, पर ज्योतिषी की गणना है कि यह छोटी उम्र में ही पति के साथ सती होगी। इसलिए आप मेरे सामने स्वीकार कीजिए कि इस लड़की से यह सब कभी न कहेंगे—न यही कि पशुपति इसके स्वामी हैं। साथ ही पशुपति से भी यह बात कभी प्रकट मत कीजिए गा कि हेमवती उनकी पत्नी है।—आचार्य ने केशव की इच्छा को ही स्वीकार किया। तब से वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हेमवती को अपने परिवार में रख कर पालन कर रहे हैं और तुम्हारे साथ उसके ब्याह की बात छिपा रखी है।'

'इस समय वह कहाँ है।'

'मैं ही केशव की वह कन्या हूँ। जनार्दन शर्मा मेरे आचार्य हैं।'

एकाएक यह सुन कर पशुपति घबरा उठे। उनका सिर घूमने लगा। कुछ कहे बिना झटपट उन्होंने देवी प्रतिमा के आगे साष्टाँग प्रणाम किया। फिर उठ कर, आगे बढ़े और मनोरमा को छाती से लगाने लगे। पहले की तरह ही मनोरमा फिर छिटक कर दूर हट गई। फिर बोली, 'अभी नहीं, कुछ और भी बातें हैं।'

पशुपति को क्रोध हो आया। बोले, 'मनोरमा, राक्षसी, तू ने अभी तक मुझे इतने अंधकार में क्यों रखा था ?'

'क्या पहले तुम मेरी बात पर विश्वास करते ?'

'मनोरमा तुम्हारी किस बात पर मैंने कब अविश्वास किया है ?' फिर यदि मुझे संदेह होता तो मैं जर्नादन शर्मा से पूछ लेता।'

'तो क्या जर्नादन शर्मा उस बात को प्रकट कर देते ? शिष्य के आगे की गई प्रतिज्ञा से वे बँधे थे।'

'तब उन्होंने यह बात तुमसे क्यों प्रकट की ?'

'उन्होंने मुझसे नहीं कहा। एक दिन एकांत में ब्राह्मणी से कह रहे थे। मैंने छिप कर सब सुना था। और फिर, मैं लोगों के सामने विधवा बताई जाती हूँ। तब भला तुम मेरी बात पर विश्वास करते ? और लोगों के सम्मुख निंदनीय हो कर तुम मुझे कैसे ग्रहण करते ?'

'मैं सब लोगों को इकट्ठा कर उन्हें सब समझा देता।'

'लेकिन विधि के विधान को कैसे टालते ?'

'मैं ग्रह-शांति कराता। अच्छा अब तो जो होना था, वह हो गया। अब यदि मुझे रत्न मिला है तो उसे गले से क्यों उतारूँ ? अब तुम मेरा घर छोड़ कर कभी जा न सकोगी।'

'यह घर तो छोड़ना ही होगा, पशुपति ! मैं आज जो कहने आई हूँ, वह सुनो। यह घर छोड़ दो। अपने राज्य पाने का दुराशा भी छोड़ दो। राजा के अहित की चेष्टा भी छोड़ दो। यह देश छोड़ कर चलो। चलो हमलोग काशीधाम चलें। वहाँ ही मैं तुम्हारी चरण-सेवा कर के अपना जन्म सार्थक करूँगी। जिस दिन हम लोगों की आयु समाप्त होगी, उस दिन हम दोनों साथ-साथ परम-धाम की यात्रा करेंगे। यदि यह स्वीकार करो तो तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति अचल रहेगी, नहीं तो—'

'नहीं तो क्या ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब मनोरमा ने सिर उठा कर, आँखों में आँसू भर कर, देवी-प्रतिमा के सामने हाथ जोड़ कर गद्‌गद् कण्ठ से कहा, 'नहीं तो देवी के सामने शपथ खाती हूँ कि तुम्हारी हमारी यही अंतिम भेंट है। अब इस जीवन में फिर भेंट न होगी।'

तब पशुपति भी देवी के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हुए। बोले, 'मनोरमा मैं भी शपथ लेता हूँ कि मेरा जीवन रहते तुम मेरा घर छोड़ कर नहीं जा सकोगी। मनोरमा, मैंने जिस रास्ते पर कदम रखा है, उस रास्ते से लौट जाने का कोई भी उपाय होता तो मैं लौट जाता। तुम्हें ले कर सब कुछ त्याग कर काशीवास करता। लेकिन मैं इस राह पर बहुत दूर तक आगे बढ़ आया हूँ। अब लौटने का कोई उपाय नहीं है। जो गाँठ लगा ली है, उसे अब खोल नहीं सकता। धारा में नाव छोड़ कर अब लौट नहीं सकता, जो भी होना था, हो गया। क्या इसी के लिए मैं अपने चरम सुख से वंचित होऊँ? तुम मेरी पत्नी हो, मेरे भाग्य में जो कुछ भी हो, मैं तुम्हें अपनी गृहणी बनाऊँ गा। तुम क्षण भर ठहरना। मैं अभी आता हूँ।'

यह कह कर पशुपति मंदिर के बाहर गए। मनोरमा के मन में संशय उत्पन्न हुआ। चिन्तित मन से वह कुछ देर मंदिर में खड़ी रही। अब पशुपति से विदा लिए बिना वह जा भी नहीं सकती थी।

थोड़ी देर बाद पशुपति लौट आए। बोले, 'प्राणाधिके! अब आज तुम मुझे छोड़ कर नहीं जा सकोगी। मैं सभी दरवाजे बन्द कर आया हूँ।'

मनोरमा चिड़िया पिंजड़े में बन्द हो गई।

४

यवन दूत (यमदूत)

उस दिन दोपहर के समय नगर वासियों ने आश्चर्य से देखा कि अनजान व अपरिचित जाति के सत्रह सैनिक सवार सड़क से हो कर राजभवन की ओर जा रहे हैं। उनके आकार और इशारे को देख कर नवद्वीपवासी धन्यवाद देने लगे। उनका लम्बा-चौड़ा पुष्ट शरीर, तपे सोने सा वर्ण, चौड़ा मुँह, घनी काली दाढ़ी, बड़ी-बड़ी चमकदार आँखें और उनका पहनावा अनर्थक चमक-दमक से शून्य था। योद्धाओं जैसा वेश, सर्वांग ढँके हुए जिरह-बख्तर से शोभित, आँखों में दृढ़ प्रतिज्ञा के भाव और जिन सिन्धु पार के घोड़ों की पीठ पर बैठे वे लोग आ रहे थे, वे घोड़े बड़े मनोहर और दर्शनीय थे। पत्थर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के शिलाखंड जैसी उनकी देह-राशि, तेजोगर्व से प्रदीप्त थी। सभी सवार कुशल घुड़सवार थे। उन्हें देख कर नवद्वीपवासी निहाल हो गए और प्रशंसा करने लगे।

सत्रहो सवार गंभीर मुद्रा में चुपचाप राजमहल की ओर चले जा रहे थे। कौतूहल वश किसी नगरवासी ने उनसे कुछ पूछा, तब उनके साथ के एक भाषा जानने वाले ने कहा, 'ये लोग यवन-राजा के दूत हैं।' यही परिचय उन्होंने प्रान्तपाल और काष्ठपालों को भी दिया था—पशुपति की आज्ञा से वही परिचय दे कर वे लोग नगर में घुसे थे।

सवार राजभवन के राज-द्वार पर पहुँचे। बूढ़े राजा की अयोग्यता और पशुपति के परम कौशल से आज राजपुरी प्रायः रक्षकहीन थी। राज सभा भंग हो चुकी थी। राज्य में केवल नागरिक ही थे। थोड़े से दरबान राज-द्वार की रक्षा कर रहे थे। आगन्तुकों को देख कर एक दरबान ने पूछा, 'तुम लोग किस लिए आए हो ?'

यवन-सैनिकों में से एक ने उत्तर दिया, 'हम लोग यवन-राजा के दूत हैं। गौड़ेश्वर से भेंट करें गे।'

दरबान बोला, महाराजधिराज गौड़ेश्वर इस समय अन्तःपुर में हैं। अभी भेंट नहीं हो सकती।'

दरबान की बात न सुन, यवन सैनिक खुले द्वार से भीतर घुसने को उद्यत हुए। सब से आगे एक नाटा, मोटा और अत्यन्त कुरूप यवन था। दरबान उसे रोकने के उद्देश्य से हाथ में भाला ले कर सामने खड़ा हो गया। दरबान ने कहा, 'लौट जाओ नहीं तो मार दूँगा।'

'तू खुद ही मर !' कह कर नाटे यवन ने हाथ की तलवार से एक ही बार में दरबान को काट डाला। दरबान मर गया। तब अपने साथियों की ओर देख कर नाटे यवन ने कहा, 'अब तुम लोग अपना-अपना काम करो।'

तत्काल ही बाकी सोलह सवारों ने ने भीषण जय-ध्वनि की। और देखते ही देखते सोलह सवारों—यवन सैनिकों की कमर से सोलह चमकदार तलवारें निकल पड़ीं। और बिजली की चमक की तरह सबों ने एक साथ तड़प कर दरबानों पर आक्रमण कर दिया। दरबान लोग एकाएक कुछ समझ न पाये। सब लड़ने की तैयारी में भी न थे। अचानक इस भीषण हमले से आत्मरक्षा की कोई चेष्टा भी न कर पाये और देखते-देखते सब मारे गये।

नाटे यवन ने कहा, 'जहाँ जिसे पाओ, उसे मारो। यहाँ फौज नहीं है। बूढ़े राजा को भी मार डालो।'

तब सोलहो यवन सैनिक इधर-उधर बिखर गये। कुछ बिजली की तरह महल में घुस गये। कुछ, बाल-वृद्ध-वनिता जहाँ जो भी नागरिक दिखाई पड़ा उसका सिर तलवार से काटने या भाले से मारने लगे।

नगरवासी भयानक आर्तनाद कर के इधर-उधर भागने लगे। यह घोर आर्तनाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वहाँ तक सुनाई पड़ा, जहाँ बैठे बूढ़े राजा खाना खा रहे थे। सुनते ही उनका मुँह सूख गया। घबरा कर पूछा, 'क्या हुआ ? क्या यवन आ गये ?'

तब भाग कर आए एक नागरिक ने कहा, 'यवन सब को मार कर आप की हत्या करने आ रहे हैं।'

राजा के मुँह का ग्रास बाहर गिर पड़ा। उनका दुबला, सूखा शरीर पानी में पड़े बेंत की तरह काँपने लगा। पास ही राजरानी खड़ी थीं। राजा को भोजन की थाली पर गिरते देख राजरानी ने उनका हाथ पकड़ लिया। बोलीं, 'कोई चिन्ता नहीं। आप उठिए।' कह कर राजा का हाथ पड़क कर उन्होंने उठाया। राजा पुतले की तरह खड़े हो गये।

राजरानी ने कहा, 'चिन्ता क्या है ? नाव में सब सामान तो पहुँच ही गया है। चलिए हम लोग खिड़की की राह से निकल कर नाव द्वारा सोना गाँव चले चलें।'

राजा हाथ भी न धो सके। रानी ने उन्हें खींच कर खिड़की की राह बाहर निकाला और सब सोना गाँव के लिए चल पड़े। उसी राज-कुल-कलंक-वृद्ध-असमर्थ राजा के साथ गौड़ राज्य की राजलक्ष्मी भी चली गई।

केवल सोलह सैनिकों को ले कर आए नाटे, मोटे, कुरूप, बन्दर की सूरत वाले बख्तियार खिलजी ने गौड़ेश्वर की राजपुरी पर अधिकार कर लिया।

इस घटना के, साठ वर्ष बाद, यवन-इतिहासवेत्ता मिनहजउद्दीन ने ऐसा ही लिखा। कहाँ तक सत्य है, और कहाँ तक झूठ, इसे कौन बता सकता है ? मनुष्य के बनाए चित्र में तो सिंह भी पराजित दिखाई पड़ता है, क्योंकि मनुष्य ने सिंह का अपमान करने के लिए ही चित्र बनाया था, यदि सिंह के हाथ में चित्र बनाने का सामान दिया जाता तो वह कैसा चित्र बनाता ? इसमें शक नहीं कि तब मनुष्य चूहे की तरह दिखाई पड़ता। दुर्भाग्य वाली, मंदभागिनी बंगभूमि तो पहले से ही क्षीण-शक्ति है, दुर्बल है, फिर शत्रु के हाथों में ही चित्र-निर्माण-सामग्री भी है।

५

जाल टूटा

गौड़ेश्वर के महल में जम कर बैठने के बाद बख्तियार खिलजी ने धर्माधिकारी पशुपति को बुलाने को आदमी भेजा। उससे यवनों का संधि-बन्धन हुआ था, अब उसी सम्बन्ध में बातें करनी थीं।

पशुपति इधर देवी को प्रणाम कर, क्रुद्ध मनोरमा से विदा ले कर, कुछ प्रसन्न,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कुछ उत्सहित और कुछ शंकित मन से यवन-श्रेष्ठ के पास गये। बख्तियार खिलजी ने उठ कर उनका सादर अभिवादन किया और कुशल-मंगल पूछा। पशुपति रास्ते में राजा के दासों के रक्त से अपने पाँव धोते आए थे, सहसा खिलजी के आदर-अभिवादन का कोई उत्तर न दे सके। तब बख्तियार खिलजी ने उनके मन का भाव समझ कर कहा, 'पांडितवर, राजसिंहासन पर बैठने की राह कोई फूलों की राह नहीं है। इस रास्ते पर बढ़ने से मित्रों की लाशों और सिरों से हमेशा पाँव टकराते हैं।

पशुपति बोले, 'आप ठीक कहते हैं, लेकिन जो विरोधी हों उनका ही वध आवश्यक है। ये लोग जो मरे हैं वे अनजान हैं और निर्विरोधी हैं।'

खिलजी ने कहा, 'शायद खून देख कर आप अपने निश्चय को याद करके दुखी हो रहे हैं ?'

'मैंने जितना कहा है, जितना स्वीकार किया है, वह अवश्य करूँगा। आप भी वैसा हीं करें गे, इसमें कोई संदेह नहीं है।'

'हाँ इसमें कोई संदेह नहीं है। सिर्फ हमारी एक माँग है।'

'कहिए।'

'कुतुबुद्दीन की ओर से आज से गौड़-शासन का भार आप के हाथों में दिया गया। आज से आप उनके बंगराज के उनके प्रतिनिधि हुए। लेकिन यवन-सम्राट का संकल्प है कि इस्लाम धर्म स्वीकार किए बिना कोई भी व्यक्ति उनके राजकाज में शामिल नहीं हो सकता। सो आप को भी यह भार ग्रहण करने के पहले इस्लाम धर्म ग्रहण करना पड़ेगा।'

पशुपति का चेहरा काला पड़ गया। बोले, 'लेकिन सुलह वार्ता के समय तो ऐसी कोई बात नहीं हुई थी।'

'अगर यह बात नहीं हुई तो यह भूल ही है। फिर इस बात को स्पष्ट रूप से न कहे जाने पर भी आप जैसे बुद्धिमान और पंडित व्यक्ति को तो स्वाभाविक रूप से यह समझ लेना चाहिए था कि क्या ऐसा कभी संभव हो सकता है कि मुसलमान बंगाल पर अधिकार करके उसे फिर हिन्दू के हाथ में सौंप दें ?'

'मैं इस मामले में अवश्य ही बेवकूफ सिद्ध हुआ।'

'तो ठीक है, अगर अभी तक नहीं समझते थे तो अब समझिए कि आप को इस्लाम धर्म स्वीकार करना है और इसके लिए आपको तैयार हो जाना चाहिए।'

अब पशुपति का दर्प जागा। बोले, 'मैंने अच्छी तरह सोच कर तय कर लिया है कि यवन-सम्राट से राज्य पाने के लिए अपना धर्म छोड़ कर नरक का रास्ता साफ नहीं करूँगा।'

'ऐसा कर के आप बड़ी भूल कर रहे हैं। जिसे आप अपना धर्म कहते हैं, उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तो सिर्फ भूतों की ही पूजा है। कुरान में लिखा धर्म ही एकमात्र सत्य धर्म है। मुहम्मद को अपना कर अपना जीवन सुधारिए।'

पशुपति मन ही मन यवन की शठता को समझ रहे थे। उसका मतलब सिर्फ यही था कि संधि करने के बाद भी संधि को भंग कर देना है। और भी समझे कि छल से न होगा तो बल प्रयोग करेंगे। इसलिए ऐसे कायर के साथ कपट का सहारा न लेकर दर्प दिखाना बेकार है। क्षण भर विचार कर के उन्होंने कहा, 'ठीक है, जैसी आपकी आज्ञा होगी, मैं वही करूँगा।'

बख्तियार उनके मन का भाव समझ रहा था। बख्तियार अगर पशुपति से ज्यादा चालाक न होता तो इतनी आसानी से और बिना परिश्रम ही गौड़ पर अधिकार न पा जाता। शायद बंगभूमि के अदृष्ट-लेख में यही लिखा है कि बंगभूमि युद्ध के बिना ही सदा जीती जायगी। चालाकी से ही सदा इसको जय है। चालाक क्लाइव साहब इसके दूसरे उदाहरण हैं।

बख्तियार ने कहा, 'ठीक है, अच्छी बात है। आज हम लोगों की भेंट का यह पहला दिन है। ऐसे कामों में देरी करना ठीक नहीं रहता। हमारे पुरोहित-मौलवी तैयार हैं', अभी तत्काल आपको इस्लाम धर्म में दीक्षित कर देंगे।'

पशुपति समझ गये कि सर्वनाश सिर पर सवार है। बोले, 'थोड़ी देर के लिए तो मौका दीजिए। अपने परिवार को तो ले आऊँ, फिर पूरे परिवार के साथ इस्लाम धर्म स्वीकार करूँगा।'

बख्तियार ने बड़ी कठोरता और रुखाई से कहा, 'आप के खानदान को बुलाने को मैं आदमी भेजता हूँ। आप पहरेदार के साथ जा कर आराम कीजिए।'

एक सिपाही ने बढ़ कर पशुपति का हाथ पकड़ा। पशुपति ने क्रोध से लाल होकर कहा, 'यह क्या ? क्या मैं कोई कैदी हूँ ?'

बख्तियार ने आज्ञा के स्वर में कहा, 'अभी तो वही हो।'

नतीजा हुआ कि पशुपति राजपुरी में ही बन्द कर दिए गये। मकड़ी का जाल फट गया था—उस जाल में वे आप ही फँस गये।

बुद्धिमान समझे जाने वाले पशुपति ने शत्रु पर विश्वास किया था, उन्हें घर में प्रवेश कराया था, लेकिन उनकी चतुराई काम न आई। लेकिन यह सब न करने से युद्ध करना पड़ता। लेकिन मकड़ी कभी युद्ध नहीं करती, सदा जाल ही बुनती है।

उसी रात में जंगल में छिपे बीस हजार से अधिक यवन सैनिक जंगल से निकल कर समस्त नवद्वीप में फैल गये।

नवद्वीप जीत लिया गया।

उस दिन नवद्वीप का सूर्य जो अस्त हुआ, वह फिर कभी उदित न हो सका।

क्या अब कभी उदित न होगा ? उदय और अस्त दोनों ही स्वाभाविक नियम हैं। एक सिक्के के दो पहलू।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिंजड़ा टूटा

जब तक पशुपति घर में रहे, मनोरमा को अपनी आँखों की पलकों पर बिठाए रखा। जब वे यवन-श्रेष्ठ से मिलने गये थे तब घर के सब दरवाजे बन्द करके शान्त-शील को घर की सुरक्षा के लिए बैठा गये थे।

पशुपति के जाने के बाद से ही मनोरमा वहाँ से भागने का प्रयास करने लगी। घर का कोना-कोना देखने लगी। भाग जाने योग्य कोई रास्ता कहीं खुला दिखाई न पड़ा। बहुत ऊँचाई पर कुछ खिड़कियाँ अवश्य थीं, लेकिन उन पर चढ़ा नहीं जा सकता था। उसमें से मनुष्य शरीर के निकलने की संभावना नहीं थी। फिर वह जमीन से इतनी अधिक ऊँचाई पर थीं कि वहाँ से जमीन पर कूदने में हड्डी पसली का चूर हो जाना निश्चित था। लेकिन मनोरमा पगली है। उसने वहीं से भी निकल भागने का निश्चय किया।

पशुपति जब गये तब मनोरमा उनके ही कमरे में पलंग पर लेटी थी। लेकिन पशुपति के जाने के बाद क्षण भर भी उससे लेटा न रहा गया। उसने देखा कि पलंग के सहारे रोशनदान पर आसानी से चढ़ा जा सकता है। वह उठी, पलंग के सहारे रोशनदान पर चढ़ी, पहले दोनों हाथ, फिर सिर, फिर छाती भी बाहर निकाल ली। रोशनदान के पिछवाड़े बाग में आम के पेड़ की एक सुडौल डाल दिखाई पड़ी। मनोरमा ने वही डाल पकड़ ली और रोशनदान से बाहर आ कर डाल के सहारे-सहारे जमीन पर आ गई। जब उसने डाल पकड़ी और उस पर झूली तो उसके भार से डाल झुक गई। जमीन के पास उसके पाँव पहुँच गये। मनोरमा डाल छोड़ कर आसानी से जमीन पर आ गई और पल भर की भी देरी किए बिना वह जनार्दन के घर की ओर दौड़ गई।

यवन-प्रलय

उस रात को नवद्वीप नगरी विजयोन्मत्त यवन-सेना के अत्याचार से तरंगित सागर की तरह चंचल हो उठी। समस्त राजपथ अनेक सवारों, पैदलों, खड्ग, धनुष और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाले तथा तलवार के समारोह से कलरव कर उठा। सैनिक व सैन्य-बल-विहीन राजधानी के नागरिकगण डर कर अपने-अपने घरों में घुसे छिपे रहे। लोग घरों के किवाड़े भीतर से बन्द किए डर से इष्ट देव के नाम का जप करने लगे।

यवनों ने घरों के बाहर, सड़कों पर जिन अभागे आश्रयहीनों को पाया उन्हें भाले से छेद कर या तलवार से काट कर मार डाला। फिर जब सड़क पर मारने के लिए कोई न दिखा तो मकानों के बन्द दरवाजों पर आक्रमण किया। वे चालाक यवन सैनिक कहीं दरवाजा तोड़ कर, कहीं दीवार फाँद कर और कहीं आतंक से अत्यधिक डरे हुए लोगों को अभय का झूठा आश्वासन दे कर घरों में घुसने लगे। घरों में घुस कर, गरीब और भयभीत गृहस्थों का सर्वस्व अपहरण कर, बाद में स्त्री-पुरुष-बालक-वृद्ध सबके सिरों को गाजर-मूली की तरह काटने और क्रूर अट्टहास करने लगे। मात्र युवती व सुन्दरी स्त्रियों के लिए यह नियम लागू न था।

सीधे-साधे गरीब गृहस्थों का घर-आँगन खून से लथपथ होने लगा। यवन सेना भी रक्तस्नान करके लाल हो उठी। लूटे गए माल के भार से घोड़ों की पीठ और आदमियों का कंधा दुखने लगा। भाले से छिदे और तलवार से कटे हुए ब्राह्मणों के भू-लुंठित सिर भीषण दृश्य उपस्थित करने लगे। ब्राह्मणों के पवित्र यज्ञोपवीत घोड़ों के गलों में लटकने लगे। पूजा घर में सिंहासन पर रखी शालिग्राम शिलायें यवनों के पैरों की ठोकरों से इधर-उधर लुढ़कने लगीं।

ऐसा ही भयागक और कारुणिक दृश्य था!

भयानक आर्तनाद और असहाय चीख पुकार से रात का शांत आकाश भी गूँज उठा। घोड़ों की टाप, सैनिकों के शोर, हाथी की चिंघाड़, यवनों की विजयोन्मत्त जय-ध्वनि, उस पर घायलों की कराह और चीख, माताओं का विलाप, बच्चों का रोना और वृद्धों की करुणा की आकांक्षा तथा युवतियों की गलाफाड़ चीख से मिश्रित आवाज से वातावरण काँप उठा।

यवनों के दमन और नाश के लिए जिस वीर पुरुष को माधवाचार्य इतने आदर से नवद्वीप में ले आये थे, वह इस समय कहीं दिख नहीं रहा था।

इस भयानक यवन-प्रलय के समय योद्धा हेमचन्द्र युद्ध नहीं कर रहे थे। अकेले युद्ध करके वे करते भी क्या?

हेमचन्द्र इस समय अपने शयनागार में पलंग पर गहरी नींद में सोये पड़े थे। नगर पर आक्रमण से उठा कोलाहल और शोर जब उनके कानों तक पहुँचा तब उनकी नींद खुली। उन्होंने दिग्विजय से पूछा, 'यह कैसी आवाज है?'

दिग्विजय ने बताया, 'यवन-सेना ने नगर पर आक्रमण किया है।'

सुनते ही हेमचन्द्र चौंक पड़े। उन्हें अभी तक बख्तियार खिलजी द्वारा नवद्वीप पर अधिकार किए जाने और वृद्ध तथा असहाय राजा के भाग जाने का हाल मालूम न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सका था। दिग्विजय ने विशेष रूप से हेमचन्द्र को सब हाल सुना दिया।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'नागरिक क्या कर रहे हैं ?'

'जो जहाँ भाग सकता था, भाग गया। जो नहीं भाग सके, वे सब काट डाले गये।'

'और गौड़ीय सेना ?'

'वह किसके लिए लड़े ? राजा तो भाग गये। कोई उन्हें आदेश देने वाला नहीं रहा। इसलिए उन्होंने भी अपनी-अपनी राह पकड़ी।'

'तुम तत्काल मेरा घोड़ा कसो !'

विस्मित हो दिग्विजय ने पूछा, 'कहाँ जाइएगा ?'

'नगर में।'

'एकदम अकेले ?'

हेमचन्द्र ने भौंहें तरेरीं। आँखों से शोले लपकने लगे। उनकी भौंहों और आँखों की क्रुद्ध भंगिमा देख कर दिग्विजय एकदम डर गया। वह चुपचाप घोड़ा कसने लगा।

तब हेमचन्द्र बहुमूल्य रण-सज्जा से सज्जित हो कर, सुन्दर व तेज घोड़े पर सवार हो गए ओर भीषण, तेज भाला हाथ में ले कर तेज नदी की बहती धारा की तरह उस असीम यवन-सेना-सागर में जा कूदे।

वहाँ जा कर हेमचन्द्र ने देखा कि यवन सैनिक युद्ध नहीं कर रहे हैं। सभी केवल लूट-पाट में ही व्यस्त हैं। युद्ध करने कोई उनके सामने न आया। उन सैनिकों का इस समय ध्यान ही युद्ध की ओर नहीं था। जिन निहत्थे लोगों को वे लूट रहे थे, लूटने के बाद बिना युद्ध किए उन्हें ही मारते थे। इसलिए यवनों ने दल बाँध कर हेमचन्द्र को मारने के लिए उन पर आक्रमण करने का कोई उद्योग नहीं किया। छिटपुट रूप में जिस यवन सैनिक ने हेमचन्द्र द्वारा आक्रान्त हो उनसे युद्ध किया, वह उसी क्षण मारा गया।

हेमचन्द्र चिढ़ गये। वे युद्ध करने का हौसला ले कर आये थे। लेकिन यवन तो पहले ही बिना युद्ध किए जीत गए थे। अब लूट का माल छोड़ कर कायदे से लड़ने को इच्छुक न थे। हेमचन्द्र ने मन में सोचा—वृक्ष के एक-एक पत्ते को तोड़ कर कोई पूरे जंगल को पत्र-विहीन कैसे कर सकता है ? एक-एक यवन को अलग-अलग मार कर क्या करूँ ? यवन लड़ते नहीं, तब यवनों के बध में भी क्या सुख है ? बल्कि गृहस्थों की रक्षा करना और उन्हें सहायता पहुँचाना ही अच्छा है। अतएव हेमचन्द्र उसी दिशा में अग्रसर हुए। लेकिन उन्हें इसमें विशेष सफलता न मिली। जब तक दो यवन उनके साथ लड़ते होते तब तक तीसरा यवन गृहस्थ का सब कुछ हरण कर ले जाता था। जो भी हो, हेमचन्द्र यथासाध्य और यथाशक्ति पीड़ितों का उपकार करने में व्यस्त रहे।

एक समय रास्ते के किनारे एक झोंपड़ी के भीतर से आती आर्तनाद की आवाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेमचन्द्र को सुनाई पड़ी। यवनों द्वारा सताये जाने वाले किसी आहत व्यक्ति की आर्त-नाद समझ कर हेमचन्द्र झोपड़ी के भीतर घुस गये।

वहां जाकर देखा कि झोपड़ी के भीतर एक भी यवन न था, बल्कि वहाँ यवनों के प्रलय के निशान स्पष्ट बने हुए हैं। वहाँ माल-असबाब कुछ भी नहीं था, जो था सब टूटा-फूटा बेकार और एक ब्राह्मण घायल हो कर जमीन पर पड़ा आर्तनाद कर रहा था। उसे इतनी गहरी और गंभीर चोट लगी थी कि उसकी मृत्यु अति निकट ही दिखती थी। हेमचन्द्र को देख कर वह घायल और मृतप्राय ब्राह्मण भ्रमवश उन्हें यवन समझ कर कहने लगा, 'आओ, आओ—मारो, मारो—जल्दी, मारो—मारो—मेरा सिर काट कर उस राक्षसी को दे दो—ओह, प्राण भी नहीं निकलते—पानी ! पानी ! लेकिन कौन पानी देगा ?'

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम्हारे घर में कहीं पानी है ?'

ब्राह्मण और अधिक कातर हो कर कहने लगा, 'पता नहीं—याद नहीं—पानी ! पानी ! पानी ! पिशाचिनी !—राक्षसी !—उसी राक्षसी के कारण मेरी जान गयी।'

हेमचन्द्र ने चारों ओर खोज कर देखा। एक घड़े में पानी था। बर्तन न दिखने से हेमचन्द्र ने पत्ते के दोने में पानी भर ला कर उसे पिलाना चाहा, तब ब्राह्मण बड़बड़ा उठा, 'नहीं, नहीं ! मैं पानी नहीं पी सकता। यवन के हाथ से मरते समय पानी नहीं पी सकता।'

हेमचन्द्र बोले, 'मैं यवन नहीं हूँ, हिन्दू हूँ। मेरे हाथ का पानी पी सकते हो। क्या मेरी बातों से भी मुझे नहीं पहचानते ?'

तब ब्राह्मण ने पानी पिया।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम्हारा और क्या उपकार करूँ ?'

ब्राह्मण बोला, 'अब और क्या उपकार करोगे ? मैं मरा ! मरा ! जो मर रहा हो, उसके लिए भला क्या करना ?'

'तुम्हारा और कोई है ? उसे मेरे पास रख जाओ।'

'और कौन है ? और कौन है मेरा ? बहुत से हैं। उसमें वह राक्षसी है, उसी से कह देना, कह देना कि मेरे अपराध का मुझे बदला मिल गया।'

'वह कौन है ? किससे कहूँगा ?'

'कौन है ? वह राक्षसी कौन है ? राक्षसी को नहीं पहचानते ? वही राक्षसी, पिशाचिनी मृणालिनी—मृणालिनी—मृणालिनी पिशाचिनी है।'

मृणालिनी का नाम सुन कर हेमचन्द्र चौंक उठे। ब्राह्मण जोरों से कराहने लगा। उत्तेजना उसे असह्य हो रही थी। हेमचन्द्र ने पूछा, मृणालिनी तुम्हारी कौन है ?'

'मृणालिनी मेरी कौन है ? मेरी वह कौन होगी ? कोई नहीं। मेरे लिए वह यमदूती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लेकिन मृणालिनी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ?'

'क्या बिगाड़ा है ? कुछ नहीं—कुछ नहीं बिगाड़ा। मैंने ही उसकी दुर्दशा की है। उसी का बदला पाया है।'

'तुमने उसकी क्या दुर्दशा की है ?'

'अब और नहीं—और नहीं बोल सकता। पानी पिला दो।'

हेमचन्द्र ने उसे फिर पानी पिलाया। पानी पी कर, थोड़ा स्वस्थ हो कर, स्थिर हो कर जब ब्राह्मण चैतन्य हुआ तो हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'व्योमकेश।'

सुनते ही हेमचन्द्र की आँखों से अंगारे बरसने लगे। उनके दाँत ओंठ काटने लगे। हाथ के भाले पर मुट्ठी कसने लगी। लेकिन अपने को अति संयत, स्वाभाविक और शांत रख कर हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम कहाँ के रहने वाले हो ?''

'गौड़। गौड़ नहीं सुना ? वहीं मृणालिनी मेरे घर में रहती थी।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? फिर और क्या ? फिर मेरी यही दशा है।—मृणालिनी—मृणालिनी पापिनी, पापिष्ठा। निर्दयी। मैं उसे कितना चाहता था पर उसने कभी पलट कर भी मेरी ओर नहीं देखा।—एक दिन—क्रोध में—अपमान और उपेक्षा का बदला लेने को मैंने अपने पिता के आगे उसके नाम झूठा कलंक लगाया। पिता ने मेरी बातों पर, उसको बिना किसी दोष के ही अपमानित कर के घर से निकाल दिया था। राक्षसी ! राक्षसी ! हम लोगों को छोड़ कर—छोड़ कर चली गई थी।'

'तब तुम उसे गलियाँ क्यों दे रहे हो ?'

'क्यों ? क्यों ? गालियाँ—गालियाँ क्यों न दूँगा ?—मृणालिनी ने पलट कर मेरी ओर देखा भी नहीं।—मैं—मैं उसे देख कर जीवन धारण करता था। वह जब चली गई, तभी से—मैंने सब कुछ त्याग दिया। उसकी खोज में किस—किस देश में नहीं गया ?—कहाँ-कहाँ नहीं भटका ? गिरिजाया—गिरिजाया—भिखारी की लड़की—उसकी ताई ने बताया—वह नवद्वीप में है। इसीलिए नवद्वीप भी आया—कोई पता न लगा—यहाँ यवनों के हाथ मारा गया—उसी राक्षसी के कारण मैं—मैं मारा गया। उससे—उससे कभी भेंट हो तो कह देना कि मुझे मेरे पाप का फल मिल गया।'

इसके बाद व्योमकेश बोल न सका। बोलने में पड़े परिश्रम से वह थक कर निर्जीव सा हो गया।

फिर बुझने वाला दीपक बुझ गया। क्षण भर बाद विकट व वीभत्स मुँह बना कर व्योमकेश ने अपने प्राण त्याग दिए।

अब हेमचन्द्र वहाँ और खड़े न रह सके। फिर उन्होंने यवनों का वध भी नहीं किया। किसी तरह रास्ते पर आए और अपने घर लौटे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८]

मृणालिनी का सुख

जहाँ, सरोवर की सीढ़िओं पर पत्थर की चोट से व्यथित, उसे हेमचन्द्र छोड़ गये थे, मृणालिनी अब भी वहीं बैठी है। संसार में कहीं जाने के लिए उसके लिए जगह नहीं थी। उसके लिए तब सभी समान थे। रात के बाद सवेरा हुआ, तब गिरिजाया ने बहुतेरा समझाया, बहुत कुछ कहा, लेकिन मृणालिनी ने कोई जवाब नहीं दिया, बस सिर झुकाए बैठी रही। नहाने-खाने का समय हुआ। तब गिरिजाया ने एक प्रकार से जबरदस्ती उसे पानी में उतार कर नहलाया। नहा कर मृणालिनी गीले कपड़ों में ही वहाँ बैठी रही। गिरिजाया स्वयं भी बहुत भूखी थी। लेकिन मृणालिनी को वह किसी तरह भी न उठा सकी। बहुत साहस कर के भी बार-बार कह न सकी। तब पास के जंगल से कुछ फल-फूल जुटा कर उसने ला कर मृणालिनी को दिया। बहुत कहने पर मृणालिनी ने उन्हें छू भर लिया, खाया नहीं। उसे ही प्रसाद मान कर बाद में गिरिजाया ने खाया। वह इतनी भूखी थी कि उसने कुछ भी मृणालिनी के लिए नहीं छोड़ा।

इसी तरह समय बीता। पूरब का सूरज मध्य आकाश में गया, फिर मध्य-आकाश से पश्चिम की ओर गया। फिर शाम भी हो गई। गिरिजाया ने देखा कि अब भी घर वापस लौटने के कोई लक्षण मृणालिनी में नहीं दिखते। तब गिरिजाया बहुत ज्यादा घबरा उठी। पहली रात जागते ही बीती थी, इस रात भी जागरण के ही लक्षण हैं। कुढ़न के मारे गिरिजाया मृणालिनी से कुछ न बोली। उसने कुछ पत्तियाँ बटोरीं और उन्हें सीढ़ी पर बिछा कर अपना बिस्तर तैयार किया। मृणालिनी ने उसका मतलब समझ कर कहा, 'तुम घर जा कर सो रहो सखी !'

मृणालिनी की बातें सुन कर गिरिजाया पहले तो प्रसन्न हुई, फिर कुछ सोच कर बोली, 'एक साथ ही चलेंगे।'

'मैं थोड़ी देर में चलूँगी।'

'तब तक मैं ऐसे ही रहूँगी। भिखारिनी की पत्ते बिछा कर सोने की आदत है। लेकिन हिम्मत पाऊँ तो एक बात कहूँ—राजपुत्र से तो अब इस जनम में संबंध टूटा। तब अब बेकार क्यों इस कार्तिक की ओस में कष्ट सहें ?'

'सखी गिरिजाया ! हेमचन्द्र से इस जन्म में मेरा संबंध नहीं टूट सकता। मैं कल भी हेमचन्द्र की दासी थी, आज भी हूँ और कल भी रहूँगी।'

गिरिजाया मन ही मन चिढ़ गई। आवेश में आ उठ कर बैठ गई। बोली, 'सखी, तुम अभी भी यह कह रही हो कि तुम उस निर्दयी, पाखण्डी की दासी हो ? अगर तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अभी भी उसकी दासी हो तो मैं तो चली। अब तुम्हारे पास मेरी कोई जरूरत नहीं है।'

'सखी गिरि, अगर हेमचन्द्र ने तुम्हें तकलीफ दी हो तो तुम दूसरों के सामने उनकी निन्दा करना। हेमचन्द्र ने मुझ पर कोई अत्याचार नहीं किया। मैं क्यों उनकी निन्दा सहूँ ? वे राजपुत्र हैं, मेरे स्वामी हैं, उन्हें पाखण्डी तो मत कहो।'

गिरिजाया और भी चिढ़ गई। थोड़ी देर पहले बहुत यत्न से बिछाई पत्तों की शय्या को नोंच-खसोट कर फेंकने लगी। बोली, 'पाखण्डी न कहूँ ? एक बार कहूँगी, दस बार कहूँगी, सौ बार कहूँगी, हजार बार कहूँगी।' कहते-कहते उसने बिस्तर बने सभी पत्रों को फेंक दिया। फिर बोली, 'पाखण्डी न कहूँ ? भला किस दोष पर उन्होंने तुम्हारा इतना अपमान किया ?'

'इसमें दोष मेरा ही है। मैं समझ कर सब बातें उनसे नहीं कह सकी। क्या कहने को था और क्या कह गई ?'

'जरा अपना माथा तो छू कर देखो !'

तब मृणालिनी ने अपने माथे पर हाथ फेरा।

गिरिजाया ने चिढ़ और व्यंग्य से पूछा, 'क्या देखा ?'

'थोड़ा दर्द है।'

'यह दर्द कैसे हुआ ?'

'मुझे नहीं मालूम।'

'तुमने हेमचन्द्र के कंधे पर सिर रखा था न ! वह झटक कर चले गये थे। तभी पत्थर पर गिरने से तुम्हारे सिर में चोट लगी थी।'

मृणालिनी क्षण भर कुछ सोचती रही। उसे कुछ भी याद न आया। बोली, 'मुझे याद नहीं। हो सकता है, मैं अपने आप गिर पड़ी होऊँ !'

गिरिजाया चकित हुई। बोली, 'इस संसार में तुम्हीं सुखी हो।'

'क्यों, कैसे ?'

'तुम क्रोध नहीं करती।'

'मैं सुखी हूँ। लेकिन उसके लिए नहीं।'

'तब कैसे ?'

'हेमचन्द्र से भेंट हो गई, इसलिए।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न

गिरिजाया ने फिर कहा, 'घर चलो।'

मृणालिनी ने पूछा, 'नगर में यह कैसा शोर हो रहा है ?'

उस समय यवन-सेना नगर में प्रलय मचाने में व्यस्त थी।

शोर सुन कर दोनों ही सशंकित हुईं। गिरिजाया ने गंभीर स्वर में कहा, 'अब चलो, अब होशियार हो जाना चाहिए।'

दोनों चलीं। लेकिन सड़क तक पहुँचते ही देखा—आगे जाने का कोई उपाय नहीं है। फिर लाचार हो कर सरोवर के किनारे आ बैठीं। तब गिरिजाया ने कहा, 'यदि वे सब यहाँ भी आवेंगे तब ?'

मृणालिनी चुप रही। क्या कहती ? तब गिरिजाया अपने आप ही बोली, 'जंगल के अंधेरे में इसी तरह छिपी रहूँगी तो कोई देख न सकेगा।'

दोनों अंधेरे में सीढ़ी पर बैठी रहीं।

मृणालिनी ने सिर झुका कर कहा, 'गिरिजाया, अब शायद मेरा यथार्थ सर्वनाश आ उपस्थित हुआ है।'

'सो कैसे ?'

'अभी उधर एक सवार गया है। वह हेमचन्द्र हैं। सखी, नगर में भयानक युद्ध हो रहा है। अगर मेरे स्वामी इस युद्ध में गये होंगे, तो न जाने किस विपत्ति में पड़ेंगे।'

गिरिजाया इसका कोई उत्तर न दे सकी। असल में उसे बड़ी नींद लग रही थी। कुछ देर बाद मृणालिनी ने देखा कि गिरिजाया गहरी नींद में सो गई है।

भोजन और नींद के अभाव में मृणालिनी सचमुच कमजोर हो गई थी। ऊपर से दिन-रात तीव्र मानसिक यन्त्रणा भी तो सह रही थी। अब तो बिना नींद लिए शरीर भी साथ देने में असमर्थ हो रहा था। उसे भी झपकी आ गई। नींद में ही वह सपना देखने लगी। देखा कि हेमचन्द्र अकेले ही सारे युद्ध में विजयी हुए हैं। मृणालिनी उस वीर-विजेता को देखने के लिए रास्ते के किनारे खड़ी है। सड़क पर हेमचन्द्र के आगे-पीछे कितने ही हाथी-घोड़े-पैदल-सवार चल रहे हैं। लगा कि हेमचन्द्र की वह सेना मृणालिनी को गिरा कर पैरों से कुचलती हुई चली गई। तब अपनी सिन्धु देश की सुन्दर घोड़ी से उतर कर हेमचन्द्र ने उसका हाथ पकड़ कर उठाया। तब उसने हेमचन्द्र से कहा, 'स्वामी ! बहुत कष्ट सह चुकी, अब दासी का त्याग मत करना।' तब जैसे हेमचन्द्र ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, 'अब तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा।'—बस इसी आवाज को सुन कर जैसे उसकी नींद टूट गई। जागते में भी जैसे उसने यही बात सुनी—'अब तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा।'

व्याकुल हो मृणालिनी ने आँखें खोलीं—जो देखा, उस पर विश्वास न हुआ। फिर से ठीक से देखा, सचमुच, सामने हेमचन्द्र ही खड़े थे।

हेमचन्द्र कह रहे थे, 'और एक बार क्षमा कर दो। अब तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा।'

दर्प, अभिमान-रहित, निर्लज्जा मृणालिनी ने फिर हेमचन्द्र के गले से लग कर उनके कन्धे पर अपना सिर रख दिया।

| १० |

प्रेम—नाना प्रकार

आनन्द के अनगिनत आँसू बहा कर अपना चेहरा गीला कर लेने वाली मृणालिनी का हाथ पकड़ कर हेमचन्द्र उसे अपने घर की ओर ले चले। एक दिन इसी मृणाको तिरस्कृत, अपमानित और व्यथित कर के हेमचन्द्र उसे त्याग कर, झटका देकर चले गये थे। आज फिर अपने आप आ कर उसे हृदय से लगाया, ग्रहण किया—यह देख कर गिरिजाया के विस्मय की सीमा न रही। लेकिन मृणालिनी ने हेमचन्द्र से एक बार भी नहीं पूछा, कुछ भी न कहा। वह आनन्द की सीमाहीन अनुभूति से विवश हो कर कपड़े से आँसू पोंछती हुई उनके साथ-साथ चलने लगी। गिरिजाया से चलने के लिए कहना नहीं पड़ा। वह स्वयं ही उन दोनों से थोड़ी दूरी रख कर और उनके साथ पीछे-पीछे चल पड़ी।

हेमचन्द्र के घर मृणालिनी के आने के बाद दोनों जन बैठ कर बहुत दिनों की अपने-अपने दिल की बातें खोलने लगे। हेमचन्द्र ने सब कहा—जिन-जिन घटनाओं को सुन कर उनके मन में मृणालिनी के प्रति गहन वितृष्णा और विराग उत्पन्न हुआ था, और जिन-जिन बातों से उस वितृष्णा और विराग का नाश हुआ था—सभी कुछ खोल कर कहा। तब मृणालिनी ने भी सब विस्तार से बताया—किस तरह हृषीकेश का घर छूटा, किस तरह नवद्वीप आई, सब कहा। दोनों ने इस प्रकार क्रमशः मन में छिपे कितने ही भावों को एक दूसरे के सामने प्रकट किया। दोनों ही मिल कर भविष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बारे में जाने कितनी कल्पनाएँ करने लगे। दोनों ही कई नई-नई प्रतिज्ञाओं में अपने आप बँधने लगे। दोनों ही जाने कितनी निष्प्रयोजन बातों को भी आवश्यक बातों की तरह अत्यधिक आग्रह के साथ कहने-सुनने लगे। कितनी ही बार, दोनों ही कितनी बार एक दूसरे के मुँह की ओर देख कर मधुर हँसी हँसे और लजाये। बाद में चिड़ियों के चहचहाते पर प्रभात की सूचना पा कर कई बार दोनों ने विस्मय से एक दूसरे से पूछा—अभी ही रात कैसे बीत गई, आज रात इतनी जल्दी कैसे बीत गई ?—उस नगर में यवन-प्रलय का जो आर्तनाद और कोलाहल तूफानी समुद्र की तरह उफन रहा था, वह दो प्रणयी जनों के हृदय सागर की तरंगों में डूब गया।

तभी हेमचन्द्र के घर में एक जगह एक और काण्ड हो गया। हेमचन्द्र के आदेशानुसार दिग्विजय रात को जाग कर घर की रक्षा के लिए पहरा दे रहा था। मृणालिनी को साथ ले कर जब हेमचन्द्र आये तब उसने देखते ही मृणालिनी को पहचान लिया। मृणालिनी उसके लिए पूर्व परिचिता न थी। फिर भी वह पहचान गया। पहले तो मृणालिनी को देख कर दिग्विजय विस्मित हुआ, लेकिन करता भी क्या ? पूछने का कोई उपाय न था। क्षण भर बाद जब उसने गिरिजाया को भी आया देखा तो मन में सोचा, समझ गया, यह दोनों ही हम लोगों को मिलने आई हैं। मालकिन तो युवराज से मिलने आई हैं और यह मुझसे। इस बात में कोई शंका नहीं है।—यही सोच कर दिग्विजय ने एक बार मूँछों पर ताव दिया और मन ही मन बोला, 'भेंट क्यों नहीं होगी ? लेकिन यह बहुत पाजी है। एक दिन भी यह गौड़ में मुझसे सीधे मुंह नहीं बोली, हमेशा गालियाँ ही देती रही है। तब क्या भरोसा कि मुझे ही मिलने आई है ! जो हो, जरा आजमा कर देखना होगा। रात बीत रही है, युवराज भी आ ही गये हैं। अब मैं जरा करवट बदल कर सो कर देखूँ कि यह मुझे खोजती है या नहीं ?'—यही सोच कर दिग्विजय एक एकांत स्थान पर जा कर लेट गया और जल्दी ही उसे नींद भी आ गई।

गिरिजाया ने भी दिग्विजय को सोते देखा। तब गिरिजाया मन ही मन सोचने लगी, 'मैं तो मृणालिनी की दासी ठहरी—मृणालिनी तो इस घर की मालकिन है, या होगी—तब घर के काम काज का भार तो मुझ पर ही है।'—मन में यही सोच कर गिरिजाया ने पास ही पड़ी एक झाड़ू उठाई और जहाँ दिग्विजय सो रहा था वहीं चली गई। तब तक दिग्विजय की नींद कच्ची ही थी। दिग्विजय की आँखें तो बंद ही थीं पर पैरों की आवाज से वह समझ गया कि गिरिजाया आ रही है। मन ही मन अतीव प्रसन्नता का अनुभव किया कि अब तो गिरिजाया मुझसे प्रेम करती है। वह प्रतीक्षा करता रहा कि देखें कि गिरिजाया क्या कहती या करती है ? यही सोच कर दिग्विजय आँखें बंद किए पड़ा रहा। एकाएक उसने देखा कि उसकी पीठ पर झमाझम झाड़ू चलने लगी। गिरिजाया झाड़ू चलाती जाती और बड़बड़ाती जाती, 'ओ माँ ! मैं तो मर गई ! घर भर में इतनी धूल जमा है—देखो तो यह क्या है, यह कौन है ? चोर है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ? मरा पाजी ! राजा के घर चोरी करने आया है ?' कह कर उसने फिर झाड़ू मारना शुरू किया। दिग्विजय को लगा कि उसकी पीठ छिल गई होगी। घबरा कर चीखा, 'अरे, गिरिजाया ! यह मैं हूँ, मैं।'

'तुझे ही समझ कर तो मैंने झाड़ू मार कर तुझे बिछा दिया है।' कह कर फिर झाड़ू-प्रहार शुरू किया।

'दोहाई ! दोहाई गिरिजाया ! मैं दिग्विजय हूँ।'

'चोर ! आया है चोरी करने और कहता है कि दिग्विजय हूँ। तू भला गिरिजाया को क्या जाने रे पाजी !' और झाड़ू-प्रहार का वेग और बढ़ गया।

तब दिग्विजय ने बड़ी कातरता से कहा, 'गिरिजाया मुझे भूल गई ?'

'तेरी-मेरी कब की भेंट-मुलाकात है रे !'

दिग्विजय ने देखा कि अब छुटकारा नहीं है। उसने भी रंग में भंग करने की ठानी। कोई और उपाय न देख वह जोरों से उठ कर भाग खड़ा हुआ।

गिरिजाया भी झाड़ू ताने उसके पीछे-पीछे भाग गई।

११

पूर्व-परिचय

सबेरा होते ही हेमचन्द्र माधवाचार्य की खोज में निकल गये। गिरिजाया आ कर मृणालिनी के पास बैठ गई। गिरिजाया मृणालिनी के दुःख में संगिनी बनी थी, ममता से उसने उसके दुख के समय दुख की कहानियाँ सुनी थीं। आज जब सुख के दिन आए हैं, तब वह सुख की संगिनी क्यों नहीं बनेगी ? आज भी उसी ममता के साथ सुख की बातें क्यों नहीं सुनेगी ? गिरिजाया भिखारिणी है और मृणालिनी एक महाधनी की कन्या। दोनों में बड़ी सामाजिक दूरी है। लेकिन दुख के दिनों में गिरिजाया ही मृणालिनी की एकमात्र सहचरी थी, ऐसे समय में एक भिखरिणी और एक राजपुत्र-वधू में अधिक अन्तर नहीं रहता। आज इसी भरोसे से गिरिजाया मृणालिनी के हृदय के सुख की भागिनी बनी है।

जो बातचीत हो रही थी, उससे गिरिजाया विस्मित और प्रसन्न, दोनों साथ-साथ हो रही थी। उसने मृणालिनी से पूछा, 'तब इतने दिनों से यह सब बातें क्यों नहीं कहीं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अब तक राजपुत्र की ओर से मनाही थी, इसीलिए नहीं कह सकी। अब यह सब कहने की अनुमति दी है, इसीलिए कह रही हूँ।'

'मालकिन, सब बातें कहो न ! सुन कर मुझे बड़ी तृप्ति मिले गी।'

तब मृणालिनी ने कहना शुरू किया, 'मेरा पिता एक बौद्ध मतावलम्बी सेठ हैं। वह बहुत अधिक धनी और मथुरा के राजा के प्रिय पात्र हैं। मथुरा की राज-कन्या मेरी सखी थी।

'एक दिन मैं अपनी सखी—मथुरा की राज-कन्या के साथ नाव पर यमुना में जल विहार के लिए गई। वहाँ एकाएक भयानक आँधी-पानी के आ जाने से नाव पानी में डूब गई। राजकन्या और अन्य लोग रक्षकों और मल्लाहों के प्रयत्न से रक्षा पा सके, लेकिन मैं नदी में बह गई। दैवयोग से एक राज-पुत्र उस समय वहीं नाव पर सैर कर रहे थे। पहले मैं उन्हें पहचानती न थी—वे हेमचन्द्र थे। वह भी आँधी-पानी के डर से नाव को किनारे लगा रहे थे। पानी में जब उन्होंने मेरे बाल देखे तो स्वयं पानी में कूद पड़े और मुझे बचाया। मैं उस समय बेहोश थी। हेमचन्द्र मेरा परिचय न जानते थे। इस समय वे तीर्थ दर्शनों को मथुरा आये थे। अपने डेरे में मुझे ले जा कर उन्होंने मेरी खूब सेवा की। मुझे होश आने पर, मेरा परिचय पूछ कर वे मुझे, मेरे पिता के पास भेजने की तैयारी करने लगे। लेकिन तीन दिनों तक आँधी-पानी का वेग कम न हुआ। ऐसा दुर्दिन उपस्थित हुआ कि कोई घर से बाहर भी नहीं निकल सकता था। अतएव तीन दिनों तक हम लोगों को साथ ही रहना पड़ा। हम दोनों ने एक दूसरे का परिचय पाया। केवल जाति और कुल का ही परिचय नहीं, दोनों ने एक दूसरे के अन्तःकरण का भी परिचय पाया। तब मेरी आयु सोलह वर्ष की थी। लेकिन उसी उम्र में मैं उनकी दासी हो गई। उस अबोध व कोमल आयु में कुछ समझ न सकी। हेमचन्द्र को देवता की तरह मानने लगी। उन्होंने जो कहा उसे धर्मवाक्य माना। उन्होंने कहा—'विवाह करो।'—मुझे लगा कि यह परम आवश्यक कर्तव्य है, चौथे दिन दुर्योग हटा देख कर उपवास किया, दिग्विजय ने सब व्यवस्था कर दी। तीर्थ-यात्रा में राज-पुत्र के कुल पुरोहित साथ में थे ही। उन्होंने ही हम दोनों का विवाह कराया।'

'कन्यादान किसने किया ?'

'अरुन्धती नाम की एक पुरानी कुटुम्बिनी थीं। वह रिश्ते में मेरी माँ की बहन होती थीं। उन्होंने मुझे बचपन से ही खेलाया और पाला था। वह मुझसे अत्यधिक स्नेह करती थीं। मेरे सभी उपद्रवों को वह सहती भी थीं। मैंने उन्हीं का नाम बताया। दिग्विजय ने चालाकी से व छल से हमारे अन्तःपुर में संवाद भेज कर उन्हें हेमचन्द्र के घर बुलवाया। औरों की तरह अरुन्धती भी समझती थीं कि मैं जमुना में डूब मरी हूँ। अतः वहाँ मुझे जीवित देख कर वे इतनी प्रसन्न हुईं कि मेरी किसी बात का भी उन्होंने विरोध नहीं किया। विवाह हो जाने के बाद मैं अरुन्धती मौसी के साथ अपने पिता के घर गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ सब कुछ सच-सच बताया, सिर्फ विवाह की बात छिपा ली। मेरे, हेमचन्द्र, दिग्विजय, कुलपुरोहित और अरुन्धती के अलावा इस विवाह का हाल और कोई नहीं जानता था। अब आज तुम सुन रही हो।'

'माधवाचार्य भी नहीं जानते ?'

'नहीं, यदि वे जान जाते तब तो सर्वनाश ही हो जाता। तब तो मगधराज भी जरूर सुन लेते। मेरे पिता बौद्ध हैं और मगधराज बौद्धों के परम शत्रु।'

'अच्छा, अगर तुम्हारे पिता अब तक तुम्हें कुमारी ही समझते थे तो इतनी उम्र होने पर भी उन्होंने तुम्हारा ब्याह क्यों नहीं किया ?'

'इसमें मेरे पिता का कोई दोष नहीं है। उन्होंने कम प्रयत्न नहीं किया, लेकिन सुपात्र आसानी से नहीं मिलते। क्योंकि बौद्ध धर्म अब प्रायः लुप्त हो गया है। पिता बौद्ध दामाद चाहते हैं, साथ ही सुपात्र भी। लेकिन इस तरह का एक मिला था, वह भी मेरे हेमचन्द्र से विवाह होने के बाद। विवाह का दिन भी स्थिर हुआ था, सब प्रकार से तैयारी भी हुई थी। लेकिन उसी समय मैं भयानक बुखार में पड़ गई। उसने फिर दूसरी जगह कहीं विवाह कर लिया।'

'जानबूझ कर ही बुखार बुला बैठी थीं न ?'

'सही तो, जानबूझ कर ही। हमारे बाग में एक पुराना कुआँ है, उसका पानी कोई नहीं छूता। उस कुएँ का पानी पीने या उससे नहाने से जरूर बुखार आ जाता है। मैंने उस रात में छिप कर उसी पानी से नहा लिया था।'

'फिर तो जब भी बात आती होगी, वैसा ही करती रही होगी ?'

'और नहीं तो क्या ? और नहीं तो हेमचन्द्र के पास भाग जाती थी।'

'मथुरा से मगध तक एक महीने से ज्यादा की राह है। औरत हो कर अकेली तो नहीं आ सकती थी, फिर किसकी सहायता से भागती ?'

'मुझे मगध तक की यात्रा करने की जरूरत नहीं थी। मुझसे ही मिलने के लिए हेमचन्द्र मथुरा में एक दूकान कर के वहाँ रत्नदास वणिक का रूप धर कर रह रहे थे। वे वहाँ इसी नाम से परिचित थे। व्यापार के बहाने वे वर्ष में कई बार मगध से वहाँ आते थे। जब वे मथुरा में न रहते थे तब दिग्विजय ही व्यापार का काम संभालता था। दिग्विजय को आदेश था कि जब भी मैं जैसी आज्ञा दूँ, वह उसी क्षण वैसा ही करे। इस प्रकार मैं निःसहाय न थी।'

मृणालिनी जब कह चुकी तब गिरिजाया ने कहा, 'मालकिन ! तब तो मैंने एक बहुत बड़ा अपराध किया है। मुझे क्षमा करना ही होगा। मैं उचित प्रायश्चित भी करने को तैयार हूँ।'

'ऐसा कौन सा अपराध कर बैठी हो ?'

'क्या भिखारियों की लड़की का भी ब्याह होता है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'करने से होगा क्यों नहीं ?'

'तब मैं उस नालायक से विवाह करूँ गी—और क्या करूँ ?'

'तब मैं तुझे हल्दी लगाऊँ गी।'

| १२ |

परामर्श

माधवाचार्य की कुटी में पहुँच कर हेमचन्द्र ने देखा कि आचार्य जप कर रहे हैं। हेमचन्द्र ने प्रणाम करके कहा, 'हम लोगों का सारा प्रयत्न बेकार हो गया। अब मेरे लिए क्या आज्ञा है ? यवनों ने गौड़ राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया है। शायद भारत के भाग्य में यवनों का दासत्व ही लिखा है। नहीं तो बिना लड़े ही यवन गौड़ को कैसे जीत लेते ? इस शरीर का अंत करने से यदि एक दिन के लिए भी जन्मभूमि डाकुओं के अधिकार से मुक्त हो सके तो मैं इसी क्षण अपना शरीर नष्ट करने को तैयार हूँ। इसी अभिप्राय से मैं रात को युद्ध करने की ठान कर नगर में आगे बढ़ा था—लेकिन युद्ध तो कहीं हुआ ही नहीं। सिर्फ देखा कि एक ओर लोग आक्रमण करते हैं और दूसरी ओर लोग भागते हैं।'

तब माधवाचार्य ने कहा, 'वत्स, तुम दुखी मत हो हो। दैव-निर्देश कभी बेकार होने वाला नहीं है। जब मैंने गणना की है कि तुर्कों को पराजित होना पड़ेगा, तब निश्चित जानना कि वह सब पराजित होंगे। यह सही है कि अभी यवनों ने नवद्वीप पर अधिकार कर लिया है, लेकिन नवद्वीप ही समस्त गौड़राज्य तो नहीं है। राजा राज-सिंहासन छोड़ कर भाग गया है, लेकिन गौड़ राज्य में अन्य अनेक राजे भी हैं। वे सब तो अभी तक नहीं भागे हैं न ? फिर कौन कह सकता है कि जब सब राजा पूरी शक्ति और प्राण-प्रण से इकट्ठे हो कर चेष्टा करेंगे तब भी यवन जीत सकेंगे ?'

'लेकिन इसकी संभावना अब बहुत ही कम है।'

माधवाचार्य ने कहा, 'ज्योतिष गणना झूठ नहीं हो सकती। वह अवश्य सत्य होगी। शायद मुझे एक भ्रम हुआ होगा। पूर्व देश में यवन पराजित होंगे, सोच कर हम-लोगों ने नवद्वीप में ही यवनों के पतन की आशा की थी। लेकिन गौड़ राज्य ही तो पूर्व-देश नहीं है। कामरूप ही ठीक पूर्व है। शायद वहीं हम लोगों की आशा फलवती होगी।'

'लेकिन अभी तो यवनों के कामरूप जाने की कोई भी सम्भावना नहीं दिखाई देती।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इन यवनों का चरित्र ही ऐसा है कि ये लोग क्षण भर भी स्थिर नहीं रहते। गौड़ में थोड़ा स्थिर होते ही ये लोग कामरूप पर अवश्य ही आक्रमण करेंगे।'

'यदि यह मान भी लें और यह भी मान लें कि कामरूप पर आक्रमण करने से वे परिजित होंगे, लेकिन इससे मेरे पिता के राज्य के उद्धार का क्या उपाय होगा ?'

'देखो, ये यवन अब तक बराबर विजय पाते जा कर राजाओं में अजेय के नाम से विख्यात हो गये हैं। भय और आतंक के कारण कोई उनका विरोध करना नहीं चाहता। बस एक बार उनके पराजिन हो जाने से उनकी यह महिमा मिट जायगी। तब भारतवर्ष के सभी राजे निडर हो कर उनके विरुद्ध शस्त्र उठा लेंगे। सब के एक साथ शस्त्र धारण करने पर फिर यवन कहाँ टिक सकेंगे ?'

'गुरुदेव ! आप आशा का सहारा ले रहे हैं, मैंने भी वैसा ही किया। अब आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूँ ?'

'मैं भी सोचता हूँ कि अब इस नगर में तुम्हारा रहना उचित नहीं, क्योंकि यवनों ने तुम्हें मार डालने का ही संकल्प किया है। मेरी राय हैं कि तुम आज ही यह नगर छोड़ दो।'

'तब कहाँ जाऊँ ?'

'मेरे साथ कामरूप चलो।'

तब हेमचन्द्र ने सिर झुका कर, लज्जाभरे मधुर स्वर में कहा, 'तब मृणालिनी को कहाँ छोड़ जायेंगे ?'

विस्मित हो कर माधवाचार्य बोले, 'यह क्या ? मैं तो समझता था कि कल की बातों के अनुसार तुमने मृणालिनी को मन से निकाल दिया है।'

'मृणालिनी अत्याज्य है। वह मेरी विवाहिता पत्नी हैं।'

आचार्य चौंक पड़े। क्रुद्ध हुए। क्षोभ से भर कर बोले, 'मैं इस बारे में कुछ जान ही न सका।'

तब हेमचन्द्र ने शुरू से आखिर तक अपने विवाह की बात खोल कर विस्तार से बताई। सुन कर माधवाचार्य कुछ देर चुप रह कर कुछ सोचते रहे। फिर बोले, 'वत्स ! मैं प्रसन्न हुआ। मैंने तुम्हारी ऐसी प्रियतमा और गुणवती पत्नी को तुमसे अलग रख कर बहुत कष्ट दिया है। अब आशीर्वाद देता हूँ कि तुम दोनों दीर्घजीवी रहो। धर्म आचरण करो और जब तुम इस समय सपत्नीक हुए हो तो मैं तुम्हें अभी अपने साथ कामरूप चलने को नहीं कहूँगा। मैं ही अकेला पहले जाऊँगा। जब समय आएगा तब कामरूप नरेश तुम्हारे पास दूत भेजेंगे। इस समय तुम बहू को ले जा कर मथुरा में रहो। या कहीं और जी चाहे तो वहाँ जाओ।'

इसके बाद माधवाचार्य से विदा ले कर हेमचन्द्र वापस हुए। तब माधवाचार्य ने आशीर्वाद दे कर, आलिंगन कर के आँसुओं भरी आँखों से हेमचन्द्र को विदा किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

| १३ |

प्रायश्चित

जिस रात को राजधानी यवनों द्वारा मचाए गए प्रलय से पीड़ित हुई, उस रात में पशुपति अकेले कारागार में कैद थे। सवेरा होते ही यवन-प्रलय की आँधी समाप्त हो गई। मुहम्मद अली कारागार में पशुपति से बातें करने आया। उसे देखते ही पशुपति ने कहा, 'यवन ! अब मीठी बातों की जरूरत नहीं है। तुम्हारी ही मीठी बातों पर विश्वास करके मैं इस दशा में पहुँच गया हूँ। विधर्मी यवनों पर विश्वास करने का जो फल मिलता है।' वही मैंने पाया। अब मैंने मृत्यु को ही सत्य मान कर सभी उम्मीदें छोड़ दी हैं। अब तुम लोगों की किसी मीठी बात में नहीं फँसूँगा।'

मुहम्मद अली बोला, 'मैं तो सिर्फ अपने मालिक का हुक्म बजाता हूँ। इस समय भी मालिक का हुक्म ही मानने के लिए आया हूँ। आप को मुसलमानी पोशाक पहननी होगी।'

'इस बारे में अब अपना मन आप लोग शांत कर लें। मैंने अब मरने का ही निश्चय कर लिया है। अब तो जान देने के लिए ही तैयार हूँ। लेकिन किसी भी मूल्य पर इस्लाम धर्म ग्रहण नहीं करूँगा।'

'मैं अभी आप से इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिये नहीं कहता, सिर्फ मालिक की इच्छा के लिए मुसलमानी पोशाक पहनने को कह रहा हूँ।'

'ब्राह्मण हो कर मैं मुसलमानी पोशाक क्यों पहनूँ ?'

'अगर खुशी से नहीं पहनें गे, तो जबरदस्ती पहनाऊँ गा। इन्कार करने का मतलब अपमान करना होगा।'

पशुपति चुप रहे। मुहम्मद अली ने अपने हाथों उन्हें मुसलमानी पोशाक पहनाया और कहा, 'अब मेरे साथ चलिए।'

'कहाँ ?'

'आप कैदी हैं। आप को यह पूछने का अधिकार नहीं है।'

पशुपति चुप रहे।

मुहम्मद अली उन्हें राजमहल के राजद्वार की ओर ले चला। जो रक्षक पशुपति की रक्षा के लिए तैनात था, वह भी साथ-साथ चला।

दरवाजे पर पहरेदारों के पूछने पर मुहम्मद अली ने अपना परिचय दिया। फिर उसके एक इशारे पर ही पहलेदार दूर हट कर खड़े हो गये। राज-द्वार से निकल कर वे तीनों सड़क तक आये। उस समय यवन सैनिक नगर में लूटपाट करके, थक कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आराम कर रहे थे। इसलिए सड़क पर कोई उपद्रव नहीं हो रहा था। मुहम्मद अली ने कहा, 'धर्माधिकारी ! आप ने बिना कारण ही मेरा बड़ा अपमान किया है। मैं बख्तियार खिलजी के इस मतलब को बिल्कुल ही नहीं समझा था। ऐसा होता तो मैं कभी भी धोखेबाजी की बातें करने आपके पास न आता। जो भी हो, यह तो सच ही है मेरी बातों पर विश्वास करने के ही कारण आप इस दशा को पहुँचे हैं। मुझसे जहाँ तक हो सका है, मैंने प्रायश्चित किया। गंगा किनारे आपके लिए नाव तैयार है। आप अब जहाँ जाना चाहें, चले जायँ। मैं अब यहीं से बिदा होता हूँ।'

मुहम्मद अली की बातों पर पशुपति विस्मित हुए। मुहम्मद अली ने और कहा, 'मेरी राय है कि आप इसी रात को यह नगर छोड़ कर चले जायँ, नहीं तो कल सवेरे आप से व्यर्थ ही झगड़ा होगा। मैंने यह सब खिलजी की मरजी के खिलाफ किया है। इसका गवाह यह पहरेदार है। इसके बचाव के लिए इसे भी यहाँ से हटाना जरूरी है। इसे भी आप अपने साथ नाव पर ही लेते जायँ।'

यह कह कर मुहम्मद अली लौट गया। कुछ देर पशुपति चकित खड़े रहे। फिर गंगा किनारे चले गये।

| १४ |

विसर्जन

मुहम्मदअली के चले जाने के बाद पशुपति नवद्वीप के राजपथ पर धीरे-धीरे चलने लगे। क्योंकि यवनों की कैद से छुटकारा पाकर भी जाने क्यों उनके भीतर तेज चाल से चलने की प्रेरणा नहीं रह गई थी। सड़क पर जो भी दिखा, उसे देख कर वे अपना मन मार कर चुप रह गये। रास्ते में कदम-कदम पर उन्हें वहाँ बिछी लाशों की ठोकर लगती थी। खून के कीचड़ से दोनों पाँव सन गये। रास्ते के दोनों ओर के मकानों में कोई आदमी न था। बहुतेरे घर जले हुए दिखे। कहीं कहीं अभी तक आग बुझी न थी। लगभग सभी घरों के दरवाजे टूटे, खिड़कियाँ टूटीं, कोठरियाँ टूटीं और लाशों से पटी दिखीं। अभी भी कहीं-कहीं कोई-कोई अभागा मौत की घड़ियाँ गिनता हुआ आर्त-नाद के साथ चीख पड़ता था।

पशुपति को लगा कि इस व्यापक विध्वंस का मूल कारण वही है। भयानक लोभ के वश में उन्होंने ही इस राजधानी को श्मशान-भूमि में परिवर्तित करा दिया है। पशु-पति ने मन ही मन स्वीकार किया कि उन्होंने फाँसी पड़ने जैसा अपराध किया है। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों मुहम्मद अली के कहने से यवनों के कलंकित कैदखाने से भागे ? अच्छा हो कि यवन उन्हें पकड़ लें और मनमानी सजा दें। मन में आया कि फिर लौट चलें। तब उन्होंने मन ही मन इष्ट देवी को याद किया। लेकिन देवी से क्या माँगें ? माँगने के लिए अब है भी क्या ? उन्होंने आह भर कर आकाश की ओर ताका। आकाश की पवित्र शोभा आँखों से सही न गई। उन्होंने घबरा कर आँखें बन्द कर लीं। तभी अचानक एक भय ने आ कर उनका हृदय दबोच लिया। भय के मारे उनके कदम आगे बढ़ने से रुक गये। उन्हें लगा कि एकाएक वे शक्तिहीन हो गये हैं। सम्हलने के लिए राह के किनारे बैठते-बैठते उन्होंने देखा कि वे एक लाश पर बैठने जा रहे थे। लाश खून से लथपथ थी और उनके कपड़ों में भी खून लग गया। वह रोमांचित हो कर काँप उठे। घबरा कर वह तेज कदम चलने लगे। एकाएफ एक बात और याद आई—उनका घर ? क्या अब तक वह यवनों के ध्वंस से बचा होगा ? उस घर में जिस फूल सी कोमल प्राण-पुतली को छिपा आये थे, उसकी क्या दुर्दशा हुई हो गी ? मनोरमा कहाँ हो गी ? उस प्राणप्यारी ने उन्हें पाप के रास्ते पर बढ़ने से बार-बार रोका था—अब तक शायद वह भी उनके पाप सागर की तरंगों में डूब गई होगी। इस यवन सेना के राक्षसी प्रवाह में वह कली न जाने कहाँ बह कर गई होगी !

पशुपति पागल की तरह उन्मत्त होकर अपने घर की ओर चले। वहाँ जा कर देखा कि जो सोचा था वही हुआ। उनकी ऊँची अट्टालिका ऊँचे पहाड़ में लगी आग की तरह जल रही थी।

देखते ही पशुपति को विश्वास हो गया कि पशु समान बर्बर यवनों ने अवश्य ही मनोरमा का बध करके घर में आग लगाई है। आसपास उन्हें कोई न दिखा जो उन्हें कुछ समाचार देता। अपने मन में उठी आशंका को ही उन्होंने सच समझ लिया। हलाहल का घड़ा भर गया—मन का अन्तिम तार भी टूट गया। काफी देर तक आँखें फाड़-फाड़ कर अपनी जलती अट्टालिका को देखते रह गये। अचानक वे मरने वाले पतंग की तरह क्षण भर के लिए एक जगह पर ठहरे, फिर बड़ी तेजी से दौड़ कर उस अग्नि भंडार में कूद पड़े।

साथ का सिपाही चौंका, पर वह कुछ कर न सका। खड़ा रहा।

बड़ी तेजी से पशुपति दौड़ते हुए मकान के जलते हुए दरवाजे के भीतर घुस कर लपकती लपकों में अदृश्य हो गये। किसी तरह अग्नि-कुण्ड पार कर अपने कमरे में पहुँचे। वहाँ कुछ दिखाई न पड़ा। जलते शरीर से कमरे-कमरे में घूमते रहे। इस समय उनके हृदय में जो भयानक आग जल रही थी, उसकी तीव्रता के कारण वे बाहर लगी आग की जलन का अनुभव न कर सके।

क्रमशः घर के लगभग सभी भागों में आग लग गई। बन्द कोठरी से निकलती लपटें धुएँ के साथ आकाश में उठ कर भयानक गर्जन कर रही थीं। क्षण-क्षण पर मकान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जले हिस्से बज्रपात की तरह धरती पर गिर रहे थे। धुआँ, लपटों के साथ चिनगारियों से सारा आकाश भरने लगा।

दावानल से जलते जंगल में फँसे हाथी की तरह पशुपति भी लपकती आग में इधर-उधर दास-दासी और मनोरमा को खोजते भागने लगे। किसी का कहीं नाम-निशान भी न मिला। वे निराश हुए। तब उनकी नजर देवी के मंदिर की ओर गई। देखा कि अष्टभुजा देवी का मंदिर भी धू धू करके जल रहा है। पशुपति पतंग की तरह उसमें घुस गये। देखा कि अग्नि मण्डल के बीच मूर्ति विराज रही है। पशुपति उन्मत्त की तरह पुकार ऊठे—'माँ, जगदम्बे ! अब तुम्हें जगदम्बा नहीं कहूँगा। तुम्हारी पूजा नहीं करूंगा माँ, एक दिन के पाप से मैंने सर्वस्व खो दिया। मैंने क्या इसी दिन के लिए आजीवन तुम्हारी पूजा की थी ? तुमने मेरी पापमति को नष्ट क्यों नहीं किया ?'

तभी मंदिर की आग प्रबल रूप धारण करके गरज उठी। फिर भी पशुपति मूर्ति को संबोधित कर के चिल्लाते ही रहे, 'वह देखो, धातु-मूर्ति ! तुम धातु-मूर्ति-मात्र हो। देवी नहीं, वह देखो, आग गरज रही है। जिस राह में मेरी प्राणप्रिया मनोरमा गई है, उसी राह यह आग मुझे भी ले जायेगी। लेकिन मैं आग को यह यश न लूटने दूँगा। मैंने तुम्हारी स्थापना की थी, अब मैं ही तुम्हारा विसर्जन भी कर दूँगा। चलो देवी ! मेरी इष्ट देवी ! तुम्हें गंगा में विसर्जित कर दूँ।'

यह कह कर पशुपति ने प्रतिमा को उठाने के प्रयास में दोनों हाथों से उसे पकड़ा। उसी समय आग ने फिर भयानक गर्जन की। पर्वत के फूटने जैसी भीषण आवाज हुई। जलता हुआ मंदिर, धुआँ और राख के साथ ही आग की चिनगारियाँ उठाता हुआ धराशायी हो गया।

उसी मंदिर में देवी प्रतिमा के साथ ही पशुपति की भी जीवित समाधि बन गई।

| १९ |

अंतिम-काल

पशुपति यद्यपि रोज ही स्वयं अष्टभुजा देवी की पूजा-अर्चना करते थे, फिर भी उनकी नित्य नियमित सेवा के लिए दुर्गादास नामक एक ब्राह्मण को नियुक्त कर रखा था। नगर-प्रलय के दूसरे ही दिन दुर्गादास ने सुना कि पशुपति का घर जल कर धराशायी हो गया। तब उस ब्राह्मण देवी सेवक ने भस्म के अम्बार से देवी प्रतिमा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
निकाल कर अपने घर में स्थापित करने का संकल्प किया।

नगर को पूरी तरह लूटने के बाद भूखे यवन सैनिक जब तृप्त हो गए तब बख्तियार खिजली ने आदेश जारी किया कि सैनिक अब नगर निवासियों को न सतावें। यह सुन कर, मन में साहस जुटा कर एक दो बँगाली सड़क पर निकलने लग गए थे। यह देख दिन के तीसरे पहर दुर्गादास देवी प्रतिमा के उद्धार हेतु पशुपति के मकान की ओर चल पड़े। पशुपति के मकान के जिस भाग में वह मन्दिर था, उसी ओर उन्होंने प्रवेश किया। देखा कि मलबे का ढेर हटाए बिना प्रतिमा को निकलना सम्भव नहीं है। अत: दुर्गादास अपने पुत्र को बुला लाए। ईंटें गल कर आपस में चिपक गई थीं और कुछ तो अभी भी जल रही थीं। पिता पुत्र ने मिल कर बड़ी कठिनाई से पानी डाल-डाल कर उस भाग की आग ठंडी की और बड़े कष्ट से देवी-प्रतिमा की खोज करने लगे। ईंटों के ढेर को हटाने के बाद उसके नीचे से प्रतिमा निकली। लेकिन भय से पिता-पुत्र ने देखा कि प्रतिमा के चरणों पर किसी आदमी की लाश पड़ी है। फिर उलट-पुलट कर लाश को देखा तो पहचाना कि वह लाश पशुपति की ही है।

विस्मय से आक्रांत दुर्गादास ने कहा, 'चाहे जिस प्रकार भी मालिक की यह दशा हुई हो, हमलोगों को अब ब्राह्मण कर्त्तव्य निभाना चाहिए। चलो, अब गंगा किनारे लाश ले जा कर हमें मालिक का सत्कार करना चाहिए।'

पिता पुत्र दोनों मिल कर पशुपति की लाश को ढो कर गंगा तट तक ले गए। वहाँ शव की रक्षा के लिए पुत्र को छोड़ कर दुर्गादास लकड़ी आदि जरूरी सामान के लिए नगर में गए। फिर यथा साध्य सुगंधित लकड़ी की व्यवस्था कर के गंगा किनारे लौट आए।

तब दुर्गादास ने पुत्र की सहायता से यथाशास्त्र पशुपति का दाह-संस्कार किया। सुगंधित लकड़ी की बनी चिता पर पशुपति की लाश को रख कर दुर्गादास ने ही आग लगाई।

तभी एकाएक चौंक कर ब्राह्मण पिता-पुत्र ने देखा कि गंदे कपड़े पहने, सूखे बालों वाली धूल और धुएँ से शक्ल बिगाड़े एक पागल सी स्त्री आई। वह स्त्री सीधे ब्राह्मणों के पास आई।

भयभीत दुर्गादास ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'यह तुम लोग किसकी अंतिम क्रिया कर रहे हो ?'

'मृत धर्माधिकारी पशुपति की।'

'पशुपति की मृत्यु कब हुई ?'

'सबेरे नगर में यह अफवाह फैली कि यवनों के कारागार से वे किसी प्रकार रात को भाग निकले हैं। आज अपने मंदिर को राख बनते देखा तो मैं अष्टभुजा की प्रतिमा की रक्षा के लिए गया। वहाँ जा कर मैंने मालिक की लाश देखी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री ने सुना पर कोई जवाब न दे सकी। गंगा किनारे वहीं पर रेत पर बैठ गई। बहुत देर तक चुप रहने के बाद पूछा, 'तुम लोग कौन हो ?'

'हम लोग ब्राह्मण हैं। धर्माधिकारी हमारे अन्नदाता थे। पर आप कौन हैं ?'

उस स्त्री ने कहा, 'मैं उनकी पत्नी हूँ।'

'उनकी पत्नी तो बहुत समय से लापता हैं। आप कैसे उनकी पत्नी हुईं ?'

'मैं ही वह लापता केशव की कन्या हूँ। पति के साथ सती न होना पड़े, इस लिए मेरे पिता अभी तक मुझे छिपाए थे। आज मैं विधि-लिपि को प्रतिष्ठित करने आई हूँ।'

यह सुन कर पिता और पुत्र दोनों ही काँप उठे। तब वह स्त्री फिर कहने लगी, 'अब मैं स्त्री जाति का कर्तव्य पालन करूँगी। तुम लोग तैयारी करो।'

दुर्गादास युवती के कहने का मतलब समझ गए। उन्होंने पुत्र की ओर घूम कर पूछा, 'क्या कहते हो ?'

भला पुत्र क्या जवाब देता, चुप रहा। तब दुर्गादास ने युवती से कहा, 'माँ ! तुम अभी बालिका हो। इस कठोर कर्म के लिए क्यों तत्पर हो ?'

इस पर युवती ने भौंहें तरेर कर क्रोध में कहा, 'ब्राह्मण हो कर अधर्म की बात क्यों करते हो ? मैं जैसा कहती हूँ, तैयारी करो।'

तब तैयारी के लिए ब्राह्मण फिर नगर में गया। जाते-जाते दुर्गादास से विधवा ने कहा, 'तुम नगर में जा रहे हो, वहाँ नगर में राजा की उपवन-वाटिका वाली अट्टालिका में हेमचन्द्र नामक एक विदेशी राज-पुत्र रहते हैं। उनसे कहना कि मनोरमा गंगा किनारे पति की चिता पर चढ़ कर सती होने जा रही है—वे आ कर एक बार उससे मिल जायँ। उनसे मनोरमा की यही भिक्षा है।'

ब्राह्मण ने जा कर मनोरमा की बात अक्षरशः हेमचन्द्र से कही। ब्राह्मण के ही मुँह से हेमचन्द्र ने यह भी सुना कि मनोरमा ने स्वयं ही अपना परिचय पशुपति की पत्नी कह कर दिया है और अब सती होने जा रही है। सब कुछ सुन कर पहले तो हेमचन्द्र कुछ भी ठीक-ठीक न समझ सके। लेकिन वे दुर्गादास के साथ गंगा तट पर आए। वहाँ उन्होंने मनोरमा में बहुत ही मलिन, व उन्मादिनी रूप के साथ गम्भीरता देखी और उसके अनुपम, सुन्दर चेहरे की कांति को भी देखा। तब उनकी आँखों में आँसू आ गए। जैसे तड़प कर पूछा, 'मनोरमा बहन यह क्या ?'

तब मनोरमा ने स्थिर-भाव से मृदु-गंभीर स्वर में कहा, 'भाई, आज स्त्री-जीवन की परम उच्च-सीमा को छू पाने का मुझे ईश्वर ने अवसर दिया है। आज मैं अपने स्वामी के साथ जा रही हूँ।'

फिर क्षण भर बाद मनोरमा ने धीमे स्वर में, ताकि और कोई न सुने, हेमचन्द्र से कहा, 'मेरे स्वामी अपरिमित धन-संग्रह कर के रख गये हैं। मैं ही उनकी सम्पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की एक मात्र अधिकारिणी हूँ। आज मैं वह सब तुम्हें दान करती हूँ। तुम उसे स्वीकार करो। नहीं तो बेधर्मी पापी यवन उसका भोग करें गे। उसी में से आवश्यकता भर धन खर्च के जर्नादन शर्मा को काशीधाम में रहने की व्यवस्था कर देना। पर जर्नादन के हाथ में अधिक धन मत देना। नहीं तो यवन छीन लेंगे। मेरे दाह-संस्कार के बाद तुम मेरे स्वामी के घर जा कर उनकी सम्पत्ति का पता लगाना। मैं जहाँ बताए देती हूँ, वहाँ खोजने से पा सको गे। मेरे अलावा उस जगह के बारे में और कोई नहीं जानता।'

फिर मनोरमा ने वह गुप्त जगह बता दी, जहाँ धन छिपा था।

अंत में मनोरमा ने हेमचन्द्र से विदा ली। जर्नादन और उसकी पत्नी को प्रणाम कहने को कहा।

इसके बाद ब्राह्मणों ने मनोरमा का शास्त्रीय-विधि से इस कठोर व्रत में दीक्षित कराया और शास्त्रीय-आचार के बाद मनोरमा ने ब्राह्मण द्वारा लाए गए नए वस्त्रों को पहना। नए वस्त्र पहन, प्रसन्न पुष्पमाला गले में पहन कर मनोरमा गौरव से प्रतिष्ठित होती हुई पशुपति की जलती चिता की प्रदक्षिणा कर के प्रसन्न मन से चिता पर चढ़ गई।

हँसते चेहरे से चिता पर बैठ कर अग्नि की लपटों का आलिंगन करते हुए मनोरमा ने प्राण त्याग दिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट

मनोरमा के बताए हुए स्थान से पशुपति के संग्रह किए धन का उद्धार करके हेमचन्द्र ने उसका एक छोटा सा अंश जनार्दन शर्मा को दे कर उन्हें काशीवास के लिए भेज दिया।

फिर हेमचन्द्र ने सब बातें बता कर माधवाचार्य से पूछा कि बाकी बचा धन ग्रहण करना चाहिए या नहीं। माधवाचार्य ने कहा, 'इस धन का उपयोग पशुपति के हत्यारे बख्तियार खिलजी को नष्ट करने हेतु ग्रहण करना उचित होगा। दक्षिण-समुद्र के किनारे के क्षेत्र जनहीन पड़े हैं। मेरी राय है कि इस धन से तुम वहाँ नया राज्य-संस्थापन करो और वहाँ यवनों को नाश करने के लिए एक समर्थ सेना का संग्रह करो।'

इसी सलाह के अनुसार माधवाचार्य ने उसी रात हेमचन्द्र को नवद्वीप छोड़ कर दक्षिण की ओर जाने को विवश किया। पशुपति के धन को छिपा कर हेमचन्द्र अपने साथ ले गये। मृणालिनी, गिरिजाया और दिग्विजय उनके साथ गये। हेमचन्द्र को नया राज्य स्थापित करने में सहायता देने के लिए माधवाचार्य भी साथ गये।

दक्षिण में नये राज्य का संस्थापन हेमचन्द्र के लिए बहुत सहज हो गया। क्यों कि यवनों के धर्म-द्वेष से पीड़ित और आतंक से भयभीत कई लोग अपना-अपना स्थान त्याग कर हेमचन्द्र द्वारा स्थापित नये राज्य में आ बसे थे।

माधवाचार्य की प्रेरणा से बहुतेरे धनी लोग भी वहाँ आ कर रहने लगे। इस तरह सबों के सहयोग से बहुत जल्द ही एक छोटा सा व्यवस्थित राज्य बन गया। धीरे-धीरे सेना भी इकट्ठी कर ली गई। अब वह नया राज्य जल्दी ही एक रमणीय राजपुरी में बदल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृणालिनी ने उस नये राज्य में राजरानी बन कर राज्य का गौरव बढ़ाया।

गिरिजाया का दिग्विजय से विवाह हो गया। गिरिजाया मृणालिनी की सेवा में बनी रही और दिग्विजय तो पहले से ही हेमचन्द्र की सेवक था। कहते हैं कि विवाह होने के बाद एक दिन भी ऐसा न बीता होता जब गिरिजाया ने एक आध झाड़ू की मार से दिग्विजय के शरीर को पवित्र न किया हो। इससे दिग्विजव बहुत दुखी हो, ऐसी बात नहीं थी, बल्कि एक दिन किसी कारणवश गिरिजाया दिग्विजय को झाड़ू मारना भूल गई। इस पर दुखी हो कर दिग्विजय ने एकबार गिरिजाया से पूछा, 'क्यों आज तुम मुझ पर कुछ नाराज हो क्या ?'

हेमचन्द्र का नया राज्य स्थापित करा के माधवाचार्य कामरूप गये। इधर हेमचन्द्र ने दक्षिण से ही यवनों के विरुद्ध चाल चलना शुरू किया। बख्तियार खिलजी हार कर कामरूप से भागा। और तभी लौटते समय अपमान व हार की ग्लानि से उसकी मृत्यु हो गई।

रत्नमयी एक सम्पन्न पाटनी से विवाह कर हेमचन्द्र के नये राज्य में जा बसी। वहाँ मृणालिनी की कृपा से उसके पति की खूब तरक्की हुई। गिरिजाया और रत्नमयी में सदा एक सखी-भाव बना रहा।

माधवाचार्य के द्वारा हृषीकेश से आग्रह करा के मृणालिनी ने मणिमालिनी को अपने राज्य में बुला लिया। नये राज्य में मणिमालिनी राजरानी की सखी होने के कारण आदर पाने लगी। उसके पति को राज्य कर्मचारी बना लिया गया।

जब शान्तशील ने देखा कि हिन्दुओं को अब राज्य मिलने की कोई आशा नहीं है, तब वह अपनी चतुराई और बुद्धिमता से तथा कार्य-क्षमता दिखा कर यवनों का प्रिय और विश्वासपात्र बनने की चेष्टा में लग गया। फिर हिन्दुओं पर अत्याचार और विश्वासघात द्वारा जल्दी ही वह अपनी मनोकामना सिद्ध कर राज्य-काल में नियुक्त हो गया।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

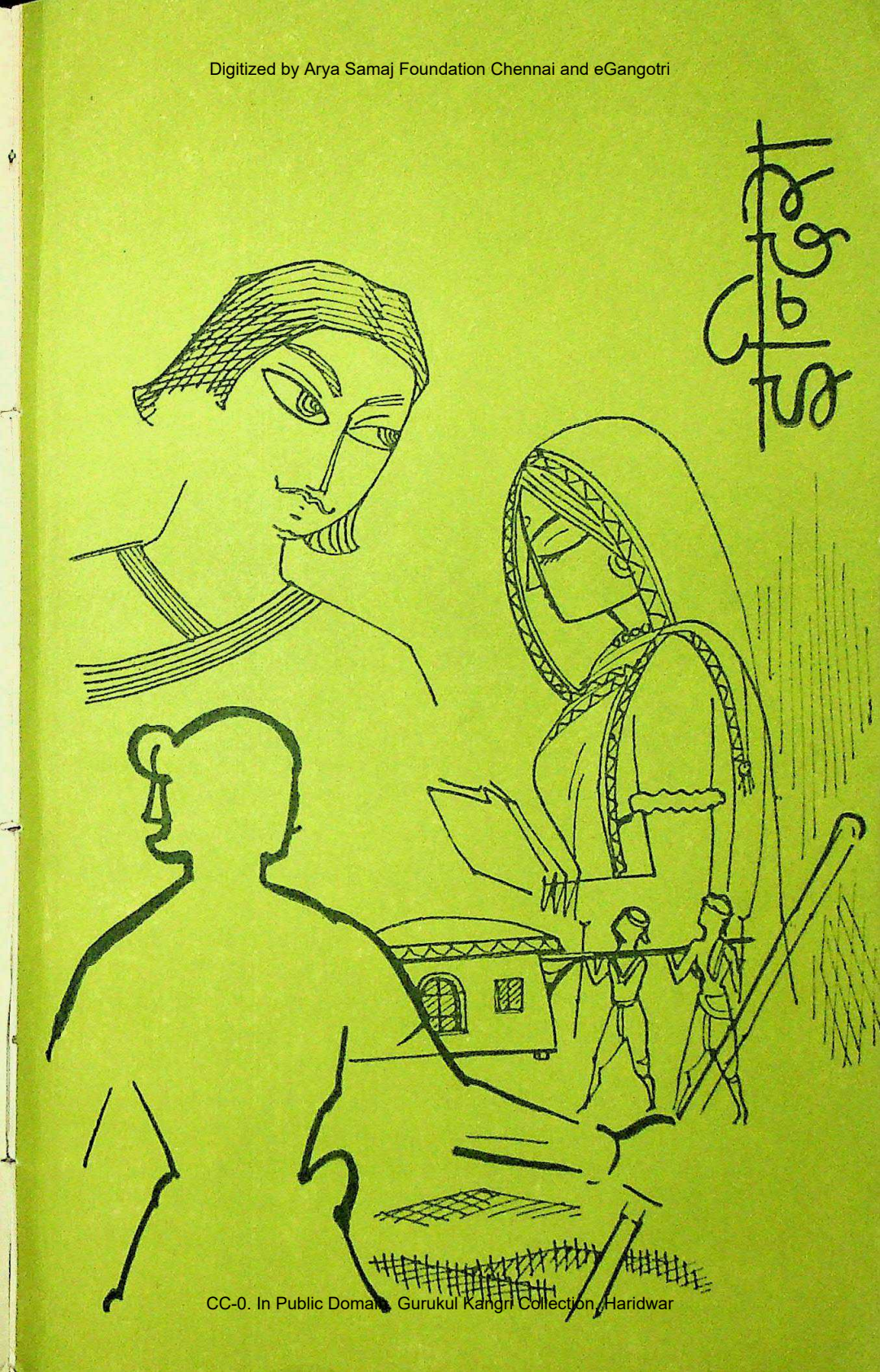

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दिरा

□

[रचनाकाल : सन् १८७३]

□

'इन्दिरा' का प्रथम प्रकाशन 'बंगदर्शन' के एक ही अंक में हुआ था। प्रथम प्रकाशन के बाद ही इसे आधुनिक युग की श्रेष्ठ कथा-कृति मान लिया गया। पहले इस कथा का कलेवर बहुत छोटा था लेकिन बाद में, मृत्यु के एक वर्ष पूर्व बंकिमचन्द्र ने इसे बढ़ा कर वर्तमान रूप में सँवारा था। इसे वर्तमान रूप में सँवार कर इसकी भूमिका में बंकिमचन्द्र ने लिखा :

'इन्दिरा छोटी थी—अब बड़ी हो गई। इसे यदि कोई अपराध समझ कर नाराज हो तो इन्दिरा विनीत भाव से निवेदन करेगी कि सभी तो छोटे से बड़े हो जाते हैं। भगवान की इच्छा से ही बहुत छोटे भी बड़े हो जाते हैं। राजा को तो यही करते देखा जाता है—छोटे को बड़ा करना, बड़े को छोटा करना। समाज को भी देखा जाता है—बड़े को छोटा, छोटे को बड़ा करते। मैं भी जिसके अधीन हूँ, उसी ने मुझे लघु जान कर बड़ा कर दिया। और मैं क्या कैफियत दूँ ?

'तब बुराई तो यह है कि बड़े होने पर दर बढ़ जाता है। राजा की कृपा या समाज की कृपा से जो भी बड़ा होता है उसका दर भी बढ़ जाता है। देखो न, पुलिस का जमादार एक रुपये से ही संतुष्ट हो जाता है, दारोगा होने पर उसे दो रुपये चाहिए, क्यों न हो, बड़े होने से दर बढ़ गया न ! गरीब इन्दिरा भी कहेगी, मैं हठात बड़ी हो गई, मेरा दर क्यों नहीं बढ़ेगा ?

'लेकिन, इन्दिरा का बड़ा होना ठीक हुआ या गलत, यह संशय की बात है। अपना तो विचार है कि छोटे का छोटा रहना ही ठीक है। छोटे लोगों का बड़ा होना कब ठीक हुआ है ? लेकिन बहुत से छोटे लोग यह बात स्वीकार नहीं करेंगे। फिर इन्दिरा ही इसे क्यों स्वीकार करे ?

'पाठकगण, इन्दिरा का कलेवर बढ़ाने का कारण जानना चाहेंगे। क्योंकि उनकी समालोचना करने की जन्मजात प्रवृत्ति है। लेकिन उनकी प्रवृत्ति में अवरोध पैदा करना अपनी प्रवृत्ति नहीं रही। मेरी तो यह पुरानी कृति है—पुराना नाम और नया ग्रंथ रचने का अधिकार सभी को है। ग्रंथकार की इतनी सफाई यथेष्ट है।'

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

|१|

मैं ससुराल जाऊँगी

बहुत दिनों बाद मैं ससुराल जा रही हूँ। मैं उन्नीस साल की उम्र तक यहीं पड़ी रही। अर्थात् अभी तक श्वसुर-घर नहीं जा सकी। इसका कारण भी है, मेरे पिता धनी हैं, श्वसुर दरिद्र। विवाह के कुछ दिनों बाद श्वसुर ने मुझे बुला लाने को आदमी भेजा था, लेकिन पिता ने भेजा नहीं। बोले, 'समधी जी से कहना, पहले मेरे दामाद कमाना-धमाना शुरू करें, उसके बाद बहू को लिवाने आवें। इस स्थिति में लिवा ले जा कर मेरी बेटी को खिलाएँ गे क्या ?' यह सुन कर मेरे स्वामी के मन में बड़ी घृणा उपजी। तब उनकी उम्र बीस वर्ष की थी। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि वे स्वयं अर्थोपार्जन कर के परिवार का पालन करें गे। यही सोच कर उन्होंने देश के पश्चिमी अंचल की यात्रा की। तब तक रेल नहीं चली थी। पश्चिम जाने का 'रास्ता अति-दुर्गम है। अतः वे पैदल ही, बिना रुपये-पैसे के, बिना किसी की सहायता के, कठिन रास्ता पार करते हुए पंजाब पहुँचे। जो इतनी हिम्मत रखता हो वह अर्थोपार्जन तो कर ही सकता है। मेरे स्वामी रुपये कमाने लगे, घर पर भी प्रचुर धन भेजने लगे। लेकिन सात-आठ साल तक घर न आ सके न ही उन्होंने मेरी कोई खोज खबर ली। क्रोध से मेरा शरीर जल-जल उठता। कितने रुपये चाहिए ? पिता-माता पर बड़ी गुस्सा आई—उन्होंने क्यों इस रुपये-पैसे कमाने की बात उठाई ? रुपये क्या मेरे सुख से बढ़ कर हैं ? मेरे पिता के घर इतने रुपये हैं—रुपयों के ले कर मैं ठीकरों की तरह खेलती। मन ही मन सोचती—एक दिन रुपये बिछा कर उन पर सो कर देखूँगी, कितना सुख मिलता है ! एक दिन माँ से बोली, 'माँ रुपये बिछा कर सोऊँगी।' माँ ने कहा, 'यह पागलों जैसी बात !' माँ बात का मर्म समझ गई। जाने क्या चालाकी की, मैं कह नहीं सकती। लेकिन जिस समय का इतिहास मैं प्रारंभ कर रही हूँ, उसके कुछ पहले मेरे स्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने घर आये। पता लगा कि कमसरिसट में काम कर के उन्होंने अतुल ऐश्वर्य उपार्जित किया है। मेरे श्वसुर ने मेरे पिता को लिख कर भिजवाया, 'आपके आर्शीवाद से उपेन्द्र (मेरे पति का नाम है उपेन्द्र—नाम लेने के लिए वृद्ध जन क्षमा करेंगे।) अब बहू का प्रतिपालन करने में सक्षम हो गया है। पालकी और कहारों को भेज रहा हूँ। बहू को इन्ही के साथ भेज दीजिए गा। नहीं तो आज्ञा दीजिएगा कि उपेन्द्र का फिर दूसरा विवाह कर दूँ।'

पिता ने देखा, नये बड़े आदमी हैं। पालकी के भीतर कीमखाब लगा है, ऊपर चाँदी के पत्तर, बगल में भी चांदी के पत्तर की सजावट। जो दासी साथ आई थी वह भी गहने पहन कर आई थी, गले में बड़े बड़े मोटे दानों का सोने का हार था। चार जन, काली दाढ़ी वाले भोजपुरी भी पालकी के साथ आए थे।

मेरे पिता हरिमोहन दत्त बुनियादी बड़े आदमी। हँस कर बोले, 'बेटी इन्दिरा! और ज्यादा अब तुम्हें यहाँ नहीं रोक सकूँगा। अभी तो जाओ, फिर जल्दी ही बुलवा लूँगा। देखो, अँगुली फूल कर केला का पेड़ हुई है। देख कर हँसना मत।'

मैंने अपने मन में ही उनकी बात के उत्तर में कहा, 'यह तो समझती हूँ कि मेरे स्वामी तो अँगुली फूल कर केला का पेड़ होने जैसे हो गये हैं, लेकिन यह समझ कर तुम भी मत हँसना।'

लगता है कि मेरी छोटी बहन कामिनी समझ गई थी, बोली थी, 'दीदी! अब कब आओगी?'

मैंने धीरे से उसका गाल दबा दिया।

कामिनी ने कहा, 'दीदी, ससुराल क्या होता है, मैं तो इस बारे में कुछ नहीं जानती।'

मैंने कहा, 'जानती हूँ। वह है नन्दनवन, वहाँ रतिपति पारिजात के फूलों के बाण मार कर आदमी का जन्म सार्थक कर देते हैं। वहाँ पाँव रखते ही स्त्री-जाति अप्सरा हो जाती है, पुरुष भेड़ा हो जाता है। वहाँ नित्यप्रति कोकिला कूकती है, शीत काल में दक्षिणी हवा चलती है, अमावस्या को भी पूर्णचन्द्र निकलता है।'

कामिनी ने हँस कर कहा, 'मरन है तब तो!'

|२|

मैं ससुराल चली

बहन को आशीर्वाद देकर मैं ससुराल चली। मेरी ससुराल है मनोहरपुर। और मायका, महेशपुर। दोनों गाँवों के बीच में दस कोस का रास्ता है। इसलिए सबेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ही खा पी कर अभी मुश्किल से आधा कोस पहुँचा हूँगा कि पाँच साढ़े पाँच घड़ी रात हो जायगी।

यह सोच कर मेरी आँखें गीली हो गईं कि रात में पहुँचने पर अच्छी तरह देख भी न पाऊँगी कि वे कैसे हैं, रात में वे भी ठीक से नहीं देख सकेंगे कि मैं कैसी हूँ। माँ ने अच्छी तरह मेरे सिर के बाल सँवार का बाँध दिए थे। लेकिन दस कोस जाते-जाते जूड़ा सरक जायगा और बाल भी बिखर जाएँगे। पालकी के भीतर ही मेरी शोभा मलिन हो जायगी। प्यास से मुँह का पान का रंग भी सूख जायगा, थकान से देह भी मुरझा जायगी। मैं कैसे क्या करूँगी ? मैं भरी जवानी में पहले-पहल ससुराल जा रही थी।

रास्ते में कालीदीघी नाम का एक बड़ा तालाब पड़ता है। उसका पानी करीब आधे कोस में फैला है, उसके किनारे भी पहाड़ की तरह ऊँचे हैं। चारों ओर बरगद के कई पेड़ हैं जिनकी छाया खूब ठण्डी रहती है। तालाब का पानी बादल के रंग की तरह नीला है। वहाँ का दृश्य बड़ा ही सुहावना है। उधर आदमियों का आना-जाना भी बहुत कम होता है। घाट के ऊपर सिर्फ एक दूकान है। पास में जो गाँव है उसका भी नाम कालीदीघी है।

तालाब पर अकेले आने में लोग डरते हैं। डाकुओं के डर के मारे लोग बिना गोल बाँधे नहीं आते। इसीलिए उसे 'डाकू कालीदीघी' कहते हैं। दूकानदार को भी लोग डाकुओं का संगी-साथी कहते हैं। मुझे वह सब डर न था क्योंकि मेरे साथ बहुत से आदमी थे। सोलह कहार, चार दरबान और दूसरे लोग भी थे। जिस समय हम लोग वहाँ पहुँचे, उस समय अढ़ाई पहर दिन चढ़ा था। कहारों ने कहा, 'अब कुछ खाना-पीना किए बिना हमलोग आगे नहीं जा सकते।' दरबानों ने आपत्ति की, 'यह जगह सुरक्षित नहीं है।' कहारों ने कहा, 'हम सब इतने लोग तो हैं हम लोगों को भला क्या डर ?' अन्त में सबों को कहारों की ही बात माननी पड़ी। हमारे साथ के और लोगों ने भी तब तक कुछ भी खाया पिया न था।

तालाब के घाट पर एक बरगद के पेड़ के नीचे पालकी ! मेरे शरीर का हाड़-हाड़ जल उठा। कहाँ मैंने ठाकुर जी से प्रार्थना की थी कि जल्दी पहुँचूँ। यहाँ कहार लोग पालकी उतार, खड़े हो, गरदन ऊँची करके मैले अंगोछे से हवा कर रहे थे। किन्तु, छिः, स्त्रियाँ सब से बढ़ कर अपना ही सुख व भला समझती हैं। मैं उनके कन्धों पर चढ़ कर जा रही हूँ। वे भी मुझे अपने कन्धों पर ढो कर ले जा रहे हैं। मैं अपनी भरी जवानी में पति का प्रथम बार दर्शन पाने जा रही हूँ। वे जा रहे हैं भूखे। एक मुट्ठी भर भात के लिए। यह सोच कर मुझे अपने आप पर क्रोध आया। धिक्कार है ऐसी जवानी को !

यही सोचते-सोचते मैंने काफी देर बिता दी। जब देखा तो पाया कि सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लोग काफी दूर चले गये हैं। यह सब देख कर मैंने साहस कर के पालकी का दरवाजा थोड़ा सा खोला और तालाब की ओर देखने लगी। तब देखा कि सभी कहार दूकान के समाने एक बरगद के नीचे बैठे जलपान कर रहे हैं। जहाँ ये सब बैठे थे वह जगह पालकी से करीब डेढ़ बीघा दूर थी। देखा समाने बड़ा सा ताल फैला हुआ है। चारो ओर पहाड़ों की कतार की तरह ऊँचे और मुलायम घास से ढँके सुन्दर किनारे थे। किनारे के ऊँचे टीले और तालाब के पानी के बीच लम्बी चौड़ी भूमि पर बरगद के पेड़ की कतार थी। टीलों पर बहुत से गाय-बछड़े चर रहे थे! पानी के ऊपर बहुत से जल-पक्षी खेल रहे थे। पानी की तरंगों के धीरे-धीरे काँपने से लगता जैसे स्फटिक टूट रहे हों। छोटी-छोटी लहरों के टकराने से कभी-कभी कमल के फूल, पुरइन के पात और सिवार हिल रहे थे। फिर मैंने देखा कि मेरे साथ के दरबान तालाब में उतर कर नहा रहे थे—उनके हाथ पाँव चलाने से, पानी में लहरें उठतीं और नीले पानी पर सफेद मोतियों के हार बिखर जाते थे।

आकाश की ओर घूम कर देखा, कैसी सुन्दर नीलिमा! कैसे सुन्दर सफेद-सफेद बादल! उनके बीच में स्वच्छन्द उड़ते पक्षियों को देख कर मन ही मन सोचा कि क्या कोई ऐसा उपाय नहीं हो सकता कि मनुष्य भी पक्षी बन जाये! काश कि मैं पक्षी बन सकती तो उड़ कर उनके पास चली जाती।

थोड़ी देर के बाद तालाब की ओर घूम कर देखा। इस बार मन ही मन थोड़ा सहमी। देखा कहारों को छोड़ कर मेरे साथ के और * सभी लोग एक ही साथ नहाने के लिए तालाब में उतर गये हैं। साथ की दोनों औरतें—एक ससुराल की और दूसरी मायके की—भी पानी में उतर चुकी थीं। मेरे मन का डर बढ़ता गया। सोचा कोई भी पास नहीं है। यह जगह खतरनाक है, सबों ने दूर जा कर अच्छा नहीं किया। करती भी क्या मैं! मैं कुलवधू थी, मुँह खोल कर किसी को पुकार भी नहीं सकती थी। ठीक उसी समय पालकी के दूसरी ओर कुछ शब्द सा हुआ लगा। लगा कि एक बरगद के पेड़ से कोई वजनी चीज गिरी है। पालकी के इस ओर के दरवाजे को थोड़ा सा खोल कर मैंने देखा। बरगद के पेड़ पर से कोई एक काली डरावनी शक्ल का आदमी कूदा था। मैंने डर के मारे पालकी का दरवाजा बन्द कर लिया। लेकिन उसी क्षण मुझे लगा कि दरवाजे को खुला रखना ही ठीक होगा। मैंने फिर दरवाजा खोला ही था एक दूसरा आदमी भी, काला-काला सा बदसूरत सा पेड़ पर से कूद पड़ा। उसके बाद फिर एक और कूदा, उसके पीछे फिर एक! इस तरह देखते-देखते चार आदमी कूदे पड़े। वे सभी दौड़ कर पालकी के पास आये और पालकी को एकाएक उठा कर अपने कन्धों पर रख कर साँस छोड़ कर भाग चले।

यह देखते ही मेरे साथ के दरबान भी 'कौन है,' 'कौन है?' करके चिल्लाते हुए पानी से निकल कर दौड़े। अब मेरी समझ में आया कि मैं डाकुओं के फेर में पड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गई हूँ। अब किसी तरह साँस का साथ कम न हो, मैंने पालकी के दोनों ओर के दरवाजे खोल दिये। बार बार मैंने सोचा कि खुले दरवाजे से कूद कर भाग जाऊँ। तभी देखा कि मेरे साथ के सभी आदमी खूब हो-हल्ला करते हुए पालकी के पीछे-पीछे दौड़ते आ रहे हैं। मुझे आशा बँधी, लेकिन शीघ्र ही वह आशा भी जाती रही और निराशा ने मन पर अधिकार जमाना शुरू किया क्योंकि तब तक आस-पास के दूसरे पेड़ों से भी कई डाकू कूद-कूद कर पालकी ले कर भागने वालों की सहायता में आ गये थे। तालाब के किनारे-किनारे दूर तक बरगद के पेड़ों की कतार थी। उन्हीं के नीचे से डाकू पालकी ले कर भाग रहे थे। और उन्हीं पेड़ों पर से डाकू कूदे भी थे। इनमें से बहुतेरों के हाथों में बाँस की लाठियाँ और कुछ के हाथों में पेड़ों की ताजी डालें थीं।

डाकुओं की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, मेरे साथ के लोग जो पीछे-पीछे शोर करते हुए दौड़े आ रहे थे वे क्रमशः पिछड़ने लगे। तब मैंने पूरी तरह हताश हो कर कूद पड़ने का ही निश्चय किया। लेकिन पालकी उठा कर भागने वाले इस तेजी से दौड़ रहे थे कि ऐसे में पालकी से कूदने पर गहरी चोट लग सकती थी। तभी एक डाकू ने मुझे लाठी दिखा कर कहा, 'अगर कूदेगी तो तेरा सिर ही फोड़ दूँगा।'

डर के मारे मैं कूद भी न सकी।

मैं घबराई हुई इधर-उधर देख ही रही थी कि मेरे एक दरबान ने आ कर पालकी पकड़ ली। उसे ताक कर एक डाकू ने उसे एक लाठी मारी। वह दरबान उसी क्षण बेहोश हो कर जमीन पर लोट गया। उसे फिर उठते मैंने नहीं देखा। लगता है कि शायद वह फिर नहीं उठा।

उस दरबान की गति देख कर दूसरे सब जहाँ कि तहां रुक गये। और अब डाकू मुझे ले कर बे रोक-टोक भागे। रात को एक पहर तक वे लोग एक सी गति से सरपट भागते रहे। तब कहीं जा कर जहाँ पालकी उतारी, वहाँ घोर जंगल और भयानक अंधकार था। तब डाकुओं ने एक मशाल जला कर रोशनी की। तब एक ने बड़ी खूँखार आवाज में मुझसे कहा, 'तुम्हारे पास जो कुछ भी हो, दे दो, नहीं तो मार डालूँगा।'

मैंने चुपचाप अपने सब गहने और कपड़े दे दिये। देह पर के गहने भी उतार कर दे दिए। सिर्फ हाथ का कंगन नहीं दिया था, सो भी उन्होंने उतार लिए। उन्होंने पहनने को मुझे एक फटा-पुराना कपड़ा दिया, उसी को पहन कर मैंने सभी पहने हुए कीमती कपड़े उतार दिए। इस प्रकार मेरा सब कुछ ले लेने के बाद डाकुओं ने पालकी भी तोड़ डाली और उसमें लगी सभी चाँदी निकाल ली। फिर उन्होंने टूटी हुई पालकी में आग लगा कर उसे भी जला डाला और इस प्रकार डकैती के सभी चिन्ह भी मिटा दिए। यह सब काम पूरा करके वे लोग मुझे वहीं जंगली जानवरों का ग्रास बनने के लिए छोड़ कर चले जाने लगे। यह देख कर मैं रो उठी। मैंने चिल्ला कर कहा, 'तुम्हारे पाँव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पड़ती हूँ। मुझे भी साथ ले चलो।' इस समय डाकुओं के साथ ही वृद्ध एकमात्र सुरक्षित लगा।

तब एक बूढ़े डाकू ने करुणा भरे स्वर में कहा, 'बेटा, ऐसी गोरी लड़की ले कर हम कहाँ जायेंगे ? अभी-अभी इस डकैती का शोर मच जायगा—तुम जैसी सुन्दरी व गोरी लड़की को हमारे साथ देख कर वे सब हमें पकड़ लें गे।

तब एक जवान डाकू ने कहा, 'मैं इसे ले कर फाटक पर जाता हूँ, यह कितनी अच्छी है। इसको मैं छोड़ न सकूँगा।' इसके बाद उसने जो कुछ कहा वह मैं नहीं बता सकती। उन शब्दों को मन में नहीं दोहरा सकती। वह बूढ़ा डाकू इस दल का सरदार था। उस युवक को लाठी दिखा कर बोला, 'इसी लाठी से मैं तो तेरा सिर चूर कर के यहीं रख जाऊँगा। इस तरह का पाप क्या हम लोगों को सहता है ?'

यह कह कर वह सब को ले कर आगे बढ़ गया।

| ३ |

ससुराल का सुख

ऐसा भी क्या कभी हुआ है ? ऐसी विपत्ति, ऐसा दुःख, क्या किसी और पर कभी पड़ा है ? कहाँ तो पहले-पहल स्वामी के दर्शन करने जा रही थी, समस्त अंगों में रत्न-जड़ित गहने पहन कर, कितनी साध से बालों को बाँध कर, बड़े शौक से पान से ओंठों को रंग कर, सुगंध से सींच कर कुमारावस्था का यह खिला हुआ शरीर ले कर, यह उन्नीस साल ले कर प्रथम बार स्वामी के दर्शन करने जा रही थी, क्या कह कर यह अमूल्य रत्न मैं उनके चरण-कमलों में उपहार चढ़ाऊँ गी—यही सोचती हुई चली जा रही थी—कि अकस्मात यह मुझ पर कौन सी बिजली गिरी ? सभी गहने उतरवा लिए, ले लें, गंदा-फटा कपड़ा पहनाया, पहनूँगी, बाघ-भालुओं के मुँह में छोड़ गये, जायँ ! भूख-प्यास से मेरे प्राण सूख रहे हैं, प्राण निकल रहे हैं, निकल जायँ, अब और जीवन नहीं चाहिए, इसी क्षण निकल जायँ, तो ही अच्छा हो ! लेकिन अगर प्राण नहीं गये, यदि बच गये, तब मैं कहाँ जाऊँगी ? अब तो उनसे भेंट नहीं ही हो गी—लगता है, अब माँ-बाप को भी नहीं देख पाऊँगी ! रोने से रुलाई भी तो नहीं आती !

सो मन ही मन स्थिर कर रही थी—अब रोऊँ गी नहीं। आँखों के आँसू किसी तरह रुकते ही न थे, फिर भी कोशिश कर रही थी—ठीक इसी समय खूब दूरी से खूब जोरों से गरजने की सी आवाज आई। मन में सोचा—बाघ है। मन में एक तरह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रसन्नता ही हुई। बाघ यदि मुझे खा जाय तो सभी सन्ताप दूर हो जायँ! अब बाघ मेरा हाथ-पाँव तोड़ कर मेरा खून भी चूस कर पी लेगा। सोचा, उसे भी सह लूँगी, शरीर का कष्ट तो मिटेगा। मर सकूँ तो वह भी बड़ा भारी सुख है। इसलिए प्रसन्न होकर रोना बन्द कर के शांत हुई और व्यग्रता से बाघ के आने की प्रतीक्षा करने लगी। बिछे सूखे पत्तों की जितनी बार खड़बड़ाहट होती, उतनी ही बार सोचती कि अब मेरे समस्त दुखों को दूर करने मेरा रक्षक, मेरा प्राण छुड़ाने वाला बाघ आ रहा है। लेकिन बहुत रात बीत गई, मैं प्रतीक्षा ही करती रही और बाघ नहीं आया। आशा भी छूटने लगी। तब मन में विचार आया कि जहाँ बहुत घना जंगल होता है वहाँ साँप भी होते ही होंगे। साँप के ऊपर पाँव रख कर उससे अपने को डसवाने की आशा से मैं जंगल में घुसी। जंगल के अंधेरे में कई बार सर—सर, झट—पट शब्द सुने तो प्रसन्न हुई लेकिन कहीं भी साँप के ऊपर मेरे पाँव नहीं पड़े न ही मुझे किसी साँप ने डसा। मेरे पावों में बहुत से काँटे जरूर चुभ गये। बहुत से साँप—बिच्छू दिखे भी लेकिन यह क्या? वे तो हिले भी नहीं। फिर निराश होकर वापस आ गई। भूख—प्यास से इतनी थकान लग रही थी कि और अधिक घूम न सकी। एक ओर खाली जगह देख कर मैं हताश हो बैठ गई। सहसा ठीक सामने एक रीछ दिखाई पड़ा। मन में सोचा, चलो भालू के हाथ ही मर लूंगी। रीछ को छेड़ने के लिए उसे मारने दौड़ी। लेकिन हाय रे मेरा भाग्य! रीछ तो मुझसे कुछ बोला ही नहीं। वह सीधे जा कर पेड़ पर चढ़ गया। थोड़ी देर के बाद उसी पेड़ पर हजारों मधुमक्खियों की भनभनाहट सुनाई पड़ी। समझ गई कि इस पेड़ पर मधुमक्खियों का छत्ता है। शायद रीछ भी जानता था-तभी तो शहद चाटने की लालच में उसने मुझे छोड़ दिया था।

फिर रात के पिछले पहर थकान से चूर होने के कारण मुझे नींद आ गयी। पेड़ से पीठ लगा कर बैठी-बैठी ही मैं सो गई।

४

अब कहाँ जाऊँ

जब मेरी नींद टूटी तब कौवे और चिड़ियाँ शोर कर रही थीं। बाँस के पत्तों से छन-छन कर थोड़ी-थोड़ी धूप नीचे आकर धरती का मणि मोतियों से शृंगार कर रही थीं। उजाले में सब से पहले मेरी नजर अपने नंगे हाथों पर गई, देखा, मेरे हाथों में कुछ भी न था। डाकुओं ने मेरे सभी गहने उतार कर मुझे विधवा का वेश दे दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मुझे रुलाई आ गई। मैंने रोते-रोते ही एक लता की डाली तोड़ी और उसे दाहिने हाथ की कलाई पर चूड़ी की तरह लपेट लिया।

फिर चारों ओर आँखें दौड़ा कर देखा कि मैं जहाँ बैठी थी वहाँ चारों ओर बहुत से पेड़ों की कटी बुई डालें बिखरी पड़ी थीं, शायद कोई पेड़ जड़ से काटा गया है, सिर्फ डालें ही पड़ी थीं। समझ गई कि कोई लकड़ी वाला आया रहा होगा। गाँव तक जाने का रास्ता भी हो गा। दिन के उजाले में चारों ओर देखने के बाद मेरे मन में फिर से बचने की इच्छा जागी। फिर एक बार आशा का उदय हुआ—उन्नीस साल कोई बहुत ज्यादा तो नहीं हैं। उठ कर इधर-उधर खोजने के बाद एक बहुत धुँधली सी रेखा जैसी पगडण्डी दिखाई पड़ी। वह पगडंडी पकड़ कर मैं चल पड़ी। उस पर थोड़ी दूर चलने के बाद वह पथ-रेखा और स्पष्ट हो गई। अब विश्वास बढ़ा, मन में भरोसा हुआ कि अवश्य ही गाँव तक पहुँच जाऊंगी।

अब मन में एक और विपत्ति जागी—गाँव जाना तो हो ही नहीं सकता। जो फटा-फुटा कपड़ा डाकू मुझे दे गए थे, उसे किसी तरह मैंने कमर से घुटने तक लपेट लिया था। मेरी छाती पर कोई कपड़ा न था। ऐसे में किस तरह लोगों को अपना काला मुँह दिखा सकूँगी? अब तो गाँव जाना हो ही नहीं सकता। यहीं पर मरना होगा। यही निश्चय किया।

लेकिन धरती पर सूर्य की किरणों को फैला हुआ देख कर, चिड़ियों का सुमधुर कोलाहल सुन कर, लता-लता पर प्रसन्न मुख हिलते फूलों को देख कर फिर से जीते रहने की इच्छा प्रबल होने लगी। तब पेड़ों की बहुत सी पत्तियाँ तोड़ कर उन्हें एक में गूथ कर कमर और गले में गाँठ दे कर बाँधा। किसी तरह लज्जा छिपाई। बहुत कुछ पागलों जैसी दिखने लगी। और एक बार फिर वह पगडण्डी पकड़ कर चली। काफी दूर चलने के बाद गायों की आवाज सुनाई दी। समझ गई कि गाँव अब निकट ही है।

किन्तु थकान के कारण आगे नहीं बढ़ सकी। कभी इतनी दूर चलने का अभ्यास भी न था। फिर रात भर जगी रही हूँ। रात भर का असहाय शारीरिक और मानसिक कष्ट। भूख प्यास के कारण निर्जीव सी मैं रास्ते के किनारे एक पेड़ के नीचे लेट गई। लेटते ही नींद ने आक्रमण कर दिया।

नींद में ही एक सपना देखा कि मैं बादलों पर बैठ कर इन्द्रलोक में ससुराल चली गई हूँ। साक्षात कामदेव ही जैसे मेरे पति हैं। रति देवी मेरी सौत है। पारिजात के फूलों के लिए मैं सौत से झगड़ा कर रही हूँ।—ठीक इसी समय किसी के जगाने से मेरी नींद खुल गई। आँखें खुलते ही देखा—एक नौजवान था। देखने से लगा कि कोई शूद्र जाति का है और कुली मजदूर की तरह मेरा हाथ पकड़ कर खींच रहा है। सौभाग्य की बात कि नहीं पास में एक लकड़ी पड़ी थी, उसे ही उठा कर घुमा कर उस पापी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर पर दे मारा। मुझमें उस समय इतनी शक्ति कहाँ से आ गई, मैं नहीं जानती। वह आदमी सिर पर हाथ रख कर चिल्लाता हुआ भागा।

उस लकड़ी को मैंने फेंका नहीं। उसे ही टेकती आगे बढ़ी। बहुत दूर चलने के बाद, बहुत रास्ता पार करने के बाद, एक बूढ़ी स्त्री को देखा। वह एक गाय लिए जल्दी-जल्दी चली जा रही थी।

उसी से पूछा कि महेशपुर किधर हैं या मनोहरपुर कहाँ है ?

उत्तर में बुढ़िया ने पूछा, 'बेटी ! तुम कौन हो ? ऐसी सुन्दर लड़की क्या इस तरह घाट-राह में घूमती फिरती है ? अहा, मैं तो मर गई ! कैसा मनोरम रूप पाया है ? तुम मेरे घर चलो।'

उसके साथ उसके घर गई। उसने मुझे भूखी समझ कर गाय को दुहा और मुझे पीने को दूध दिया। वह जानती थी कि महेशपुर कहाँ है। मैंने उससे कहा, 'तुम्हें बहुत से रुपये दिलवाऊँ गी। तुम मुझे वहाँ तक पहुँचा दो।'

वह खुद तो नहीं चली। पर उसने राह बता दी। उसी राह को पकड़ कर मैं चल पड़ी। शाम तक उसी तरह राह चलती गई। फिर बड़ी थकान लगी। तब एक राहगीर से पूछा, 'भाई, महेशपुर यहाँ से कितनी दूर है ?'

मुझे देख कर वह राहगीर हक्का बक्का सा रह गया। बहुत देर तक सोचने के बाद वह बोला, 'तुम कहाँ से आ रही हो ?'

मैंने बुढ़िया के गाँव का नाम बता दिया। तब राहगीर ने कहा, 'तुम भूल रही हो। यह तो तुम बिल्कुल उल्टी ओर बढ़ती जा रही हो। यहाँ से महेशपुर का पूरे एक दिन का रास्ता है।'

सुन कर मेरा माथा चक्कर खा गया। मैंने फिर पूछा, 'तुम कहाँ जाओ गे ?'

'मै यहाँ पास ही गौरी गाँव में जाऊँगा।'

लाचार हो मैं उसी के पीछे-पीछे चली। गाँव में पहुँच कर उसने मुझसे पूछा, 'तुम यहाँ किसके यहाँ जाओ गी ?'

'मैं तो यहाँ किसी को नहीं जानती-पहचानती। कहीं किसी पेड़ के नीचे सो रहूँगी।'

'तुम्हारी जाति क्या है ?'

'मैं कायस्थ हूँ।'

'मैं तो ब्राह्मण हूँ। तुम मेरे साथ-साथ आओ। तुम्हारा कपड़ा-लत्ता देख कर तो नहीं, पर तुम वैसे किसी बड़े घर की लड़की हो, यह तो समझ में आता है। छोटे घरों में ऐसा, तुम्हारे जैसा रूप नहीं होता।'

जले यह रूप ! यह रूप-रूप सुनते-सुनते तों देह भर में आग लग गई। लेकिन वह ब्राह्मण बूढ़ा था। बिना डर मैं उसके साथ चली गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ब्राह्मण के यहाँ दो दिनों रह कर मैंने आराम किया। वह दयालु और बूढ़ा ब्राह्मण कर्मकाण्डी था। पुरोहिती करता था। मेरे कपड़ों की दुर्दशा देख कर उसने बड़े अचरज से कहा, 'बेटी, तुम्हारे कपड़ों की ऐसी दशा कैसे हुई। क्या किसी ने तुम्हारे कपड़े छीन लिए हैं ?'

'जी हाँ !'

उसे अपने यजमानों से कभी-कभी कपड़े मिलते थे—उसने दो शुद्ध बहार की चौड़े रंगीन किनारी की साड़ी मुझे पहनने को दी। उसके घर में शंख का एक कड़ा भी मिल गया। मैंने उसे भी पहन लिया।

यह सब काम मैंने पूरा तो किया लेकिन बड़े कष्ट से। मेरा शरीर टूटा जा रहा था। ब्राह्मणी ठकुरानी ने खाने को थोड़ा भात दिया, मैंने खा लिया। एक चटाई दी, उसे बिछा कर सोई। लेकिन मन में इतना हाहाकार था कि नींद नहीं आई। मैं जो जीवित रह गई, यही तकलीफ की बात थी, मर जाती तो ही ठीक होता। रह रह कर मन में यही बात आती थी। इसी से नींद नहीं आई।

सबेरा होते-होते थोड़ी देर को नींद आई। फिर सपना देखने लगी। देखा कि सामने यमराज की भयंकर काली मूर्ति अपने बड़े-बड़े दाँत निकाल कर हँस रही है। फिर डर कर जाग गई, फिर नींद नहीं आई। उठ कर देखा कि मेरी समस्त देह पीड़ा से टूट रही है। पाँवों में भी सूजन आ गई थी। बैठने तक की ताकत न थी।

जब तक देह का दर्द न गया, मैं ब्राह्मण के यहाँ ही रही। ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने मुझे बड़े आराम से रखा। लेकिन महेशपुर जाने का कोई उपाय न दिखा। कोई स्त्री भी रास्ता न जानती थी, न किसी ने साथ जाना ही स्वीकार किया। पुरुष तो साथ जाने को कई तैयार हुए, पर अकेले उनके साथ जाने में डर लगा। ब्राह्मण ने भी मना किया, कहा, 'इन सबों का चरित्र ठीक नहीं है। उनके साथ मत जाना। कोई भरोसा नहीं कि उनके मन में कब क्या हो ! मैं स्वयं कुलीन ब्राह्मण हूँ। तुम जैसी सुन्दरी कन्या को उन लोगों के साथ जाने को नहीं कह सकता।'

इसलिए मैं उनके साथ नहीं गई।

एक दिन सुना कि इसी गाँव के कृष्णदास बसु नाम के एक भले आदमी अपने परिवार के साथ कलकत्ता जाएँगे। सुन कर मुझे लगा कि यही ठीक अवसर है। कलकत्ता से मेरा मायका और ससुराल दोनों ही दूर हैं, लेकिन मेरे एक जाति के चाचा वहाँ काम करते थे और रहते थे। मैंने मन ही मन सोचा कि कलकत्ता पहुँच कर जरूर ही मैं अपने चाचा का पता लगा सकूँगी। तब वे मुझे मेरे मायके भेजने की अवश्य ही व्यवस्था कर देंगे। नहीं तो कम से कम मेरे पिता को खबर कर ही देंगे।

मैंने यह बात ब्राह्मण से कही। ब्राह्मण बोला, 'यह तो ठीक सोचा। बाबू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कृष्णदास मेरे यजमान हैं। तुम्हें साथ ले जाने को उनसे कह दूंगा। वे वृद्ध और सज्जन भलेमानुस हैं।'

फिर ब्राह्मण मुझे कृष्णदास के पास ले गया। ब्राह्मण ने कहा, 'एक अच्छे कुल की यह कन्या दुर्भाग्य से रास्ता भटक कर इस ओर आ पहुँची है। यदि आप इसे अपने साथ लेते जायँ तो यह अनाथ लड़की अपने पिता के घर पहुँच सकती है।'

बाबू कृष्णदास राजी हो गये। मैं उनके घर के भीतर गई। दूसरे ही दिन उनके परिवार की स्त्रियों के साथ कलकत्ता के लिए रवाना हुई।

पहले तो चार-पाँच कोस चल कर हम गंगा किनारे पहुँचे। दूसरे दिन नाव पर सवार हुए।

६

महानगरी

मैंने गंगा कभी नहीं देखी थी। इस समय गंगा के दर्शन कर के मेरे प्राण लहलहा उठे। मैं अपना समस्त दुख थोड़ी देर के लिए बिसर गई। गंगा का विशाल हृदय। उसमें उठती छोटी-छोटी लहरें, लहरों पर सूर्य-किरणों की झलमलाहट, जितनी दूर आँखे जाती थीं, दूर तक लहरें चमक रही थीं। गंगा के किनारे पर बाग की तरह अनन्त पेड़ों के झुण्ड, पानी में तरह-तरह की बहुत सी नावें, जल पर डाँड़ चलने से छपाक्-छपाक आवाज, डाँड़ चलाने वाले मल्लाहों की हुँकार और बोली, घाट किनारे का कोलाहल। कई प्रकार के कितने ही आदमी नहा रहे थे। खूब विस्तृत पानी का फैलाव; कहीं कहीं बालू से ढँकी धरती। उस पर बैठे तरह-तरह के पक्षी तरह-तरह की आवाज में बोल रहे थे। देख कर लगा कि गंगा सचमुच पुण्यमयी है। मैं बहुत देर तक गंगा को ही देखती रही।

कलकत्ता पहुँचने में जब एक दिन बाकी रह गया तो शाम के पहले नदी में ज्वार आ गया। इसलिए नाव का आगे बहना कठिन हो गया। अतः एक अच्छे गाँव के पक्के घाट के पास हमारी नाव लगा दी गई। मैंने कितनी ही सुन्दर चीजें देखीं। मल्लाहों का मछली पकड़ना देखा। पंडित समाज घाट पर बैठ कर शास्त्रीय चर्चा कर रहे थे। गाँव की बहुत सी सुन्दरियाँ सज-धज कर घाट पर पानी लेने आई थीं। कोई पानी उछालतीं, कोई घड़ा भरतीं, कोई बार-बार घड़ा भरतीं पानी गिरातीं और फिर भरतीं। कुछ बैठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर गप्पें लड़ातीं। उन्हें देख कर मुझे एक पुराना गीत याद आ गया।

अकेली काँख में घड़ा दबाया
कलसी में जल भरा
जल के भीतर श्याम सलोने
कलसी में उठती लहरें
और कोई दिखा नहीं
फिर वह जल में छिप गये।

उसी दिन, उसी स्थान पर दो लड़कियों को देखा था। उन्हें तो कभी भूल ही नहीं सकती। उनकी उम्र यही सात-आठ वर्ष की होगी। देखने में अच्छी थीं पर बहुत सुन्दर नहीं। लेकिन सजी-बजी खूब थीं। कानों में कर्णफूल थे और हाथ तथा गले में एक-एक गहना था। वेणियों में फूल गुंथे। शेफाली के फूल के रंग के कपड़ों में काली किनारी थी, वही पहने थीं। पैरों में खूब मैल जमी और कमर पर छोटी-छोटी कलसियाँ। घाट के किनारे उतरते समय ज्वार के जल का एक गीत गाती हुई उतरीं। वह गाना मुझे इतना अच्छा लगा कि मैंने याद कर लिया। एक लड़की एक पद गाती और दूसरी दूसरा पद। उनके नाम थे अमला और निर्मला। पहले अमला ने गाया—

धान के खेतों में उठती लहरें
बाँसों के तल में जल
आओ चलें, जल ले आवें
जल लाने चल।

निर्मला ने गाया—

घाट हैं शीतल, पेड़ों के झुंड
फूले फूलों के दल
आओ चलें, जल ले आवें
जल लाने चल।

गाना लंबा था। इतना ही याद कर पाई।

लड़कियों को देख कर जी जुड़ा गया। मैं बड़े ध्यान से गीत सुन रही थी। मुझे खूब तन्मय देख कर बसु महाशय की पत्नी ने मुझसे पूछा, 'बड़े ध्यान से सुन रही हो, गीत तो बेकार है।'

मैं बोली, 'हानि भी क्या हैं ? सोलह साल की लड़की के मुँह से यह चाहे अच्छा न लगे पर इन छोटी-छोटी लड़कियों के मुँह से तो सुहावना लगता ही है। कभी-कभी उम्र वाले आदमी के हाथ की चीज वैसी अच्छी नहीं लगती जितनी कि छोडे बच्चे के हाथ की मीठी लगती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बसु-परिवार के कुछ सदस्य मेरी नाव पर मेरा हुक्म बजा कर बैठी रहीं। मैं सोचने लगी—इतना भेदभाव क्यों ? एक ही चीज दो तरह की क्यों लगती है ? गरीब को देने से जो दान कहा जाता है, बड़े आदमी को वही देने से खुशामद क्यों समझा जाता है ? जो सत्य धर्म का मुख्य अंग है, परिस्थिति विशेष में वही पर निन्दा रूपी पाप क्यों बन जाता है ? जिस क्षमा को परमधर्म कहते हैं, वही अत्याचारी के प्रति दरसाने से महापाप क्यों बन जाती है ? कोई अपनी स्त्री को जंगल में छोड़ आए तो उसे महापापी कहेंगे लेकिन रामचन्द्र ने सीता को जान-बूझ कर वन भेज दिया था उन्हें कोई महापापी क्यों नहीं कहता ?

मैंने समझा कि परिस्थिति के अन्तर के कारण इतना भेद होता है। लेकिन बात मेरे मन में बनी रही।

नाव पर कलकत्ता के निकट आने पर, दूर से ही कलकत्ता को देख कर मैं चकित हुई और भयभीत भी हुई। छत के ऊपर छत, अटारियों पर अटारियाँ, घर के ऊपर घर, घर की पीठ पर घर, उसकी पीठ पर फिर घर। अटारियों का जंगल, अन्त-हीन, कहीं ओर-छोर का पता नहीं। जहाजों के मस्तूलों का जंगल देख कर तो मेरा दिमाग ही चक्कर खा गया। नावों की कभी समाप्त न होने वाली पाँत देख कर मन में प्रश्न उठा कि इतनी नावें आदमियों ने कैसे बनाई होंगी ! महानगरी के और निकट जाने पर देखा कि किनारे की सड़क पर पालकियाँ, गाड़ियाँ चींटी की कतार की तरह रेंगती चली जा रही हैं, जिनकी गिनती भी नहीं की जा सकती। जितने लोग सड़कों पर चल रहे थे उनकी तो गिनती भगवान भी नहीं कर सकते। मुझे भय लगा कि इस भीड़ में मैं अपने चाचा को कैसे खोज पाऊँगी ?

६

सुभाषिणी

बाबू कृष्णदास कलकत्ता आये थे, कालीघाट में पूजा चढ़ाने। वे भवानीपुर में ठहरे। मुझसे पूछा, 'तुम्हारे चाचा कहाँ रहते हैं ? कलकत्ता में या भवानीपुर में ?'

लेकिन मैं बता न सकी, जानती ही न थी।

उन्होंने पूछा, 'कलकत्ते में वह कहाँ रहते हैं ?'

यह भी मैं नहीं जानती थी। मैं समझ कर आई थी कि जिस तरह महेशपुर एक बड़ा गाँव हैं, उसी तरह कलकत्ता और थोड़ा बड़ा गाँव होगा। एक भले आदमी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नाम पूछते ही कोई भी उनका पता बता देगा। अब देख कर जाना कि कलकत्ता तो बहुत विशाल घरों और अटारियों का अनन्त महासागर है। अपने चाचा का पता लगाने को कोई उपाय समझ में नहीं आया। बाबू कृष्णदास ने भी अपने भरसक उनका पता लगाने का प्रयत्न किया। लेकिन एक ग्रामीण का उस जनसमुदाय में भला क्या पता लगता ?

तय हुआ कि कालीघाट में पूजा चढ़ाने के बाद बाबू कृष्णदास काशी चले जायेंगे। जब पूजा चढ़ाई जा चुकी तो वे सपरिवार काशी यात्रा का प्रबंध करने लगे। तब मैं अपनी असहाय अवस्था को सोच-सोच कर रोने लगी। उनकी पत्नी ने कहा, 'तुम मेरी राय मानो। तुम कलकत्ता में रह कर अपने चाचा को खोजो। अभी किसी के घर नौकरानी का काम कर लो तो रहने की व्यवस्था हो जायगी। आज सुबो आवेगी, उससे कहूँगी, अपने यहाँ वह तुम्हें दासी का काम दे दे।'

सुन कर लगा कि मैं पछाड़ खा कर गिर पड़ूँगी। मैं जोर-जोर से रोने लगी। क्या अन्त में मेरे भाग्य में दासी बनना ही लिखा है ? क्लेश के कारण मैंने अपने ही दाँतों से अपने ओंठ काट कर लहूलहान कर लिए। बाबू कृष्णदास को मुझ पर दया आई, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन वे बोले, 'बताओ, मैं क्या करूँ ?

उनका कहना ठीक ही था। भला वे बेचारे कर भी क्या सकते थे ? मेरा भाग्य ही खोटा था !

एक कमरे के एक कोने में पड़ कर मैं रोने लगी। शाम के कुछ पहले बसु-पत्नी ने मुझे बुलाया। मैं उठ कर उनके पास गई। वे बोलीं, 'देखो, यह सुबो आई है। तुम अगर उसके घर नौकरी करना चाहो तो मैं कह दूँ।'

मैं दासी नहीं बनूँगी, चाहे भूखों मर जाऊँ—मन में यह निश्चय कर चुकी थी। मैं ठेठ देहात की लड़की थी। मैंने सोचा था कि 'सुबो' यहाँ की कोई मामूली चीज होगी। लेकिन देख कर जाना कि मेरा सोचना गलत था। 'सुबो' एक स्त्री थी, देखने लायक चीज। ऐसी अच्छी चीज मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। वह मेरी ही उम्र की थी। रंग रूप मुझसे अच्छा हो, ऐसी बात तो थी नहीं। वेश-भूषा भी कुछ ऐसी खास नहीं। कानों में छोटे-छोटे कर्णफूल थे, हाथों में कड़े, गले में हँसुली, एक काली किनारी की साड़ी पहने थी। बस देखने को यही सामान थे। लेकिन ऐसा आकर्षक चेहरा कभी न देखा था। खिले कमल जैसा—बाल ऐसे बिखरे जैसे चारो ओर से साँपों ने कमल को घेर रखा हो। आँखें खूब बड़ी-बड़ी। कभी-कभी स्थिर रहतीं, कभी हँसने लगतीं। पतले-पतले ओंठ। सब मिला कर चेहरा ऐसा लगता जैसे ताजा लाल फूल खिला हो। गठन कैसी है, उस ओर ध्यान नहीं दे सकी। छोटे पौधों की कई डालें हवा में जिस तरह खेलती हैं, उसी तरह उसके सारे अंग खेल रहे थे। नदी में जैसे लहरें उठती थीं, उसके शरीर में भी कुछ वैसी ही लहरें जैसे उठती थीं। मैं यह समझ न सकी कि क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

है। उसने अपने मुँह पर कुछ पोत रखा था, उसी ने मुझ पर जादू का असर किया था। मैं एक स्त्री हूँ। कभी मुझे भी अपनी सुन्दरता पर गर्व था। सुबो के साथ एक तीन साल का लड़का भी था, वह भी खिलते हुए फूल जैसा ही था। उठता, बैठता, हिलता, दौड़ता, कूदता, हँसता, चीखता, मारता और सब का आदर करता।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं एकटक सुबो और उसके लड़के को देखती रही। मुझे देख कर बसु-पत्नी ने कहा, 'जवाब क्यों नहीं देती, क्या सोच रही है ?'

मैंने पूछा, 'ये कौन हैं ?'

बसु-पत्नी ने धमकाने जैसे स्वर में कहा, 'क्या यह भी बतलाना होगा ? यह सुबो है, सुबो। और कौन है !'

मैं इतने पर भी जब कुछ न समझी तब सुबो ने खुद ही कहा, 'मौसी, बतलाना तो होगा ही। यह बेचारी यहाँ के लिए अभी नई हैं। मुझे कैसे जानेगी ?' फिर मेरे चेहरे की ओर देख कर हँसते हुए सुबो ने कहा, 'मेरा नाम सुभाषिणी है, ये मेरी मौसी हैं। बचपन से ही ये लोग मुझे 'सुबो' कहते हैं।'

तब बसु-पत्नी बीच में ही बोल उठीं, 'कलकत्ते के रामराय दत्त के लड़के से ब्याह हुआ है। बहुत बड़े आदमी हैं। शुरू से ही यह ससुराल में रहती है, इसलिए कभी भेंट नहीं हो पाती। मैं कलकत्ता आई हूँ। यह सुन कर हमसे मिलने आई है। यह लोग बड़े आदमी हैं। बड़े आदमी के बड़े घर में तुम ठीक से काम-काज कर सकोगी तो ?'

मैं भी बड़े आदमी की लड़की हूँ। हरिमोहन दत्त की लड़की। कभी मैं रुपये बिछा कर सोना चाहती थी—अब—बड़े आदमी के बड़े घर में ठीक से काम-काज कर सकूँगी तो ? सुन कर मेरी आँखों में आँसू आ गये। फिर जाने क्या सोच कर मुँह पर हँसी भी आई। लेकिन उसे और किसी ने नहीं देखा, सिर्फ सुभाषिणी ने ही देखा। उसने अपनी मौसी से कहा, 'मैं इससे जरा अकेले में बातें करूँगी, अगर यह राजी होगी तो साथ लिए जाऊँ गी।' कह कर सुभाषिणी मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए मुझे पास के एक कमरे में ले गई। वहाँ हम दोनों के सिवा और कोई न था। सिर्फ सुभाषिणी का लड़का माँ के पीछे-पीछे दौड़ता आ गया था। कमरे में एक तख्तपोश बिछा था। सुभाषिणी उसी पर बैठ गई और मेरा हाथ खींच कर मुझे भी अपने पास ही बिठाया। बोली, 'देखो, मैंने बिना पूछे ही अपना नाम बता दिया। अब तुम भी अपना नाम बताओ, बहन।'

उसने 'बहन' कहा। लगा कि अगर मेरे भाग में दासी बनना ही लिखा है तो इसी के पास दासी बन कर रह सकती हूँ। मैंने मन ही मन सोच कर उसको उत्तर दिया, 'मेरे दो नाम हैं, एक प्रचलित है और एक प्रचलित नहीं है, जो इन लोगों को बताया है। इसलिए वही नाम आप से भी बताऊँगी। मेरा नाम है, कुमुदिनी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चा बोल उठा, 'कुमुदनी।'

सुभाषिणी बोली, 'ठीक है, यही नाम सही। क्या कायस्थ हो ?'

'हाँ, हम कायस्थ हैं।'

सुभाषिणी बोली, 'ठीक है, किसकी लड़की हो, किसकी पत्नी हो, घर कहाँ हैं, ससुराल कहाँ है, यह सब अभी नहीं पूछूँगी। अभी मैं जो कहती हूँ, तुम वही सुनो। तुम भी बड़े घर की बेटी हो, इतना तो मैं समझ गई। तुम्हारे गले व हाथ में गहने के सुबूत में काली रेखाएँ अभी भी मौजूद हैं। मैं तुम्हें दासी बनने को नहीं कहूँगी। तुम थोड़ा बहुत खाना बनाना जानती हो या नहीं ?'

'जानती हूँ। अच्छा खाना बनाने के लिए मैं अपने मायके में खूब प्रसिद्ध थी।'

'अपने घर में तो हम सभी रसोई बनाते हैं। तो भी कलकत्ता के रिवाज के मुताबिक रसोई बनाने वाली महराजिन भी है। वह अब अपने घर जायगी, अभी माँ से कह कर तुम्हें उसी की जगह रखवा दूँगी। तुम्हें रसोईदारिन की तरह रसोई बनानी पड़ेगी। हम सभी बना लेंगे, तुम्हें भी साथ देना होगा। क्यों राजी हो ?''

'आप के पास मैं दासी-कार्य करने को भी तैयार हूँ।'

'ऐसा क्यों कहती हो बहन ! यह सब कहना होगा तो माँ से कहना। उसी माँ को ले कर तो सब गड़बड़ी है। वे कुछ चिड़चिड़े स्वभाव की हैं। बस उन्हें ही वश में कर लेना होगा। यह तुम कर सको गी। मैं समझ गई हूँ। मुझे भी आदमी की पहचान है। क्यों, राजी हो न ?'

'राजी तो होना ही पड़ेगा। और करूँगी भी क्या ? मेरे लिए और कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं बचा है !' कहते-कहते मैं फिर रो पड़ी।

'रास्ता क्या नहीं है ? ठहरो बहन, असली बात तो भूल ही गई।' कह कर सुभाषिणी भाग कर मौसी के पास गई और पूछा, 'हाँ मौसी ! यह तुम लोगों की कौन है ?'

इसके उत्तर में उसकी मौसी ने क्या कहा मैं सुन नहीं पायी। लगता है कि मेरे बारे में बसु-पत्नी जितना जानती थीं, वही बताया होगा। लेकिन सच तो यह है कि वे मेरे बारे में कुछ भी नहीं जानती थीं। उस ब्राह्मण से जितना सुना था, उतना ही जानती थीं।

थोड़ी देर बाद हँसते हुए वापस आ कर सुभाषिणी बोली, 'चलो बहन, गाड़ी तैयार है। अब तो अगर नहीं चलो गी तो मैं तुम्हें पकड़ कर ले चलूँ गी। लेकिन जो बात कही है, वह याद रखना—माँ को वश में करना होगा।'

सुभाषिणी ने एक प्रकार से बलात खींचते हुए मुझे ले जा कर गाड़ी पर बैठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया। ब्राह्मण की दी हुई रंगीन किनारी की दो धोतियों में से एक तो मैं पहने थी, दूसरी रस्सी पर सूख रही थी, उसे ले आने का समय भी उसने न दिया।

उसके पास बैठ कर मैं सुभाषिणी के लड़के को गोद में बैठा कर उसको प्यार करती, उसका मुँह चूमती चल पड़ी।

७

स्याही की बोतल

माँ थी—सुभाषिणी की सास। उन्हें ही वश में करना था, इसलिए जाते ही मैंने उन्हें प्रणाम कर उनके पैरों की धूल को माथे पर चढ़ाया, फिर एक नजर देखा कि कैसी हैं ? उस समय वे छत पर एक चारपाई बिछा कर सिर के नीचे तकिया रखे लेटी थीं, एक औरत उनके पैर दबा रही थी। देख कर मुझे लगा कि एक बड़ी और लम्बी स्याही की बोतल, पूरी रोशनाई से भरी हुई, चारपाई पर पड़ी है। पके, सफेद बाल टीन के ढक्कन जैसे लगते थे। उनका दिव्य रूप अंधेरे को और गहरा कर रहा था। मैंने मन में सोचा—'यही है इस बड़े घर की ठकुरानी ?'

मुझे देख कर ठकुरानी ने अपनी बहू से पूछा, 'यह कौन है ?'

'तुम एक रसोईदारिन खोजती थीं न, इसीलिए इसे ले आई हूँ।'

'कहाँ मिली ?'

'मौसी ने दिया है।'

'बाभन या कायथ ?'

'कायथ।'

'आह, तेरी मौसी का सिर जले ! कायथ की लड़की ले कर क्या करूँगी ? बाभन को भी तो भात देना होता है।'

सुभाषिणी ने ही उत्तर दिया, 'रोज तो बाभन को भात देना नहीं है। जितने दिन चल सके, चले, फिर जब बाभनी मिल जायगी तो रख लें गे। लेकिन बाभनी का झमेला बहुत रहता है। हम लोगों के रसोई घर में चले जाने से ही हाँड़ी-कूड़ी फेंकने लगती हैं। पटरे[1] का प्रसाद देने आती हैं। क्यों, क्या हम लोग चमार हैं ?'

मन ही मन मैं सुभाषिणी की बड़ाई करने लगी—समझ गई कि इस स्याही भरी लम्बी बोतल को मुट्ठी में बाँधना वह जानती है। तब ठकुरानी ने कहा, 'सो तो ठीक है बहु, छोटे लोगों का इतना घमण्ड सचमुच सहा नहीं जाता। तो ठीक है, इस

१. पटरा जिस पर भोजन रखा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय कुछ दिनों कायथ की लड़की को ही रख कर देख लो। लेकिन कितना महीना लेगी ?'

सुभाषिणी बोली, 'उसकी तो मैंने बात नहीं की।'

ठकुरानी विकल हो उठीं, 'हाय रे, कलयुग की लड़कियाँ ! आदमी को नौकर रखने को पकड़ लाई और महीना-तनखाह की बात तै नहीं की ?' फिर मुझसे पूछा, 'तुम क्या लो गी ?'

मैंने कहा, 'जब आप का सहारा लेने आई हूँ तो जो देंगी वहीं ले लूँ गी।'

ठकुरानी ने संतुष्ट हो कर कहा, 'हाँ। बाभन की लड़की को तो ज्यादा देना होता है, लेकिन तुम तो कायथ की लड़की हो—तुम्हें मैं तीन रुपया और खाना-कपड़ा दूँ गी।'

मुझे तो सिर्फ सिर छुपाने को जगह चाहिये थी, अतः मैं तत्काल राजी हो गई। लेकिन महीना लेने का नाम सुनते ही मेरा मन दुख से हाहाकार कर उठा। लेकिन चुप रही मैं और बोली, 'ठीक है, वही दीजिए गा।'

मन में निश्चिन्त हुई, झंझट मिटी, लेकिन झंझट मिटी कहाँ ? उस लम्बी बोतल में स्याही बहुत थी। ठकुरानी ने पूछा, 'तुम्हारी उम्र क्या है ? अंधेरे में ठीक से देख नहीं पा रही हूँ। लेकिन तेरा गला तो लड़के की तरह मालूम देता है।'

मैंने कहा, 'यही उन्नीस-बीस साल।'

ठकुरानी ने झटपट कहा, 'तो बेटी, कहीं और दूसरी जगह तुम काम तलाशो। तुम लौट जाओ। मैं इतनी जवान औरत को नहीं रख सकती।'

सुभाषिणी बोली, 'ऐसा क्यों माँ ? साफ सुथरी जवान और क्या बुरी है ?'

सास ने कहा, 'ऐसा न होता तो छोटे लोग जो मेहनत कर के खाते हैं, वे क्या अच्छे हैं ?'

अब मैं अपनी रुलाई रोक न सकी। वहाँ से उसी क्षण रोती हुई उठ गई। सास ने बहू से पूछा, 'छोकड़ी चली गई क्या ?'

'हाँ, मालूम तो होता है।'

'ठीक है, जाने दे।'

'लेकिन गृहस्थ के घर आ कर बिना खाये चली जायेगी ? इसे कुछ खिला-पिला कर विदा करूँगी।'

कहते हुए उठ कर सुभाषिणी मेरे पीछे-पीछे आई। मुझे पकड़ कर अपने सोने के कमरे में ले गई। मैंने कहा, 'अब मुझे इस तरह क्यों बाँध रही हो ? पेट के लिए हो, चाहे प्राणों के लिए हो, मैं इस तरह की बातें सुनने के लिए यहाँ नहीं रह सकती।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ठीक है रहने की जरूरत नहीं। लेकिन मेरे कहने से तो आज रात को मेरे पास रह जाओ।'

सोचा—कहाँ जाऊँगी ? इसी से उस रात वहीं रहने को राजी हो गई। फिर इधर-उधर की बातों के बाद सुभाषिणी ने पूछा, 'यहाँ अगर नहीं रहोगी तो जाओगी कहाँ ?'

'गंगा में बहुत पानी है।'

सुभाषिणी की आँखें भी बरसने लगीं। बोली, 'गंगा में तुम्हें नहीं जाना पड़ेगा। मैं अब क्या करती हूँ, जरा चुपचाप देखो। तुम झंझट मत करना, मेरी बातें सुनना।'

फिर सुभाषिणी ने एक औरत को पुकारा—'हारानी !'

हारानी सुभाषिणी की खास नौकरानी थी।

हारानी आवाज सुनते ही भागी आई। मोटी, छोटी, काली, चालीस पार, मुँह पर हँसी, सारे शरीर में हँसी। चंचल भी। सुभाषिणी ने कहा, 'एक बार उन्हें बुला तो लाओ।'

हारानी ने कहा, 'इस समय बेमौके वे आवें गे क्या ? मैं चाहे जितना बुलाऊँ अभी तो आने से रहे।'

सुभाषिणी ने भौंवें चढ़ा कर कहा, 'चाहे जो कर, बुला कर ला।'

हारानी हँसती-हँसती चली गई। मैंने सुभाषिणी से पूछा, 'किसे बुलवाया है ? अपने स्वामी को ?'

'और नहीं तो क्या मुहल्ले के मोदी-मुँशी को इतनी रात को बुलावाऊँगी ?'

'मेरा मतलब था कि मुझे उठ कर जाना होगा या नहीं ?'

'नहीं, तुम यहीं बैठी रहो।'

थोड़ी ही देर बाद सुभाषिणी के स्वामी आये। बहुत सुन्दर पुरुष थे। आते ही उन्होंने पूछा, 'यह बेमौके की पेशी क्यों हुई ?' फिर मेरी ओर देख कर पूछा, 'ये कौन हैं ?'

सुभाषिणी ने कहा, 'इन्हीं के लिए तुम्हें बुलाया है। अपनी रसोईदारिन घर जायेगी। इसीसे उसकी जगह काम करने को मैं इसे मौसी के पास से ले आई हूँ। लेकिन माँ इसे रखना नहीं चाहतीं।'

'क्यों नहीं रखना चाहतीं ?'

'यह जवान है, इसलिए,।'

सुभाषिणी के पति थोड़ा हँसे। बोले, 'तो इसमें मुझे क्या करना है ?'

'इसे रखना होगा।'

'क्यों ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभाषिणी उठी, अपने पति के निकट गई और ऐसे धीरे स्वर में जिसे मैं न सुन सकूँ, बोली, 'मेरा हुक्म है ।'

लेकिन सुभाषिणी का कहना मैंने सुन लिया । उसके स्वामी ने भी उसी तरह धीरे से कहा, 'जैसी आज्ञा !'

'तो कब से रखोगे ?'

'भोजन के समय ।'

उनके जाने के बाद मैंने सुभाषिणी से कहा, 'यह तो हुआ कि मानो उन्होंने रखवा लिया, लेकिन ऐसी कड़वी बात सह कर मैं कैसे रहूँगी ?'

'यह तो बाद की बात है । बाद में ही देखी जायगी । गंगा तो एक दिन में सूख न जायेगी ?'

फिर रात को लगभग नौ बजे सुभाषिनी के पति भोजन करने आए । उनकी माँ जा कर पास ही बैठ गई । सुभाषिणी मुझे भी घसीट ले गई । कहा 'चलो देखें क्या होता है ।'

हमने छिप कर ओट से देखा, तरह-तरह के व्यंजन थाली में परोसे गये थे, लेकिन रमन बाबू ने एक बार जरा सा मुँह में डाला और थाली खिसका दी । कुछ भी न खाया । तब माँ ने पूछा, 'बच्चा, कुछ खाया नहीं ?'

पुत्र ने कहा, 'यह खाना तो भूत-प्रेतों के गले भी नहीं उतर सके गा । बाभन ठकुरानी के हाथ का खाते-खाते मुझे तो खाने से ही अरुचि उत्पन्न हो गई है । अब सोचता हूँ कि कल से बुआ के घर जा कर खाऊँगा ।'

एकाएक ठकुरानी जैसे सिकुड़ कर छोटी हो गईं, बोलीं, 'नहीं, यदु ! ऐसा नहीं करना बेटा ! मैं दूसरी रसोईदारिन ठीक करती हूँ ।'

बाबू हाथ धो कर उठ गये । देख कर सुभाषिणी ने तनिक संताप से कहा, 'हम लोगों के लिए, बहन, वे खा भी न सके । ठीक है, नहीं खायें, काम तो होना ही चाहिए ।'

मैं आश्चर्य चकित ! कुछ कहने जा रही थी, उसी समय हारानी ने आ कर सुभाषिणी से कहा, 'तुम्हारी सास बुला रही हैं ।' कह कर वह जान बूझ कर मेरी ओर देख कर हँसी । मैं समझ तो गई थी कि हँसी उसका रोग है, लेकिन इस समय की हँसी दूसरा माने रखती थी ।

सुभाषिणी सास के पास गई । मैं छिप कर सुनने लगी ।

सास ने कहा, 'वह कायथ की छोकरी चली गई क्या ?'

'नहीं, अभी उसे खिलाया नहीं है, इससे रोक रखा है ।'

'वह कैसी रसोई बनाती है ?'

'सो तो मैं नहीं जानती ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तो जब आज वह अभी नहीं गई सो अच्छा ही हुआ। कल सवेरे उससे दो एक चीजें बनवा कर देखना होगा।'

'तो मैं उसे रोक लेती हूँ'

कह कर सुभाषिणी सास के पास से मेरे पास आई और पूछा, 'बहन तुम खाना बनाना तो जानती हो न ?'

'जानती हूँ, यह तो पहले ही बताया था।'

'अच्छी रसोई बनाना जानती हो न ?'

'कल खा कर देखना तभी समझो गी।'

'अगर अभ्यास न हो तो बोलो, मैं पास बैठ कर सिखा दूँगी।'

मैं हँस पड़ी। बोली, 'बाद की बात बाद में होगी।'

| ८ |

आश्रय

दूसरे दिन मैंने ही पूरी रसोई बनाई। सुभाषिणी एक बार देखने आई थी। मैंने जान बूझ कर उसी समय लालमिर्च का फोरन दिया—वह खाँसती छींकती उठ कर भागी। बोली, 'मौत है, यह रसोई भी।'

रसोई तैयार हो जाने पर पहले लड़कों-बच्चों ने खाया। सुभाषिणी का बच्चा अभी ज्यादा अन्न नहीं खाता था। लेकिन सुभाषिणी की एक पाँच साल की लड़की थी —हेमा। सुभाषिणी ने उसी से पूछा, 'कहो, रसोई कैसी बनी है, हेमा ?'

हेमा बोली, 'बहुत अच्छी, बहुत अच्छी माँ ! लड़की कविता रट कर कहने में बड़ी चतुर थी। वह गाने लगी—

'राँध वेश, बाँध केश,
बकूल फूलेर माला
रांगा साड़ी, हाते हाँड़ी,
राँधछे ग्वालार बाला !
एमन समय, बाजल बांशी
कदम्बेर तले।
काँदिये छेले, राजा फेले,
राँधूनि छोटे जले।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ ने धमकाया, 'बस, कविता रहने दे।'

लड़की हेमा चुप हो गई।

उसके बाद रमन बाबू भोजन करने बैठे। मैं छिप कर देखने लगी। देखा, उन्होंने थाली की एक-एक चीज खा ली। ठकुरानी माँ के चेहरे पर हँसी थमती ही न थी। रमन बाबू ने पूछा, 'आज रसोई किसने किया है ?'

'एक नई रसोईदारिन आज आई है।'

'बनाती तो अच्छा है।' कह कर रमन बाबू हाथ धोने चले गये।

फिर घर के मालिक भोजन करने बैठे। मैं वहाँ न जा सकी। ठकुरानी माँ की आज्ञानुसार बूढ़ी ब्राह्मणी ही मालिक की थाली ले कर गई। अब मैं समझ गई कि ठकुरानी माँ को कहाँ दर्द है, वे जवान स्त्रियों को क्यों नहीं रखतीं !

मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि जितने दिन भी उस घर में रहूँगी, उधर कभी नहीं जाऊँगी। मैंने बाद में आदमियों से सुना कि मालिक का चरित्र कैसा है। सभी जानते हैं—ये सज्जन पुरुष हैं, जितेन्द्रिय हैं, लेकिन स्याही की बोतल के तो गले तक स्याही भरी थी।

ब्राह्मणी के लौट आने पर ठकुरानी माँ ने उससे पूछा, 'मालिक ने भोजन करके क्या कहा ?'

उत्तर देने के पहले ही ब्राह्मणी लाल भभूका हो गई। चिचिया कर बोली, 'अच्छा बनाया है माँ, बहुत अच्छा बनाया है। हम लोग भी बनाना जानती हैं लेकिन हमें बूढ़ी होने के कारण कौन पूछेगा ? अब रसोई करने के लिए गुण नहीं चाहिए, रूप और जवानी चाहिए।'

समझ गई कि मालिक ने खा कर तारीफ की है। लेकिन ब्राह्मणी के चिचियाने का कुछ उत्तर देने का जी चाहा। उसी से मैंने कहा, 'सो तो ठीक ही कहती हो ब्राह्मणी दीदी ! रूप और जवानी तो जरूरी है। बुढ़िया को देख कर किसे खाना अच्छा लगेगा भला ?'

ब्राह्मणी दाँत दिखा कर कर्कश स्वर में कहा, 'लगता है कि तुम्हारी यह जवानी और तुम्हारा रूप, यह हमेशा ऐसा ही रहेगा ? क्या कभी मुँह पर झुर्रियाँ नहीं पड़ेंगी ?'

यह कह कर क्रोध के मारे बेचैन हो एक हाँड़ी चढ़ाने जा कर ब्राह्मणी ने हाँड़ी ही तोड़ डाली। मैंने फिर व्यंग्य किया, 'देखा दीदी ! रूप और यौवन न रहे तो हाथ की हांड़ी भी टूट जाती है।'

बस क्या था ! अस्त-व्यस्त हो, अधनंगी दशा में ही ब्राह्मणी सँड़सी उठा कर मुझे मारने को झपटी। उम्र का दोष कहें, या कुछ, लगता है वह सुनती भी कम थी। मेरी पूरी बात शायद सुन न सकी। बड़ा ही घृणित उत्तर उसने मुझे दिया। मुझे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोध चढ़ आया। मैंने कहा, 'दीदी, ठहरो। सँड़सी का हाथ में रहना ही इस उम्र में ठीक होता है।'

इसी समय सुभाषिणी, शोर-गुल सुन कर वहाँ आ गई। क्रोध से अंधी हो रही ब्राह्मणी ने उसे नहीं देखा। मेरी ओर फिर झपट कर बोली, 'हरामजादी, जो मुँह में आएगा वही कहेगी ? क्या मैं पागल हूँ ?'

तब सुभाषिणी ने भौंवें चढ़ा कर कहा, 'क्या मैं इसे ले आई हूँ कि तू इसे हरामजादी कहे ? तुम अभी हमारे घर से बाहर हो जाओ।'

तब ब्राह्मणी बड़े अस्त-व्यस्त भाव से सँड़सी एक ओर फेंक कर रोती हुई कहने लगी, 'अरे माँ, यह कैसे बात हुई ? मैंने कब इसे हरामजादी कहा ? ऐसी बात भला मेरे मुँह से निकलेगी ? तुमने तो कमाल ही कर दिया बहू माँ !'

यह सुन कर सुभाषिणी खिलखिला कर हँस पड़ी। ब्राह्मणी ने तब तक चिल्ला कर रोना शुरू कर दिया था। उसने कहा, 'अगर मैंने इसे हरामजादी कहा हो तो मैं यमराज के घर जाऊँ !'

मैं बोली, 'यह क्या दीदी ! इतने सबेरे-सबेरे जाओगी ? छिः छिः, दीदी, दो दिन और रुको न !'

'मुझे नरक में भी जगह न मिले।'

'ऐसा तो मत ही कहना। दीदी नरक के लोगों ने अगर तुम्हारे हाथ की रसोई न खाई तो फिर उनके लिए नरक क्यों ?'

रो कर बुढ़िया ने सुभाषिणी से कहा, 'देखो बहू माँ, इसके जो भी मुँह में आता है, यह कहती जाती है और आप कुछ भी नहीं कहती ? मैं ठकुरानी माँ के पास जाती हूँ।'

सुभाषिणी ने कहा, 'हाँ, जरूर जाओ। मैं भी गवाही दूँगी कि तुमने इसे हरामजादी कहा है।'

बुढ़िया ने तब और जोरों से चिल्लाना शुरू किया, 'भला देखो तो ! मैंने भला कब हरामज़ादी कहा ? मैंने कब हरामजादी कहा ? मैंने कब हरामज़ादी कहा ?'

तब हम दोनों ने बुढ़िया को पुचकारा और कुछ मीठी बातें कहना शुरू किया। पहले मैंने ही कहा, 'हाँ, ठकुरानी बहू, तुमने इसे हरामजादी कहते कब सुना ? यह तो इसने नहीं कहा। मैंने तो यह कहते इसे नहीं सुना।'

तब झटपट बुढ़िया बोली, 'सुना न बहू माँ ? मेरे मुँह से भला यह बात कभी निकल सकती है ?'

तब सुभाषिणी ने भी कहा, 'तो होगा—हो सकता है कि बाहर कोई किसी को कुछ कह रहा हो, कही बात मेरे कानों में पड़ गई होगी ! बामन ठकुरानी क्या ऐसी-वैसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? इसकी रसोई कल ही खाई थी न ! इस कलकत्ते में क्या, कहीं भी कोई इसकी तरह रसोई नहीं कर सकती ।'

ब्राह्मणी ने मेरी ओर ताक कर कहा, 'सुना तुमने ?'

मैं बोली, 'ऐसा तो सभी कहते हैं । मैंने भी ऐसी रसोई नहीं खाई ।'

तब एक ही गाल से हँस कर-बुढ़िया ने कहा, 'सो तो तुम जरूर कहोगी बेटी ! तुम जरूर किसी बड़े घर की लड़की हो । तुम्हें रसोई की परख है । अहा ! ऐसी लड़की को मैं भला गाली दे सकती हूँ ? सो दीदी, तुम मन में कुछ मत लाना, तुम्हें मैं रसोई करना सिखा कर तब जाऊँगी ।'

इस तरह हम लोगों ने बुढ़िया को शान्त किया । उससे एक प्रकार से मेल हो गया । मैं बहुत दिनों रोई थी, आज बहुत दिनों बाद थोड़ा सा हँसी । किसी दरिद्र के खजाने की तरह यह हँसी-मजाक मुझे बड़ा अच्छा लगा । उस दिन की वह हँसी मैं जन्म भर नहीं भूल सकती । और कभी हँस कर उतना सुख भी नहीं पाऊँगी ।

फिर ठकुरानी माँ खाना खाने बैठीं । उनके साथ ही बैठ कर मैंने उन्हें खूब यत्न से खिलाया । बुढ़िया ने खाया भी खूब । अंत में बोली, 'बनाती तो अच्छा हो बेटी ! कहाँ सीखी ?'

'मायके में !'

'तुम्हारा मायका कहाँ है बेटी ?'

मैंने एक किसी गाँव का झूठा नाम ले लिया । तब ठकुरानी माँ ने कहा, 'यह तो किसी बड़े आदमी के घर जैसी रसोई हुई है । तुम्हारे बाप क्या बड़े आदमी थे ?'

'हाँ, माँ !'

'तो तुम यहाँ रसोई करने क्यों आई हो ?'

'विपत्ति में पड़ गई हूँ ।'

'तो जब तक मेरे पास हो, मजे में रहना । तुम बड़े घर की लड़की हो । मेरे घर में भी वैसे ही रहोगी ।'

फिर सुभाषिणी को पुकार कर बूढ़ी बोली, 'बहूरानी, देखो बेटी, इसे कोई कड़ी बात न कहे, और तुम तो कहोगी ही नहीं । तुम तो वैसे खानदान की लड़की नहीं हो ।'

सुभाषिणी का लड़का वहीं बैठा था । बोल उठा, 'मैं कली बात कहूँगा माँ ।'

मैंने कहा, 'कहो, देखूँ ?'

लड़का बोला, 'कला चातू हांलि—आल कि माँ ?'

सुभाषिणी ने कहा, 'और तेरी सास !'

लड़के ने पूछा, 'कौन छाछ ?'

तब हेमा ने मुझे दिखा कर कहा, 'यह तेरी सास हैं ।'

तब लड़का कहने लगा, 'कमुडिनी मेली छाछ ! कुमुडिनिया मेली छाछ !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सुभाषिणी मेरे साथ कोई रिश्ता जोड़ने की बचन ही रही थी। बच्चों की बातें सुन कर मुझसे बोली, 'अब तो तुम मेरी बहन हुई न ?'

मैं चुप रही।

सबसे अंत में सुभाषिणी खाने बैठी। मुझे भी खाने के लिए अपने पास ही बैठा लिया। उसने खाते हुए पूछा, 'तुम्हारे कितने ब्याह हुए हैं, बहन ?'

मैं मजाक समझ गई। बोली,'क्यों, रसोई द्रौपदी की बनाई जैसी लगी है क्या ?'

सुभाषिणी पुलक उठी, बोली, 'ओ, यस ! मिसेज पाण्डव फर्स्ट क्लास बावर्ची थी। मेरी सास की बात समझ तो गई तुम ?'

मैं बोली, 'अधिक तो नहीं। हाँ कंगाल और अमीर आदमी की लड़की में सभी एक प्रकार का भेद करते हैं।'

सुभाषिणी हँस पड़ी। बोली, 'तू मर ! यही ससझा तूने उन्हें ? खाक समझा ! तुम्हें बड़े घर की लड़की कह कर, मैं समझती हूँ कि उन्होंने तुम्हारा आदर ही किया है।

'और नहीं तो क्या ?'

'उनका लड़का भर पेट खा सके गा, इसीलिए तुम्हारा इतना मान किया गया है। अब अगर तुम इशारा भी करो तो तुम्हारा वेतन दूना हो जायगा।'

'मैं वेतन नहीं चाहती। अगर न लूँगी तो झंझट मचे गी, इसलिए हाथ फैला कर महीना ले लूँगी। लेकिन ले कर तुम्हारे पास रखा दूँगी। तुम गरीब भिखारी को दे देना। तुम्हारी कृपा से मुझे आश्रय मिल गया, यही मेरे लिए बहुत है।'

|९|

पके बालों का सुख-दुख

मुझे आश्रय मिल गया। आश्रय के साथ एक और बहुमूल्य रत्न भी मिला—सुभाषिणी। वह मुझे सचमुच हृदय से चाहती थी, मुझसे अपनी सगी बहन जैसा ही स्नेहमय व्यवहार करती। उसके प्रभाव के कारण ही अन्य नौकर-चाकर मेरा तिरस्कार, उपेक्षा न कर पाते थे। इधर रसोई-बसोई से भी सुख मिल गया। वह बूढ़ी ब्राह्मणी, सोना की माँ, वह घर नहीं गई। उसने देख कर समझ लिया था कि एक बार घर जाने पर फिर नौकरी नहीं मिलेगी और उसकी जगह मैं जम जाऊँगी। वह तरह-तरह के बहाने बना कर घर नहीं गई, वहीं डटी रही। इस प्रकार सुभाषिणी के रसोईघर में हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों ही रह गईं। उसने अपनी सास को समझाया कि कुमुदिनी बड़े घर की लड़की है, उससे रोज-रोज पूरी रसोई नहीं हो पायेगी। और फिर सोना की माँ भी बूढ़ी है। नौकरी छूट जाएगी तो अब यह देह ले कर वह कहाँ जायेगी ? सास ने कहा—'दोनों जनों को क्या हम रख सकते हैं ? रुपये भला कैसे दिए जाएँगे ?'

सुभाषिणी ने कहा, 'तो फिर अगर एक ही रखना है तो फिर सोना की माँ को ही रखना होगा। कुमुदिनी इतना कर नहीं सकती।'

'नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। सोना की माँ के हाथ की रसोई मेरा लड़का खा नहीं सकेगा। तो फिर दोनों ही रहें।'

मेरा कष्ट दूर करने के लिए ही सुभाषिणी ने यह जाल बुना था। ठकुरानी माँ उसके हाथ की कठपुतली थीं। क्यों न हो, वह थी भी तो रमन की पत्नी, बहूरानी ! रमन की बहू की बात टालने की उस घर में भला किसकी शक्ति थी ? फिर सुभाषिणी की जैसी तेज बुद्धि, स्वभाव भी वैसा ही सुन्दर था। ऐसी बुद्धि के कारण ही तो मुझे दुख के दिनों में यह सुख मिला।

मैं पूरी रसोई कभी न करती। मछली-माँस बना देती या एक दो स्वादिष्ट व्यंजन तैयार कर देती। बाकी समय में सुभाषिणी के संग गप्प हांकती—उसके लड़के-लड़की को खेलाती। बाकी एक बात है, एक झंझट में जरूर पड़ गई। घर की बूढ़ी ठकुरानी माँ को यह भ्रम था कि उनकी उम्र अभी कम है। केवल भाग्य के दोष से ही उनके बाल पक गये हैं। पके बालों को उखाड़ देने भर से वे फिर युवती हो सकती हैं। इसलिए किसी को पकड़ पाते ही अवसर देख कर वे अपने पके बाल उखड़वाने बैठ जातीं। एक दिन उनकी इस बेगार में मैं ही पकड़ा गई। मैं तेज हाथों से जल्दी-जल्दी भादों महीने का खेत साफ करने लगी। दूर से देख कर ही सुभाषिणी ने ऊँगली के इशारे से मुझे बुलाया। मैं ठकुरानी माँ के काम से छुट्टी पाते ही उसके पास गई।

सुभाषिणी ने कहा, 'यह क्या कर रही हो ? मेरी जवान सास को मुण्डी क्यों किए दे रही हो ?'

'यह काम भी एक दिन पूरा हो जाय तभी ठीक होगा।'

'ऐसा होने पर क्या यहाँ टिकी रह सकोगी ? फिर जाओ गी कहाँ ?'

'मेरा हाथ कुछ तेज ही चलता है।'

'यही तो मरना है। दो एक ठो नोंच कर क्या चली नहीं आ सकती थीं ?'

'तुम्हारी सास जो नहीं छोड़तीं।'

'कह दो कि अब पके बाल नहीं हैं।'

'इस तरह क्या दिन में ही डाका डाल सकूँ गी ? लोग भला क्या कहेंगे ? यही न, कि यह भी कालीदीघी की डकैती है।'

'कालीदीघी की डकैती क्या ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सुभाषिणी से बातें करते समय मैं एक प्रकार से अपने बारे में भूल गई थी। असावधानी के कारण मेरे मुँह से कालीदीघी की बात निकल ही गई। मैंने बात को दबाया। बोली, 'यह बात फिर किसी दिन बताऊँगी।'

'ठीक है। तो मैंने अभी जो कहा है उसे एक बार कह कर तो देखो। मेरे कहने से ही कहो न एक बार।'

हँसते हुए मैं उठी और ठकुरानी माँ के पास जा कर फिर उनके पके बाल नोंचने लगी। दो चार बाल नोंचने के बाद मैंने कहा, 'माँ, और पके बाल तो मुझे दिखते नहीं। बस दो एक और बचे हैं, उन्हें अब कल निकाल दूँगी।'

बुढ़िया एक गाल हँसी। बोली, 'फिर बेटी तो कहती है कि सारे बाल ही पक गये हैं।'

बुढ़िया के प्रति मेरा आदर बराबर बढ़ता जाता। लेकिन मैं कोई ऐसा उपाय सोचने लगी कि किसी तरह रोज-रोज बैठ कर बाल नोंचने से छुट्टी मिले। वेतन के रुपये पा गई थी। उसमें से एक रुपया हारानी को दे कर कहा, 'एक शीशी खिजाब तो किसी से मँगा देना।'

हारानी बुरी तरह हँसने लगी। हँसी रुकी तो पूछा, 'खिजाब मँगा कर भला क्या करो गी ? किसके बालों में लगाना है ?'

'ब्राह्मणी के बालों में !'

यह सुनते ही हारानी हँसते-हँसते दोहरी हो गई। इसी समय ब्राह्मणी वहाँ आ पहुँची। उसे देख कर हारानी हँसी रोकने को अपने मुँह में कपड़ा ठूँसने लगी। इस पर भी जब हँसी नहीं रुकी तो वह वहाँ से उठ कर भाग गई। तब ब्राह्मणी ने मुझसे पूछा, 'यह इतना हँस क्यों रही है ?'

मैंने कहा, 'उसका भला और काम ही क्या है ? मैंने कहा कि बाभन ठकुरानी के लिए बालों में खिजाब लगाना ठीक नहीं है, बस इसी बात पर हँस रही है।'

'इसमें भला हँसने की क्या बात है ? खिजाब लगाने में हर्ज भी क्या है ? लड़के दिन रात चिढ़ाते रहते हैं—उस झंझट से तो बचूँगी।'

इसी समय सुभाषिणी की लड़की ने शुरू किया—

'चले बूड़ी, शोनेर नूड़ी,
खोंपाय घेंटू फूल।
हाते नड़ि, गलाय दड़ी,
काने जोड़ा दूल।'

हेमा के भाई ने भी आवाज लगाई। तब बात बिगड़ेगी, डर से सुभाषिणी उन्हें खींच ले गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं समझ गई कि ब्राह्मणी को खिजाब लगाने की बड़ी लालसा है—इसलिए कहा—'अच्छा तो मैं तुम्हें खिजाब दे दूँगी।'

ब्राह्मणी बोली, 'अच्छा तो दे देना। तुम जीती रहो, तुम्हारे पास सोने के गहने हो जायँ। तुम खूब अच्छी रसोई करना सीख लो।'

हारानी चाहे हँसे जितना, पर थी वह बड़े काम की। चटपट एक शीशी बढ़िया खिजाब ले ही तो आई।

मैं हाथ में खिजाब ले कर ठकुरानी माँ के बालों में खिजाब लगाने लगी। उन्होंने पूछा, 'यह तेरे हाथ में क्या है ?'

मैंने कहा, 'यह एक औषधि है, एक अर्क। इसे बालों में लगाने से सभी पके बाल गिर जाते हैं और काले बाल रह जाते हैं।'

'अच्छा, ऐसा गुणकारी अर्क तो मैंने पहले कभी सुना नहीं। ठीक है, लगाओ तो देखूँ। हाँ, देखना खिजाब मत लगा देना।'

मैंने खूब अच्छी तरह उनके बालों में खिजाब लगा दिया। लगा कर बोली, 'अब पके बाल नहीं हैं।' कह कर मैं चली गई। थोड़ा समय बीतने के बाद उनके सब बाल काले हो गये। लेकिन दुर्भाग्य की बात कि कमरे में झाड़ू लगाते समय हारानी ने यह देख लिया। बस झटपट झाड़ू पटक, मुँह में कपड़ा ठूँस कर हँसती हुई वह सदर मकान की ओर भागी। वहाँ सभी पूछने लगे, 'क्या हुआ दाई ? क्या हुआ दाई ?' इस तरह वहाँ गड़बड़ी मचने पर वह वहाँ से भाग कर छत पर चली गई। वहाँ बैठी सोना की माँ अपने बालों को सुखा रही थी। हारानी की दशा देख कर पूछा, 'क्या हुआ ?'

हँसी के जोर के कारण हारानी कुछ कह न सकी। सिर्फ सिर पर हाथ रख कर दिखाने लगी। सोना की माँ कुछ समझ न सकी, लेकिन दाल में कुछ काला समझ कर वह नीचे आई। नीचे उसकी नजर ठकुरानी माँ के सिर के काले बालों पर पड़ी। बस वह फुक्का छोड़ कर रोने लगी। बोली, 'हाय माँ, यह क्या हो गया ? तुम्हारे सिर के तो सारे बाल काले हो गये हैं। हाय माँ ! पता नहीं किसने तुम्हारी यह दवा की है !'

उसी समय मुझे खोजती हुई सुभाषिणी मेरे पास आई। वह भी हँस रही थी। मुझे पकड़ कर बोली, 'कलमुँही ! यह क्या किया तू ने ? माँ के बालों में खिजाब लगाया है क्या ?

'हाँ।'

'तेरे मुँह में आग ! जरा देख तो, क्या तूफान मच गया है !'

'तुम चिन्ता मत करो।'

तब तक ठकुरानी माँ ने अपने आप मुझे बुलवाया। कहा, 'हाँ बेटी, कुमू ! तूने मेरे सिर में खिजाब लगाया है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैंने भाँप लिया कि ठकुरानी माँ के मुँह पर विशेष प्रसन्नता है। अतः निडर हो कर कहा, 'यह किसने कहा, माँ ?'

'यही सोना की माँ ही कहती थी।'

'सोना की माँ भला क्या जाने गी ! यह खिजाब नहीं है माँ ! यह मेरी दवा है।'

'फिर तो यह बहुत ही अच्छी दवा है, बेटी ! जरा शीशा तो ला। देखूँ तो ?'

मैंने लपक कर एक शीशा ला कर दिया। अपने को अच्छी तरह देख कर ठकुरानी माँ ने कहा, 'अरी माँ ! सब बाल काले हो गये ! वाह रे, अभागे की बेटी ! लोग देख कर कहें गे कि खिजाब लगाया है।'

ठकुरानी माँ के चेहरे पर प्रसन्नता थमती न थी। उसी दिन शाम को मेरी रसोई की खूब तारीफ कर के मेरा वेतन बढ़ा दिया। फिर कहा, 'बेटी, तुम सिर्फ काँच की चूड़ियाँ पहन कर घूमती हो, देख कर मुझे दुख होता है।' कह कर उन्होंने अपने बहुत दिन के रखे सोने के दो कड़े निकाल कर मुझे बखशीश में दे दिये। हाथ बढ़ा कर उन्हें लेते हुए मेरी मौत हो गई। आँखों के आँसू न रोक सकी। 'नहीं लूँगी' कहने का अवसर न था। कह भी न सकी।

दूसरे दिन सन्नाटे में मौका देख कर ब्राह्मणी ने मुझे पकड़ा और बोली, 'क्यों, अब वह दवा नहीं है क्या ?'

'कैसी दवा ? बुढ़िया को उसके स्वामी को वश में करने को जो दी थी ? वही क्या ?'

'मर जा ! दूर हो यहाँ से ! इसे ही कहते हैं लड़क-बुद्धि। मेरे पास किसी को वश में करने को कोई सामान नहीं है।'

'नहीं क्यों ? क्या एक भी नहीं ?'

'लगता है, तू ने तो पाँच-पाँच किए हैं ?'

'पाँच-पाँच न करती तो क्या ऐसी रसोई बना सकती थी ? द्रौपदी बने बिना क्या ऐसी रसोई की जा सकती है ? तुम भी पाँच का जुगाड़ करो न ! तुम्हारी रसोई खा कर तो लोग बेहोश हो जायँगे।'

बुढ़िया ब्राह्मणी ने लम्बी साँस खींची। बोली, 'एक ही का जुगाड़ नहीं होता तो भला पाँच कहाँ मिलें गे ? मुसलमानों में होता है, हिन्दुओं में तो इसे पाप मानते हैं। फिर भी क्यों होगा कुछ ? यह देखो न, रूई की तरह बाल सफेद हो गए हैं। इसी से तो कहा था कि क्या वह दवा और है जिससे बाल काले हो जाते हैं ?'

'तो ऐसा कहो न ! दवा है नहीं तो क्या ?'

तब मैंने खिजाब की शीशी ब्राह्मणी को दे दी। रात को भोजन कर लेने के बाद अंधेरे में बैठ कर वह अपने बालों में खिजाब रगड़ रही थी। कुछ बालों में लगा, कुछ मुँह में। सबेरे जब वह सबों के सामने प्रकट हुई तो उसके बाल चितकबरी बिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह थे। कुछ काले, कुछ भूरे। मुँह भी कलमुँहें बंदर या ऊदबिलाव की तरह। उसे जो देखता वही ठठा कर हँसता। किसी की हँसी रुक ही नहीं रही थी। हारानी तो हँसते-हँसते सुभाषिणी के पावों के पास गिर-गिर कर पछाड़ खाने लगी। हँसी के बीच रुक-रुक कर बोली, 'ठकुरानी बहू, अब तुम्हीं बताओ, हँसी के इस घर में अब मैं कैसे रहूँ ? किसी दिन हँसते-हँसते बेदम हो कर अब मरना भर बाकी है।'

हेमा भी कहने से न चूकी। ब्राह्मणी से बोली, 'बूढ़ी बुआ ? तेरा साज सिंगार किसने किया है ?' उसने कहा—

'यम बोलेछे, सोनार चाँद,
एशो आमार घरे।
ताई घाटेर सज्जा साजिये दिले
सिंदूरे गोबरे।'

एक दिन एक बिल्ली ने हाँड़ी में मुँह डाल कर मछली खाई थी। उसके मुँह पर कालिख लग गई थी। सुभाषिणी के लड़के ने भी उसे देखा था। उसने भी ब्राह्मणी को देख कर कहा, 'माँ, बूली पूपी हाँली में खाई···।'

लेकिन मैंने पहले ही सबों को संकेत कर रखा था। इससे किसी ने भी बुढ़िया से खोल कर असली बात नहीं बताई। वह बिना हिचक अपनी बंदरी शोभा लिए सब के सामने घूमती रही।

सबों को हँसते देख कर उसने पूछा, 'तुम सब लोग आज हँस क्यों रहे हो ?'

सबों ने एक ही बात कही, 'यह लड़का क्या कहता है, सुना नहीं। कहता है— बूली पूपी हाँली खाई।'

बस बुढ़िया ने सबों को गरियाना शुरू किया, 'सब का नाश हो।' कह कर सबों को यमराज का निमंत्रण देने लगी। लेकिन बुढ़िया के कहने पर यमराज ने भी शायद ध्यान नहीं दिया।

ब्राह्मणी अपना वही रूप लिए, रमन बाबू को भोजन की थाली देने गई। देख कर रमन बाबू भी अपनी हँसी न रोक सके। वे उस दिन ठीक से खा भी नहीं सके। मैंने सुना कि जब वह राय रामदत्त को भोजन परोसने गई तो उन्होंने उसे 'हट-हट' कह कर भगा दिया।

अंत में ऊब कर या दया करके सुभाषिणी ने बुढ़िया से कहा, 'मेरे कमरे में बड़ा आईना है। जरा जा कर अपना चेहरा तो देखो।'

बुढ़िया ने जा कर देखा और लगी जोर-जोर से रोने। मैं यही समझाने लगी कि मैंने तो बालों में लगाने को दिया था। मुँह में लगाने को तो नहीं ? लेकिन बुढ़िया इसे समझ न सकी। मेरे सिर को खाने के लिए बार-बार यमराज की पुकार होने लगी। तब सुन कर सुभाषिणी की लड़की ने कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जे डाके यमे ।
तार परमाइ कमे ।
तार मुखे पड़ूक छाये ।
बूड़ी मरे या ना भाई ।'

अंत में मेरे उसी तीन साल के जमाई ने रसोई घर में रखी एक चैला लकड़ी ले जा कर बुढ़िया की पीठ पर जमा दी । तब तो बुढ़िया पछाड़ खा-खा कर रोने लगी । वह जितना ही रोती, मेरा जमाई उतना ही तालियाँ पीट-पीट कर नाचता ।

मैंने उसे जब गोद में उठा कर उसका मुँह चूमा तब कहीं वह रुका ।

| १० |

आशा का द्वीप

उसी दिन तीसरे पहर मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए मुझे ले जा कर सुभाषिणी ने मुझे एक एकान्त स्थान पर बिठाया । बोली, 'कल तुमने मुझसे कालीदीघी के डाके का हाल सुनाने को कहा था । अब सुनाओ ।'

मैंने कहा, 'वह मुझ अभागिन की ही कहानी है । मेरे पिता बड़े आदमी हैं, यह तो मैं कह ही चुकी हूँ । तुम्हारे ससुर भी बड़े आदमी हैं, लेकिन मेरे पिता की तुलना में कुछ नहीं हैं । मेरे पिता आज भी हैं, उनका अतुल वैभव आज भी है । आज भी उनके दरवाजे पर हाथी बँधा है । मैं जो आज यहाँ रसोई बना रही हूँ, उसका कारण कालीदीघी का डाका ही है ।'

इतना कह कर मैं चुप हो गई । मेरी ओर देख कर सुभाषिणी ने कहा, 'यदि कहने में तकलीफ होती हो तो मत कहो । मैं तो यों ही सुनना चाहती थी ।'

मैंने कहा, 'मैं सब सुनाऊँगी । तुम मुझे इतना प्यारा करती हो, मेरा इतना हित किया है, कहने में कष्ट क्या होगा ?'

मैंने अपने पिता व ससुर का नाम नहीं बताया, न ही मायके या ससुराल के गाँव का नाम ही बताया । बाकी सारी घटना कह सुनाई । सुनते-सुनते सुभाषिणी रो पड़ी, कहते-कहते मैं भी रोती रही ।

फिर उस दिन इसके आगे बात नहीं चली ।

दूसरे दिन सुभाषिणी मुझे फिर एकान्त में ले जा कर बोली, 'तुम्हें अपने पिता का नाम बताना ही होगा ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने बता दिया।

फिर बोली, 'बताओ, गाँव का नाम !'

सो भी बताया।

'डाकखाना का नाम ?'

'डाकखाना ? डाकखाना का नाम तो डाकखाना ही है।'

'दुर पगली ! कलमुँही ! जहाँ डाकखाना है उस गाँव का नाम ?'

'सो मैं नहीं जानती। बस डाकखाना भर जानती हूँ।'

'ओफ हो, मैं पूछती हूँ कि तुम्हारे ही गाँव में डाकखाना है या किसी और गाँव में ?'

'इतना मुझे नहीं मालूम।'

सुभाषिणी दुखी हुई। लेकिन बोली कुछ नहीं। दूसरे दिन उसी तरह एकान्त में फिर पूछा, 'तुम बड़े घर की बेटी हो। और कब तक दूसरे की रसोई करो गी ? लेकिन तुम्हारे जाने पर मैं बहुत रोऊँ गी। फिर सोचती हूँ कि अपने सुख के लिए मैं तुम्हारी हानि क्यों करूँ ? ऐसी पापिन नहीं बन सकती। हमने सोचा है कि···'

मैं बीच में ही बोली, 'हमने मतलब, कौन कौन ?'

'मैं और मेरे स्वामी। हम लोगों ने सोचा है कि तुम्हारे पिता के पास पत्र भेजा जाय कि तुम यहाँ हो। इसीलिए तो कल तुमसे डाकखाने का नाम पूछ रही थी।'

'तो क्या, तुमने उनसे सब बातें बता दीं ?'

'बता तो दी हैं। इसमें हर्ज क्या है ?'

'हर्ज तो नहीं है, फिर भी···'

'महेशपुर लिख कर ही चिट्ठी भेजी गई है।'

'चिट्ठी लिख ली गई या अभी नहीं ?'

'हाँ, लिख गई।'

उस समय इतनी बातें हो जाने पर मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। रोज दिन गिनने लगी। पत्र का उत्तर कितने दिनों में आवेगा ? लेकिन उत्तर नहीं आया। मेरा भाग्य ही खोटा है। महेशपुर में कोई डाकखाना नहीं था। दूसरे किसी गाँव में डाकखाना था। मैं राजा जैसे बाप की दुलारी बेटी थी, इतनी बात भी मुझे मालूम न थी। डाकखाने का पता न पा कर कलकत्ता के बड़े डाकखाने से होती हुई चिट्ठी रमन बाबू के पास लौट आई।

मैंने फिर रोना शुरू किया। लेकिन रमन बाबू ने प्रयास नहीं छोड़ा। उस दिन सुभाषिणी ने आ कर जिद कर के कहा, 'अब तुम्हें अपने पति का नाम भी बताना ही होगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पति का नाम मुँह से कैसे लेती। लेकिन मैं लिखना जानती थी। पति का नाम मैंने एक कागज पर लिख दिया।

सुभाषिणी ने फिर पूछा, 'और ससुर का नाम ?'

वह भी लिख दिया।

'गाँव का नाम ?'

वह भी बता दिया।

'डाकखाने का नाम ?'

'वह क्या मैं जानती हूँ ?'

बाद में मुझे पता लगा कि रमन बाबू ने मेरे ससुराल भी पत्र लिखा था। लेकिन वहाँ से भी कोई उत्तर नहीं आया। इस बार मैं मन में बहुत ही दुखी हुई। तभी मन में एक बात आई। मैंने आशा से भर कर पत्र लिखने में रुकावट नहीं डाली थी। लेकिन डाकू उठा ले गये थे अतः अब मैं उन घरों के योग्य नहीं थी, मेरी अब कोई जाति भी नहीं थी। यही सोच कर ससुर-स्वामी सभी मेरी उपेक्षा व बहिष्कार करें गे, इसमें संदेह नहीं। लगता है कि मेरे ससुराल में पत्र भेजना उचित नहीं हुआ।

मेरी बात सुन कर सुभाषिणी चुप हो गई।

मेरी समस्त आशा अब निराशा में बदल गई। मैं समझ गई कि अब कोई भरोसा नहीं है। मैंने खाट पकड़ ली।

| ११ |

मैं पहचान गई

एक दिन सबेरे उठते ही मैंने लक्ष्य किया कि घर में कुछ विशेष आयोजन हो रहा है। रमन बाबू वकील हैं। उसके एक मुवक्किल बहुत बड़े आदमी थे। मैं दो दिन से हल्ला सुन रही थी कि वे कलकत्ता आए हैं। रमन बाबू और उनके पिता उनके ठहरने के स्थान पर बराबर आ-जा रहे थे। कारण था कि उनके साथ कारोबार का संबंध था। आज सुना कि वही आज दोपहर का खाना खाने आने वाले हैं। इसी से रसोई की विशेष रूप से तैयारी हो रही है।

रसोई अच्छी होनी चाहिये, इसलिए उसका भार मेरे ऊपर ही आ पड़ा। मैंने भी खूब मन लगा कर बड़े यत्न से रसोई तैयार की। भोजन करने का स्थान भी भीतर ही निश्चित हुआ। रामराय बाबू, रमनबाबू और निमंत्रित अतिथि, तीनों जन खाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठे। परोसने का भार बुढ़िया ब्राह्मणी पर था। मैं कभी भी बाहर लोगों के सामने जा कर खाना नहीं परोसती थी।

बुढ़िया परोस रही थी, मैं रसोईघर में थी। ठीक इसी समय एक गड़बड़ी हुई। सुना कि रमन बाबू बुढ़िया को खूब जोरों से डाँट रहे थे। उसी समय रसोईघर की एक नौकरानी भागती हुई आई और बोली, 'ऐसे समय में लोगों को बेवकूफ बनाने का मन करता है।'

'क्या हुआ है ?'

'बुढ़िया दादाबाबू की थाली में दाल परोस रही थी। उन्होंने हाथ बढ़ा कर 'ऊहूँ, उहूँ' किया। और सारी दाल उनके हाथ पर गिर पड़ी।'

मैं चुपचाप सहमी सी सुन रही थी। रमन बाबू बुढ़िया पर बिगड़ रहे थे, 'जब तुम्हें ठीक से परोसना नहीं आता तो परोसने क्यों आई हो ? और किसी को नहीं भेज सकती थी ?'

रामराय बाबू ने कहा, 'यह तुम्हारा काम नहीं है। जा कर कुमू को भेज दो।'

ठकुरानी माँ वहाँ थी नहीं। मना कौन करता ? जब खुद घर के मालिक ने ही हुक्म दिया है तो मैं भी कैसे टाल सकती थी ? जानती थी कि जाने पर मालकिन नाराज होंगी और न जाने पर मालिक। मैं बड़ी मुश्किल में आ फँसी। बार-बार बुढ़िया को समझाया, कहा, 'जरा होशियारी से ठीक से परोसना।'

लेकिन डर के मारे बुढ़िया जाने को तैयार ही न हुई। तब विवश हो कर मैंने हाथ धोया, मुँह पोंछा और कपड़े ठीक से पहन कर थोड़ा सा घूँघट काढ़ कर परोसने निकली। लेकिन कौन जानता था कि यह घटना हो जाएगी ? मैं अपने को ही बड़ी बुद्धिमान समझती थी—यह नहीं जानती थी कि सुभाषिणी मुझे एक बाजार में बेच कर दूसरी बाजार में खरीद सकती है।

मैं घूँघट काढ़े थी। लेकिन घूँघट से चेहरा छिप सकता है, औरतों का स्वभाव नहीं छिप सकता। घूँघट के भीतर से ही मैंने एक बार उन निमंत्रित अतिथि को देखा।

देखा कि उनकी आयु तीस वर्ष के लगभग थी। उनका रंग गोरा था और अच्छे दर्शनीय पुरुष थे। देखने में ही वे रमणी-मनोहर प्रतीत हुए। मैं बिजली की चमक की तरह चौंकी और तुरन्त अनमनी हो उठी। माँस का बर्तन हाथ में ले कर थोड़ी देर खड़ी रही और घूँघट के भीतर से उन्हें ही निहारती रही। इसी समय उन्होंने भी अपना चेहरा उठाया। उन्होंने भी देखा कि मैं घूँघट के भीतर से उन्हें ही देख रही हूँ। मौका रहने पर भी जानबूझ कर अपनी इच्छा से ही मैंने उनकी ओर आँखों से कुटिल-कटाक्ष नहीं फेंका। वैसा पाप हृदय में उस समय नहीं आया। मैं तो समझती हूँ कि साँप भी स्वेच्छा से जानबूझ कर अपना फण नहीं फैलाता। फण फैलाने का अवसर आने पर अपने आप फुँफकारता है। साँपों का मन भी पापमय नहीं होता—समझा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमीवेश कुछ ऐसी ही स्थिति होती होगी। ऐसा लगा कि वे एक कुटिल कटाक्ष से मेरी ओर देख रहे थे। वे पुरुष जो ठहरे। अंधेरे में दीपक की भाँति घूँघट के भीतर रमणी का कटाक्ष कुछ बढ़ कर ही दिखाई पड़ता है। लगता है कि उन्होंने भी इसी तरह देखा होगा। फिर उन्होंने हल्के से हँस कर चेहरा झुका लिया। लेकिन उस हँसी को केवल मैं, एकमात्र मैं ही देख सकी।

फिर सारा माँस उन्हीं की थाली से उँडेल कर मैं चली आई।

मैं थोड़ा लज्जित और थोड़ा दुखी हुई। इसी उम्र में, मैं सधवा हो कर भी जन्म को विधवा हो उठी थी। विवाह के समय सिर्फ एक बार और वह भी क्षण भर को अपने स्वामी का चेहरा देखा था। मेरी जवानी की सारी इच्छाएँ अभी तक अतृप्त थीं। ऐसे समय में गहरे पानी में कंकड़ी फेंकने से मुझे लगा कि बहुत ढेर सी लहरें उठीं, सोच कर मेरा मन खिन्न हो उठा। मैं मन-ही-मन नारी-जीवन को सैकड़ों बार कोसने और धिक्कारने लगी। मैं तो मन-ही-मन में मर गई।

रसोईघर में वापस आने पर मन में कहीं यह धक्का लगा कि मैंने इन्हें पहले कहीं देखा है। संदेह मिटाने के लिए फ़िर जा कर आड़ में खड़ी हुई और एकटक उन्हें देखने लगी। बहुत ध्यान से खूब अच्छी तरह देख कर मैं मन-ही-मन में कह उठी, 'जरूर कहीं देखा है। पहचानती हूँ।'

इसी समम रामराय बाबू ने कुछ लाने को पुकारा। उस दिन कई तरह का माँस पकाया गया था, वही लेकर गई। देखा कि उन्होंने अभी भी वही कटाक्ष धारण कर रखा है। मुझे सामने देख कर उन्होंने रामराय दत्त से कहा, 'रामबाबू अपनी रसोई-दारिन से कहिए कि रसोई बहुत अच्छी बनी है।'

रामबाबू भीतरी बात तो समझ नहीं सके, बोले, 'हाँ यह खाना अच्छा बनाती है।'

मैंने मन ही मन कुढ़ कर कहा, 'तुम्हारा सिर बनाती हूँ।'

तब निमंत्रित अतिथि ने कहा, 'लेकिन एक आश्चर्य की बात मैं देख रहा हूँ रामबाबू ?'

'क्या ?' रामबाबू ने सतर्क हो कर पूछा।

'आप के घर में दो तीन खाने की चीजें तो हमारे देश की तरह बनी हैं।'

रामराय बाबू ने कहा, 'हो सकता है। इसका घर इस देश में नहीं है।'

उस दिन अतिथि के स्वागतार्थ मैंने सचमुच दो तीन चीजें अपने देश की तरह बनाई थीं।

उन्होंने जैसे सीधा रास्ता खोज पा लिया। एकाएक मेरे मुँह की ओर ताका कर मुझसे ही पूछ बैठे, 'तुम्हारा घर कहाँ है, जी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं भारी उलझन में फँसी। जबाब दूँ या नहीं ? लेकिन दूसरे ही क्षण मैंने जवाब देने का ही निश्चय कर लिया।

फिर दूसरी उलझन मन में उठी। ठीक-ठीक जवाब दूँ या झूठ बोलूँ ? इस बार निश्चय किया कि झूठ बोलूँ गी। ऐसा निश्चय मैंने क्यों किया, यह तो वही बता सकते हैं। जिन्होंने नारी हृदय को सदा टेढ़े रास्ते पर चलने का आदी बनाया है। मैंने सोचा, जरूरत होने पर सब सच-सच कहना भी तो मेरे हाथ में है। अभी तो कुछ और ही कह कर देखूँ गी। यही सोच कर मैंने जवाब दिया, 'हमारा घर है कालीदीघी ?'

सुनते ही वे चौंक उठे। क्षणभर में अपने को सम्हाला और तब बहुत कोमल स्वर में पूछा, 'कौन कालीदीघी ? डाकुओं वाली कालीदीघी ?

'हाँ।'

फिर वे और कुछ न बोले।

मैं माँस का बर्तन लिए वहीं खड़ी रही। इस प्रकार वहाँ खड़ा रहना उचित न था, इस बात को उस समय मैं भूल ही गई थी। अभी-अभी मैंने अपने को जो हजारों तरह से कोसा, धिक्कारा और प्रताड़ित किया था, वह सब भी भूल गई। देखा कि अब वे अच्छी तरह खाना नहीं खा पा रहे हैं। यह रामराय बाबू ने भी लक्ष्य किया। बोले, 'उपेन्द्र बाबू ! भोजन कीजिए न ?'

बस मेरे लिए यही सुनना तो बचा था। उपेन्द्र बाबू ?

उपेन्द्र बाबू ! उपेन्द्र ही तो मेरे पति का नाम हैं ! ये मेरे स्वामी हैं। मैंने नाम सुनने के पहले ही पहचान लिया था, पहली बार ही देख कर अब नाम सुनने के बाद कोई शंका नहीं रही।

रसोई घर में जा कर बर्तन फेंक कर मैं इतने दिनों बाद एक बार खुशी मनाने बैठी। रामराय बाबू ने पुकारा, 'क्या गिरा ?'

मैंने ही तो माँस का बर्तन उठा कर फेंक दिया था।

| १२ |

हरानी के शरण में

अब इस कहानी को आगे कहने में मुझे पति का नाम लेना आवश्यक होगा। यदि यह अनुचित है, और प्रथा के अनुसार मुझे पति का नाम नहीं लेना चाहिए तो पाँच रसिक लड़कियाँ कमेटी कर के निश्चय कर दें कि मैं किस शब्द का प्रयोग कर के अपने स्वामी को सम्बोधित करूँ ? क्या पाँच सौ बार स्वामी—स्वामी कह कर कानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जला लूँ ? या घरजमाई की प्रतिष्ठा के अनुसार पति का नाम ले कर 'उपेन्द्र' ही कहूँ ? अथवा प्राणनाथ, प्राणेश्वर, प्राणपति और प्राणाधिक का प्रयोग ही शुरू कर दूँ ? जो हम स्त्री जाति के लिये सब से बढ़ कर प्रिय संबोधन का पात्र है, जिसे पल-पल के बाद ही बुलाने को मन करता है, उसे भला क्या कह कर बुलाऊँगी; इसका कोई प्रबंध इस मुए देश की भाषा में नहीं है। मेरी एक सहेली अपने पति को 'बाबू' कह कर बुलाती थी, फिर बाद में सिर्फ बाबू कहना उसे जँचा नहीं और वह बाबू राम कहने लगी। मेरा भी मन कुछ वैसा ही कहने का होता है।

माँस के बर्तन को फेंककर मैंने मन ही मन निश्चय किया कि अगर विधाता ने मेरे खोए धन को फिर वापस दे दिया है तो अब मुझसे वह छोड़ा न जाएगा। बच्चों की तरह लज्जा कर के अब मैं और अपना सर्वस्व नष्ट नहीं करूँगी।

यही मन में निश्चय कर के मैं एक ऐसी जगह जा खड़ी हुई जहाँ भोजन कर के बाहर जाते समय अगर वे तनिक भी इधर-उधर देखें गे तो मुझे अवश्य ही देख सकें गे। फिर मन में सोचा कि अगर वे इधर-उधर देखें ही नहीं तो इसके माने हैं कि अपने जीवन के बीस बरसों में मैं पुरुष का चरित्र समझ ही नहीं सकी हूँ। मैं बिल्कुल साफ-साफ कहती हूँ, मैं सिर पर थोड़ा सा आँचल डाल कर जा खड़ी हुई। बताने में लाज तो लगती है, लेकिन तब मेरा क्या कर्त्तव्य होना चाहिए। इसका विचार भी दूसरों को करना ही चाहिए।

सब से आगे रमन बाबू चले। वे चारो ओर देखते गये, मानो खबर ले रहे हों कि कौन कहाँ है। उनके पीछे रामराय दत्त थे। उन्होंने अगल-बगल कहीं न देखा। सब से पीछे गये मेरे स्वामी। उनकी आँखें चारों ओर मानो किसी को खोज रही थीं। अपनी योजना के अनुसार मैं उनके दृष्टिपथ में पड़ी। उनकी आँखें निश्चय ही मुझे ही खोज रही थीं। यह मैं अच्छी तरह समझ गई। उन्होंने ज्यों ही मुझे देखा त्यों ही जान-बूझ कर—क्या कहूँ, कहते हुए लाज लगती है—साँप की कुण्डली जैसे स्वभाव सिद्ध होती है, उसी तरह हम दोनों के कटाक्ष भी स्वभाव सिद्ध हुए। फिर जिन्हें मैं अपने स्वामी के रूप में पहचान गई थी, उन पर थोड़ा सा और विष मैं क्यों न ढाल देती ? मालूम हुआ कि मेरे स्वामी—मेरे प्राणनाथ बुरी तरह घायल हो कर बाहर निकले।

तब मैंने हरानी की शरण लेना निश्चित किया। एकान्त में बुलाने पर वह फौरन हँसती हुई आ गई। आते ही बहुत वेग से हँसती हुई वह बोली, 'परोसते समय बुढ़िया का नखरा देखा था ?' और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह फिर हँसी की बौछार करने लगी।

मैंने कहा 'उसकी बात छोड़ो। अभी मैंने तुझे एक दूसरे काम के लिए बुलाया है। तू मेरा एक उपकार कर दे, जन्म भर उसे न भूलूँगी। मुझे जल्दी से यह खबर ला कर दे कि ये बाबू कब जाएँगे ?'

सुनते ही हारानी की हँसी एकाएक बन्द हो गई, जैसे धुएँ के अँधेरे से आग ढँक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गई हो। हारानी अचानक गम्भीर हो कर बोली, 'दीदी ठकुरानी ! तुम्हें यह रोग है, यही नहीं जानती थी।'

मुझे हँसी आ गई। बोली, 'आदमी के दिन एक जैसे नहीं रहते। इस समय तू मेरे रोग की चिन्ता छोड़ और बता कि मेरा यह काम करके मुझपर उपकार करेगी या नहीं ?'

'मुझसे यह काम किसी तरह भी नहीं हो सकेगा।'

मैं हारानी को पहले से जानती थी, इसीलिए हाथ खाली रख कर उसे नहीं बुलाया था। मेरे पास वेतन के रुपये तो थे ही, पाँच रुपये साथ लाई थी जो उसके हाथ में धर दिए। फिर कहा, 'तुझे मेरे सिर की कसम, तुझे मेरा यह काम करना ही होगा।'

पहले तो ऐसा लगा कि हारानी रुपयों को फेंकने वाली है पर पास ही चूल्हा पोतने की मिट्टी की जो ढेर थी, उसी पर रख कर वह अत्यन्त गम्भीरता से बोली, 'चाहती थी कि तुम्हारे रुपये फेंक दूँ, लेकिन फेंका नहीं, वहाँ रख दिया है, उठा लेना। और फिर मुझसे ये सब बातें कभी मत कहना।'

अब मैं रोने लगी। एकमात्र हारानी पर ही इतमिनान था, अब और किसे पकड़ूँगी ? मेरे रोने से उसे मुझ पर दया आ गई। अर्थभरी दृष्टि से ताक कर पूछा, 'रोती क्यों हो ? पहचाने आदमी हैं क्या ?'

एक बार तो मन में आया कि हारानी से सब खोल कर बता दूँ, लेकिन मैंने अपने को सम्हाल लिया। उसे बताती तो वह सब बात शायद समझ न पाती, बल्कि एक और झंझट उठा देती। सो मन में निश्चय किया कि सुभाषिणी को छोड़कर और कहीं मेरी गति नहीं है। उसी की बुद्धि पर भरोसा था, वही मुझे इस समय बचा सकती थी, उसी से सब कुछ खोल कर कहूँ गी और वही ठीक-ठीक राय भी दे गी। यही सोच कर हारानी से मैंने कहा, 'हाँ, पहचाने आदमी हैं, बहुत पहचाने हुए। सब बातें सुन कर तत्काल तू विश्वास नहीं कर सके गी, फिर कभी सब बता दूँ गी। अभी समय नहीं है। लेकिन मेरा काम कर देने में कोई दोष नहीं है।'

कहने को कह तो गई कि दोष नहीं है। माना कि मेरे लिए दोष नहीं है, पर हारानी के लिए तो दोष है ही। कुतर्क से मन को समझाना चाहा। जो दुर्दशा में पड़ता है, वह अपने उद्धार के लिए कुतर्क का भी सहारा लेता है। मैंने हारानी को फिर समझाया, 'कहती हूँ न, कि कुछ दोष नहीं है।'

'तुम क्या उनसे मिलो गी ?'

'हाँ !'

'कब ?'

'रात में जब सब लोग सो जाएँ।'

'अकेली ही ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाँ, अकेली ।'

'मेरे बाप से भी नहीं हो सकता ।'

'और अगर वहू ठकुरानी हुकुम दें तब ?

'तुम्हारा क्या माथा ही फिर गया है ? वे घर की बहू हैं, सती हैं, लक्ष्मी हैं। क्या इन सब पाप के कामों में हाथ डालें गी ?'

'अगर वे कहें, तब तो जाए गी न ?'

'तब तो जाना ही पड़े गा । लेकिन तुम्हारे रुपये नहीं लूँ गी ।'

तब मैंने अपनी आँखों के आँसू पोंछे और सुभाषिणी के पास गई। वह अकेली थी। मुझे देख कर वह खुश हो गई। हँस कर मेरे कान के पास अपना मुँह ला कर बोली, 'क्यों पहचान लिया न ?'

मैं तो आकाश से गिर पड़ी । कहा, 'वे कौन हैं ? तुमने कैसे जाना ?'

'आह, तेरा सोने का चाँद, लगता है अपने से ही फँस गया ! आकाश से तेरा चाँद हम लोग उतार लाये हैं ।'

'हम लोग, माने ? तुम और रमन बाबू ?'

'और नहीं तो कौन ? तुमने अपने पति, ससुर और ससुराल के गाँव का पता बताया था न ? याद है ? वह सब सुन कर तभी मेरे स्वामी पहचान गए थे। तुम्हारे पति का एक बड़ा मुकदमा उनके ही हाथ में है। उसी के बहाने से उपेन्द्र बाबू को कलकत्ता बुलाया । फिर घर आने का निमंत्रण दिया ।'

'फिर बूढ़ी की दाल···?'

'वह हम लोगों की ही चाल थी ।'

'तो क्या मेरा भी परिचय दिया गया ?'

'ओह, सर्वनाश ! वह कैसे दिया जाता ? तुमको डाकू लोग उठा ले गये थे, उसके बाद कहाँ, क्या-क्या हुआ, सब वृतान्त भला कौन जानता है ? तुम्हारा परिचय जान कर क्या तुम्हें घर में ले जायें गे ? कहें गे—हम उन्हें फ़ँसा रहे हैं। मेरे स्वामी का कहना है कि, बुला दिया, अब तुम अपने आप जो कर सको ।'

'तो मैं एक बार अपनी किस्मत आजमा कर देखूँ गी, नहीं तो अब डूब मरूँ गी । लेकिन बिना उनसे एक बार मिले, कर ही क्या सकती हूँ ?'

'कब मिलोगी ?'

'जब तुम लोगों ने मेरे लिए इतना किया है तब एक बार इस बारे में भी सहायता करो । अगर वे अपने डेरे में लौट जाएँ गे तब भेंट नहीं हो सकेगी । वहाँ मुझे लिवा कर कौन जाये गा ? कौन उनसे मिलाये गा ? इसलिए यहीं भेंट करनी होगी ।'

'कब ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रात को सबों के सो जाने के बाद।'

'अभिसारिका बन कर जाओ गी ?'

'और उपाय भी क्या है ? दोष भी क्या है ? वे मेरे स्वामी हैं।'

'नहीं, दोष तो कोई नहीं। पर इसके लिए उन्हें रात में रोकना होगा। उनका डेरा भी पास ही है। ऐसी व्यवस्था कैसे हो सकती है ? अच्छा एक बार बाबू से राय ले कर देखूँ।'

तब सुभाषिणी ने रमन बाबू को बुलवाया। उनसे जो बातें हुई, वह सब मुझे बताया। रमन बाबू ने कहा था—'इस समय मुकदमे के कागज-पत्र न देखें गे, बहाने से टालें गे और उसके लिए शाम का समय तय करें गे। कागज-पत्र में रात देर तक उलझाए रहें गे। रात हो जाने पर अनुरोध कर के भोजन के लिए विवश करें गे। उसके बाद फिर जैसी तुम्हारी किस्मत हो, तुम जो चाहना करना। रात को रोकने के लिए अनुरोध करने को हमारे पास और क्या बहाना है ?'

मैंने सुभाषिणी से कहा, 'वह अनुरोध और बहाना अब तुम लोगों को नहीं करना पड़े गा। वह सब मैं खुद ही कर लूँ गी। मेरा अनुरोध जिस प्रकार वे मानें, वही करूँ गी। दो एक कटाक्ष के बाण मारे हैं, लेकिन उन्होंने लौटा दिया। अच्छे आदमी नहीं हैं। लेकिन अपना अनुरोध मैं उन तक भेजूँ कैसे ? एक चिट्ठी लिख कर दूँगी। किसी के हाथ उनके पास भिजवा देना।'

'क्यों, नौकर के हाथ भेजो न ?'

'चाहे जन्म-जन्मान्तर तक भी पति को वापस न पाऊँ, पर यह काम किसी पुरुष से नहीं करा सकूँगी !'

'ठीक कहती हो। तब दासी ?'

'लेकिन दासी विश्वासी है क्या ? कहीं कोई गड़बड़ी हो गई तो फिर सब कुछ खो जाय गा।'

'लेकिन हारानी तो विश्वासी है।'

'हारानी से कहा था। वह नाराज हो गई। तुम्हारा आदेश पा कर जा सके गी। लेकिन ऐसा करने के लिए तुम्हें कैसे कहूँ ? मर जाऊँ गी, मैं अकेली ही मर जाऊँ गी।' कह कर मैं रोने लगी।

'हारानी क्या मेरे लिए बोली है ?'

'हाँ, तुम कहो गी, तभी जाए गी।'

थोड़ी देर सोच कर सुभाषिणी बोली, 'तो इस काम के लिए उसे शाम के बाद मेरे पास आने को कहना।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम का पाठ

शाम होने के बाद मेरे स्वामी मुकदमे के कागज-पत्र ले कर रमन बाबू के पास आये। खबर पा कर मैं एक बार और हारानी की खुशामद करने लगी। हारानी यही कहती, 'अगर बहू दीदी कहें तो कर सकती हूँ। तब मैं समझ लूँगी कि कोई दोष नहीं है।'

मैंने कहा, 'जो चाहो सो करो। मैं तो ज्वाला से मरी जा रही हूँ।'

मेरी बेचैनी और तड़प देख कर हारानी हँसी से लोट-पोट होने लगी। फिर भागती हुई सुभाषिणी के पास गई। मैं उसके लौटने की राह देखती रही। थोड़ी देर बाद वह पहले से ज्यादा हँसती हुई, उलझे बालों को संभालती, हाँफती हुई दौड़ती वापस आई।

मैंने पूछा, 'इतना अब क्यों हँस रही हो ?'

'दीदी ! ऐसी जगह भी क्या किसी को भेजते हैं ? बस, समझो कि प्राण जाते-जाते रह गये।'

'क्यों क्या हुआ ?'

'मै जानती हूँ कि बहू दीदी के कमरे में झाड़ू नहीं रहती। जरूरत होने पर झाड़ू ले जा कर हमलोग ही साफ कर आते हैं। लेकिन देखा कि आज बहू दीदी के पास ही झाड़ू रखी थी। मैंने ज्यों ही जाकर पूछा कि क्या जाऊँ ? बस त्योंही बहू दीदी वही झाड़ू उठा कर मुझे मारने को दौड़ीं। किसी तरह भाग कर जान बचाई। नहीं तो आज झाड़ू खा कर ही मरती। फिर भी एक भरपूर हाथ पीठ पर पड़ा। देखो, देखो पीठ पर दाग जरूर पड़ा होगा।'

हारानी ने हँसते-हँसते पीठ दिखाई। सफेद झूठ। कहीं कोई दाग-वाग नहीं था। तब उसने कहा, 'अब बोलो, क्या करना है ?'

'झाड़ू खा कर भी जाओ गी क्या ?'

'झाड़ू भर मारी है, मना तो नहीं किया। बोलो, क्या करना है ?'

एक कागज पर मैंने लिख रखा था—'मैंने आप को अपने हृदय और प्राण दे दिए हैं। स्वीकार करें गे क्या ? यदि कर सकें तो आज की रात इसी घर में सोइए गा। कमरे का दरवाजा खुला रखिए गा—आप की वही, रसोईदारिन।'

वही पत्र उसे देना था, लेकिन मन में होने लगा कि जा कर पोखरे में ही डूब मरूँ या कहीं अंधेरे में छिप जाऊँ। नहीं तो क्या करूँ ? भगवान ने कैसा भाग्य दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? लगता है, कभी किसी अन्य कुलीन स्त्री के भाग्य में ऐसी दुर्दशा नहीं लिखी गई हो गी ।

हिम्मत कर के मुड़ा कागज हारानी के हाथ में दे दिया । बोली, 'जरा ठहरना ।'

फिर सुभाषिणी से कहा, 'जैसे भी हो, एक मिनट के लिए दादा बाबू को बुलवा लो, कोई भी बात कर के उन्हें वापस कर देना । तब तक हारानी चिट्ठी दे आए गी ।'

सुभाषिणी ने वैसा ही किया । रमन बाबू के आने पर मैंने हारानी से कहा, 'अब जा ।'

हारानी चली गई और जल्दी ही वही कागज वापस ले कर लौटी । कागज के एक कोने में लिखा था—'अच्छा !'

तब मैंने हारानी से कहा, 'जब इतना किया है तब एक काम और करना ही होगा—आधी रात को मुझे उनके सोने का कमरा दिखा आना हो गा ।'

'अच्छा । पर कोई दोष तो नहीं है ?'

'कोई दोष नहीं । ये दूसरे जन्म के मेरे स्वामी हैं ।'

'दूसरे जन्म के या इसी जन्म के ?'

मैंने हंस कर झिड़की दी, 'चुप रह !'

हारानी फिर हंसते हुए बोली, 'अगर इसी जन्म के हैं तब तो मैं पाँच सौ रुपये इनाम लूंगी, नहीं तो मेरी झाड़ू की चोट अच्छी न होगी ।'

मैंने जा कर सुभाषिणी से सब बता दिया । सुभाषिणी फौरन जा कर अपनी सास से कह आई—'आज कुमुदनी का जी ठीक नही है । आज वह रसोई न कर सके गी । सोना की माँ ही करेगी ।'

सोना की माँ अकेले ही रसोई करने गई । सुभाषिणी ने मुझे अपने कमरे में ले जा कर भीतर से किवाड़े बन्द कर लिए । मैंने पूछा, 'यह क्यों ? बन्द क्यों करती हो ? कैद करोगी क्या ?'

'तुझे आज सजाऊँ गी ।'

सुभाषिणी ने अपने हाथों मेरा मुँह धोया-पोंछा । बालों में सुगन्धित तेल डाल कर बड़े यत्न से मेरा जूड़ा बाँधा । कहा, 'इस जूड़े का दाम हजार रुपया है । समय आने पर मुझे हजार रुपया भेज देना होगा ।' इसके बाद एक खूब बढ़िया, कीमती और चटकीली साड़ी निकाल कर मुझे पहनाने लगी । मैंने रुकावट डाली तो उसने ऐसी खींचा-तानी की कि नंगी हो जाने के डर से मैं चुपचाप पहनने लगी । इसके बाद वह अपने बहुत से गहने ले आई और मुझे पहनाने लगी । तब मैंने कहा, 'मैं यह सब कुछ हरगिज नहीं पहनूँ गी ।'

इसी बात को ले कर थोड़ी कहा-सुनी भी हो गई । लेकिन मैंने किसी तरह भी गहना नहीं पहना । तब वह बोली, 'तो फिर मेरी खातिर सिर्फ एक थान पहन लो ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं भला कितना झगड़ा करती ? जबरदस्ती सुभाषिणी ने एक गले का हार, कड़ा, और बाजूबन्द पहना ही दिया। फिर एक जोड़ा सोने की नई इयरिंग निकाल कर बोली, 'यह मैंने अपने पैसों से बनवाई है। तुम्हें ही देने के लिये। तुम जहाँ भी रहना, इसे पहन कर मुझे याद करना। क्या पता, भाई, शायद आज से ही तुम बिछुड़ जाओ। भगवान ऐसा ही करें ! इसलिये आज तुम्हें यही इयरिंग पहनाऊँ गी। अब इसके लिये 'नहीं' मत करना।'

कहते-कहते जाने क्यों सुभाषिणी रो पड़ी। मेरी आँखें भी बरसने लगीं।

फिर मन में एक दुख की बात उठी थी, इस दुख के समय उसे भी सुभाषिणी से कहे बिना न रह सकी। बोली, 'जो कुछ हुआ, उससे मैं प्रसन्न हूँ। पर दुखी भी हूँ। मैं तो उन्हें पहचान गई कि वे मेरे स्वामी हैं, इसलिये मैंने जो कुछ भी किया, उसमें कोई दोष नहीं है, लेकिन उन्होंने मुझे पहचाना हो, यह किसी तरह भी सम्भव नहीं है। मैंने उन्हें पहले भी ब्याह के समय देखा था सो पहचान गई। लेकिन उन्होंने तो पहले मुझे सिर्फ ग्यारह वर्ष की लड़की के रूप में ही देखा था। वे मुझे भी पहचान सके हैं, इसका भी कोई लक्षण नहीं दिखा। इसलिये अगर वे मुझे पर-स्त्री समझ कर मुझ पर मुग्ध हो गये हैं तो मैंने मन ही मन उनकी बड़ी निन्दा भी की है। लेकिन वे स्वामी हैं और मैं उनकी दासी, उनके सम्बन्ध में कुछ भी निन्दनीय सोचना मेरे लिये अनुचित है।'

सुभाषिणी ने कहा, 'तेरे समान बन्दर पेड़ पर नहीं हैं।'

'क्या वे मेरे पति नहीं है ?

'हाय पगली ! पुरुष और स्त्री क्या बराबर होते हैं ? तू भी कमसरियट में काम कर के रुपये ले आ तो देखूँ !'

'ठीक है, वे पेट से बच्चा पैदा करें, मैं कमसरियट जाऊँ गी। जो जो कर सकता है वही तो करता है ! पुरुष क्या हम स्त्रियों की तरह इन्द्रियों को वश में कर सकते हैं ?'

'अच्छा, अच्छा, पहले तेरा घर बन जाय, फिर तू उस घर में आग लगा देना। इन बातों को अभी रहने दे। किस तरह तू स्वामी का मन जीत सके गी, इसका एक प्रमाण तो दे, जरा देखूँ। ऐसा न होगा तो तेरी गुजर नहीं है।'

मैंने कहा, 'यह विद्या तो कभी सीखी नहीं।'

'तो मुझसे सीख ले। मैं इस विषय की पण्डित हूँ। जानती है न ?'

'सो तो देख ही रही हूँ।'

'तो सीख ! मानो तू पुरुष है। मैं किस तरह तेरा मन लुभाती हूँ, देख जरा।'

यह कह कर दुष्ट सुभाषिणी ने अपने सिर पर घूँघट काढ़ लिया। बड़े यत्न से अपने हाथों सुगंधित पान ला कर खाने को दिया। वह पान वह सिर्फ रमन बाबू के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रखती थी। फिर फूल कढ़े ताड़ के पंखे से मुझे हवा करने लगी। हाथ की चूड़ियों और कड़े से मीठी-मीठी झंकार करने लगी।

मैंने कहा, 'भाई, यह तो दासीपना है।'

'हम लोग दासी नहीं तो और क्या हैं ?'

'ठीक है, तो जब उनका प्रेम उमड़े गा, तभी दासी बनूँगी। तभी पंखा झलूँगी, पाँव भी दबाऊँगी, पान भी सजा कर दूँगी। लेकिन यह सब इस समय के लिये नहीं है।'

तब भी हँसती-हँसती सुभाषिणी आ कर मेरे पास बैठ गई। मेरा हाथ अपने हाथों में ले कर मीठी-मीठी बातें करने लगी। सखी भाव से ही मेरे जाने की बातें करते-करते उसकी आँखों में आँसू छलकने लगे। तब उसे खुश करने के लिये मैंने कहा, 'जो तुमने मुझे सिखाया, वही तो स्त्रियों के हथियार हैं। लेकिन अभी यह हथियार काम में नहीं आ सकते।'

तब सुभाषिणी ने दर्प से कहा, 'तो मेरा ब्रह्मास्त्र सीख लेना।'

यह कह कर सुभाषिणी ने मेरे गले में हाथ डाल कर मेरे मुँह को उठा कर चूम लिया। एक बूंद आँसू मेरे गाल पर आ गिरा। थूक घोंट कर और आंखों के आँसू रोक कर मैंने कहा, 'यह तो बिना संकल्प के ही दक्षिणा देना सिखा रही हो।'

'तब तू नहीं सीख सकती। अच्छा तू जो जानती है, वही दिखा, देखूँ। यह देख-समझ ले मैं उपेन्द्र बाबू हूँ।' कहते हुये वह उछल कर बैठ गई। हंसी रोकने को मुंह में कपड़े ठूँसने लगी। फिर रुक कर मेरे चेहरे की ओर सकपका कर देखा और फिर हँसते हुए लोट-पोट होने लगी। फिर बोली—'हाँ अब अपनी विद्या दिखा तो।'

मैंने आगे बढ़ कर जो किया उसके उत्तर में मुझे ढकेल कर सुभाषिणी ने कहा, 'दूर हट पापिष्ठा, तू तो जादूगरनी है रे !'

'क्यों क्या हुआ ?'

'तेरी इस नजर के सामने कोई पुरुष क्या टिके गा ? मर कर भूत बन जाये गा।'

'तो मैं पास हुई ?,

'अच्छी तरह से। हाँ, पुरुष का सिर यदि घूम जाय तो जरा तेल डाल देना।'

'अच्छा, अब उधर की आवाज से तो यही लगता है कि बाबू लोगों का खाना-पीना हो गया हैं। अब रमन बाबू इधर आवें गे। मैं चलती हूँ। जो तुमने सिखाया है, उसमें एक पाठ बड़ा मीठा लगा, वही चुम्बन ! आओ न एक बार और·····'

सुभाषिणी ने उछल कर मेरी गर्दन पकड़ ली, मैंने उसकी। प्रगाढ़ आलिंगन में बंधी हम दोनों बार-बार एक-दूसरे का मुंह चूम कर, गले से गले लगी, बड़ी देर तक रोती रहीं। ऐसे प्रेम का क्या फिर कभी अवसर आवे गा ? सुभाषिणी की तरह क्या और कोई प्रेम करना जानता है ? मर जाऊँ गी पर सुभाषिणी को कभी नहीं भूलूँ गी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं जान दे दूँगी

हारानी को सतर्क कराके मैं अपनी कोठरी में गई। बाबू लोगों का खाना-पीना हो चुका है। इसी समय अचानक बड़ी गड़बड़ी हो गई। कोई पंखा माँग रहा था, कोई पानी के लिये गुहार कर रहा था। कोई दवा और डाक्टर की चीख कर रहा था—इसी तरह की हड़बड़ी मची थी। फिर हारानी हँसती हुई आई। मैंने पूछा, 'यह क्या गड़बड़ है ?'

'वही अतिथि बाबू मूर्छित हो गये हैं।'

'कैसे ?'

'अब संभल गये हैं।'

'तब !'

'लेकिन घर जाने लायक नहीं हैं। घर नहीं जा सके। यहीं बड़े बैठकखाने के पास वाले कमरे में सोने गये हैं।'

मैं चालाकी समझ गई। मैंने कहा, 'सब रोशनी बुझ जाने पर सब के सो जाने पर आऊँ गी।'

'लेकिन तुम्हारी तबियत तो ठीक नहीं है।'

'ठीक नहीं है तेरा सर !'

हारानी हँसती हुई चली गई।

बाद में सबों के सोने पर और अंधेरा होने पर हारानी मुझे साथ ले जा कर पहुँचा आई। मैं उनके कमरे के भीतर गई। देखा, वे अकेले सो रहे थे। बीमारी कहीं से न दिखी। कमरे में दो बड़े बड़े दिए जल रहे थे। उनके सौंदर्य का प्रकाश अलग ही फैल रहा था। मेरे कलेजे में भी बाण चुभ गया। आनन्द से मेरा शरीर डूबने सा लगा।

यौवन पाने के बाद मेरी पति के साथ यह पहली भेंट थी। यह कितनी सुखद है, कैसे बताऊँ ? मैं बहुत वाचाल थी, लेकिन जब पहली बार उनसे बात करने गई तो बात मुँह और गले में ही फँस गई। गला रुँधने लगा। शरीर के सभी अंग काँपने लगे। दिल की धड़कन तेज हो गई। तालू सूखने लगा। मुँह की बात बाहर नहीं आई। मैं रो पड़ी।

मेरी रुलाई को, मेरे आँसुओं को वे समझ ही न सके। बोले, 'रो क्यों रही हो ? मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं है। तुम अपने से आई हो, फिर क्यों रो रही हो ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस नीरस और कठोर बात से मुझे बड़ी चोट लगी। क्या उन्होंने मुझे कुलटा समझा ? सोच कर कलेजे और आँखों में जलन बढ़ गई। सोचा, अब अपना परिचय साफ-साफ दे दूँ। अब यह ज्वाला सही नहीं जाती। लेकिन तभी मन में आया कि परिचय देने पर यदि ये विश्वास न करें तब ? अगर मन में सोचें कि इसका घर तो कालीदीघी है, मेरी पत्नी के चुराए जाने की खबर इसे मालूम हो गी और अब वैभव व सम्पत्ति की लालच में मेरी पत्नी कह कर झूठा परिचय दे रही है। अगर ये ऐसा सोचें तो मैं कैसे विश्वास दिला सकूँगी ? इसलिए सोच समझ कर परिचय न दे सकी। लंबी साँस छोड़ कर और आँखों के आँसू सुखा कर उनसे बातें करने लगी। कुछ दूसरी-दूसरी बातों के बाद वे बोले, 'कालीदीघी में ऐसी सुन्दरी जन्म ले सकती है, यह मैं सपने में भी नहीं सोच सकता था।'

मैंने उनकी आँखों की ओर देखा। वे बड़े आश्चर्य से मेरी ओर देख रहे थे।

मैंने भी तनिक व्यंग्य में कहा, 'मैं सुन्दरी नहीं, मैं तो बंदरी हूँ। हमारे क्षेत्र में आप की स्त्री ही सौंदर्य का नमूना हैं।' इस बहाने उनकी स्त्री की बात को बीच में ला कर मैंने पूछा, 'कहिए, उनका कुछ पता चला ?'

'नहीं। तुम कितने दिनों से अपने देश से यहाँ आई हो ?'

'मैं उसी काण्ड के बाद देश से चली आई। लगता हैं, आप ने दूसरा विवाह कर लिया ?'

'नहीं।'

फिर बहुत तरह की बातें हुई। मैंने देखा कि उनके पास ठीक से उत्तर देने का भी अवसर नहीं है। मैं रसोईदारिन हो कर अभिसारिका बन कर आई हूँ, मेरे प्रति आदर दिखाने का भी उनके पास अवसर न था। वे चकित दृष्टि से मुझे ही निहारते रहे। बस एक बार कहा, 'ऐसा रूप तो कहीं नहीं देखा।'

मेरी सौत नहीं है, सुन कर प्रसन्न हुई। बोली, 'आप लोग बड़े आदमी हैं, यह काम भी बड़प्पन वाला हुआ, नहीं तो अगर आप की स्त्री मिल जायँ तो दोनों सौतों में ठेला-ठेली मच जाय।'

वे हँस पड़े। कहा, 'नहीं, वैसा डर नहीं है। वह स्त्री यदि मिल भी जाय तो उसे अपना सकूँ गा, यह कहना मुश्किल है। उसकी अब कोई जाति नहीं है। इसका भी तो विचार करना होगा।'

मेरे सिर पर वज्र गिरा। सभी आशाएँ समाप्त हो गईं। मेरा परिचय पा कर और मुझे पहचान कर भी मुझे ग्रहण नहीं करें गे। तब तो मेरा नारी-जन्म व्यर्थ गया।

हिम्मत बाँध कर मैंने पूछा, 'यदि अभी उन्हें देख पावें तब क्या करेंगे ?'

'उसे छोड़ दूँ गा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी कठोरता ! इतनी निर्दयता ! मैं ठगी सी रह गई। मेरी आंखों के सामने पृथ्वी नाचने लगी।

उस रात को, स्वामी की शय्या पर बैठ कर उनका मनोरम रूप देखती हुई, मैंने मन में प्रतिज्ञा की कि ये यदि मुझे पत्नी के रूप में ग्रहण करें तो करें, नहीं तो मैं जान दे दूँ गी।

१८

परीक्षा

अब मुझे कोई चिन्ता न थी। मैं पहले से ही समझ रही थी कि वे मेरे वश में हो गये थे। मैंने मन ही मन सोचा—यदि गैंड़े के खांग चलाने में पाप नहीं है, यदि हाथी के दाँत चलाने में पाप नहीं है, यदि भैंसे के सींग मारने में पाप नहीं है तो मुझे ही अपना हथियार चलाने में पाप क्यों होगा ? विधाता ने हम नारी-जाति को जो बहुत से हथियार दिए हैं, आज दोनों की भलाई के लिए उनका उपयोग करूँ गी। यदि यह मैल कभी भी दूर हो सकती है तो वह अभी ही।

मैं उनके पास से हट कर दूर जा कर बैठ गई। और भरसक प्रसन्न मुद्रा में उनसे बातें करने लगी। वे मेरे पास खिसक आए। मैंने उनसे कहा, 'आप कृपया मेरे इतने पास मत आइए। मैं देखती हूँ कि शायद आप को एक भ्रम हो गया है।'

यह बात मैंने भरसक हँसते-हँसते ही कही थी। फिर अपनी चोटी खोलती और उसे फिर बाँधते हुए मैंने कहा, 'आप के मन में शायद एक भ्रम हो गया है कि मैं कुलटा हूँ। पर मैं कुलटा नहीं हूँ। आप के पास उधर का, अपने देश का हाल-चाल जानने के लिए ही आई हूँ। मेरा कोई बुरा मतलब नहीं है।'

उनकी मुद्रा से मुझे लगा कि उन्हें मेरी इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। तब मैंने हँस कर कहा, 'अगर मेरी बात पर विश्वास नहीं होता तो मैं चली। तुम्हारे साथ मेरी यहीं भेंट है।'

कह कर जिस कटाक्ष के साथ देखना चाहिए, उसी तरह देखती हुई मैं अपने घुँघराले, रेशमी, कोमल, सुवासित बालों की एक लट को इस प्रकार उनके गाल से छुवाती हुई जैसे अपने आप ही असावधानी के कारण छू गई हो, शाम की ठण्डी हवा में बासन्ती लता की भाँति जरा हिलती हुई उठ खड़ी हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं सचमुच उठ खड़ी हुई हूँ, यह देख कर वे अचानक मुर्झा से गये, उदास हो गए। लपक कर पास आ कर मेरा हाथ पकड़ लिया। वे मेरा हाथ पकड़े रह कर अचरज में डूबे बहुत देर तक मेरे हाथ की ओर ही देखते रहे। तब मैंने पूछा, 'क्या देख रहे हो ?'

उन्होंने उत्तर दिया, 'यह क्या फूल है ? लेकिन यह फूल तो लगता नहीं। फूल ऐसा तो नहीं होता ? फूल से आदमी सुन्दर है। मल्लिका के फूल से आदमी सुन्दर हो सकता है, यह तो आज पहले पहल देखा।'

मैंने क्रोध के साथ हाथ को एक गहरा झटका दे कर हाथ छुड़ा लिया। फिर क्रोध छिपा कर फौरन हँसी और बोली, 'तुम मुझे मत छूना। तुम अच्छे आदमी नहीं हो। तुमने मुझे कुलटा समझा। पर मैं कुलटा नहीं हूँ।'

यह कह कर अभिमान के साथ मैं दरवाजे की ओर बढ़ी। तब उन्होंने—मेरे पतिदेव ने, मेरे स्वामी ने—आज भी उस बात को याद कर लज्जा आती है, कहने में दुख होता है—मेरे देवता ने मुझे हाथ जोड़ कर बुलाया। पुकार कर कहा, 'मेरी बात सुन लो। अभी जाना मत। मैं तुम्हारा रूप देख कर पागल हो गया हूँ। ऐसा रूप मैंने कभी नहीं देखा, जरा ठहरो, थोड़ी देर और देख लूँ। फिर ऐसा रूप शायद और कभी नहीं देख सकूँ गा।'

सुन कर मैं ठमकी। फिर लौट पड़ी, लेकिन बैठी नहीं। कहा, 'प्राणाधिक ! मैं तो एक तुच्छ नारी मात्र हूँ। तुम्हारे जैसे रत्न को पाने के बाद भी छोड़ कर मैं वापस जा रही हूँ। इसी से तुम मेरे हृदय की व्यथा समझना। लेकिन क्या करूँ ? हम लोगों के जीवन में धर्म ही एकमात्र प्रधान धन है—और एक दिन के क्षणिक सुख के लिये मैं धर्म नहीं छोड़ूँगी। मैं भावावेश में बिना सोचे-समझे आप के पास चली आई हूँ, बिना सोचे-समझे आप को पत्र लिखा था। लेकिन मैं एकबारगी ही गड्ढे में नहीं गिर सकती, नहीं गिर सकूँ गी। अभी भी मेरी रक्षा का पक्ष खुला है। मेरा भाग्य है कि यह होश मुझे आ गया है। मैं अब चली।'

वे बोले, 'अपना धर्म तो तुम जानो। लेकिन मुझे तुमने ऐसी दशा में डाल दिया है, ऐसी स्थिति कर दी है मेरी कि मुझे धर्म और अधर्म का ज्ञान ही नहीं रह गया है। मैं शपथ ले कर कहता हूँ कि तुम चाहो गी तो चिरकाल तक मेरी हृदयेश्वरी होकर रहो गी। सिर्फ एक दिन के लिये मत सोचना।'

मैं हँस पड़ी। हँसते हुये बोली, 'हम नारी लोग पुरुषों की शपथ का महत्व जानती हैं। हमें पुरुष की शपथ का विश्वास नहीं। एक क्षण के देखने में ही क्या ऐसा हो जाता है ?' कह कर मैं क्षण भर चुप रही और फिर चलने को आगे बढ़ी। दरवाजे तक पहुँची। और तब अधिक धैर्य रखने में असमर्थ हो कर उन्होंने आगे बढ़ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अपने दोनों हाथों से मेरे पैरों को पकड़ कर मेरा रास्ता रोक लिया। कहा, 'मैंने ऐसा तो और कहीं नहीं देखा।'

रह-रह कर वे मर्मभेदी साँस छोड़ रहे थे। उनकी यह दशा देख कर मुझे सचमुच बड़ी पीड़ा होने लगी। फिर भी अपनी दृढ़ता बनाए रख कर मैंने कहा, 'तो अपने ठहरने की जगह पर चलो। यहाँ रहने पर तुम मुझे छोड़ कर चले जाओ गे।'

वे तत्काल ही तैयार हो गये। उनका डेरा पास ही था, बस थोड़ी ही दूर पर। उनकी गाड़ी भी मौजूद थी। दरबान भी सो रहे थे। हम लोग चुपचाप जा कर गाड़ी में बैठ गये। उनके डेरे पर जा कर देखा—अच्छा दुमंजिला घर। मुझे एक कमरे की ओर ले गए। मैं पहले ही कमरे में चली गई। भीतर जाते ही मैंने भीतर से कुंडी चढ़ा दी। मेरे स्वामी बाहर ही खड़े रहे।

फिर वे बाहर से ही गिड़गिड़ाने लगे। हँसते हुए मैंने भीतर से ही पुकार कर कहा, 'मैं तो अब तुम्हारी दासी हो गई। लेकिन देखूँ गी पहले, कि तुम्हारे प्रेम का यह ज्वार कल सबेरे तक रहता है या नहीं ? यदि कल भी ऐसा ही प्रेम देख सकूँ गी तो तुम्हारे साथ फिर बातें करूँगो। बस, आज इतना ही।'

उनके बहुत जिद करने पर भी मैंने दरवाजा नहीं खोला। थोड़ी देर बाद विवश हो कर वे दूसरी जगह सोने चले गये। जेठ की असह्य गरमी में, कठिन प्यास से तड़पते आदमी को, स्वच्छ, शीतल सरोवर के किनारे बिठाकर उसका मुँह बाँध दो ताकि यह पानी न पी सके—तब कहो, देखूँ उसकी प्यास, पानी की चाह बढ़ती है या नहीं ?

बहुत देर बाद मैंने जब दरवाजा खोला तो देखा कि स्वामी तब भी द्वार पर ही खड़े हैं। मैंने अपने हाथों में उनका हाथ थाम कर कहा, 'प्राणनाथ ! यदि हो सके तो मुझे इसी समय रामराय दत्त के घर पहुँचा दो, नहीं तो आठ दिनों तक मुझसे बातें मत करना। इन्हीं आठ दिनों में तुम्हारी परीक्षा हो गी।'

उन्हों ने आठ दिनों की परीक्षा भी स्वीकार कर ली।

| १६ |

खून किया, फाँसी चढ़ी

पुरुषों को जलाने और सताने के लिए जितने उपाय विधाता ने स्त्रियों को दिए हैं, लगभग उन सभी उपायों का उपयोग कर के मैंने आठ दिनों तक अपने स्वामी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
खूब सताया और जलाया। मैं औरत हो कर यह सब बातें किस मुँह से खोल कर कहूँ ? अगर मैं आग जलाना न जानती तो पिछली रात वे इतना न जलते। लेकिन किस तरह आग लगाई, किस तरह फूँक-फूँक कर आग को बढ़ाया, किस तरह अपने स्वामी के हृदय को संतप्त किया, लज्जा के मारे में वह सब कह नहीं पा रही हूँ। यदि कभी किसी स्त्री ने पुरुष-हत्या का व्रत लिया हो और अपने प्रयास में सफल भी हुई हो तभी वह मेरी स्थिति और मेरी बात समझ सके गी। या यदि कोई पुरुष-घातिनी स्त्री के चंगुल में फँसे हों, तो वे भी समझ सकते हैं। सच पूछा जाय तो स्त्रियाँ ही इस पृथ्वी पर एक मात्र कंटक हैं। हमारी नारी जाति के माध्यम से या नारी जाति द्वारा इस धरती पर जितना अहित होता है, उतना पुरुष जाति द्वारा कदापि नहीं। बस एक ही सौभाग्य की बात है कि यह पुरुष-घातिनी विद्या सभी स्त्रियाँ नहीं जानतीं। यदि ऐसा होता तो इतने दिनों बाद आज तक इस धरती पर एक भी पुरुष जीवित न बचता।

इन आठ दिनों में मैं बराबर स्वामी के साथ रही। बराबर मैं आदरपूर्वक खूब सरस बातें करती, नीरस बातें कभी न करती। हँसी, कटाक्ष, अंग-भंगी—ये सब तो स्त्रियों के हथियार हैं ही। मैंने इनका भरपूर उपयोग किया। मैंने पहले दिन आदर पूर्वक बातें कीं। दूसरे दिन थोड़े से प्रेम के लक्षण प्रकट किए, तीसरे दिन उनके घर के कामों को देखना-भालना शुरू किया, जिससे उनके भोजन का समय, सोने का समय स्नानादि समय ठीक से निभे। जो-जो करने से वे अच्छी तरह रह सकें, वही-वही करना मैंने शुरू किया। अपने हाथों ही मैंने रसोई बनाना शुरू किया। यहाँ तक कि उनका सब काम अपने ऊपर ले लिया। कि दाँत खोदने की खरिका भी मैं अपने हाथों ही जुटा कर रखती। उनकी थोड़ी सी तकलीफ या बेचैनी या सिरदर्द देख कर सारी-सारी रात जग कर उनकी सेवा करते काट देती।

आज भी मेरे मन में इतना गर्व है कि केवल पेट पालने की लालच से या स्वामी के धन की मलकिन होऊँ गी, इस लालच से भी इतना सब नहीं किया न कर ही सकती थी। पति को पाऊँ गी, इस लालच से मैं दिखावटी व बनावटी प्रेम न कर सकी। इन्द्र की इन्द्राणी होऊँगी, इस लालच से भी मैं यह सब न कर सकती थी। पति को मोहित करना है, इसलिये हँसी और कटाक्ष का पूर्णतया उपयोग कर सकती हूँ पर दिखावटी, बनावटी, नकली प्रेम-प्रदर्शन नहीं कर सकती। भगवान ने मुझे उस मिट्टी से गढ़ा ही नहीं है। जो अभागे-अभागिन इस बात को नहीं समझ सकते, जो नरक-पथ-यात्री मुझसे कहें कि तुम हँसी और कटाक्ष का जाल फैलाती हो, जूड़ा खोल कर फिर बाँधती हो, बातों के बहाने सुवासित घुँघराले रेशमी बालों को एक अभागे बेचैन युवक के गाल पर छुआ कर उसे रोमांचित कर सकती हो—बस तुम यही सब कर सकती हो और कुछ नहीं कर सकती हो। उस चिड़िया के पंख नोंच कर फेंक देने या उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हुक्के की चिलम को फूंक देने का काम नहीं कर सकता—तो जो मुझे ऐसी बात कहेगा, वह सचमुच मेरे जीवन की कहानी को समझने में असमर्थ है। पुरुषों को अगर छोड़ भी दें, तो भी सभी स्त्रियां भी इस शास्त्र को नहीं समझ सकतीं।

वे मेरे स्वामी हैं। उनकी सेवा, पति सेवा में ही मुझे अपार आनन्द है—वह सब भी दिखावटी नहीं, यह बात मैं अपने हृदय की पूरी सत्यता के साथ कह सकती हूँ। क्योंकि हर प्रकार की यह पति-सेवा मैं मन से ही करती थी। मन में सोचा करती कि यदि इन्होंने मुझे स्वीकार नहीं ही किया तो मेरे लिये पृथ्वी पर जो सारा सुख अभी जुट गया है, जो और कोई और कभी नहीं पाता और शायद और कोई कभी पा भी न सके गा, उसे कम से कम इन अचानक मिल गये कई एक दिनों में ही अच्छी तरह प्राणों में भर कर भोग लूं। इसीलिये प्राणप्रण से मैं अपने स्वामी की सेवा में जुटी रहती थी। यह सब कर के मैं कितना सुखी होती थी उसे दूसरा कोई क्या समझे गा ?

पति-भक्ति के तत्व और क्षेत्र ही अलग हैं—बिल्कुल अलग। अन्य सेवाओं से इस सेवा का कहीं मेल नहीं, कोई तुलना भी नहीं। जो बुद्धि केवल कालेज की परीक्षा पास करके ही सीमा-क्षेत्र में पहुँच जाती है, वकालत करके कुछ रुपये ला सकने भर से विश्वविजयिनी प्रतिभा मान ली जाती है, जिसका अभाव ही राजद्वार पर सम्मान पाता है, उस बुद्धि की परिधि के बाहर है इस पति-सेवा का तत्व। जो लोग शिक्षा देते हैं कि विधवा का पुनर्विवाह कर दो, लड़की को पुरुष की तरह शास्त्रों में पंडिता बना दो, वे भला इस स्वामी-भक्ति के तत्व को क्या समझें गे ? और जो हंसने और कटाक्ष के तत्व की बात है, वह बहुत स्थूल है। जैसे महावत अंकुश से हाथी को वश में करता है, कोचवान चाबुक से घोड़े को वश में करता है, ग्वाला गायों को रस्सी से वश में करता है, अंग्रेज जैसे लाल आँखें दिखा कर देसी बाबुओं को वश में करता हैं, हम स्त्री जाति वाली हंस कर और कटाक्ष कर के पुरुषों को वश में करती है। हमारी पति-भक्ति हम सब का परम-गुण है। हमारी हंसी और कटाक्ष को जो लोग कलंकित करते हैं, वे खुद दोषी और अज्ञानी हैं।

लोग कहें गे कि मैं अभिमान की बात कर रही हूँ। सोचा है, सत्य भी हो, लेकिन हम लोग कच्ची माटी के घड़े के समान हैं, फूल के चोट से भी टूट जाती हैं। जिस देवता के अंग नहीं हैं, लेकिन उनके धनुष-बाण तो हैं, जिनके माँ-बाप नहीं हैं, परन्तु स्त्री है—उनके बाण हैं तो फूल के ही बाण लेकिन उनसे पर्वत भी फट जाते हैं, वही देवता तो स्त्रियों के गर्व को सदा तोड़ते, चूर करते रहते हैं। हम अपनी हँसी और कटाक्ष के जाल में दूसरों को फँसाने जाकर खुद ही फँस जाती हैं। दूसरे को जलाने जा कर अपनी ही आग से खुद ही जलने लगती हैं। होली में अबीर के खेल की तरह दूसरे को रंगने जा कर खुद को ही रंग लेना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैं कहती हूँ, उनका रूप—मनोहर रूप है, इसलिए यह भी जानती हूँ कि कि जिनकी यह रूप-राशि है, वे मेरी ही सम्पत्ति हैं—

ताहारेई सोहागे आमि सोहागिनी,
रूपसी ताहारेई रूपे ।

फिर यह आग की लगा-लगी ! मैं हँसना जानती हूँ, लेकिन हँसी का कोई उत्तर नहीं है । मैं चाहती हूँ, पर उस चाहने के बदले क्या चाहना मिलती है ? मेरे ओंठ दूर से ही चुम्बन की लालसा से फड़कते रहते हैं, फूल की बीसों पंखुड़ियाँ खुल कर खिली रहती हैं । उनके खिले हुए लाल फूल जैसे कोमल ओंठ क्या उसी प्रकार खिल कर, पंखुड़ियों को खोल कर मेरी ओर क्या लौटना नहीं जानते ? यदि मैं उनकी हँसी और दृष्टि-भंगिमा में, उनकी चुम्बन की इच्छा में, केवल थोड़ी सी इन्द्रियों की लालसा का ही लक्षण देखती तो मैं ही विजयिनी होती, किन्तु ऐसी बात नहीं थी । उस हँसी, उस भंगिमा, उन ओठों के फड़कने में केवल स्नेह, अपरिचित प्रेम था । मैं तो सहज ही हार गई । हार कर भी मैंने माना कि इस पृथ्वी का सोलहों आना सुख इसी हार में है । जिस देवता ने इनके साथ मेरे विवाह की व्यवस्था की थी, उनकी अपनी देह तो राख हो चुकी है ।

इधर परीक्षा के आठ दिन समाप्त होने को आये । लेकिन तब तक मैं उनके प्रेम में इतनी वशीभूत हो गई थी कि मैंने मन ही मन निश्चय किया कि परीक्षा के आठ दिन बीत जाने पर अगर वे मुझे मार कर निकाल भी दें गे तो भी मैं उन्हें छोड़ कर अब नहीं जाऊँ गी । अन्त में यदि वे मेरा पूरा परिचय पा कर भी मुझे पत्नी-रूप में स्वीकार नहीं करें गे, तब यदि रखेल की तरह, वेश्या की तरह भी उनके पास रहना पड़े गा, तो भी रहूँ गी । स्वामी को पाने के लिए किसी प्रकार की भी लोक-लज्जा का भय नहीं करूँ गी । लेकिन यदि भाग्य में वह भी न हो तो ? इसी भय की, शंका की कल्पना कर मैं बार बार बैठ कर रोने लगती थी ।

लेकिन साथ ही साथ मैं यह भी समझती थी कि मेरे स्वामी के पंख भी कट चुके हैं । अब उनमें उड़ जाने की शक्ति नहीं रह गई है । उनके प्रेमाग्नि में बहुत अधिक मात्रा में घी की आहुति पड़ चुकी है । अब वे और सारे काम छोड़ कर हर समय सिर्फ मेरा मुँह ही ताकते रहते थे । मैं घर का काम करती, वे छोटे बच्चे की तरह मेरे पीछे-पीछे घूमा करते । उनके मन का न थम सकने वाला वेग मैं हर कदम पर देख पाती, लेकिन वे मेरी एक भंगिमा, एक संकेत-मात्र से ही जड़ हो जाते थे । कभी-कभी मेरा पैर पकड़ कर रोने लगते, 'मैं पूरे आठ दिनों तपस्या करूँ गा, तुम्हारी बात मानूँ गा, तुम मुझे छोड़ कर चली मत जाना ।'

अंत में मैंने देखा कि यदि सचमुच मैं उन्हें छोड़ दूँगी तो उनकी दशा बड़ी चिन्तनीय और दयनीय हो जाय गी । लेकिन परीक्षा-काल तक बाँध रुका न रह सका ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आठ दिन बीतने के पहले ही एक दिन बातों ही बातों में हम दोनों बुरी तरह अधीर हो उठे। ···उन्होंने मुझे कुलटा समझ लिया। यह भी मैंने सह लिया। और चाहे जो भी हो, मैंने हाथी के पैर में सीकड़ी तो पहना ही दी थी, यह मैं खूब अच्छी तरह समझती थी। मुझे लगा कि मैंने जो खून किया है, उसी के लिए फाँसी चढ़ गई हूँ।

| १७ |

फाँसी के बाद मुकदमा

मेरे कलकत्ता निवास के कितने ही दिन सुख-स्वच्छंदता से बीते। उसके बाद एक दिन देखा कि मेरे स्वामी हाथ में एक चिट्ठी लिए बड़ी चिन्तित मुद्रा में बैठे हैं। मैंने पूछा, 'क्या बात है ? इतने चिन्तित क्यों हो ?'

वे बोले, 'घर से चिट्ठी आई है, घर जाना हो गा।'

हठात् मैं चीख पड़ी—'मैं ?'

मैं खड़ी थी, धम् से जमीन पर बैठ गई। आँखों से आँसू की धाराएँ बह चलीं।

स्वामी ने बड़े स्नेह से मेरा हाथ पकड़ कर मुझे उठाया, और मेरा मुँह चूम कर मेरे आँसू पोंछे। बोले, 'वही चिन्ता तो मुझे भी है, वही तो सोच रहा था। तुम्हें छोड़ कर तो जा न सकूँगा।'

'तो वहाँ लोगों से क्या कह कर मेरा परिचय दोगे ? किस तरह और कहाँ रखो गे।'

'वही तो सोच रहा हूँ। शहर तो वह है नहीं तो कहीं दूसरी जगह रख सकूँ और कोई जान भी न सके। वहाँ माँ-बाप की आँखों के सामने भला तुम्हें कैसे रख सकूँगा ?'

'क्या न जाने से काम नहीं चले गा ?'

'नहीं, जाए बिना काम नहीं चले गा।'

'तो कितने दिनों में लौटो गे ? अगर जल्दी ही लौट सको तो न हो तो मुझे यहीं छोड़ जाओ।'

'कैसे कहूँ कि जल्दी लौट सकूँ गा। ऐसी आशा नहीं है। कलकत्ता तो हम लोग बहुत कम, कभी-ही-कभी आते हैं।'

'तुम जाओ ! मैं तुम्हारी लिए विघ्न नहीं बनूँ गी।' कह कर मैं फिर फफक कर रो पड़ी। रोते-रोते बोली, 'मेरे भाग्य में जो लिखा है वही तो होगा न ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'लेकिन मैं तो तुम्हारे बिना नहीं रह सकूँ गा। तुम्हें देखे बिना मैं पागल हो जाऊँ गा।'

'देखो मैं तुम्हारी विवाहित पत्नी नहीं हूँ·····'सुन कर मेरे स्वामी काँप उठे। मैं कहती गई, 'तुम्हारे ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं है, तुम इसी समय मुझे बिदा···,

उन्होंने मुझे आगे कहने न दिया। बीच में ही बोल पड़े, 'आज तो इस बात की जरूरत नहीं है। आज भर और सोचता हूँ। सोच कर जो निश्चय करूँगा कल बताऊँगा।,

दिन ढलते उन्होंने पत्र भेज कर रमन बाबू को बुलवाया। पत्र में लिखा—'गुप्त बात है। आप के आए बिना काम नहीं चलेगा।'

शाम को रमन बाबू आये। मैं किवाड़ की आड़ में छिप कर सुनने लगी कि उन दोनों में क्या बात होती है। मेरे स्वामी ने कहा, 'आप लोगों की वह रसोईदारिन जो कम उम्र की है, उसका नाम क्या है ?'

'कुमुदनी।' रमन बाबू ने सहज भाव से उत्तर दिया।

'उसका घर कहाँ है ?'

'इस समय नहीं बता सकता।'

'सधवा है या विधवा ?'

'सधवा।'

'क्या उसके पति को जानते हैं ?'

'जानता हूँ।'

'कौन है ?'

'अभी बताने का मुझे अधिकार नहीं है।'

'इसमें कोई गुप्त रहस्य है क्या ?'

'हाँ, है।'

'तो आपलोगों को वह कहाँ मिली ?'

'मेरी स्त्री अपनी मौसी के पास से लाई थी।'

'अच्छा छोड़िए, ये सब बातें छोड़िए। यह बताइए कि उसका चरित्र कैसा है ?'

'एकदम ठीक। परम पवित्र। मेरी बूढ़ी रसोईदारिन को खूब सताती थी, इसके अलावा कोई और दोष नहीं है।'

'मैं स्त्री–चरित्र के संबंध में पूछ रहा था।'

'ऐसा स्वच्छ-चरित्र जल्दी देखने को नहीं मिलता।'

'तो क्यों नहीं बताते कि उसका घर कहाँ है ?'

'कहा न, कहने का अधिकार नहीं हैं।'

'तो उसके पति का घर कहाँ है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह भी बताना वर्जित है।'

'पति जीवित है ?'

'कहा न सधवा है।'

'आप उसे पहचानते-जानते हैं ?'

'हाँ जानता हूँ, पहचानता भी हूँ।'

'अब वह स्त्री कहाँ है ?'

'आप ही के इसी घर में।' रमन बाबू ने हँस कर कहा।

मेरे स्वामी चौंक पड़े। चकित हो कर पूछा, 'आप ने कैसे जाना ?'

'वह सब नहीं बताऊँगा। आप बताइए, आप का मतलब सिद्ध हुआ ?'

'हुआ तो। लेकिन आप ने तो पूछा ही नहीं कि यह सब मैं क्यों पूछ रहा हूँ ?'

'दो कारणों से नहीं पूछा। एक तो यह कि पूछने पर आप सच नहीं बतायेंगे ! कहिए ठीक है न ?'

'और दूसरा कारण ?'

'मैं जानता हूँ कि आप यह सब क्यों पूछ रहे है।'

'वह भी जानते हैं ? कहिए न क्यों है ? जरा सुनूँ तो।'

'वह नहीं बता सकता।'

'अच्छा, लगता है कि आप सब कुछ जानते हैं। अच्छा, बताइए कि मैं जो षड़यंत्र रच रहा हूँ, उसमें सफलता मिले गी या नहीं ?'

'जरूर मिले गी। आप कुमुदनी से पूछिए गा।'

'अच्छा, एक बात और। आप कुमुदनी के संबंध में जो कुछ भी जानते हैं, उन सब को एक कागज में लिख कर दस्तखत के साथ क्या दे सकते हैं ?'

'दे सकता हूँ। पर एक शर्त है। लिख कर पुलिन्दे पर मुहर लगा कर मैं उसे कुमुदिनी को सौंप दूँगा। आप उसे अभी नहीं पढ़ सकते। अपने देश जा कर पढ़िए गा। कहिए, तैयार हैं ?'

मेरे स्वामी ने थोड़ी देर सोच कर कहा, 'तैयार हूँ ! पर वह मेरे अभिप्राय को सिद्ध करने वाला होगा न ?'

'हाँ।'

और थोड़ी देर और इधर-उधर की बातें कर के रमन बाबू चले गये। तब मेरे स्वामी मेरे पास आए।

मैंने पूछा, 'यह सब बातें क्यों कर रहे थे ?'

'सब सुन लिया क्या ?'

'हाँ, सब सुन लिया है। सोच रही थी कि तुम्हारा खून कर के मैं तो फाँसी चढ़ ही चुकी हूँ। अब फाँसी के बाद यह मुकदमा क्यों खुला ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इस समय का कानून ऐसा ही है।'

| १८ |

मायाविनी

उस दिन के बाद से मेरे स्वामी बहुत उदास और चिन्तित रहने लगे। मुझसे ज्यादा बातचीत भी नहीं की। मुझे देखते तो देर तक मेरी ओर ही एकटक ताकते रहते। उनसे अधिक चिन्ता का कारण मेरे लिए था, लेकिन उन्हें चिन्तित देख कर मेरी चिन्ता दब गई और मुझे बड़ी व्यथा होने लगी। अपने दुख को दबाए रख कर मैं उन्हें बराबर समझाने की कोशिश करती। तरह-तरह की फूलों की माला, गुलदस्ते आदि बना-बना कर उन्हें देती। तरह-तरह से पान के बीड़े बना कर देती, तरह-तरह का भोजन बना कर खिलाती। मैं हर समय मन ही मन रोती रहती लेकिन उन्हें बना कर तरह-तरह के रसगुल्ले खिलाती। मेरे स्वामी स्वभाव से विषयी आदमी थे, सब से अधिक वे विषय को ही चाहते थे। इसीलिए एक दिन सोच-साच कर विषय-कर्म की भी चर्चा छेड़ी। मैं थी रईस हरमोहन की बेटी, ऐसी बात नहीं कि विषय-कर्म को समझती ही न थी। लेकिन इन सब प्रयत्नों का कोई फल न निकला। मेरा रोना और भी बढ़ गया।

दूसरे दिन स्नान करने के बाद जलपान कर के उन्होंने मुझे अपने पास बैठा कर कहना शुरू किया, 'क्यों, मैं जो-जो पूछूँ गा, उसका ठीक-ठीक उत्तर दो गी न ?'

मुझे तत्काल रमन बाबू की बातें याद आ गईं। मैं बोली, 'मैं जो कुछ भी कहूँ गी, बिल्कुल सच कहूँ गी। और झूठ न बोलना पड़े इसलिए शायद सभी बातों का उत्तर न दे सकूँ गी।'

'मैंने सुना है कि तुम्हारे पति जिन्दा हैं। क्या उनका नाम-धाम बता सको गी ?'

'अभी नहीं। कुछ दिन और बीत जाएँ, तब बता सकूँ गी।'

'वे इस समय कहाँ है, यह तो बता सकती हो ?'

'हाँ, वे इस समय यहीं हैं।···यहीं कलकत्ता में।'

स्वामी चौंक उठे। बोले, 'वाह ! तुम भी कलकत्ता में हो, वे भी कलकत्ता में हैं, फिर तुम उनके साथ क्यों नहीं रहतीं ?'

'उनके साथ मेरा परिचय नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यह सुन कर और चकित हो कर मेरे स्वामी ने पूछा, 'पति-पत्नी में परिचय नहीं है ? यह तो बड़ी अजीब बात है।'

'सब की बात अलग-अलग है। तुम्हारी क्या है ?'

वे झेंप गये। बोले, 'वह तो दुर्भाग्य की बात है।'

'दुर्भाग्य कहाँ नहीं है ?'

'अच्छा जाने दो। यह बताओ कि आगे चल कर उनके द्वारा तुम पर कोई दावा करने की संभावना है क्या ?'

'वह बात मेरे हाथ की है। अगर मैं उन्हें अपना असली परिचय दूँ, तब क्या हो गा, अभी नहीं कहा जा सकता।'

'तो मैं निश्चित हो कर तुम पर ही सारी बात छोड़ सकता हूँ। अभी भी सब खोल कर कहता हूँ। यह मैं जानता हूँ कि तुम बहुत बुद्धिमती हो। अब तुम क्या राय देती हो ? सो कहो।'

'कहो, सुनूँ ?'

'मुझे घर जाना हो गा।'

'जानती हूँ।'

'शायद घर जाने पर जल्दी लौट भी नहीं सकूँ गा।'

'यह भी जानती हूँ।'

'तुम्हें छोड़ कर जा भी नहीं सकता। तुम्हारे बिना मर जाऊँ गा।'

मेरे प्राण गले तक आ कर जैसे अटक गये। तो भी मैंने जोर से हँस कर कहा, 'फूट गये भाग ! भात छींटने पर कौवों की कमी नहीं रहती।'

'कोयल का दुख कौआ नहीं समझता। मैं तुम्हें ले जाऊँ गा।'

'कहाँ रखो गे ? क्या परिचय देकर रखो गे ?'

'एक भारी जुआचोरी करूँ गा। यही कल दिन भर में सोचा है। अभी तुमसे नहीं कहा।'

'यही कहें गे न कि यही इन्दिरा है। रामराय दत्त के यहाँ से खोज कर लाया हूँ।'

'ओह, सर्वनाश ! अरे तुम कौन हो ?'

स्वामी जड़ हो कर बिना हिले-डुले, दोनों आँखों की पुतलियों को ऊपर उठाए, मेरे चेहरे को एकटक निहारते रहे। मैंने ही पूछा, 'क्यों, क्या हो गया ?'

'तुमने इन्दिरा का नाम कैसे जाना ? या मेरे मन की इतनी गुप्त बात भी कैसे जान गईं ? तुम कोई मायाविनी तो नहीं हो ?'

'सो तो बाद में जानो गे, जब मेरा परिचय जानो गे। इस समय तो उलटे मैं ही तुम्हें जिरह करूँ गी। ठीक-ठीक जवाब देना।'

'कहो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उस दिन तो तुमने मुझसे कहा था कि यदि तुम्हारी स्त्री मिल भी जाय गी तो भी तुम उसे ग्रहण नहीं करो गे। उसे डाकू उठा ले गये हैं, उसे स्वीकार करने से तुम्हारी जाति चली जाय गी। फिर मुझे इन्दिरा बना कर घर ले जाने में वह डर नहीं है क्या ?'

'नहीं, अब वह डर नहीं है। और दूसरे बहुत से डर थे। तब मेरी जान पर इतनी नहीं आ बनी थी। अब तो मेरे प्राण ही जा रहे हैं। अब बताओ, जाति बड़ी है या प्राण ? और उसमें भी इतना संकट नहीं है। ऐसी बात तो आज तक किसी ने नहीं कही कि इन्दिरा जाति से गिर चुकी है। कालीदीघी में जिन्होंने डाका डाला था, वे सब के सब पकड़े जा चुके हैं। उन्होंने स्वीकार किया है। स्वीकार किया है कि उन्होंने इन्दिरा के सिर्फ गहने-कपड़े छीन कर उसे छोड़ दिया था। हाँ, अब वह कहाँ है, या उसका क्या हुआ, वह जिन्दा है या मर गई, यह कोई नहीं जानता। उसे पाए जाने पर एक निष्कलंक वृत्तान्त आसानी से तैयार किया जा सकता है। आशा है कि रमन बाबू जो कुछ लिखेंगे, उससे उसकी पुष्टि ही हो गी। इतने पर भी अगर गाँव में कोई बात उठती है तो थोड़ा भोजन-भात देने से ही सारी झंझट छूट जाय गी। हम लोगों के पास काफी रुपये हैं। आजकल रुपयों से सब ठीक किया जा सकता है।'

'अगर इतना हो सकता है तो फिर झंझट क्या है ?'

'झंझट तुम्हें ले कर ही है। यदि कभी यह बात खुल जाय कि तुम इन्दिरा नहीं हो ?'

'तुम्हारे घर में तो मुझे कोई पहचानता नहीं। असली इन्दिरा को भी कोई नहीं पहचानता। सिर्फ छुटपन में तुम लोगों ने उसे देखा था, तब फिर कैसे पकड़ी जा सकती हूँ ?'

'कहीं कुछ दुष्ट लोग जाने हुए लोगों को विरुद्ध तैयार कर लें तो सहज में ही बात पकड़ जाय गी।'

'तो तुम मुझे सब कुछ सिखा-पढ़ा कर रखना।'

'वह तो ठीक है, लेकिन सारी बातें तो नहीं सिखाई जा सकतीं न ! सोचो कि कोई बात सिखाते समय याद न रहे और बाद में वहीं आ पड़े, तब तो सहज में ही पकड़ी जा सकती है न ? सोचो, कभी असली इन्दिरा आ ही जाय, दोनों के बीच निर्णय के समय, पहले की बातें पूछे जाने पर तुम्हीं तो पकड़ी जाओ गी।'

मैं हँस पड़ी। ऐसी स्थिति में हँसी अपने आप ही आ जाती है। इस समय भी मुझे लगा कि मेरा असली परिचय देने का समय अभी नहीं आया है। मैंने हँस कर कहा, 'लेकिन मुझे कोई ठग नहीं सकता। तुम तो मुझसे सिर्फ यही जानना चाहते थे न कि क्या मैं मायाविनी हूँ ? मैं मानवी नहीं, मायाविनी ही हूँ।'

मेरी बात सुन कर वे एक बार सिहर उठे। मैंने उन्हें बोलने का मौका न देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, 'मैं कौन हूँ, यह तो बाद में बताऊँ गी । अभी तो बस इतना ही कह सकती हूँ कि मुझे कोई ठग नहीं सकता ।'

मेरे स्वामी ठगे से रह गये । वे चतुर, बुद्धिमान और कर्मठ आदमी हैं । नहीं तो इतने थोड़े दिनों में इतना बड़ा रोजगार कर के इतना रुपया न कमा पाते । यों वे बाहर से जरा नीरस हैं—काठ की तरह, लेकिन भीतर से बड़े मीठे, बड़े मधुर, बड़े स्नेही । रमन बाबू या आजकल के लड़कों की तरह ऊँची शिक्षा तो नहीं पाई । वे देवी-देवता को भी खूब मानते थे, बहुत से देशों में घूम-घूम कर भूत, प्रेत, डाकिनी, पिशाचिनी, योगिनी, मायाविनी आदि की खूब कहानियाँ सुन रखी थीं । वे इन सब पर विश्वास भी करते थे । वे मुझ पर किस तरह मुग्ध हो गए थे, यह भी उन्हें इस समय याद पड़ा । जिसे मेरी असाधारण बुद्धि कहते थे, वह भी याद आया । जो पहले नहीं समझ सके थे, वह भी याद आया । इसलिए मेरे कहने पर कि मैं मानवी नहीं हूँ, उन्हें उस पर विश्वास हो गया । वे काफी देर तक जड़वत् बैठे रहे । फिर अपने ही बुद्धिबल से उस विश्वास को दूर कर के कहा, 'अच्छा मैं पूछता हूँ कि तुम मायाविनी कैसे हो, बताओ ।'

'पूछो ।'

'मेरी स्त्री का नाम इन्दिरा है, जानती ही हो । तो फिर उसके बाप का नाम बताओ तो ।'

'हरमोहन दत्त ।'

'उसका घर कहाँ है ?'

'महेशपुर ।'

वे फिर चौंके । पूछा, 'आखिर, तुम हो कौन ?'

'कहा तो कि बाद में बताऊँ गी । पर मानवी नहीं हूँ ।'

'तुमने कहा था कि तुम्हारे पिता का घर कालीदीघी में है । कालीदीघी के लोग तो यह सब सहज में ही जान सकते हैं । अच्छा, अब बताओ कि हरमोहन दत्त के घर का सदर दरवाजा किस तरफ है ?'

'दक्षिण तरफ । एक बड़े फाटक के दोनों ओर दो सिंहिनियाँ हैं ।'

'उनके कितने लड़के हैं ?'

'सिर्फ एक ।'

'नाम क्या है ?'

'बसन्त कुमार ।'

'उनके बहनें कितनी हैं ?'

'आप के विवाह के समय दो थीं ।

'उनके नाम ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इन्दिरा और कामिनी।'

'उनके घर के पास कोई पोखर भी है ?'

'हाँ, है। नाम है देवीजी। उसमें बहुत कमल खिलते हैं।'

'हाँ, यह तो देखा था। तब तुम महेशपुर में थीं ? इसमें कोई विशेष बात नहीं। जब वहाँ थीं तो देखा ही होगा सब। और कोई खास बात बताओ तो देखूँ। इन्दिरा के विवाह में कन्या-दान कहाँ हुआ था ?'

'पूजावाली दालान के उत्तर-पश्चिम कोने में।'

'किसने किया था कन्यादान ?'

'इन्दिरा के चाचा कृष्णमोहन दत्त ने।'

'स्त्री-आचार के समय एक ने मेरा कान ऐंठ दिया था। उसका नाम मुझे मालूम है। तुम बता सको तो जानूँ।'

'बिन्दु ठकुरानी। बड़ी-बड़ी आँखें, लाल-लाल ओंठ, नाक में बड़ी सी नथ।'

'ठीक ! लगता है कि तुम विवाह के समय वहाँ पर थीं। उनके परिवार को तो जानती हो न ?'

'परिवार में नौकरानी या रसोईदारिन की लड़की का ज्यादा जानना संभव भी नहीं है। फिर भी ऐसी दो एक बातें पूछो न ?'

'अच्छा बताओ, इन्दिरा का विवाह कब हुआ था।'

'बैसाख महीने की २७ तारीख को, शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी थी।'

उन्होंने चुप लगा कर सोचा। फिर बोले, 'मुझसे वायदा करो। मैं दो एक बातें और पूछूँगा।'

'वायदा किया। पूछो।'

'सोने के कमरे से सबों के उठ कर जाने के बाद, मैंने इन्दिरा से एकान्त में एक बात पूछी थी, उसने जवाब भी दिया था, वह क्या बात थी ?'

अब उत्तर देने में थोड़ी देरी लगी। कारण कि उस बात को याद कर के मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैं अपने को सम्हाल रही थी। इस बीच वे बोल उठे, 'लगता है इस बार ठगी गई हो। तब तो बच गया। तुम मायाविनी नहीं हो। मानवी हो।'

मैंने आँखों को सुखा कर कहा, 'तुमने इन्दिरा से पूछा था, 'आज तुम्हारे साथ मेरा क्या सम्बन्ध हुआ, बताओ तो।' तब इन्दिरा ने कहा था, 'आज से तुम मेरे देवता हुए, मैं तुम्हारी दासी हुई।' यह तो हुआ एक प्रश्न। अब दूसरा बोलो।'

'और पूछते अब डर लगता है। लगता है कि मेरी बुद्धि ही गुम हो गई है। अच्छा बताओ, फूल-शय्या के दिन इन्दिरा ने खिलवाड़ करते हुए मुझे गालियाँ दी थीं, मैंने भी उसे सजा दी थी। वे क्या बातें थीं, बताओ तो देखूँ।'

'तुमने इन्दिरा का एक हाथ पकड़ कर और दूसरा हाथ कन्धे पर रख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछा था, 'इन्दिरा, बताओ तो मैं तुम्हारा कौन हूँ ?' इस पर इन्दिरा ने कहा था, 'सुनती हूँ कि तुम मेरी ननद के पति हो।' तब तुमने सजा देने को इन्दिरा के गाल पर चपत लगाई थी, फिर जब वह रुआँसी हो गई थी तब तुमने उसका मुँह चूमा था।' कहते-कहते मेरा सारा शरीर एक अजीब आनन्द में डूब गया था। वही तो मेरे जीवन में प्रथम चुम्बन था। फिर बहुत दिनों बाद उस दिन सुभाषिणी के साथ हुई चुम्बन-वर्षा। इसके बीच में घोर सूखा पड़ा रहा। हृदय भी सूख कर धरती की तरह ही फट गया था।

यही सब बातें मैं सोच रही थी। तभी देखा कि स्वामी ने तकिए पर सिर रख कर आँखें मूँद लीं।

मैंने पूछा, 'और कुछ नहीं पूछो गे क्या ?'

'नहीं। या तो तुम्हीं इन्दिरा हो, नहीं तो मायाविनी।'

| १९ |

विद्याधरी

मुझे लगा कि अब मैं अनायास ही अपना असली परिचय दे सकती हूँ। मेरे अपने पति के मुँह से मेरा परिचय प्रकट हो चुका है। लेकिन जब तक तनिक भी संदेह रहे गा, परिचय नहीं दूँ गी, यही निश्चय किया था, इसी से कहा, 'सुनो, अब अपना परिचय देती हूँ। कामरूप में मेरा स्थान है। मायाशक्ति के महामन्दिर में मैं उन्हीं के पास रहती हूँ। लोग हमें डाकिनी कहते हैं, लेकिन हम लोग हैं—विद्याधरी। मुझसे मायाभाया के आगे कोई अपराध हो गया था। इसीलिए शापग्रस्त हो कर यह स्त्री-रूप पाया है। रसोईदारिन का काम और यह कुलटा-वृत्ति भी उसी शाप के कारण अपनानी पड़ी। इसी से यह सब भाग्य में जुड़ गया। अब मेरे शाप-मुक्त होने का समय आ गया है। मैंने जब स्तुति कर के जगमाता को प्रसन्न किया था तब उन्होंने आज्ञा दी थी कि महाभैरवी के दर्शन-मात्र से मेरी मुक्ति होगी।'

'वे कहाँ हैं ?'

'महाभैरवी का मंदिर महेशपुर में हैं। तुम्हारे ससुर के घर के उत्तर में। वह उन्हीं लोगों की ठाकुरबाड़ी है। बाड़ी के बाहर, खिड़की के रास्ते लोग आते-जाते हैं। चलो न, महेशपुर चलूँ।'

'मेरा ख्याल है कि तुम मेरी इन्दिरा ही हो गी। कुमुदिनी ही अगर इन्दिरा सिद्ध हो जाय तो फिर कितना सुख है ! फिर मैं कितना सुखी हो जाऊँगा !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जो हो, महेशपुर जाने पर सब झंझट मिट जाय गी।'

'तो चलो कल ही यहाँ से चल दें। मैं तुम्हें कालीदीघी पार करा कर महेशपुर भेज कर फिर सीधे अपने घर चला जाऊँगा। बस, हाथ जोड़ कर तुमसे यही भीख माँगता हूँ कि तुम चाहे इन्दिरा हो या कुमुदिनी और चाहे विद्याधरी, मुझे छोड़ना भर मत।'

'नहीं। शाप-मुक्त होने पर भी देवी-कृपा से फिर तुम्हें पा सकूँ गी। तुम मुझे प्राणों से भी बढ़ कर प्रिय हो।'

'यह तो डाकिनी जैसी बात नहीं है।' कह कर वे उठे और बैठक में चले गये। कोई आ गया था। कोई क्या, रमन बाबू आये थे। मेरे स्वामी के साथ आ कर रमन बाबू मुझे पुलिन्दा दे गये। बोले, 'सुभाषिणी से क्या कहूँ गा ?'

'कहिए गा कि कल मैं महेशपुर जाऊँगी। जाते ही शाप-मुक्त होऊँ गी।'

मेरे स्वामी बोले, 'आप लोग यह सब जानते हैं या नहीं ?'

'मैं सब नहीं जानता। मेरी स्त्री सुभाषिणी सब जानती है।'

बाहर आ कर मेरे स्वामी ने रमन बाबू से पूछा, 'आप डाकिनी, योगिनी, विद्याधरी आदि के बारे में विश्वास करते हैं ?'

रमन बाबू एक बारगी ही सब समझ गये। बोले, 'करता हूँ। सुभाषिणी कहती है कि कुमुदिनी शाप-ग्रस्त विद्याधरी है।'

'कुमुदिनी या इन्दिरा, जरा अपनी स्त्री से अच्छी तरह पूछ देखिए गा।'

फिर रमन बाबू और नहीं रुके। हँसते हुए चले गये।

|२०|

इन्दिरा

उस दिन की बातचीत के अनुसार हम दोनों निश्चित समय से कलकत्ता से विदा हुए। वे मेरे साथ कालीदीघी नामक उसी अभागी दीघी तक आए। दीघी पार करा कर वे अपने घर की ओर चले गये।

साथ के लोगों ने मुझे महेशपुर तक पहुँचाया। गाँव के बाहर ही मैंने सिपाहियों और कहारों को रुक जाने को कहा और फिर अकेले पैदल ही गाँव में घुसी पिता का घर सामने दिखा तो एक निर्जन स्थान पर बैठ कर मैं खूब रोई। जब सामने जा कर पिताजी को देख कर प्रणाम किया तो मुझे पहचान कर वे प्रसन्नता से बेबस हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं इतने दिनों कहाँ रही, कैसी रही, इस संबंध में किसी से कोई बात न की। माता-पिता के पूछने पर भी कह दिया कि यह सब बातें कभी बाद में बताऊँगी।

फिर बाद में अवसर पा कर कुछ मोटी-मोटी बातें उन्हें बता दीं पर पूरी बात नहीं कही। इतना समझा दिया कि इधर के दिनों में मैं अपने स्वामी के ही पास थी। उन्हीं के पास से आ भी रही हूँ। वे भी एक दो दिन बाद यहाँ आवेंगे। लेकिन सब बातें, कुछ तोड़ कर, कुछ चुरा कर कामिनी से बताईं। कामिनी मुझसे सिर्फ दो वर्ष छोटी है। मजाक करना उसे अच्छा लगता है। उसने कहा, 'दीदी! जब जीजा इतने भारी गोबर-गणेश हैं तब उनके साथ एक तमाशा क्यों न किया जाय?'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'

फिर हम दोनों बहनों ने राय की। सबों को सिखा-पढ़ा कर ठीक किया। माँ बाप को भी सिखाना पड़ा। समझाया कि दामाद के सामने यह बात प्रकट न करें कि इन्दिरा लौट आई हैं।

दो दिनों बाद दामाद आये। माता-पिता ने उनका खूब आदर-सत्कार किया। मैं आ गई हूँ, यह बात भीतर-बाहर वे किसी के मुँह से न सुन सके। खुद भी संकोच वश किसी से पूछ न सके। इसीलिए जब वे घर के भीतर जलपान करने आए तब भी वे काफी उदास थे।

जलपान के समय भी मैं उन्हें न दिखी। कामिनी और जाति की तीन-चार अन्य बहनें उनके पास बैठीं। उस समय साँझ बीत चुकी थी। कामिनी उनसे बहुत सी और तरह-तरह की बातें पूछती रही। वे भी मशीन की तरह जवाब देते रहे। मैं आड़ में छिपी खड़ी सब देख सुन रही थी। आखिर में कोई सहारा न पा उन्होंने कामिनी से पूछा, 'तुम्हारी दीदी कहाँ हैं?'

कामिनी ने गहरी निःश्वास छोड़ कर कह, 'कोई क्या जाने कि कहाँ हैं? कालीदीघी में वह जो सर्वनाशी काण्ड हुआ उसके बाद तो किसी को कुछ भी नहीं मालूम हो सका।'

उनका चेहरा लम्बा सा लटक आया, कुछ बात न बोल सके। कुमुदिनी को भी खो दिया, यही सोचा होगा, क्यों कि उनकी आँखों से आँसू बहने लगे थे। फिर उन्होंने सम्हल कर पूछा, 'कुमुदिनी नाम की कोई स्त्री आई थी या नहीं?'

'कौन है कुमुदिनी? हम लोग तो नहीं जानते। एक स्त्री परसों पालकी पर चढ़ कर जरूर आई थी। बिना कहीं रुके सीधे वह महा-भैरवी के मंदिर में गई, देवी को प्रणाम किया। तभी एक आश्चर्य की बात हो गई। सहसा बादलों का अंधेरा छा गया। वर्षा की भी झड़ी लग गई। ठीक उसी समय वह स्त्री, हाथ में त्रिशूल लिए, उड़ती हुई आकाश में चली गई।'

यह सुन कर मेरे स्वामी ने खाना बन्द कर दिया। उठ कर हाथ धोया। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी देर तक एकान्त में माथे पर हाथ धरे बैठे रहे। बड़ी देर बाद बोले, 'जहाँ से कुमुदिनी अन्तर्धान हुई है, वह जगह क्या देख नहीं सकता ?'

कामिनी बोली, 'क्यों नहीं देख सकते ? अंधेरा बढ़ गया है। रोशनी ले आती हूँ।'

तब कामिनी ने मुझे इशारा किया। मतलब था—पहले तू जा, फिर बाद मैं रोशनी के साथ उपेन्द्र बाबू को ले कर आऊँ गी।'

मैं उन लोगों के पहले ही जा कर मंदिर के बरामदे में बैठ गई। वहीं लालटेन रख कर कामिनी मेरे स्वामी को मेरे पास लाई। वे सीधे आ कर मेरे पैरों पर गिर पड़े। बोले, 'कुमुदिनी, कुमुदिनी ! अगर आ गई हो तो अब मुझे मत छोड़ना।'

थोड़ी देर बाद कामिनी बोली, 'आ दीदी ! चली आ। यह आदमी तो कुमुदिनी को पहचानता है, तुम्हें नहीं पहचानता।'

स्वामी ने अति आतुर भाव से पूछा, 'दीदी ! कौन दीदी ?'

कामिनी ने क्रोध दिखा कर कहा, 'मेरी दीदी इन्दिरा ! कभी नाम नहीं सुना है क्या ?'

यह कह कर दुष्ट कामिनी ने लालटेन बुझा दी और हाथ पकड़ कर मुझे खींच ले आई। हम दोनों खूब दौड़ कर आ गईं। वे भी हमारे पीछे-पीछे आए, लेकिन अंधेरा था और रास्ता भी अनजान था, तभी एक चौखट से हल्के से टकरा गये। हम दोनों पास ही थीं। हम दोनों ने उनके दोनों हाथ पकड़ कर उन्हें उठाया। कामिनी ने धीरे-धीरे फुसफुसा कर कहा, 'हम लोग विद्याधरी हैं, तुम्हें बचाने के लिए साथ-साथ घूमती है।'

यह कह कर उन्हें खींचती हुए हम दोनों ने उन्हें एक प्रकार से घसीट कर कमरे में पहुँचाया। वहाँ काफी उजाला था। हम दोनों को देख कर प्रसन्न हो कर वे बोले, 'अरे वाह ! यह तो कामिनी और कुमुदिनी हैं।'

क्रोध से फुँफकारते हुए कामिनी ने कहा, 'आह ! भाग फूट गया ! क्या इसी अक्ल से इतना व्यापार करते हो ? हल क्यों नहीं चलाते ? यह कुमुदिनी नहीं है—इन्दिरा है, इन्दिरा, इन्दिरा ! तुम्हारी पत्नी, क्या पहचानते नहीं ?'

तब मेरे स्वामी ने खुशी के मारे बेहोश होते हुए मुझे गोद में उठाने के बदले, कामिनी को ही उठा लिया। वह भी कम न थी। उनके गाल पर एक चपत मार कर हँसती हुई भाग गई।

उस दिन की खुशी की बात—बातों में नहीं बता सकती। घर पर खूब हंगामा मचा। उत्सव हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी की खुशी

कालीदीधी की उस डकैती के बाद मेरे भाग्य ने जो जो मेरी गति की, उसका विस्तृत वर्णन मैंने इस समय अपने स्वामी को सुना दिया। सुभाषिणी और रमन बाबू ने जिस प्रकार जाल रच कर उन्हें कलकत्ता बुलाया, वह सब भी बताया। वे थोड़ा नाराज भी हुए। बोले, 'भला मुझे इतना नचाने की क्या जरूरत थी ?' तब मैंने बताया कि क्या जरूरत थी। वे सुन कर संतुष्ट हुए, लेकिन कामिनी किसी तरह भी संतुष्ट नहीं हुई। बोली, 'तुम्हें कोल्हू के चारों ओर नहीं घुमाया, वैसे ही छोड़ दिया, यही भर दीदी का दोष है। अब फिर शान दिखाने लगे ? जब हम लोगों के आलता रंगे श्री चरणों से अलग पुरुष की कोई गति नहीं, तो फिर इतनी शान किस बात की ?'

इस बार मेरे स्वामी ने भी उत्तर दिया, 'लेकिन तब पहचान नहीं सका था। और तुम लोगों को पहचाना जा सकता है क्या ?'

कामिनी उसी तरह फुंफकारती हुई बोली, 'तुम पहचानोगे, यह तो विधाता ने तुम्हारे माथे पर लिखा ही नहीं। रथ-यात्रा के समय क्या सुना नहीं ? कहते हैं—गाय ने कहा, 'कृष्ण, तुम्हें भला कौन पहचाने ? हम तो सिर्फ यमुना किनारे की हरी-हरी घास को पहचानती हैं। तुम्हारी बाँसुरी की आवाज सुन कर तुम्हारे चरण-चिह्न खोजती हैं। उसमें जो ध्वज, वज्र, अंकुश के चिह्न हैं, उन्हें भला हम पशु-जाति क्या पहचानें ?'

यह प्रवचन सुन कर मैं किसी तरह भी अपनी हँसी न रोक सकी। मेरे स्वामी ने कामिनी से कहा, 'जा जा, और अधिक मत जला ! देवता का उत्सव मनाया है, उसके बदले में यह पान का बीड़ा ले जा।'

कामिनी ने मुँह बना कर कहा, 'अरे दीदी ! जीजा के पास बुद्धि भी है, इस समय तो यही देख रही हूँ।'

'क्या हुआ ?'

'बाबू ने पनडब्बा रख कर पान का बीड़ा दिया है, क्या यह बुद्धि का काम नहीं है ? तब तुम एक काम करना, बीच-बीच में अपने पैर पर हाथ रखने देना, ऐसा करने से हाथ बढ़ जायेंगे।'

'मैं क्या उन्हें अपने पैरों पर हाथ रखने दे सकती हूँ ? वे है मेरे पतिदेव, स्वामी !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'देव कब रहे ? पति अगर देवता होता है, तब इतने दिन तेरे पास उपदेवता क्यों बने रहे ?'

'देवता तो तब हुए, जब उनकी विद्याधरी चली गई है।'

'विद्या को पकड़ने जा कर भी नहीं पकड़ सके। सो देखो जीजा, तुम्हारे पास जो विद्या है, उसके साथ धर-पकड़ न करना ही ठीक होगा। वह विद्या ही बड़ी विद्या है जो पकड़ में न आवे।'

'कामिनी ! तू बहुत बोलने लगी है। आखिर में चोरी-चमारी भी इन पर मढ़ रही है ?'

'क्या यह भी मेरा ही दोष है ? जब ये कमसरियट में काम करते थे तब चोरी तो की ही थी। और चमारी—जब रसद जुटाते हैं, तब चमारी भी करते हैं।'

मेरे स्वामी ने कहा है, 'जो चाहे कहो। तुम बच्ची हो। अमृतं बालभाषितम्।'

कामिनी बोली, 'ठीक ही है। तुम जब विद्याधरी शासितम्, तब तुम्हारी बुद्धि नाशितम्। मैं अब चलितम्, माँ पुकारितम्।'

हाँ, सचमुच माँ पुकार रही थीं।

कामिनी जल्दी ही माँ के पास से वापस आ कर बोली, 'जानते हो, माँ क्यों पुकारितम् ? तुम्हें दो दिन और रुकितम्। अगर दो दिन नहीं रुकितम्, तब जबरदस्ती राखितम्।'

हम दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा।

कामिनी फिर बोली, 'क्यों इस तरह ताकितम् ?'

स्वामी ने कहा, 'सोचतम्।'

कामिनी बोली, 'घर जाने पर सोचतम्। अभी दो दिन यहीं रुकतम्। फिर दावतम्, हासितम्, खुशितम्, खेलितम्, घूमितम्, झूलितम्, नाचितम्, गायितम्।'

स्वामी ने पूछा, 'क्यों कामिनी, तू नाचेगी ?'

'धत्, मैं क्यों नाचूँ। तुम्हारे लिए जरूर एक घुँघरू खरीद कर रखा है। तुम ही नाचना।'

'मैं तो यहाँ आने के पहले काफी नाच चुका हूँ। अब और कितना नाचूँगा ? अब तो तुम्हीं नाचो गी।'

'अच्छा नाचूँ, तब तो रहो गे न ?'

'हाँ, तब रहूँगा।'

मेरे माता-पिता के अनुरोध पर मेरे स्वामी रुकने को राजी हो गये। वह दिन भी बड़े मजे में बीता। शाम के बाद झुँड के झुँड गाँव की लड़कियाँ आईं और मेरे स्वामी के साथ गप्प करने बैठीं। उस घर के एक कोने में मजलिस जुटी।

कितनी ही लड़कियाँ आईं। कितने कर्णफूल, झुमके, इयरिंग बिजली की भाँति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चमकीं। पान से लाल ओठों के पीछे कितनी ही दंतपंक्तियाँ चमकीं। रुन-झुन करती कितनी ही करधनियों की आवाज से भौंरे गूँजे। —मेरे स्वामी यह सुन्दरी सेना देख कर भयभीत हो उठे। इस भयंकर रणभूमि में उन्होंने रक्षा के लिए मुझे इशारे से बुलाया। लेकिन मैंने सिख-सेनापति की तरह विश्वासघात किया। इस युद्ध में उनकी सहायता नहीं की।

ऐसी मजलिसों में बहुत सी निर्लज्ज बातें भी स्वाभाविक रूप से हो जाती हैं। इसीलिये मैं और कामिनी वहाँ नहीं गईं। बाहर ही रहीं। बीच-बीच में छिप कर उधर झाँक लेती थीं।

एक बार देखा कि पैंतालिस साल की गाँव की यमुना ठकुरानी मजलिस की सभापत्नी बनी जम कर बैठी हैं। उनका रंग, खूब काला, आँखें भी छोटी-छोटी, होंठ मोटे और रसदार। कपड़ों-गहनों की बहार, आलता की बहार, सिर पर खुले बालों की बहार। उनके शरीर की लम्बाई-चौड़ाई देख कर मेरे पति ने व्यंग्य में उन्हें नदी-रूपी महिषी कह कर रसिकता प्रकट की। मथुरा में यमुना नदी को कृष्ण की नदी-महिषी कहते हैं। लेकिन हमारी यमुना दीदी न कभी मथुरा गई थीं, न वे महिषी के माने ही जानती थीं। फिर भी मजाक किया गया है, यह समझकर क्रोधित हुईं। बदला लेने के लिये स्वामी के सामने मुझे गाय कहा।

मैंने पुकार कर पूछा, 'बहन गाय क्यों ?'

तभी कामिनी ने कुछ तीखी बात कह दी। बस, यमुना दीदी गरम हो उठीं, 'कामिनी, तू अभी छोटी सी छोकरी है। तू क्यों हाँड़ी में जबरदस्ती सिर घुसेड़ रही है ?'

'इसलिए कि और कोई तुम्हारी दवा नहीं जानता।'

तभी देखा कि पियारी ठान दीदी, जाति की वैद्य, उम्र पैंसठ साल, जिसमें पच्चीस वर्ष वैधव्य में गुजरे, अपने सभी अंगों पर गहने लाद कर राधिका बन कर आई हैं। मेरे स्वामी को लक्ष्य कर के, 'कृष्ण कहाँ है ? कृष्ण कहाँ है ? कह कर चारों ओर घूम रही हैं।

मैंने पूछा, 'किसे खोजती हो, ठान दीदी ?'

'मैं तो कृष्ण को खोजती हूँ।'

कामिनी फिर बोली, 'तो किसी ग्वाले के घर जाओ न ! यह तो कायस्थ का घर है।'

'कायस्थ के घर ही मेरे कृष्ण मिलें गे।'

कामिनी ने मुँह चिढ़ाया। ठान दीदी गालियाँ देने लगीं। उन्हें रोकने को यमुना दीदी को दिखा कर मैं बोली, 'नाराज मत हो तुम्हारे कृष्ण तो यमुना में कूद पड़े हैं। आओ तुम और हम रोएं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमुना दीदी यह व्यंग्य भी नहीं समझ सकीं। कुढ़ कर मुझसे बोलीं, 'लगता है डाकुओं के संग बहुत कुछ सीखा है ?'

मेरी हमजोली सखी रंगमयी बोल उठी, 'इसी तरह इतना ताना क्यों यमुना दीदी ?'

तभी अचानक एक शोर सुनाई पड़ा। सुना कि मेरे स्वामी किसी को डाँट रहे हैं। हम लोगों ने उधर जा कर देखा कि एक दाढ़ीवाला मुगल उस मजलिस में घुस आया है। मेरे स्वामी उसे वहाँ से चले जाने को डरा धमका रहे हैं। वह मुगल जा नहीं रहा है। तभी कामिनी ने पुकार कर कहा, 'जीजा, शरीर में दम नहीं है क्या ?'

मेरे स्वामी ने जवाब दिया, 'है क्यों नहीं ?'

'तो मुगल का गला पकड़ कर ढकेल क्यों नहीं देते ?'

तभी मुगल भागा। उसके भागते समय आगे बढ़ कर मैंने उसे पकड़ना चाहा। हाथ उसकी दाढ़ी पर पड़ा। दाढ़ी मेरे हाथ में आ गई। मैंने दाढ़ी यमुना दीदी पर फेंक दी।

सभी ठठा कर हंस पड़े।

इसी तरह दो पहर रात बीत गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

|२२|

उपसंहार

दूसरे दिन पति के साथ पालकी पर बैठ कर मैं अपने ससुराल गई। पति के साथ जा रही हूँ, यह तो अपने आप में सुख था ही, लेकिन सेवा के लिए जा रही हूँ, यह एक दूसरे ही प्रकार का महान सुख था। जिसे कभी पाया नहीं, उसे ही पाने की उम्मीद में जा रही हूँ। इस समय जो कुछ पाया था, वहीं आँचल में बाँध कर ले जा रही हूँ। एक तो कवि का काव्य, दूसरा धनी का धन। धनी का धन क्या कवि के काव्य के समान है ? जो धन कमा-कमा कर बूढ़े हो गये, वे भी ऐसी बातें नहीं कहते। वे कहते हैं कि फूल जब तक पेड़ पर खिलता है, तभी तक सुन्दर रहता है, तोड़ लेने पर उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। स्वप्न देखना जितना सुखमय होता है, क्या स्वप्न की सफलता भी उतनी ही सुखमय होती है ? जैसे आकाश सचमुच नीला नहीं है, सिर्फ हम लोग उसे नीला देखते हैं, धन वैसा ही है। धन कभी भी सुखदायी नहीं होता। सिर्फ हम लोग उसे सुखदायी समझते हैं। काव्य ही असली सुख है। क्योंकि काव्य आशा है, धन केवल भोग है। वह भी सबके भाग्य में नहीं होता। बहुत से धनी लोग तो मात्र धन के रखवार हैं।

सो मैं बड़ी खुशी से ससुराल चली। इस बार वहाँ मैं निर्विघ्न पहुँच गई।

मेरे स्वामी ने अपने माता-पिता के सामने सभी बातें खूब विस्तार से कहीं। फिर रमन बाबू का पुलिंदा खोला गया। उसमें लिखी और मेरी कही बातें पूरी तरह मिल गईं। फिर मेरे सास-ससुर संतुष्ट हो गये। गाँव-समाज के लोगों ने भी पूरा हाल सुनने के बाद कोई बात नही उठाई।

मैंने सारी बातें बताते हुए विस्तार से सुभाषिणी को पत्र लिखा। सुभाषिणी के लिए सदा ही मेरे प्राण रोते रहते। मेरे अनुरोध पर मेरे स्वामी ने हारानी के पास मेरी ओर से पाँच सौ रुपये भेज दिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सुभाषिणी का उत्तर भी जल्दी ही आ गया। उत्तर आनन्द से भरा हुआ था। सुभाषिणी ने पत्र रमन बाबू के हस्ताक्षर से लिखा था। लेकिन बातें सभी सुभाषिणी की ही थीं। यह पत्र पढ़ कर समझ में आ गया था। उसने सब के बारे में सभी प्रकार के समाचार दिए थे। उसने लिखा था—पहले तो यह सुनो कि हारानी किसी तरह भी रुपये लेने को राजी नहीं हो रही है। वह कहती है कि रुपये लेने से मेरी लालच बढ़ जाये गी। यह तो संयोग से एक अच्छा काम हो गया, लेकिन ऐसा काम बुरा तो है ही। मैं यदि लालच में पड़ कर बुरे काम के लिए ही राजी हो जाऊँ तब ?—मैंने उस मुँहजली को समझाया कि अगर तू उस दिन मेरी झाड़ू की मार न खाती तो क्या तू यह काम कभी करती ? हर बार क्या तू मेरे हाथ की झाड़ू खा सकती है ? क्या बुरे काम के समय भी मैं तुझे उसी प्रकार झाड़ू मारूँगी ? क्या तब भर पेट गालियाँ नहीं खाए गी ? तू ने अच्छा काम किया था इसीलिए यह बख्शीश मिल रही है। ले ले। इस तरह बहुत समझाने बुझाने पर वह रुपये लेने को राजी हुई है। अब उसने तरह-तरह का व्रत नियम करने का निश्चय कर लिया है। जब तक तुम्हारा यह समाचार नहीं मिला था, उसकी तो हँसी ही गायब हो गई थी। लेकिन अब वह फिर पहले की तरह हँसने लगी है और अब उसकी हँसी की लपटों से घर के सभी लोग अस्थिर हो उठे हैं।

रसोईदारिन ब्राह्मणी, सोना की माँ के बारे में सुभाषिणी ने लिखा था—जब से तुम अपने स्वामी के साथ छिप कर चली गई हो, तब से वह बुढ़िया तुम्हें बहुत भला-बुरा कहती है—मैं तो पहले से ही खूब अच्छी तरह जानती हूँ कि वह अच्छी औरत नहीं है। उसकी चाल ढाल ठीक नहीं थी। कितनी बार कहा कि तुम लोग ऐसी चरित्रहीना को घर में मत रखो। लेकिन कंगाल की बात भला कौन सुनता है ? सभी मूर्ख की तरह 'कुमुदिनी-कुमुदिनी' कह कर उसी के पीछे दीवाने थे।—ऐसी ही ऐसी बहुत सी बातें वह करती थी। उसके बाद जब उसे पता लगा कि और किसी के साथ नहीं बल्कि अपने पति के साथ ही गई हो, तुम बहुत बड़े आदमी की लड़की हो, बहुत बड़े घर की बहू हो, अब अपना घर पा गई हो, तब से वह कहने लगी है—मैं तो पहले ही कहती थी कि वह बड़े घर की बेटी है। क्या किसी छोटे घर में ऐसा स्वभाव और चरित्र देखने को भी मिलता है ? जैसा रूप है, वैसी ही मानो लक्ष्मी भी है। वह जहाँ रहे, अच्छी तरह रहे, भली और सुखी रहे ! अहा, हा, देखो बहूरानी, उससे मुझे भी कुछ भेज देने के लिए कहो।

घर की मालकिन के संबंध में सुभाषिणी ने लिखा था—तुम्हारा सब समाचार जान कर उन्होंने अपार प्रसन्नता प्रकट की। साथ ही मुझे और रमन बाबू को फटकारा भी। कहा—वह जब इतने बड़े घर की लड़की है, तब यह बात तुम लोगों ने मुझसे पहले क्यों नहीं कही ? मैं कम से कम उसे आराम से तो रखती !—फिर तुम्हारे पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की थोड़ी सी निन्दा भी की—हो गा उसका पति, पर इस तरह मेरी रसोईदारिन को ले जाना किसी तरह भी उचित नहीं था।

मालिक रामराय दत्त के सम्बन्ध में सुभाषिणी ने काफी लीपा-पोती की है। मालिक के संबंध में उसने जो लिखा वह बहुत कष्ट से पढ़ पा सकी। मालिक ने मालकिन को बनावटी क्रोध से फटकार कर कहा था, तुमने धोखे से एक अच्छी रसोईदारिन को भी हटा दिया है। मालकिन ने कहा, 'ठीक ही किया है, क्या तुम सुन्दरी को ले कर धो कर पीते ? मालिक ने कहा, इस संबंध में भला क्या कह सकता हूँ। उस काले रूप का दिन रात ध्यान नहीं किया जा सकता। मालकिन ने बस इतने ही पर-चारपाई पकड़ ली और फिर उस दिन उठ भी न सकीं। मालिक ने उनसे हँसी की है, यह बात वह अंत तक नहीं समझ सकीं।

लिखना व्यर्थ है कि ब्राह्मणी और दूसरे नौकरों को भी थोड़ा-थोड़ा भिजवा दिया है।

इसके बाद सुभाषिणी से और एक बार, केवल एक बार ही भेंट हुई। उसकी लड़की के विवाह के अवसर पर विशेष अनुरोध पर मेरे स्वामी मुझे ले कर गये थे। सुभाषिणी की लड़की को गहने दे कर सजाया। मालकिन को भी उचित उपहार दिए। जो जिसके योग्य था उसे उसी प्रकार की भेंट दी। लेकिन देखा कि मालकिन मुझ पर और मेरे स्वामी पर नाराज थीं। अब उनके लड़के का ठीक से भोजन नहीं होता था। यह बात उन्होंने मुझे कई बार सुनाई। मैंने भी थोड़ा सा बना कर रमन बाबू को खिला या।

लेकिन उसके बाद फिर कभी नहीं गई।

मालकिन और रामराय दत्त बहुत दिन हुए परलोक सिधार गये हैं। फिर भी मेरा जाना नहीं हो सका।

मैं सुभाषिणी को बिल्कुल नहीं भूली हूँ। और इस जन्म में भूल भी नहीं सकती। सुभाषिणी जैसी इस संसार में कोई भी नहीं दिखी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

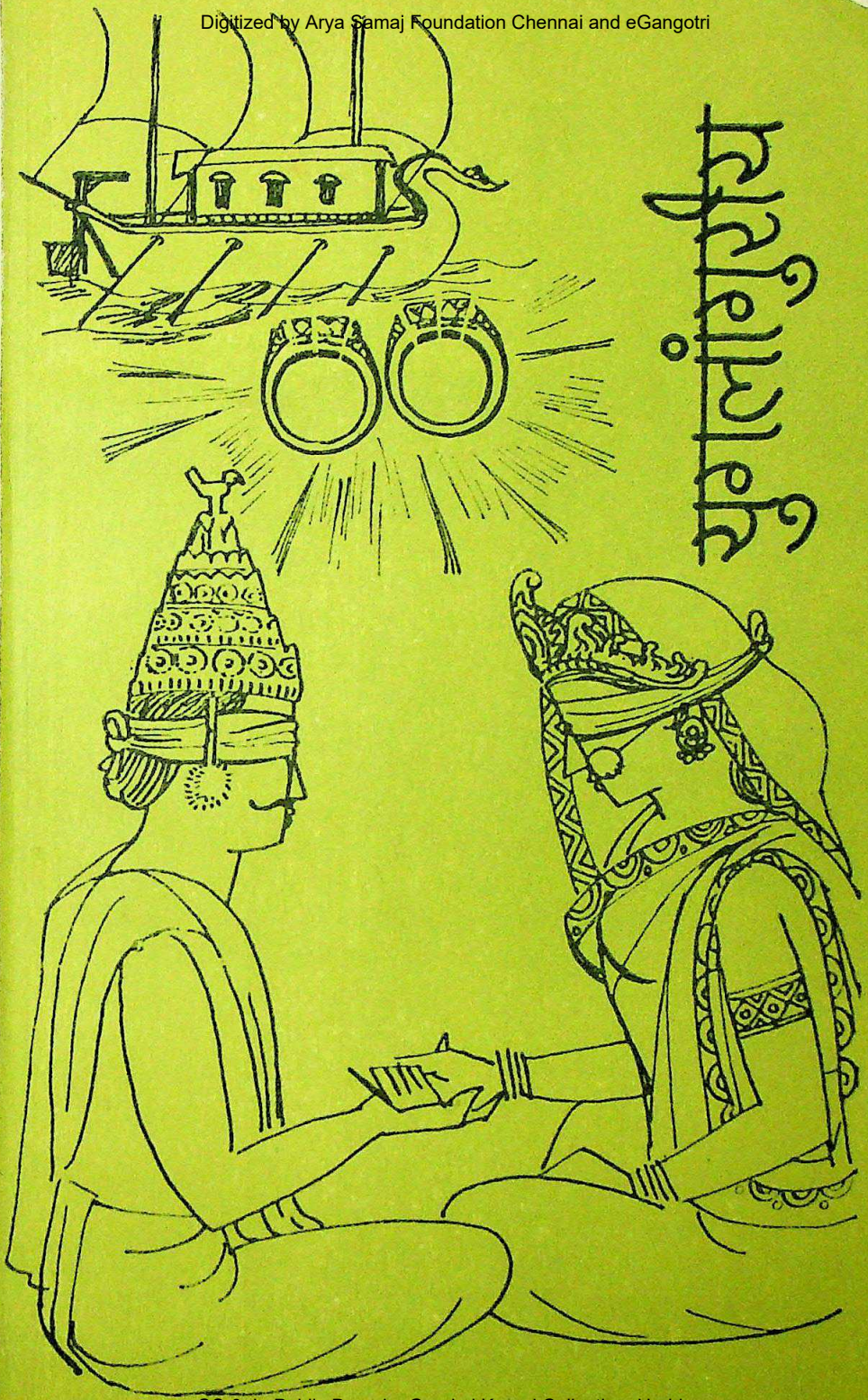

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युगलांगुरीय

□

[रचनाकाल : सन् १८७४]

□

'वंगदर्शन' में 'इन्दिरा' के प्रकाशन के एक महीने बाद ही, 'वंगदर्शन' में ही 'युगलांगुरीय' का भी प्रकाशन, एक ही अंक में हुआ था।

बंकिमचन्द्र के जीवनकाल में इस लघु-उपन्यास के पुस्तकाकार पाँच संस्करण हो चुके थे।

'युगलांगुरीय' की कथा के सम्बन्ध में बंकिमचन्द्र के जीवनीकार श्री शचीशचन्द्र ने लिखा है :

'तमलूक के राजा का एक बड़ा बाग था। उसी बाग के बगल से रूपनारायण प्रवाहित होती थी। जब बंकिमचन्द्र तमलूक में मजिस्ट्रेट थे तब एक बार ज्येष्ठ भ्राता श्यामाचरण चट्टोपाध्याय आये। और उस बाग की सजावट देख कर मुग्ध हुए।....फिर वहीं ताम्रलिप्त की घटना पर 'युगलागुरीय' की रचना हुई।'

अंग्रेजी में 'युगलांगुरीय' के एकाधिक अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। बंकिमचन्द्र के जामाता श्री राखालचन्द्र बन्ध्योपाध्याय ने The Two Rings नाम देकर एक अनुवाद अंग्रेजी में प्रकाशित किया।

काया में छोटी होने के कारण यह कहानी बंकिमचन्द्र के अन्य वृहत् उपन्यासों के सम्मुख सदा दबी रही और अन्य रचनाओं के मुकाबले कम ही प्रचलित हुई है। लेकिन कथा तथा विषय की रोचकता उनकी किसी भी कथा-कृति से दबती हुई नहीं है।

प्रेम की समवेदना का ऐसा दूसरा आख्यान न होगा।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

| १ |

बाग के लता-मण्डप के निकट दो जन खड़े थे। तब प्राचीन नगर ताम्रलिप्त के चरण धो कर अनन्त नील-समुद्र मृदु-मृदु निनाद किया करता था।

ताम्रलिप्त नगर के प्रान्तभाग में समुद्र तट पर एक विचित्र अट्टालिका थी। उसके निकट ही एक सुनिर्मित वृक्षवाटिका थी। वृक्षवाटिका के अधिकारी धनदास नाम के एक श्रेष्ठी थे। श्रेष्ठी की कन्या हिरण्मयी लता-मण्डप के निकट खड़ी एक युवक से बातचीत कर रही थी।

हिरण्मयी विवाह की आयु पार कर चुकी थी। उसने स्वामी की कामना में, ग्यारह वर्ष की उम्र से शुरू कर के पाँच साल तक लगातार, इसी समुद्र तीर वासिनी सागरेश्वरी नाम की देवी की पूजा की थी, लेकिन मनोरथ सफल न हुआ था। यौवन प्राप्त कुमारी इस युवक से अकेले में क्या बात कर रही थी, यह सब लोग जानते थे। हिरण्मयी जब चार साल की बच्ची थी, तब यह युवक आठ साल का था। इसके पिता शचीसुत श्रेष्ठी धनदास के पड़ोसी थे, इसीलिए दोनों मिल कर खेला करते थे। कभी शचीसुत के घर, कभी धनदास के घर, सदा ही दोनों साथ-साथ रहते थे। इस समय युवती की आयु सोलह और युवक की बीस वर्ष की थी, फिर भी दोनों मे वही बचपन की ही मैत्री थी। मात्र थोड़ा सा विघ्न हुआ था। यथासमय दोनों के पिताओं ने, इन दोनों युवक-युवती का परस्पर विवाह-सम्बन्ध स्थिर किया था। विवाह की तिथि तक निश्चित हो गई थी। अकस्मात हिरण्मयी के पिता ने कहा, 'मैं विवाह नहीं करूँगा।' तब से हिरण्मयी और पुरन्दर का साक्षातकार नहीं होता था। आज पुरन्दर ने बहुत विनती कर के, एक विशेष बात कहने का बहाना कर के उसे बुला भेजा था। लता-मण्डप के नीचे आ कर हिरण्मयी ने पूछा, 'मुझे क्यों बुलवाया है ? अब मैं छोटी सी बच्ची नहीं हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अब तुमसे एकान्त में और मिलना अच्छा नहीं मालूम होता। अब बुलाने पर भी मैं नहीं आऊँ गी।'

सोलह साल की लड़की कह रही है, 'अब मैं छोटी सी बच्ची नहीं हूँ।' यह बहुत मधुर वाक्य है। लेकिन उस रस का अनुभव करने वाला आदमी वहाँ नहीं था। पुरन्दर की उम्र और मन का भाव वैसा न था।

मण्डप के रूप में फैली लता से एक फूल तोड़ कर उसे नोचते-नोचते पुरन्दर ने कहा, 'मैं अब और नहीं बुलाऊँ गा। मैं दूर देश चला जा रहा हूँ। यही तुम्हें बताने के लिए आया था।'

'दूर देश ? कहाँ ?'

'सिंहल।'

'सिंहल ? सो क्यों ? सिंहल क्यों जाओ गे ?'

'क्यों जाऊँ गा ? हम लोग श्रेष्ठी हैं—व्यापार के लिए जाएँ गे।' कहते-कहते पुरन्दर की आँखें छलछला आईं।

हिरण्मयी अनमनी हो गई। कुछ बोल न पाई। अनिमेष नयनों से सामने फैली सागर की तरंगों पर सूर्य की किरणों की क्रीड़ा देखती रही। प्रातःकाल, मधुर हवा बह रही थी—मधुर हवा से उठी उत्तङ्ग तरंगों पर बाल-सूर्य की रश्मियाँ चढ़ी हुई काँप रही थीं—समुद्र के जल पर उनकी अनन्त उज्ज्वल रेखा फैली हुई थी—श्यामा के अंगों पर रजत अलंकार जैसे फेन शोभा दे रहे थे किनारे पर जलचर पक्षी श्वेत रेखा बनाए घूम रहे थे। हिरण्मयी ने सब देखा, नीला जल देखा, तरंगों पर फेन-माला देखी, सूर्य-रश्मियों की क्रीड़ा देखी,—दूर के समुद्री पोत देखे,—नीले आकाश में काले-बिन्दु-सा एक पक्षी उड़ रहा था, उसे भी देखा। अंत में जमीन पर पड़े एक सूखे फूल की ओर निगाह डालते हुए बोली, 'तुम क्यों जाओ गे ? और बार तो तुम्हारे पिता जाया करते थे।'

पुरन्दर ने कहा, 'मेरे पिता अब वृद्ध हो गए हैं। अब मेरे अर्थोपार्जन का समय आया है। मुझे पिता जी की अनुमति मिल गई है।'

हिरण्मयी ने लता मण्डप की डाल पर माथा टिका दिया। पुरन्दर ने देखा, उसका माथा सिकुड़ गया था, ओंठ फड़क रहे थे, नासारन्ध्र स्फीत हो रहे थे। देखा, हिरण्मयी रो रही थी।

पुरन्दर ने मुँह-फेर लिया। उसने भी एक बार आकाश, पृथ्वी, नगर, समुद्र सभी ओर देखा, लेकिन कुछ न दिखा। आँखों से आँसू बरबस निकल ही पड़े। पुरन्दर ने आँखें पोंछ कर कहा, 'यही बात बताने के लिए मैं आया हूँ। जिस दिन तुम्हारे पिता ने कहा था, किसी तरह भी मुझसे तुम्हारा ब्याह नहीं करें गे, उसी दिन सिंहल जाने का विचार मैंने पक्का कर लिया था। इच्छा है कि सिंहल से कभी न लौटूँ। यदि कभी तुम्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भूल सका, तभी लौटूँ गा। मैं अधिक बातें करना नहीं जानता, तुम भी अधिक बातें समझ नहीं सकती। इतने से ही समझ सको गी कि मेरे लिए समस्त संसार एक ओर और तुम एक ओर रहो तो संसार तुम्हारे तुल्य नहीं होगा।' इतना कह कर पुरन्दर ने हठात् घूम कर कदम बढ़ाते हुए एक पेड़ के एक पत्ते को नोंच लिया। अश्रुवेग के थोड़ा थमने पर, लौट आ कर फिर कहा, 'तुम मुझे प्यार करती हो, यह जानता हूँ। लेकिन जब भी हो, तुम दूसरे की ही पत्नी बनो गी। इसलिए तुम मुझे अब भुला देना। तुम्हारे साथ अब इस जन्म में भेंट न होगी।'

इतना कह कर पुरन्दर तेजी से चला गया। हिरण्मयी बैठ कर रोने लगी। फिर रुलाई थमने पर एक बार सोचा, 'मैं यदि आज ही मर जाऊँ, तब क्या पुरन्दर सिंहल जा सके गा ? मैं क्यों न गले में लता की फाँसी लगा कर मर जाऊँ, या समुद्र में क्यों न कूद जाऊँ ?' फिर सोचा, 'मैं यदि मर ही जाऊँ, तब पुरन्दर सिंहल जाय या न जाय, फिर इसमें मेरा क्या ?' यही सोच कर हिरण्मयी फिर बैठ कर रोने लगी।

|२|

क्यों धनदास ने कहा था, 'मैं पुरन्दर के साथ हिरण का विवाह नहीं करूँगा' यह कोई नहीं जानता। उन्होंने किसी से इसका कारण नहीं बताया। पूछने पर कहते, 'विशेष कारण है।' हिरण्मयी के लिए अन्य दूसरे अनेक सम्बन्ध आए, लेकिन धनदास किसी भी सम्बन्ध के लिए सहमत नहीं हुए। विवाह की चर्चा पर कान ही न देते। 'कन्या बड़ी हुई', कह कर गृहिणी तिरस्कार करतीं, लेकिन धनदास एक न सुनते। केवल कहते, 'गुरूदेव आवें, उनके आने पर ही यह बात होगी।'

पुरन्दर सिंहल चला गया। उसकी सिंहल-यात्रा के बाद भी दो साल ऐसे ही बीत गए। पुरन्दर नहीं लौटा। हिरण्मयी का कहीं सम्बन्ध न हुआ। हिरण अट्ठारह वर्ष की हो कर बगीचे के नव-पल्लवित आम के पेड़ की तरह धनदास के घर की शोभा बढ़ाने लगी।

हिरण्मयी इससे दुःखित नहीं हुई। विवाह की चर्चा चलती, पुरन्दर की याद आती, उसका खिले फूलों की माला से शोभित, काले घुँघराले बालों से घिरा हँसता हुआ चेहरा याद आता, उसका हाथी-दाँत सा सफेद कन्धा और उस पर पड़ा सुनहले फूलों वाला नीला उत्तरीय याद आता, पद्म जैसे हाथ की उँगलियों में पड़ी हीरे की अँगूठियाँ याद आतीं, हिरण्मयी रोती। पिता की आज्ञा होने पर जिससे-तिससे विवाह करना पड़ता। लेकिन वह जीते जी मरने जैसा होता। तब अपने विवाह के लिए पिता को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रयत्न न करते देख कर, प्रसन्न हो या न हो, विस्मित अवश्य होती। और कोई इतनी आयु की कन्या को अविवाहिता नहीं रखता—रहने पर भी सम्बन्ध का प्रयत्न करता है। उसके पिता उस बात पर कान तक क्यों नहीं देते ? एक दिन अकस्मात् इस सम्बन्ध में उसे कुछ पता लगा।

धनदास ने व्यापार करते हुए चीन देश की बनी एक विचित्र प्रकार की सन्दूकची पाई थी। सन्दूकची बहुत बड़ी थी—धनदास की पत्नी उसमें गहने रखती थीं। धनदास ने कुछ नए गहने बनवाकर पत्नी को उपहार-रूप में दिए। श्रेष्ठि-पत्नी ने पुराने गहने सन्दूकची समेत कन्या को दिए। गहनों को उसमें रखते-उठाते हिरण्मयी ने उसमें एक छिन्न-लिपि का आधा भाग देखा।

हिरण्मयी को पढ़ना आता था। उसमें पहले ही अपना नाम देख कर उसे कौतूहल हुआ। पढ़कर देखा कि जो आधा भाग है, उससे कोई मतलब हल नहीं होता। किसने किसे लिखा है, यह भी कुछ समझ में नहीं आया। लेकिन फिर उसे पढ़ कर हिरण्मयी को बड़ा डर लगा। वह खण्ड-पत्र इस प्रकार था।

ज्योतिषी से गणना करा कर देखा।

हिरण्मयी सोने की पुतली जैसी।

विवाह होने पर भयानक विपत्ति है।

परस्पर एक दूसरे का मुख।

यही होगा।

हिरण्मयी किसी अज्ञात विपत्ति की आशंका कर के बहुत ज्यादा डर गई। किसी से कुछ न कहा पर उस पत्र-खण्ड को उठा कर रख लिया।

| ३ |

दो साल के बाद और एक साल बीत गया। फिर भी पुरन्दर के सिंहल से आने का कोई समाचार न मिला। लेकिन हिरण्मयी के हृदय में उसकी मूर्ति पूर्ववत् उज्ज्वल बनी रही। उसने मन ही मन समझ लिया कि पुरन्दर भी उसे नहीं भूल सका है—नहीं तो इतने दिनों में लौट आता।

इस प्रकार दो और एक तीन साल बीतने पर, अकस्मात एक दिन धनदास ने कहा, 'चलो, सपरिवार काशी चलें गे। गुरूदेव के पास से उनके शिष्य आए हैं। गुरुदेव ने वहाँ आने की अनुमति दी है। वहीं हिरण्मयी का विवाह होगा। वहीं उन्होंने एक पात्र ठीक कर रखा है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनदास, पत्नी व कन्या को ले कर काशी के लिए रवाना हुए। उपयुक्त समय पर काशी पहुँचने पर, धनदास के गुरु आनन्दस्वामी ने आ कर भेंट की। एवं विवाह का दिन स्थिर कर के यथाशास्त्र उद्योग करने को कह गए।

विवाह का यथाशास्त्र उद्योग हुआ। लेकिन समारोह कुछ भी नहीं हुआ। धनदास के परिवार के व्यक्तियों को छोड़ कर कोई जान भी न पाया कि विवाह हो रहा है। केवल शास्त्रीय आचारों की मात्र रक्षा की गई।

विवाह के दिन संध्या होने पर—एक पहर रात बीतने पर लग्न थी, फिर भी घर में प्रायः जो लोग रहते थे, उनके अलावा और कोई नहीं था। कोई पड़ोसी भी नहीं आया। अब तक धनदास के सिवा कोई भी घर का अन्य व्यक्ति नहीं जानता था कि वर कौन है—वर कहाँ का है। तब भी सब लोग समझते थे कि जब आनन्दस्वामी ने विवाह का संबंध ठीक किया है, तब उन्होंने अपात्र को कभी न चुना हो गा। उन्होंने वर का परिचय क्यों नहीं स्पष्ट किया, यह वही जाने—उनके मन की बात भला कौन समझ सकता है? एक कमरे में पुरोहित कन्यादान का प्रबंध करने अकेले बैठे थे। बाहर अकेले बैठे धनदास वर की प्रतीक्षा कर रहे थे। अन्तःपुर में वधू की सज्जा कर के हिरण्मयी बैठी थी, और कहीं कोई न था। हिरण्मयी मन ही मन सोच रही थी, 'यह क्या रहस्य है! यदि पुरन्दर के साथ विवाह न हुआ, तब चाहे जिसके साथ विवाह हो, वह मेरा पति नहीं हो सकेगा।'

इसी समय धनदास कन्या को बुलाने आए। लेकिन उसे विवाह-स्थल पर ले जाने के पहले, कपड़े से उसकी दोनों आँखें कस कर बाँध दीं। हिरण्मयी ने कहा, 'यह क्या पिता जी?' धनदास ने कहा, 'गुरूदेव की आज्ञा। तुम मेरे आदेशानुसार काम करो। मन ही मन मंत्र कहती जाना।' सुन कर हिरण्मयी ने फिर कोई बात न कही। धनदास दृष्टिहीना कन्या का हाथ पकड़ कर विवाह-स्थल में ले गए।

हिरण्मयी वहाँ पहुँच कर यदि कुछ देख पाती तो देखती कि वर के भी उसी की तरह आँखों पर पट्टी बँधी है। इसी तरह विवाह हुआ। उस स्थान पर गुरु, पुरोहित और कन्या के पिता के अलावा और कोई न था। वर-कन्या में किसी ने किसी को नहीं देखा। शुभ-दृष्टि नहीं हुई।

विवाह सम्पन्न होने के बाद आनन्दस्वामी ने वर-कन्या से कहा, 'तुम लोगों का विवाह हो गया। लेकिन तुम लोगों ने एक दूसरे को नहीं देखा। कन्या का कुवाँरापन दूर करना ही इस विवाह का उद्देश्य है। इस जन्म में तुम लोगों का परस्पर कभी साक्षात्कार हो गा कि नहीं, यह नहीं कह सकता। अगर हो भी तो कोई किसी को पहचान न सके गा। पहचानने का हम एक उपाय किए देते हैं। मेरे हाथ में दो अँगूठियाँ हैं। दोनों बिल्कुल एक जैसी हैं। यह अँगूठियाँ जिस पत्थर की बनी हैं, वह नहीं मिलता और अँगूठियों के भीतरी भाग में एक मोर अंकित है। यह मैंने एक वर को और एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्या को दी। ऐसी अंगूठी और किसी के पास नहीं। विशेष कर इस मोर के चित्र की नकल भी नहीं की जा सकती। इसे मैंने अपने हाथ से खोद कर बनाया है। यदि कन्या कभी किसी पुरुष की उँगली में ऐसी अँगूठी देखे तो जान ले कि वही पुरुष उसका पति है। यदि वर किसी स्त्री की उँगली में ऐसी अँगूठी देखे तो जान ले कि वह स्त्री उसकी पत्नी है। तुम कोई यह अंगूठी न खोना, न ही किसी को देना, पेट के लाले पड़ें तब भी न बेचना। लेकिन यह भी आज्ञा दे रहे हैं कि आज से पाँच साल तक यह अँगूठी कदापि न पहनना। आज आसाढ मास की शुक्ला पंचमी, रात के ग्यारह दण्ड बीते हैं, इसके बाद पाँचवें आसाढ की शुक्ला पंचमी, रात को ग्यारह दण्ड तक अँगूठी पहनने की मनाही है। मेरे निषेध की अवहेलना करने पर बड़ा भारी अमंगल होगा।'

यह कह कर आनन्दस्वामी विदा हो गए। धनदास ने कन्या की आँखों की पट्टी खोल दी। हिरण्मयी ने आँखें खोल कर देखा, घर में केवल पिता और पुरोहित हैं—उसके पति नहीं। विवाह की वह रात उसने अकेली ही काटी।

| ४ |

विवाह के बाद स्त्री व पुत्री को ले कर धनदास अपने देश वापस लौट आये। और भी चार वर्ष गुज़र गए। पुरन्दर वापस नहीं लौटा। हिरण्मयी के लिए अब उसके लौटने से क्या और न लौटने से क्या ?

इस तरह सात साल बीतने पर भी पुरन्दर नहीं लौटा। यह सोच कर हिरण्मयी दुखी हुई। मन में सोचा, 'वह आज भी मुझे नहीं भूल सका, इसीलिए नहीं आया, यह बात कदाचित सच नहीं। वह जीता भी है या नहीं यह संशयात्मक है। उसे देखने की मैं कामना नहीं करती, अब मैं दूसरे की पत्नी हूँ, लेकिन मेरे बाल्यकाल का साथी जीवित रहे, यह कामना मैं क्यों न करूँ ?'

धनदास में किसी कारण से चिन्ता के भाव प्रकट होने लगे, धीरे-धीरे चिन्ता बढ़ती गई और अन्त में कठिन रोग में बदल गई। उसी में उनकी मृत्यु हो गई। धनदास की पत्नी सती हो गई। हिरण्मयी का और कोई न था, इसलिए हिरण्मयी माँ के पाँव पकड़ कर बहुत रोई और कहा—तुम मत मरो। लेकिन श्रेष्ठी-पत्नी ने एक न सुनी। और तब हिरण्मयी धरती पर अकेली रह गई।

मृत्यु के समय हिरण्मयी की माता ने पुत्री को समझाया, 'बेटा, तुम्हें किस बात की चिन्ता है ? तुम्हारे एक पति अवश्य हैं। नियमित समय बीतने के बाद उनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तुम्हारी भेंट होगी। न हो तो, तुम छोटी सी बच्ची नहीं हो। विशेषकर पृथ्वी पर जो प्रधान वस्तु—धन है—वह तुम्हारे पास अतुल परिमाण में है।'

लेकिन यह आशा भी विफल हुई—धनदास की मृत्यु के बाद देखा गया कि वे कुछ भी नहीं छोड़ गए हैं। गहने, अट्टालिका और गृहस्थी की चीजें छोड़ कर और कुछ नहीं है। पूछ ताछ करने पर हिरण्मयी ने जाना कि धनदास कई वर्षों से व्यापार में घाटा उठाते रहे हैं। इस सबंध में वे किसी से कुछ न कह कर इस संकट से उबरने का ही प्रयत्न करते रहे। यही उनकी चिन्ता का कारण था। अन्त में यही संकट असाध्य हो गया। धनदास मन ही मन क्लेश से पीड़ित हो कर परलोक वासी हो गए।

यह सब बातें जान-सुन कर दूसरे-दूसरे श्रेष्ठी-गण आ-आ कर हिरण्मयी से बोले, 'तुम्हारे पिता मेरे ऋणी होकर मरे हैं। तुम यह ऋण चुकाओ।' हिरण्मयी ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि उन लोगों का कहना सत्य है। तब हिरण्मयी ने अपनी सब सम्पति बेच कर उनके ऋण को चुकता किया। रहने का घर भी बेच दिया।

अब हिरण्मयी अन्न-वस्त्र के लिए भी परेशान हो कर नगर के एक छोर पर एक कुटिया में बिल्कुल अकेली रहने लगी। उसके एकमात्र परम हितैषी थे आनन्दस्वामी। किन्तु वे इस समय दूर देश में थे। हिरण्मयी के पास इस समय एक भी ऐसा आदमी न था जिसे वह आनन्दस्वामी के पास भेजती।

६

हिरण्मयी है युवती और सुन्दरी—बिल्कुल अकेली। एक सूने घर में रात को सोना उचित न था। डर भी है—कलंक भी है। अमला नाम की एक ग्वालिन हिरण्मयी की पड़ोसिन थी। वह विधवा—उसके एक किशोर पुत्र और कई पुत्रियाँ थीं। उसकी जवानी की उम्र बीत गई थी। उसकी सच्चरित्रा के रूप में ख्याति थी। हिरण्मयी रात को आ कर उसी के घर में सोती थी।

एक दिन हिरण्मयी अमला के घर जब सोने गई तब अमला ने उससे कहा, 'कुछ खबर सुनी है, पुरन्दर श्रेष्ठी आठ वर्षों बाद नगर में वापस आया है।' सुनकर हिरण्मयी ने चेहरा घुमा लिया—उसकी आँखों के आँसू अमला न देख सकी। पृथ्वी पर से हिरण्मयी का अंतिम संबंध भी धूमिल हो गया। पुरन्दर उसे अवश्य ही भूल गया। नहीं तो वापस न आता। पुरन्दर इस समय उसे याद रखे या भूल जाय, इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसे लाभ या हानि क्या है ? फिर भी जिसके स्नेह की बात सोच कर इतनी उम्र कटी है, वही भूल गया है, यह सोच कर हिरण्मयी के मन को कष्ट हुआ। हिरण्मयी ने एक बार सोचा—'भूला नहीं, मेरे ही कारण कितने समय तक विदेश में पड़ा रहता ? विशेषकर जब उसके पिता की मृत्यु हो चुकी है, अपने देश आए बिना चले गा भी कैसे ?' फिर सोचा, 'इसमें सन्देह नहीं कि मैं कुलटा हूँ। नहीं तो पुरन्दर की बात ही क्यों सोचती ?'

अमला ने कहा, 'पुरन्दर की क्या तुम्हें याद नहीं आती ? पुरन्दर, शचीसुत श्रेष्ठी का बेटा।'

'जानती हूँ।'

'वही वापस आया है। कितनी नावें भर कर धन लाया है, गिन कर कोई नहीं बता सकता। इतना धन कि कहते हैं कि ताम्रलिप्त में कभी किसी ने नहीं देखा।

हिरण्मयी के हृदय का रक्त तेजी से बहने लगा। अपनी दरिद्रावस्था उसे याद आई, पहले का सम्बन्ध भी याद आया। दरिद्रता की जलन बड़ी तेज होती है। इस दरिद्रता के बदले यही अतुल धनराशि हिरण्मयी की हो सकती थी, यह सोच कर रक्त का बहाव तेज न हो, ऐसी स्त्री शायद ही कोई हो। हिरण्मयी थोड़ी देर तक अनमनी सी रही फिर दूसरा प्रसंग उसने उठाया। अन्त में सोते समय उसने पूछा, 'अमले, उस श्रेष्ठि-पुत्र का विवाह हो गया है ?'

अमला बोली, 'नहीं, विवाह नहीं हुआ है।'

हिरण्मयी की समस्त इन्द्रियाँ अवश हो गईं। उस रात फिर और कोई बात नहीं हुई।

| ६ |

फिर एक दिन अमला ने हिरण्मयी के पास आकर हँस कर मधुर-भर्त्सना करते हुए कहा, 'हाँ तो बेटी, तुम्हारा क्या यही धर्म है ?'

हिरण्मयी बोली, 'क्या किया है मैंने ?'

'मुझसे भी इतने दिनों नहीं बताया ?'

'क्या नहीं बताया ?'

'पुरन्दर श्रेष्ठी से तुम्हारी इतनी आत्मीयता !'

हिरण्मयी लजा गई, बोली, 'वह तो बाल्यकाल में हमारा पड़ोसी था—इसमें भला बताती क्या ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सिर्फ पड़ोसी ? देख न, क्या लाई हूँ !'

इतना कह कर अमला ने एक शृंगारदान निकाला। उसे खोल कर उसके भीतर से अपूर्व दर्शनीय, अत्यन्त चमकदार, खूब कीमती हीरे का हार निकाल कर हिरण्मयी को दिखाया। श्रेष्ठिकन्या थी वह, हीरा पहचानती थी—विस्मित हो कर बोली, 'यह तो बहुत कीमती है—कहाँ पाया इसे ?'

'यह तुम्हारे लिए पुरन्दर ने भेजा है। तुम मेरे घर में हो, सुन कर मुझे बुला भेजा और यह तुम्हें देने को कहा।'

हिरण्मयी ने सोच कर देखा, यह हार स्वीकार कर ले तो चिरकाल के लिए दरिद्रता समाप्त हो जाय। धनदास की लाड़ली कन्या को अन्न-वस्त्र का कष्ट कभी सहना न पड़ेगा। अतएव क्षण भर को हिरण्मयी अनमनी हो गई। फिर दीर्घ निःश्वास छोड़ कर बोली, 'अमला, तुम वणिक से कहना कि मैं इसे ग्रहण नहीं करूँगी।'

अमला विस्मित हो रही। बोली, 'यह क्या ? तुम पागल हो, या तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है ?'

'मैं तुम्हारी बात का विश्वास कर रही हूँ—और पागल भी नहीं हूँ। मैं इसे ग्रहण नहीं करूँगी।'

अमला अनेक प्रकार से तिरस्कार करने लगी। हिरण्मयी ने किसी तरह भी ग्रहण नहीं किया। तब अमला वह हार ले कर राजा मदनदेव के पास गई। राजा को प्रणाम कर के वह हार उसने उपाहार में दिया। कहा, 'यह आप को ग्रहण करना ही होगा। यह हार आप के ही योग्य है।' राजा ने हार ले कर अमला को खूब धन दिया। हिरण्मयी इस बारे में कुछ भी न जान सकी।

इसके कुछ दिनों बाद पुरन्दर की एक नौकरानी हिरण्मयी के पास आई। उसने आ कर कहा, मेरे मालिक ने कहला भेजा है, कि आप यहाँ उस कुटिया में रहतीं हैं, यह उनसे सहा नहीं जाता। आप उनकी बाल्यकाल की सखी हैं, आप का घर और उनका घर एक ही है। वे ऐसा नहीं कहते कि आप उनके घर में जा कर रहें। उन्होंने आप का पितृगृह धनदास जी के महाजन से खरीद लिया है। वही आप को वे दान में दे रहे हैं। आप चल कर वहीं रहें, यही उनकी भीख है।'

हिरण्मयी दरिद्रता के कारण जितना दुःख भोग रही थीं, उसमें पिता का मकान छूटना ही सब से बढ़ कर था। जहाँ उसने बाल्यक्रीड़ाएँ की थीं, जहाँ पिता व माता के साथ रही है, जहाँ उनकी मृत्यु भी देखी, जहाँ वह रह नहीं पायी, यही कष्ट बहुत बड़ा मालूम होता था। इसी घर की बात से उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने नौकरानी को आशीर्वाद दे कर कहा, 'यह दान ग्रहण करना मेरे लिए उचित नहीं है, लेकिन मैं यह लोभ भी संवरण नहीं कर पा रही हूँ। तुम्हारे मालिक का सब तरह से मंगल हो।'

अमला तैयार हो गई। दोनों जा कर धनदास के मकान में रहने लगीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी अमला को बराबर पुरन्दर के घर आते-जाते देख कर एक दिन हिरण्मयी ने मना किया। अमला फिर और नहीं गई।

पिता के घर में जाने के बाद हिरण्मयी एक विषय में बड़ी विस्मित हुई। एक दिन अमला ने कहा, 'तुम निर्वाह के लिए खर्च की चिन्ता मत करो और न शारीरिक परिश्रम ही करो। राज दरबार में मुझे काम मिल गया है—अब मुझे पैसों की चिन्ता नहीं है। अब मैं घर का खर्च चला लूँगी—तुम घर की मालकिन बन कर रहो।' हिरण्मयी ने देखा, अमला के पास सचमुच बहुत धन है। उसके मन में नाना प्रकार के संदेह उठने लगे।

७

विवाह के बाद पाँचवें आषाढ की शुक्ल पंचमी आ उपस्थित हुई। हिरण्मयी वह सब बातें याद करके संध्या को अनमनी सी बैठी थीं। सोच रही थी, 'गुरुदेव की आज्ञानुसार मैं कल अँगूठी पहन सकूँ गी। लेकिन क्या पहनूँ? पहनने से भला मेरा क्या लाभ? हो सकता है, पति को पा लूँ लेकिन पति को पाने की मेरी कामना नहीं है। अथवा चिरकाल के लिए दूसरे की मूर्ति मन में अंकित कर रखूँ? इस हृदय पर काबू रखना ही उचित है। नहीं तो धर्म में पतित होऊँ गी।'

इसी समय अमला विस्मय-विह्वल हो कर आ कर बोली, 'सर्वनाश! मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रही हूँ। न जाने क्या होने वाला है!'

'क्या हुआ?'

'राजपुरी से तुम्हारे लिए पालकी और दास-दासियाँ आई हैं। तुम्हें लिवा ले जाएँगे।'

'तुम पागल हो गई हो, मुझे राजवाड़ी लिवा जाने को कोई भला क्यों आएगा?'

इसी समय राजदूती ने आ कर प्रणाम किया और बोली, 'राजाधिराज परम भट्टारक मदनदेव की आज्ञा है, हिरण्मयी इसी क्षण पालकी पर चढ़ कर राज-अन्तःपुर जाएँगी।'

हिरण्मयी भी विस्मित हुई। लेकिन इन्कार न कर सकी। राजाज्ञा अलंघ्य है। विशेषकर राजा मदनदेव के अन्तःपुर में जाने में कोई हिचक नहीं। राजा परम धार्मिक और जितेन्द्रिय हैं, ऐसी ही उनकी ख्याति है। उनके प्रताप से कोई राजपुरुष किसी स्त्री पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कर सकता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिरण्मयी ने अमला से कहा, 'अमले, मैं राजा के दर्शन करने जाने को तैयार हूँ। तुम भी साथ चलो।'

अमला भी तैयार हुई।

पालकी पर बैठ कर हिरण्मयी राज-अन्तःपुर में गई। प्रतिहारी ने राजा के सम्मुख निवेदन किया, 'श्रेष्ठिकन्या आ गई।' राजाज्ञा पा कर प्रतिहारी हिरण्मयी को अकेली राजा के सामने ले गया। अमला बाहर ही रही।

८

राजा को देख कर हिरण्मयी चकित रह गई। राजा दीर्घाकृति पुरुष, कवाटवक्ष, दीर्घहस्त, अति सुगठित आकृति, प्रशस्त ललाट, विस्फारित आयत आँखें, शान्त मूर्ति—ऐसा रूपवान सुन्दर पुरुष कदाचित ही किसी स्त्री ने कभी देखा हो। राजा भी श्रेष्ठि-कन्या को देख कर समझ गए कि राज-अन्तःपुर में ऐसी सुन्दरी दुर्लभ है।

राजा ने कहा, 'तुम हिरण्मयी हो ?'

हिरण्मयी बोली, 'मैं ही आप की दासी हूँ।'

राजा ने कहा, 'तुम्हें क्यों बुलाया है, सो सुनो। तुम्हें अपने विवाह की बात याद है ?'

'याद है।'

'उस रात आनन्दस्वामी ने तुम्हें जो अँगूठी दी थी, वह तुम्हारे पास है ?'

'महाराज ! वह अँगूठी है। लेकिन वह तो बहुत गोपनीय बात है, आपको उसके बारे में कैसे पता लगा ?'

राजा ने इसका कोई उत्तर न दे कर कहा, 'वह अँगूठी कहाँ है ? हमें दिखाओ।'

हिरण्मयी ने कहा, 'उसे मैंने घर में रखा है। पाँच वर्ष पूरा होने में अभी कई घण्टे बाकी हैं—अतएव उसे पहनने में आनन्दस्वामी का जो निषेध था, वह अभी भी है।'

'ठीक है—लेकिन उस अँगूठी की ही तरह की एक दूसरी अँगूठी जो आनन्दस्वामी ने तुम्हारे पति को दी थी, उसे देख कर पहचान सकोगी ?'

'दोनों अँगूठियाँ एक ही जैसी हैं, इसलिए देख कर पहचान लूँगी।'

तभी प्रतिहारी राजाज्ञा पा कर एक सोने की डिबिया ले आया। राजा ने उसके भीतर से एक अँगूठी निकाल कर कहा, 'देखो, यह अँगूठी किसकी है ?'

हिरण्मयी ने अँगूठी को रोशनी में ठीक से देख कर कहा, 'देव ! यही मेरे पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अँगूठी है। लेकिन आप को यह कहाँ से मिली ?' फिर कुछ क्षण सोच कर बोली, 'देव ! यह देख कर मैं समझ गई कि मैं विधवा हो चुकी हूँ। स्वजनहीन मृतक की सम्पत्ति आप के पास आ गई है। नहीं तो जीवित रहते वे इसका त्याग करें यह संभव नहीं है।'

राजा ने हँस कर कहा, 'मेरी बात का विश्वास करो, तुम विधवा नहीं हो।'

'तब मेरे स्वामी मुझसे भी दरिद्र हैं। धन के लोभ में इसे बेच दिया होगा।'

राजा—तुम्हारे स्वामी धनी व्यक्ति हैं।

'तब आपने बल, छल या कौशल से उनसे इसे छीन लिया है।'

राजा यह दुःसाहसिक बात सुन कर चकित हुए। बोले, 'तुममें बड़ा साहस है ! राजा मदनदेव चोर हैं, ऐसा कोई और नहीं कह सकता।'

'नहीं तो आपको यह अँगूठी कहाँ से मिली ?'

'आनन्दस्वामी ने तुम्हारे विवाह की रात यह अँगूठी मेरी उँगली में पहनायी थी।'

इस पर हिरण्मयी ने लज्जा से सिर झुका कर कहा, 'आर्यपुत्र ! मेरा अपराध क्षमा करें। मैं चपला हूँ, बिना समझे-बूझे इतनी कटु बात कह बैठी।'

|९|

हिरण्मयी राजमहिषी, ऐसा सुन कर हिरण्मयी खूब आश्चर्यचकित हुई। लेकिन उसे प्रसन्नता न हुई। बल्कि विषण्ण हुई। वह सोचने लगी, 'मैं इतने दिनों तक पुरन्दर को नहीं पा सकी। लेकिन दूसरे की पत्नी होने की यन्त्रणा भी नहीं भोगी। अब इस क्षण से मेरी यह यन्त्रणा भी शुरू हुई। मैं हृदय से तो पुरन्दर की पत्नी हूँ—किस तरह दूसरे की अनुरागिणी हो कर इस महानात्मा के गृह को कलंकित करूँगी ?' हिरण्मयी यही सोच रही थी, उसी समय राजा ने कहा, 'हिरण्मयी ! तुम मेरी महिषी हो, लेकिन तुम्हें ग्रहण करने के पहले मुझे तुमसे कई बातें जाननी हैं। तुम बिना कीमत दिये पुरन्दर के घर में क्यों रहती हो ?'

हिरण्मयी सिर नीचा किये रही। राजा ने फिर पूछा, 'तुम्हारी दासी अमला क्यों हर समय पुरन्दर के घर आती जाती है ?'

हिरण्मयी और भी लज्जित हो कर सिर झुकाए रही, सोचती रही, 'राजा मदनदेव क्या सर्वव्यापी हैं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी राजा ने कहा, 'और भी एक बड़ी बात है। पर-नारी हो कर तुमने पुरन्दर का दिया हुआ हीरे का हार क्यों स्वीकार किया ?'

इस बार हिरण्मयी ने उत्तर दिया। कहा, 'आर्यपुत्र, जान गई कि आप सर्वज्ञ नहीं हैं। हीरे का हार मैंने लौटा दिया था।'

'तुमने वह हार हमारे पास बिक्री किया था। यह देखो, वही हार है।'

यह कह कर राजा ने डिब्बे से वह हार बाहर निकाल कर दिखाया। उस हार को पहचान कर हिरण्मयी चकित हुई। बोली, 'आर्यपुत्र, यह हार क्या मैं स्वयं ले कर आप के पास बेचने आई थी ?'

'नहीं, तुम्हारी दासी व दूती अमला ने ला कर बेचा था। उसे बुलाऊँ ?'

हिरण्मयी के आश्चर्यचकित मुख-मण्डल पर हँसी खेल गई। बोली, 'आर्यपुत्र ! अपराध क्षमा करें। अमला को बुलाना नहीं पड़ेगा—मैं उस बिक्री को स्वीकार करती हूँ।'

इस बार राजा चकित हुए। बोले, 'स्त्री जाति का चरित्र समझ से परे है। दूसरे की पत्नी हो कर तुमने पुरन्दर से यह हार क्यों लिया ?'

'प्रणयोपहार समझ कर ग्रहण किया।'

राजा और भी चकित हुए। पूछा, 'सो क्यों ? कैसा प्रणयोपहार ?'

'मैं कुलटा हूँ। महाराज ! मैं आप द्वारा ग्रहण योग्य नहीं हूँ। मैं प्रणाम कर रही हूँ, मुझे विदा दीजिए। मेरे साथ हुए विवाह को भूल जाइए।'

हिरण्मयी ने राजा को प्रणाम किया और जाने को तत्पर हुई, इसी समय राजा के चेहरे पर प्रकाशित विस्मय के स्थान पर अकस्मात् प्रफुल्लता छा गई। वे खिलखिला कर हँस उठे। हिरण्मयी घूम पड़ी।

राजा ने कहा, 'हिरण्मयी ! तुम जीतीं और मैं हार गया। तुम कुलटा नहीं हो, मैं भी तुम्हारा पति नहीं हूँ। अभी मत जाओ।'

'महाराज ! तब यह कैसा काण्ड है, मुझे समझाइये। मैं अति सामान्य स्त्री हूँ। मेरे साथ आप के जैसे गम्भीर प्रकृति राजाधिराज का यह खेल करना शोभा नहीं देता।'

हँसना बंद किए बिना ही राजा ने कहा, 'मेरे जैसे राजा का इस प्रकार खेल करना ही उचित है। छः वर्ष हुए, तुम्हें गहनों के बीच एक पत्र का आधा हिस्सा मिला था ? वह तुम्हारे पास है क्या ?'

'महाराज ! आप सचमुच सर्वज्ञ हैं। वह आधा पत्र मेरे पास घर पर है।'

'तुम पालकी पर बैठ कर घर जाओ और वह आधा पत्र ले कर वापस आओ। तुस वह ले आओ तो मैं पूरी बात बताऊँगा।'

हिरण्मयी राजा की आज्ञा पा कर पालकी पर बैठ कर अपने घर गई, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ से वह पूर्ववर्णित आधा पत्र ले कर फिर राजा के पास लौट आई। राजा ने वह आधा पत्र देखा और पत्र का दूसरा आधा भाग एक डिब्बे से बाहर निकाल कर हिरण्मयी को दिया। बोले, 'दोनों आधे पत्रों को मिलाओ।' हिरण्मयी ने दोनों को मिला कर देखा, मिल गये। राजा बोले, 'दोनों को जोड़ कर पढ़ो।' अब हिरण्मयी ने निम्नलिखित रूप में पढ़ा।

'(ज्योतिषी से गणना करा कर देखा) तुमने जो कल्पना की है वह करना उचित नहीं। (हिरण्मयी सोने की पुतली जैसी) कभी चिर वैधव्य में नहीं डाली जा सकता। उसके (विवाह होने पर भयानक विपत्ति है) उसका चिर वैधव्य हो गा, गणना द्वारा यह स्पष्ट है। तब पाँच वर्ष (परस्पर एक दूसरे का मुँह) यदि दम्पत्ति एक दूसरे का मुँह न देखें तब इस ग्रह से निष्कृति (यही होगा) संभव है। मैं इसका विधान कर सकता हूँ।'

पढ़ना पूरा हुआ, तब राजा ने कहा, 'यही पत्र आनन्दस्वामी ने तुम्हारे पिता को लिखा था।'

'यह अब समझ रही हूँ। क्योंकि विवाह के समय तो हमारी आँखों पर पट्टी बाँध दी गई थी–क्योंकि वह अद्‌भुत विवाह गोपनीय हुआ था। क्यों पाँच साल तक अंगूठी पहनने का निषेध था, अब समझ पा रही हूँ। लेकिन और कुछ भी नहीं समझ पा रही हूँ।'

'और यह अवश्य ही तुम्हारी समझ में आ गया होगा कि यही पत्र पा कर तुम्हारे पिता ने पुरन्दर से संबंध तोड़ दिया था। पुरन्दर भी उसी दुःख से सिंघल चला गया था। इधर आनन्दस्वामी ने खोजते हुए एक वर ढूँढ़ निकाला। वर की कुण्डली की गणना कर के जाना कि वर की अस्सी वर्ष की आयु है। लेकिन अट्ठाइसवीं वर्ष की आयु बीतने से पहले मृत्यु की एक संभावना है। फिर गणना कर के देखो कि इस उम्र के पार होने से पहले और विवाह के पाँचवें साल में पत्नी के साथ लेटे हुए प्राण-त्याग की संभावना है। लेकिन यदि किसी प्रकार पाँच वर्ष जीवित रह जाए तो दीर्घजीवी होगा। अतएव वर का तेइसवाँ साल पार होते समय विवाह करने का निश्चय किया। किन्तु इतने दिनों अविवाहित रहने के कारण तुम किसी तरह चंचल होओ या चुपचाप किसी दूसरे से विवाह कर लो, इसीलिए तुम्हें डरवाने के लिए यह पत्र तुम्हारे गहनों में रख दिया था।

इसके बाद विवाह के बाद पाँच साल तक पति से साक्षात् न हो उसके लिए जो जो उपाय किया गया था, तुम्हें सब मालूम हैं। इसी कारण से परस्पर एक दूसरे का परिचय भी नहीं हुआ था। लेकिन इधर कई महीनों से बड़ी उलझन उठ खड़ी हुई थी। कई महीने हुए, आनन्दस्वामी इस नगर में आए थे, तुम्हारी दरिद्रता की बात सुन कर बहुत दुखी हुए थे। तुम्हे देख आए थे लेकिन भेंट नहीं की। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ कर मुझसे भेंट की थी और तुम्हारे विवाह का शुरू से आखिर तक पूरा विवरण मुझे सुनाया था। फिर कहा—'मुझे यदि यह पता लगता कि हिरण्मयी इतनी दरिद्रावस्था में है तो मैं उसे दूर करने का प्रयत्न करता। अब इस समय आप उसका प्रतिकार कीजिये। इस विषय में मुझे ही अपना ऋणी समझिए गा। आप का ऋण मैं चुकाऊँ गा। इस समय हमारा एक और अनुरोध आप को रखना होगा। हिरण्मयी का पति इसी नगर में रहता है। उससे उसका साक्षातकार न हो, यह आप देखिए गा।—यह कह कर उन्होंने मुझे तुम्हारे पति का परिचय भी मुझे दिया। इस अवधि में अमला जिस अर्थ से तुम्हारा दुख दारिद्रय दूर करती रही है, वह उसे हमीं से मिलता रहा है। मैंने ही तुम्हारा पितृगृह खरीद कर तुम्हें रहने के लिये दिया है। हार मैंने ही भेजा था—सो तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये।'

'तो आप को यह अँगूठी कहाँ मिली? मुझसे पति का परिचय कह कर आप ने मुझे अपमानित क्यों किया? पुरन्दर के घर में रह रही हूँ, कह कर अभियोग भी क्यों लगाया?'

'जिस क्षण मुझे आनन्दस्वामी की आज्ञा मिली, उसी क्षण मैंने तुम्हारे पहरे पर आदमी नियुक्त किया। उसी दिन अमला के द्वारा तुम्हारे पास हार भेजा। इसके बाद आज पाँच वर्ष पूरा हो गा जान कर, तुम्हारे पति को बुला कर कहा, 'तुम्हारे विवाह का पूर्ण विवरण मुझे मालूम है। तुम अपनी वह अँगूठी ले कर ग्यारह दण्ड बीतने पर रात के समय आना, तुम्हारा तुम्हारी पत्नी से मिलन होगा। उन्होंने कहा—महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन पत्नी से मिलने की मेरी इच्छा नहीं। मिलना न होने पर ही अच्छा होगा। मैंने कहा, मेरी आज्ञा है। इस पर तुम्हारे पति ने स्वीकृति दी, लेकिन कहा—मेरी पत्नी सच्चिरत्रा है या दुश्चरित्रा, यह आप को मालूम है? यदि दुश्चरित्रा स्त्री को ग्रहण करने की आज्ञा देंगे तो आप को अधर्म होगा। मैंने उत्तर दिया—अँगूठी दे जाओ। मैं तुम्हारी पत्नी के चरित्र की परीक्षा ले कर तब तुमसे ग्रहण करने को कहूँ गा। उन्होंने कहा—किसी अन्य पर विश्वास कर के यह अँगूठी कदापि न देता लेकिन आप पर अविश्वास नहीं है। हमने अँगूठी ले कर तुम्हारी यह परीक्षा ली और इसमें तुम्हारी विजय हुई।'

'परीक्षा तो कुछ भी मेरी समझ में नहीं आई।'

इसी समय राजमहल में जोर-शोर से मंगलसूचक बाजे बजने लगे। राजा ने कहा, 'रात्रि का ग्यारह दण्ड समाप्त हुआ। परीक्षा की बात फिर कभी कहें गे। इस क्षण तुम्हारे पति आए हैं। शुभ-लग्न में उनसे शुभदृष्टि करो।'

तभी पीछे से उस कमरे का दरवाजा खुला। एक दीर्घकाय पुरुष ने उस द्वार से कमरे में प्रवेश किया। राजा ने कहा 'हिरण्मयी, यही हैं तुम्हारे पति।'

हिरण्मणी ने आँखें उठा कर देखा—उसका सिर चक्कर खा गया। जाग्रत स्वप्न का भेद जानने की शक्ति जाती रही। देखा पुरन्दर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों ही एक दूसरे को देख कर स्तम्भित, विक्षिप्त प्राय से हो गए। दोनों में किसी को भी उस क्षण कुछ विश्वास नहीं हो रहा था।

राजा ने पुरन्दर से कहा, 'मित्रवर, हिरण्मयी तुम्हारी योग्य पत्नी है। आदर से घर लिवा ले जाओ। यह आज तक तुम्हारे प्रति पूर्ववत स्नेहमयी है। हमने दिन रात इन पर पहरा लगा रखा था, इसलिए विशेष रूप से जानता हूँ कि ये अनन्य अनुरागिणी हैं। तुम्हारी इच्छानुसार इनकी परीक्षा ली है, मैं ही इनका पति हूँ ऐसा परिचय दिया लेकिन राज्य की लालच में भी हिरण्मयी नहीं आई और तुम्हें नहीं भूली। अपने को हिरण्मयी का स्वामी कह कर परिचय दे कर, इशारा से जानना चाहा, हिरण्मयी तुम्हारे प्रति असत् प्रणय से आसक्त है, कह कर संदेह किया। यदि हिरण्मयी को इससे दुख होता, मैं निर्दोष हूँ, मुझे ग्रहण करें—कह कर कातर व्याकुल होतीं, तब मैं समझता कि हिरण्मयी तुम्हें भूल गई हैं। लेकिन हिरण्मयी ने यह सब न कह कर कहा—महाराज मैं कुलटा हूँ, मुझे छोड़ दीजिए। हिरण्मयी! तुम्हारे उस समय के मन के समस्त भाव मैं पूरी तरह समझ गया था। तुम किसी भी दूसरे पति से संसर्ग नहीं करो गी, इसलिए अपने को कुलटा कह कर तुमने अपना परिचय दिया। इस समय आशीर्वाद देता हूँ, तुम लोग सुखी होओ।'

'महाराज! मुझे एक बात और समझा दीजिये। ये सिंघल में थे, काशी में मेरे साथ परिणय किस प्रकार किया? यदि ये उस समय सिंघल से आए थे तो हम लोग कुछ जान क्यों न सके?'

'आनन्दस्वामी और पुरन्दर के पिता ने परामर्श कर के आदमी सिंहल भेज कर इन्हे सिंहल से बुला कर सीधे काशी ले गये। फिर वहाँ से ये सीधे सिंहल वापस चले गये। ताम्रलिप्ति आए ही नहीं। इसीलिये तुम लोग कुछ मालूम न कर सके।'

पुरन्दर ने कहा, 'महाराज! आप ने जिस प्रकार मेरा चिरकाल का मनोरथ पूरा किया, जगदीश्वर इसी प्रकार आप के सभी मनोरथ पूरे करें। मैं आज जैसा सुखी हुआ, ऐसा सुखी आप के राज्य में वास करने वाला कोई दूसरा नहीं।'

• • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

075669

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Accession Ukshar/3.9.84
Class on
Cat. on
Tag etc.
Checked
Any Other

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

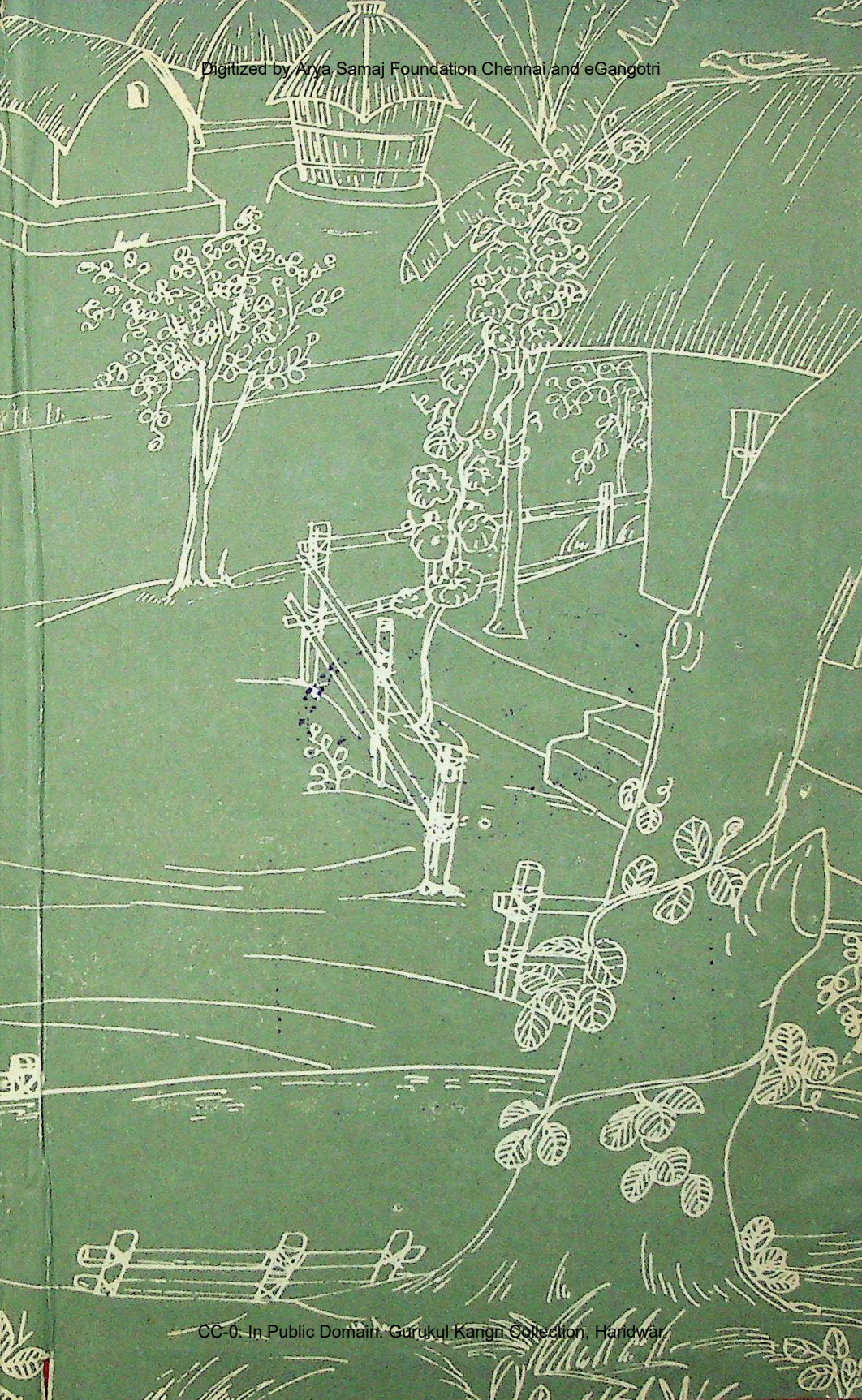

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar